BCM-104

भारतीय अर्थव्यवस्था

INDIAN ECONOMY

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग तीनपानी बाई पास, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी- 263139

फोन नं: (05946)-261122, 261123, 286055

टोल फ्री नं.: 1800 180 4025

फैक्स नं.: (05946)-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in, som@uou.ac.in

http://www.uou.ac.in

www.blogsomcuou.wordpress.com

अध्ययन मण्डल

प्रोफेसर नागेश्वर राव
कुलपति ,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर आर सी मिश्र (सयोंजक)
निदेशक, प्रबन्ध अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर बाल कृष्ण बाली (सेवानिवृत्त)
वाणिज्य विभाग,
एच पी यू, शिमला, हि. प्र.

प्रोफेसर कृष्ण कुमार अग्रवाल
प्रबन्ध अध्ययन विभाग,
एम जी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डॉ. हेम शंकर बाजपेई,
वाणिज्य विभाग,
डी डी यू गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अभय जैन,
वाणिज्य विभाग,
श्री राम कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स , नई दिल्ली

डॉ. गगन सिंह
वाणिज्य विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. मंजरी अग्रवाल
प्रबन्ध अध्ययन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. सुमित प्रसाद
प्रबन्ध अध्ययन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ. गगन सिंह , वाणिज्य विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ. कुलभूषण चंदेल, वाणिज्य विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला	1-5
प्रोफेसर टी पी एन श्रीवास्तव (सेवानिवृत्त), वाणिज्य विभाग, डी डी यू गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर	6-10
डॉ. सुरेश मित्तल, हरियाणा स्कूल ऑफ़ बिज़नस , जी जे यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, हिसार	11-15
प्रोफेसर जी सी पाण्डे (सेवानिवृत्त), वाणिज्य विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल	16-20
डॉ. गगन सिंह, वाणिज्य विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	21 (संकलित)

संपादन

प्रोफेसर एस पी काला (सेवानिवृत्त)
प्रबन्ध अध्ययन विभाग,
एच एन बी विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड

डॉ. गगन सिंह,
वाणिज्य विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अनुवाद

डॉ. अरुणा श्रीवास्तव, राजीव गाँधी कॉलेज, भोपाल, म. प्र. 1-20

आई एस बी एन : BCM-104-1(001678)

कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष : **2017**

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139

Printed at : **Mittal Enterprises, Delhi**

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

बी सी एम -104 भारतीय अर्थव्यवस्था

BCM-104 INDIAN ECONOMY

खण्ड-1 **भारतीय अर्थव्यवस्था और नवीन आर्थिक सुधार (Indian Economy and New Economic Reforms**

इकाई-1 प्रकृति और अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण (Nature and Classifications of Economies)

इकाई-2 बुनियादी विशेषताएँ व संरचना (Basic Characteristics and Composition)

इकाई-3 विभिन्न चरणों में से भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian economy Through Various Stages)

इकाई-4 भारत में नियोजन (Planning in India)

इकाई-5 नवीन आर्थिक सुधार (New Economic Reforms)

खण्ड-2 **वृहत आर्थिक अवधारणाएँ Macro Economic Concepts)**

इकाई-6 मुद्रास्फीति (Inflation)

इकाई-7 भारत में बेरोजगारी (Unemployment in India)

इकाई-8 मानव संसाधन और आर्थिक विकास (Human Resource and Economic Development)

इकाई-9 राष्ट्रीय आय (National Income)

इकाई-10 गरीबी, गरीबी रेखा और गरीबी उन्मूलन के उपाय (Poverty, Poverty Line and Poverty and Poverty Alleviation Measures)

खण्ड-3 **उद्योग और उद्यमिता (Industries and Entrepreneurship)**

इकाई-11 लघु, सूक्ष्म और मध्यम व्यवसाय (Small, Micro and Medium Business)

इकाई-12 बड़े पैमाने के उद्योग (Large Scale Industries)

इकाई-13 व्यवसाय के प्रकार (Forms of Business)

इकाई-14 उद्यमिता (Entrepreneurship)

इकाई-15 औद्योगिक श्रम-समस्याएं, नीतियाँ और सुधार (Industrial Labour-Problems, Policies and Reforms)

खण्ड-4 **आर्थिक संसाधन और उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था (Economic Resources and Economy of Uttarakhand)**

इकाई-16 कृषि और भारतीय अर्थव्यवस्था (Agriculture and Indian Economy)

इकाई-17 ग्रामीण ऋण (Rural Credit)

इकाई-18 भारतीय अर्थव्यवस्था में आधारभूत संरचना (Infrastructure in Indian Economy)

इकाई-19 वन और खनिज संसाधन (Forest and Mineral Resources)

इकाई-20 उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था और पर्यटन (Economy of Uttarakhand and Tourism)

इकाई-21 वस्तु एवं सेवा कर (Goods and Services Tax) **(संकलित)**

इकाई 1 अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 अर्थव्यवस्था की प्रकृति

1.3 अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोध प्रश्न

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 स्वपरख प्रश्न

1.9 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अर्थशास्त्र की अवधारणा की व्याख्या कर सकें।
- अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं विशेषताओं की विवेचना कर सकें।
- अर्थशास्त्र के वर्गीकरण की विवेचना कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था शब्द हमारे जीवन में दिन प्रतिदिन प्रयोग में आने वाला शब्द है। अर्थव्यवस्था से संबंधित तर्कों से हमारे समाचार पत्र भरे रहते हैं, जिनमें विभिन्न राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, शहरी अर्थव्यवस्था आदि सम्मिलित हैं एवं यह दिन प्रतिदिन उपयोग में आने वाला शब्द है। अर्थशास्त्र शब्द को दैनिक बोलचाल में एक अन्य शब्दावली द्वारा भी संबोधित किया जा रहा है, जैसे समष्टि अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र, व्यावसायिक अर्थशास्त्र, प्रबधंकीय अर्थशास्त्र, औद्योगिक अर्थशास्त्र आदि। इन सबके अतिरिक्त कहीं सामंती अर्थव्यवस्था, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, सामाजिक अर्थव्यवस्था और इसी तरह अन्य शब्दावलियों का भी प्रयोग किया जाता है। सही अर्थों में अर्थशास्त्र मुख्य रूप से भौतिक मांगों की उपलब्धता एवं लाभ से संबंधित है, जिससे मनुष्य की असीमित इच्छाओं को सन्तुष्ट किया जा सके। उत्पादन के विभिन्न संसाधन जैसे जमीन, कच्चा माल, मजदूर और मशीनें वस्तुएं और सेवाएं देने वाले मुख्य यन्त्र बहुत ही सीमित एवं दुर्लभ हैं। अतः यह माना गया कि इन संसाधनों का उपयोग इस तरह से करने की आवश्यकता है जिससे कि समस्त समाज की और व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति हो सके क्योंकि हमारे पास संसाधन सीमित मात्रा में है। साधारणतया इस समस्या को आर्थिक समस्या के नाम से जाना जाता है और इस समस्या से प्रत्येक अर्थशास्त्रीय व्यवस्था का साक्षात्कार होता है चाहे वह पूंजीवादी, अर्थव्यवस्था हो या समाजवादी या मिश्रित अर्थव्यवस्था हो। दुर्लभ संसाधनों से कितना अधिक से अधिक लाभ लिया जा सके, यही अर्थशास्त्र के संज्ञान का विषय है। सुविख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री लार्ड राबिन्स ने अर्थशास्त्र को इस तरह परिभाषित किया है– ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों और वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के परस्पर संबंधों के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।''

अर्थव्यवस्था के संदर्भ में व्यक्तिगत जानकारी रखना आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि परिवार, राष्ट्र और समाज की तरह ही अर्थव्यवस्था भी व्यक्ति के अनुभव की सत्यता है। जब हम कुछ खरीदते या बेचते हैं, या कुछ अर्जित करते हैं या खर्च करते हैं, तो हम उसी तरह अर्थव्यवस्था में सहयोग कर रहे होते हैं जैसे कि हम इसे कमा रहे है। किन्तु विशिष्ट रूप से हम इसमें इस तरह समाहित हो जाते हैं कि यह विचार ही उत्पन्न नहीं हो पाता कि हम यह सोचें कि यह क्या है और यह कैसे कार्य करती है। किसी भी राष्ट्र की औसत अर्थव्यवस्था का प्रारूप इस आधार पर निर्भर करता बनता है कि वह कई सैकड़ों या हजारों आर्थिक गतिविधियों में लिप्त रहता है, इन गतिविधियों में राष्ट्र द्वारा हजारों उत्पादों का उत्पादन और विक्रय सम्मिलित है। इन विभिन्न आर्थिक गतिविधियों, और संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर इन गतिविधियों का प्रभाव जानने के लिये हमें आर्थिक गतिविधियों के वृह्द स्वरूप को जानना होगा। और इसका एक तरीका यह भी है कि इनको प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक गतिविधियों में श्रेणीबद्ध कर दिया जाए।

प्राथमिक, आर्थिक गतिविधि को निचले स्तर या खनन स्तर का क्षेत्र के नाम से भी जाना जा सकता है जिसके अन्तर्गत सम्मिलित है खोदना, बोना या भूमि से संबंधित अन्य उत्पाद या अन्य प्राकृतिक संसाधन आदि। इसके अंतर्गत आती है, किसानी, वन संबंधी, मत्स्यपालन और खदान संबंधी गतिविधियां या कार्यकलाप । प्राथमिक गतिविधि के अन्तर्गत खनन से निकाली गयी, सामग्री की पैकिंग भी सम्मिलित है। यह मुख्य गतिविधियां हैं।

द्वितीयक आर्थिक गतिविधियों से तात्पर्य है विनिर्माण क्षेत्र, जिसके अन्तर्गत सम्मिलित है समस्त उद्योग जो सामान तैयार करते है। इस समूह के अन्तर्गत बहुत सारे औद्योगिक क्षेत्र आते हैं जैसे– आटोमोबाईल, रसायन क्षेत्र, वस्त्र उद्योग, अभियांत्रिकी यन्त्र और भवन निर्माण संबंधी क्षेत्र । यह वह आर्थिक गतिविधिया हैं जो मुख्य गतिविधि के साथ विद्यमान रहती है। यह सहायक की भूमिका निभाते हैं।

तृतीयक गतिविधियों को सेवा के क्षेत्र में भी जाना जाता है। यह ग्राहकों और उत्पादक को अपनी सेवाएं प्रदान करता है। इनमें वितरण, खुदरा व्यापार, सम्प्रेषण, होटल और यातायात की सेवाएं सम्मिलित हैं। इन गतिविधियों को आवश्यक गतिविधियों का नाम दिया गया है और यह प्राथमिक और द्वितीयक गतिविधियों के विकास के लिये अत्यन्त महती भूमिका भी निभाती है।

आर्थिक गतिविधियों का तीन समूहों में विभाजन हमें यह समझने और अध्ययन योग्य बनाता है कि हम राज्य की अर्थव्यवस्था की प्रकृति और आर्थिक व्यवहार की विशेषताओं को समझ सकें। उदाहरण स्वरूप यह पाया गया कि विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की संरचना और आर्थिक विकास विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न स्तरों पर हुआ है। अविकसित अर्थव्यवस्था अक्सर पूर्णरूप से प्राथमिक क्षेत्र पर आश्रित होती है। जैसे जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है, द्वितीय क्षेत्र में शनैःशनै वृद्धि होती है और यह सर्वाधिक विकसित हो जाता है। इसी तरह तृतीयक क्षेत्र भी विकसित होता है, पर यह प्रमुख नहीं है। यह मामला बीसवीं शताब्दी के शुरूआती दौर के विकसित देशों का था। पूरी अर्थशास्त्रीय गतिविधियों का प्रतिशत निकालें तो निष्कर्ष यही है कि जैसे ही अर्थव्यवस्था का विकास होता है सेवा प्रदान करने वाला क्षेत्र स्वयं ही उत्तरदायी हो जाता है। दूसरे स्थान पर आता है विनिर्माण क्षेत्र और मौलिक सेवाएं देने वाला अथवा भूमिगत क्षेत्र सबसे अंत में आता है। आज भारतीय अर्थव्यवस्था का स्तर वह है जहां सेवा प्रदान करने वाले क्षेत्र ने विनिर्माण क्षेत्र को पीछे छोड़ कर अपना स्थान अग्रणी बना लिया है।

1.2 अर्थव्यवस्था की प्रकृति

निम्नलिखित बिन्दु अर्थव्यवस्था की प्रकृति का विवेचना करते है:–

पारस्परिक संबंधों की भांति अर्थव्यवस्था :–

परिवार, राष्ट्र, समाज और अर्थव्यवस्था में जो एक बात सामान्य है वह यह है कि उन सबके मुख्यतः संबंध है। उदाहरण के लिये परिवार में माता–पिता, बच्चे, पति–पत्नि, भाई और बहिन के संबंध होते हैं। सामान्यतः यह संबंध अंतरंग और अनौपचारिक होते हैं, राष्ट्र का भी संबंधों का जाल है जो कि नियमों और कानूनों के माध्यम से चलता है और कुछ ज्यादा ही औपचारिक होता है। यह संबंध विभिन्न काल, खंडो, संप्रदायों, जातियों, समूहों के मध्य संपर्क का काम करते हैं। इसी प्रकार नीति निर्धारण करने वाले एवं शासक जिसके अन्तर्गत राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वर्ग भी सम्मिलित हैं, के मध्य भी यह संबंध एक सेतु का काम करते हैं। अर्थव्यवस्था को समझने के लिये पहला कार्य जो करना होगा वह होगा संबंधों की सतह को उजागर करना। किन्तु तथ्य यह है कि हम लगातार घरेलू अर्थव्यवस्था की बात करते हैं और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जिन संबंधों को दिखाती है वह कुछ अलग हैं, वे संबंध घरेलू और राष्ट्र दोनों से ही संबद्ध होते हुये एक दूसरे से अलग हैं। यदि ऐसा है तो, अर्थव्यवस्था विभिन्न संबंधों का एक पुलिन्दा है जिसे कि अन्य सामाजिक संबंधों से अलग किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था को समझने में जो कठिनाई होती है वह है इसकी विशिष्ट प्रकृति, जो कि अन्य सामाजिक संबंधों से प्राप्त की गयी है और जिसे आसानी से पहचाना भी नहीं जा सकता है।

दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था के विभिन्न सामाजिक संबंधों या संगठनों से संबंधित होने की वजह से यह संभाव्य होगा कि उन आवश्यक कारकों का परीक्षण किया जा सके जिनका संबंध आर्थिक हो । आर्थिक गतिविधियों या अर्थव्यवस्था की जानकारी हेतु हमारे सामान्य मनोदशा एवं अन्तचेतना पर विश्वास किया जा सकता है।

चाहे घरेलू स्तर हो या राष्ट्रीय, हम जानते हैं कि आर्थिक गतिविधि का एक बहुत बड़ा हिस्सा हम संसाधनों के उपयोग के माध्यम संरक्षित रखते हैं। हो सकता है कि दो विभिन्न उदाहरण हो। इसी तरह, यह भी सत्य है कि संसाधन का मतलब ही है वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन एवं विनियोजन एक बार फिर यह स्पष्ट है कि वितरण की प्रक्रिया एवं सिद्धान्त को घरेलू और राष्ट्रीय स्तर पर समान होने की न तो आवश्यकता है और न ही कभी समान होंगे, परन्तु फिर भी यह कह सकते हैं कि हम जो भी सामाजिक संगठन की अर्थव्यवस्था की बाते कर रहे हैं, उसके मुख्य बिन्दु उत्पादन और वितरण ही है। किसी भी अर्थव्यवस्था के मुख्य तथ्य होते हैं कि क्या उत्पन्न करना है, कैसे उत्पादन करना है और किसके लिये यह उत्पादन किया जाना है।

श्रम पद्धति अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में :–

यहाँ सभी आर्थिक गतिविधियों में कुछ तो समानता है जैसे कि मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार के श्रम का प्रयोग। श्रम बल को मानव बल या राष्ट्रीय स्तर पर बड़े संदर्भों में इसे मानव संपदा भी कहा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक गतिविधि व्यक्तियों द्वारा लिये गये निर्णयों पर आधारित होती है और मनुष्यों के लिये ही होती है। विस्तृत अर्थों में, किसी भी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में मनुष्यों द्वारा जिन संसाधनों का प्रयोग किया जाता है वह सब प्रकृति प्रदत्त है, किन्तु चिन्हित हैं समस्त मानव गतिविधियों द्वारा उन पर नियंत्रण रखने की पूरी व्यवस्था बनायी गयी है। और इसी तरह, वह उत्पादित वस्तु जिस पर विभिन्न व्यक्तियों का अधिकार है उन पर शिकायत की अवस्था में नियम बनाना भी मानव गतिविधि है। अतः अर्थव्यवस्था के अध्ययन के केन्द्र में श्रम प्रक्रिया, निर्णय क्षमता और क्रिया कलाप सम्मिलित है।

श्रम प्रक्रिया अकेले प्रयोग में नहीं लायी जा सकती है। यह नितान्त सामूहिक या सामाजिक गतिविधि है। और यही कारण है कि अर्थव्यवस्था हमेशा घरेलू, आदिवासी ग्रामीण समुदाय, राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय सामाजिक संगठनों से जुड़ी रहती है और इनमें से प्रत्येक सामाजिक संबंधों को दर्शाता है न कि अर्थव्यवस्था की संरचना करने वाले संबंधों को । कुछ क्षणों के लिये घरेलू अर्थव्यवस्था को जगह दी जा सकती है। घरेलू अर्थव्यवस्था ऐसे सामाजिक संबंधों का विचार हो सकता है जिसमें या जिसके माध्यम से प्रत्येक सदस्य उसकी जरूरतों के आधार पर सन्तुष्ट हो सके। घरेलू सदस्यों को भोजन, वस्त्र और मकान की आवश्यकता होती है। उन्हें प्रेम, प्रोत्साहन एवं सही–गलत की जानकारी की भी आवश्यकता होती है। इन दोनों तरह की आवश्यकताओं में अन्तर है दोनों में अन्तर स्थापित करने के लिये हम सर्वप्रथम पहला अन्तर देखते हैं तो पाते हैं कि पहली भौतिक आवश्यकताएं है और दूसरी भावनात्मक आवश्यकताएं। भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये शारीरिक संसाधनों की सहभागिता आवश्यक होगी, और ग्रामीण क्षेत्रों क्षेत्रों में लोग स्वयं इस बात के गवाह हैं जहां अधिकांश लोग जमीन और अन्य शारीरिक संसाधनों में प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये है। दूसरी ओर, ऐसा नहीं लगता कि शहरी क्षेत्रों में लोग भोजन, वस्त्र और इसी तरह की समान जरूरतों को पैसे देकर खरीदते है। धन का उपयोग आर्थिक गतिविधि को सुविधा जनक बनाता है, किन्तु अर्थव्यवस्था बहुत जटिल हो जाती है। यह देख पाना कठिन नहीं है कि धन शारीरिक संसाधनों पर आवश्यक रूप से एक दावा है। और इसी कारण हम पैसों के माध्यम से चीजों को खरीद पाते है।

भौतिक आवश्यकताओं के प्रावधान के रूप में अर्थव्यवस्था :–

ग्रीक की प्रारंभिक अवस्था में 'अर्थव्यवस्था' शब्द का प्रयोग प्रथम बार घरेलू सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शारीरिक संसाधनों की व्यवस्था को संदर्भित करके किया गया। साधारणरूप से उसी को ध्यान में रखते हुये आज शब्द अर्थव्यवस्था का प्रयोग बहुत से सामाजिक समूहों द्वारा संसाधनों के प्रबधंन के रूप में ही किया जा रहा है फिर सामाजिक समूह चाहे घरेलू हो, आदिवासी हो, ग्रामीण समुदाय के हों, राष्ट्रीय हों या राज्य स्तरीय ।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम से कोई भी राष्ट्र या राज्य, उसके सदस्यों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, राष्ट्र की कुछ अन्य आवश्यकताएं भी है जिन्हें भौतिक आवश्यकताओं के रूप में स्पष्ट नहीं किया जा सकता है, जैसे कि राष्ट्र की सुरक्षात्मक आवश्यकता, जिसे कि भौतिक कारकों पर विश्वास किये बिना पूरा नहीं किया जा सकता है। किन्तु, पुनः हम भौतिक आवश्यकताओं एवं अन्य आवश्यकताओं (सामाजिक, सांस्कृतिक आदि) में अन्तर स्थापित करते हुये, भौतिक आवश्कयताओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे ताकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को उसी रूप में जान सकें जैसी कि कोई भी राष्ट्र या राज्य उसके सदस्यों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसके संसाधनों का प्रबंध करता है। जबकि राष्ट्रीय और घरेलू अर्थव्यवस्था इस संदर्भ में समान है, यह ध्यान देने योग्य है कि वे पूर्णतः समान नहीं हैं वे उनके संसाधनों के संदर्भ में अलग हो सकते हैं। कुछ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का यह मत है कि बहुत सी घरेलू अर्थव्यवस्थाएं अपने सदस्यों की आवश्यकताओं के अनुरूप सारी चीजें खरीदती हैं जो कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सहन करनी होती है। भौतिक आवश्यकताओं के कई रूपों में एक हो सकते हैं, उत्पादन और क्रय में ज्यादा समानता दिखायी देती है, जिसे कि एक साथ एक सामान्य अभिव्यक्ति ''प्रावधान संबंधी के रूप में ला सकते है। यदि ऐसा होता है, पहले तो हम कह सकते हैं कि किसी भी समूह (घरेलू, आदिवासी, ग्रामीण समुदाय, राष्ट्र, राज्य आदि) द्वारा उसके सदस्यों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बनाए गये प्रावधानों को व्यवस्थित करना, अर्थव्यवस्था है।

वर्णित अर्थव्यवस्था :–सभी घटकों को ध्यान में रखते हुये हम अर्थव्यवस्था क्या है, इसके बारे में एक विस्तृत वक्तव्य दे सकते हैं। लोगों के समूह के मध्य अर्थव्यवस्था आपसी संबंधों का ढाँचा है जिनमें वे संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं, तथा वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं में श्रम और संसाधनों का उपयोग करते हैं। इसके अन्तर्गत जो भी उत्पाद तैयार हुआ उसके ऊपर लोगों के दावे भी सम्मिलित हैं।

यह अर्थव्यवस्था की औपचारिक परिभाषा नहीं है, बल्कि इसको अत्यन्त विस्तृत रूप में समझने का प्रयास है। यह चर्चा यह इंगित करती है कि अर्थव्यवस्था की इस परिभाषा से तीन मुख्य प्रश्न उत्पन्न होते हैं– स्वामित्व/या संसाधनों पर नियंत्रण का, उत्पादन का और सदस्यों के मध्य उत्पाद के वितरण का। इस कथन का उपयोग अर्थव्यवस्था को विस्तृत रूप में समझने के संदर्भ में किया जा सकता है। संक्षिप्त रूप में कुछ बिन्दु निकल कर आए हैं और जिन्हें प्राथमिक रूप से लिया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था का संबंध व्यक्तियों के समूह से है । यह कहना व्यर्थ होगा क्योंकि अर्थव्यवस्था के अध्ययन में लिप्त कुछ परंपराएं यह मानती हैं कि जहां अर्थव्यवस्था लोगों के बारे में है या लोगों से संबंधित है। तब यह प्रारंभिक रूप से व्यक्तियों एवं उनकी विशेषताओं से संबंधित है। दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था मानव संबंधों के नज़रिए से संबंधित है। वह ससंबंध हैं – ऐसे संबंध जिनमें तीन बड़ी गतिविधियाँ (संसाधन, उत्पादन और वितरण) आती हैं और ऐसा संबंध जो इन गतिविधियों के माध्यम से ही उत्पन्न होता है। तीसरे, यह ध्यान देने योग्य है कि अर्थव्यवस्था से संबंधित कथन केवल संबंधों की ही व्याख्या नहीं करते, अपितु समाधान का ऐसा ढाँचा तैयार करते हैं जिससे कि संबंध जिनसे कि तीनों गतिविधियां उत्पन्न होती हैं, जो कि आकस्मिक या साधारण नहीं हैं बल्कि अर्थव्यवस्था के निर्माण में महती भूमिका अदा करते हैं।

चौथे विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को समझने के लिये उनके विभिन्न ढाँचे, आकार, प्रकार के विषय में जानना भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था एक दूसरे से भिन्न होती है अपने ढाँचे, अपनी नींव के कारण । घरेलू अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था उनके मूलभूत संरचना के आधार पर भिन्न होती हैं। यद्यपि कि घरेलू अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था दोनों ही अर्थव्यवस्थाएं उत्पादन में संसाधन और श्रम पर नियंत्रण रखती हैं तथा उत्पाद के ऊपर सदस्यों के दावों के निराकरण पर भी नियंत्रण रखती हैं किन्तु दोनों की संरचना में अन्तर होने के कारण, दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं के कार्य करने के ढंग में भिन्नता है।

साधारण शब्दों में किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में सम्मिलित है वह सदस्य जनसंख्या जो कृषि, वन, खदानों, व्यवसाय, विद्यालयों, महाविद्यालयों, सिनेमा घरों, बैंक, अस्पतालों, सड़कों, नहरों , रेल्वे इत्यादि में कार्यशील है, जिनका उद्देश्य पैसा कमाकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना है। इस तरह की अर्थव्यवस्था गाँव, शहर, देश और समस्त विश्व से भी संबंधित है। संक्षेप में, जैसा कि ए.जे. ब्राउन ने कहा है– ''अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा एक क्षेत्र के लोग अपने जीवनयापन के लिये पैसा कमाते हैं।'' अतः, अर्थव्यवस्था से तात्पर्य वह सारी आर्थिक गतिविधियों से है जो उस देश के रहने वाले लोगों द्वारा उनके गुजर बसर के लिये पैसा कमाने के उद्देश्य से की जाती हैं।

1.3 अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

आर्थिक व्यवस्था या संगठन व्यक्तियों के मध्य आर्थिक सहयोग स्थापित करने का एक तरीका है जिसके विशिष्ट संस्थान हैं , तीन तरह की अर्थव्यवस्था प्रणाली हैः–

(1) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था

(2) समाजवादी अर्थव्यवस्था

(3) मिश्रित अर्थव्यवस्था

(1) पूंजीवाद :– पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को एक ऐसी संगठनात्मक आर्थिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें स्वच्छन्द उद्यम प्रतियोगिता एवं संपत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व को प्राथमिकता दी जायेगी । दूसरे शब्दों में, पूंजीवाद आर्थिक संगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व एवं मानव निर्मित और प्रकृति प्रदत्त पूंजी के उपयोग से व्यक्तिगत लाभ सम्मिलित है। निजी संपत्ति, मूल्य अवधारणा, उद्यम की स्वतंत्रता, प्रतियोगिता एवं सहयोग, लाभ का उद्देश्य, उपभोक्ताओं की संप्रभुता, श्रम विशेष संदर्भ आदि पूंजीवाद के अन्तर्गत आते हैं जिसमें सरकार का कोई नियंत्रण न हो। पूंजीवादिता के मुख्य बिन्दु हैं आत्म–हित।

पूंजीवाद के गुणः– अपनी इन विशेषताओं के कारण पूंजीवाद को सराहा जाता है–

(i) <u>**उच्च गुणवत्ता की वस्तुएं एवं सेवाएं**</u> :– इस अर्थव्यवस्था का मुख्य गुण यह है कि इसमें उपभोक्ता की रूचि एवं पंसद के अनुसार वस्तुंए उत्पादित होती है और सेवाएं भी उसी अनुरूप दी जाती है। जब वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन हो रहा होता है तब ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। पुनः वस्तुओं का उत्पादन एवं वस्तुओं का प्रदाय भी ग्राहक पर ही केन्द्रित होता है।

(ii) <u>**संसाधनों का उचित उपयोग**</u> :– लाभ कमाने के उद्देश्य से ही उत्पादन किया जाता है । और इस हेतु अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों का उचित उपयोग करते हुये बरबादी से बचा जाता है। प्राकृतिक संसाधनों जिनमें मानव निर्मित संसाधन भी सम्मिलित हैं, एवं उत्पादों का उपयोग एवं शोषण दोनों में ही राष्ट्र की जनता की आवश्यकताएँ एवं हित सम्मिलित हैं।

(iii) <u>**कार्य के परिणाम स्वरूप प्रलोभन या प्रोत्साहन**</u> – पूंजीवादी व्यवस्था में कार्य के प्रति प्रत्येक व्यक्ति को प्रोत्साहन राशि उपलब्ध है। उत्तराधिकार के नियम एवं निजी सम्पत्ति का स्वामित्व कार्य करने के लिये प्रेरणा देता है। व्यक्ति की इच्छा अधिक से अधिक धनार्जन, अधिक से अधिक सम्पत्ति एकत्रित करने पर केन्द्रित है। परिणाम स्वरूप पूंजीवादी अर्थव्यवस्था उनकी राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी का अद्भुत प्रमाण है।

(iv) <u>**जवीन स्तर में वृद्धि**</u> :– समाज के विभिन्न वर्गों की आवश्कताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न सामानों एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाता है। वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन, उसकी कीमत को कम कर देता है और इसी कारण लोगों को रियायती दामों में आसानी से उपलब्ध हो जाती है। परिणाम स्वरूप मंहगी और उत्कृष्ट वस्तुओं के खरीदने से निर्धन व्यक्तियों के जीवन स्तर को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती है।

(v) <u>**लचीलापन**</u>: यह नमनीय (लचीली) व्यवस्था है। यह परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं ही व्यवस्थित हो जाती है। उदाहरण के लिये कुछ उत्पादों या सेवाओं की मांग घट रही है तब वस्तुओं की पूर्ति भी कम हो जाती है और उपलब्ध संसाधन उस ओर मुड़ जाते हैं जहां मांग की वृद्धि हो रही होती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उत्पादन और वितरण बाजार पर केन्द्रित होती है।

पूंजीवाद के दोष :

पूंजीवाद के मुख्य दोष निम्नलिखित हैः–

(i) **धन का असमान वितरण** :– पूँजीवादी व्यवस्था का एक मुख्य दोष धन और आय का असमान वितरण है जिसके कारण आर्थिक बल एवं एकाधिकार पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है। इस असमानता का कारण निजी सम्पत्ति, स्वतंत्र प्रतियोगिता, अधिकतम लाभ की इच्छा रखना आदि है। पूंजीवादिता की यह विशेषता अमीर को और अमीर तथा गरीब को और गरीब बनाती है।

(ii) **वर्ग संघर्षः–** पूँजीवादिता के अन्तर्गत धन और आय की असमानता समाज को दो वर्गों में विभाजित करती है। दूसरी ओर, धनी और पूंजीवादी वर्ग आलीशान जीवन व्यतीत करता है, वहीं दूसरी ओर श्रमिक वर्ग को न्यूनतम जीवनशैली से ही संतुष्ट होना पड़ता है और कभी कभी तो परिस्थितियां ऐसी उत्पन्न होती हैं कि उनके जीवनयापन के लिये आवश्यक वस्तुएँ तक उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

(iii) **श्रमिक वर्ग का शोषण** :– पूंजीवादिता की एक अन्य कमी है श्रमिक वर्ग का शोषण । यह शोषण संसाधनों पर नियंत्रण, उत्पादन और वितरण के मुख्य घटकों का धनी वर्ग पर आधारित होना, आदि के रूप में होता है, संभावना यह भी हो जाती हे कि इन संसाधनों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जाए जिससे कि श्रमिक बल की सौदेबाज़ी की क्षमता कम हो जाती है जिसके कारण उनके शोषण की संभावनाएं बढ़ जाती है।

(iv) **बेकार प्रतिस्पर्धाः–** प्रतिस्पर्धा, पूंजीवादिता की मुख्य विशेषता है, वास्तविकता में बिल्कुल ही व्यर्थ है। यह सभी के लिये उपलब्ध नहीं है और न ही कोई जाँच या नियंत्रण है। ज्यादा से ज्यादा लाभ बाजार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है जिससे उस समय नकारात्मकता सिद्ध होती है जब अधिक बलशाली लोग कम बलशाली लोगों को उनके क्रियाकलापों और गतिविधियों से बाहर कर देते हैं।

(v) **समन्वय की कमीः** केन्द्रीय योजना के अभाव के चलते, उत्पादन में, संसाधनों के उपयोग और उत्पादन के वितरण में समन्वय की कमी देखी जाती है।

(2) **समाजवादी अर्थव्यवस्था :–** समाजवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक व्यवस्था सरकार के द्वारा नियंत्रित एवं कार्यान्वित की जाती है ताकि समाज में लोगों को अवसर की समानता एवं कल्याणकारी व्यवस्था की निश्चितता हो सके। समाजवाद में राज्य की केन्द्रीय भूमिका है। इसके पास उत्पादन के साधन हैं तथा राज्य सामाजिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति हेतु आर्थिक गतिविधियों को निर्देश भी देता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं हैं– सम्पत्ति पर सभी का स्वामित्व, उद्‌देश्यों का विनिश्चीकरण, आर्थिक व्यवस्थाएं, सरकारी नियंत्रण एवं प्रतिस्पर्धा का अभाव ।

समाजवाद के गुण :– समाजवाद के निम्नलिखित गुण हैं :–

(i) **आर्थिक संसाधनों का समुचित उपयोग** :– आर्थिक संसाधन बहुत सुव्यवस्थित तरीके से उपयोग में लाये जाते हैं।

(ii) **मूल समस्या का समुचित समाधान** :– मूल समस्याएँ जैसे क्या उत्पादित होना है और उत्पादन कैसे होना है एवं उत्पादन के स्रोतों पर सरकार का नियंत्रण कितना रहेगा आदि समस्याओं का समाधान इस व्यवस्था के अन्तर्गत रहता है। निरर्थक विज्ञापन जैसे स्वतंत्र उद्यम अर्थव्यवस्था आदि का कोई स्थान नहीं होता है और इसी वज़ह से समाजवाद में किसी तरह की प्रतिस्पर्धा भी जन्म नहीं ले पाती है।

(iii) **चक्रीय उतार–चढ़ाव का अभाव** :– स्वतंत्र–उद्यम की अर्थव्यवस्था का मुख्य बिन्दु चक्रीय उतार चढ़ाव होता है किन्तु समाजवाद में इसका कोई स्थान नहीं है। किसी भी चीज में तेजी, अवसाद, बेरोजगारी, मांग से अधिक उत्पादन आदि से गलत पहलू उत्पन्न नहीं हो पाते है।

(iv) **तीव्र एवं संतुलित आर्थिक विकास** :– योजनाओं के निर्माण एवं उनके मध्य समन्वय स्थापित करने का मुख्य कार्यकर्ता योजना प्राधिकारी होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में जहां तक उत्पादन के कारकों का संबंध है, यह प्रारूप बना कर इतनी कुशलता एवं निपुणता के साथ समन्वय स्थापित करता है कि राष्ट्र के आर्थिक विकास में सहायक प्राकृतिक, मानव और भौतिक संसाधन प्रकाश में आते है, एवं राष्ट्र का विकास तीव्र गति से होने लगता है।

समाजवाद के दोष :–

समाजवाद के निम्नलिखित दोष हैः–

1. **लागत गणना के उचित आधार का अभाव** :– इस व्यवस्था की एक मुख्य आलोचना यही है कि उत्पादन और वितरण की लागत गणना का आधार खोजना एवं दुरूह कार्य है। इस आधार के अभाव में अर्थव्यवस्था न तो कुशलता एवं निपुणता से अपना कार्य कर सकती है और न ही संसाधनों का उपयोग सही तरीक से किया जा सकता है।

2. **उपभोक्ता की संप्रभुता का अंत** : नीति निर्माताओं और योजना बनाने वालों ने जिस तरह संसाधनों की उपयोगिता को मुख्य प्राथमिकता प्रदान की है, उपभोक्ता की संप्रभुता को वैसा महत्व नहीं दिया जाता है।

3. **व्यक्तिगत निपुणता एवं उत्पादकता का अभाव** :– राज्य द्वारा प्रत्येक गतिविधि सुनिश्चित है। बढ़ावा देने के लिये कौशल एवं निपुणता का कोई स्थान नहीं है। बहुत बार तो श्रमिक को उसकी कमाने और उत्पादकता की क्षमता से भी कम वेतन मिलता है।

4. **गोपनीयता की आड़** :– इस व्यवस्था के विरोध में एक अन्य आरोप यह है कि इसके अन्तर्गत आने वाली प्रत्येक गतिविधि को दूसरे देशों से गोपनीय रखा जाता है । कुछ अवसरों पर तो ऐसा भी होता है कि राष्ट्र में क्या कुछ घटने वाला है या क्या घटित हो रहा है, ऐसी कोई सूचना को जगजाहिर नहीं किया जाता है। परिणाम स्वरूप देश एक दूसरे की गतिविधियों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और संसार में तनाव उत्पन्न होता है।

5 **पहल की कमी** :– लोगों में अक्सर पहल की कमी होती है इस कारण से वह बंधी बंधाई कार्यपद्धति पर कार्य करते हैं, जैसे यह ही उनका उद्देश्य हो और यही निर्धारित कार्य।

(3) मिश्रित अर्थव्यवस्था :– मिश्रित आर्थिक व्यवस्था पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों की विशेषताओं का सम्मिश्रण है। एक ओर आर्थिक गतिविधियों की स्वतंत्रता है दूसरी ओर सामाजिक कल्याण के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी हस्तक्षेप है। मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें सरकार और व्यक्ति दोनों ही आर्थिक नियंत्रण पर कार्य करते हैं और यहाँ निजी एवं सार्वजनिक उद्यमों का सह–अस्तित्व है, अतः मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता द्वैतवाद है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण :–मिश्रित अर्थव्यवस्था में समाजवाद एवं पूंजीवाद दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं के गुणों का समावेश है। मुख्य गुण इस प्रकार हैः–

(i) **आर्थिक स्वतंत्रता एवं पूंजी निर्माण** :– व्यक्तियों को अधिकार है कि वे निजी सम्पत्ति को प्राप्त कर अपने पास रखें, यह अधिकार पूंजी निर्माण को बढ़ावा देता है। कठिन परिश्रम करने वाले लोगों को आर्थिक स्वतंत्रता प्रोत्साहित भी करती है। बढ़ोत्तरी से व्यवस्था की आन्तरिक मशीनीकरण स्थापित हो जाता है। उत्पादन और वितरण के संसाधन निजी सम्पत्तियों के स्वामियों के हाथ में होते हैं साथ ही लोक संगठनों का भी स्वामित्व होता है। (किन्तु पूर्णरूपेण सरकारी नियंत्रण के द्वारा)

(ii) **प्रतिस्पर्धा एवं निपुण उत्पादन :–** उत्पादकों के मध्य प्रतिस्पर्धा निपुणता के स्तर को ऊंचा रखती है क्योंकि निजी खिलाड़ियों की अधिक लाभ कमाने की इच्छा की संभावनाएं बढ़ जाती हैं जिससे कि कार्य निपुणता एवं कुशलता से हो जाता है। आर्थिक स्वतंत्रता भी उत्पादन और वितरण के कारकों को बढ़ावा देती है।

(iii) **संसाधनों का कुशल आबंटन** :– सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्र संसाधनों के कुशल आबंटन पर जोर`ते हैं ताकि उत्पादन और वितरण के घटकों का सटीक उपयोग किया जा सके।

(iv) **योजनाबद्ध कार्य के लाभः–** मिश्रित अर्थव्यवस्था सदैव योजनाबद्ध तरीके से किये गये कार्यों से लाभान्वित होती है सुनियोजित विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था का यह तीव्रतम गति से होने वाले विकास है। बेरोजगारी की समस्या, खाने का अभाव और जनसंख्या की अधिकता आदि विषय की सही ढंग से निपटाएं जाते हैं। अतः व्यापार के उतार–चढ़ाव पर पूर्ण नियंत्रण है।

(v) **आर्थिक समानता** :– आर्थिक समानता के उद्देश्य को आर्थिक स्वतंत्रता की आहुति दिये बिना भी प्राप्त किया जा सकता है। निजी क्षेत्रों की समृद्धि में बढ़ोत्तरी को सरकार द्वारा इस तरह नियंत्रित किया जाता है कि लोगों को ज्यादा से ज्यादा लाभ पहुँचे ।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोषः–मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष निम्नलिखित है :–

(1) **अस्थिर अर्थव्यवस्था** :– कथित तौर पर यह कहा जाता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था एक अस्थिर अर्थव्यवस्था है। इसके अन्तर्गत, निजी क्षेत्र प्रभावी एवं निपुणता से कार्य करते हैं, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र अप्रभावी रहता है, और इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र के अप्रभावी होने के कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है। कभी कभी सार्वजनिक क्षेत्र इतना शक्तिशाली हो जाता है कि निजी क्षेत्र को अधीनस्थ एक नैपकिन की तरह प्रस्तुत करता है।

(2) **अक्षम नियोजन :–** मिश्रित अर्थव्यवस्था एक पूर्णरूपेण सोची हुई आर्थिक व्यवस्था नहीं है। अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा हिस्सा सरकार के नियंत्रण से परे है। योजनाओं को सफलतापूर्वक लाग करने में यह क्षेत्र एक बहुत बड़ी बाधा है जिसमें इसका निहित स्वार्थ छिपा है। इस भाग के स्वतंत्र विशेषता के कारण, सार्वजनिक क्षेत्र उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहता है। अधिकांश क्षेत्र असंगठित या अव्यवस्थित नाम के साथ उपलब्ध रहते हें और योजना के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं होते हैं।

(3) **दक्षता की कमी** :– मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में दक्षता की कमी के कारण प्रगतिशील विचारधारा, नियोजन और सही पहुँच का अभाव है।

(4) **भ्रष्टाचार –** मिश्रित अर्थव्यवस्था को भ्रष्टाचार की बुराईयों को झेलना पड़ता है क्योंकि नियोजन की प्रक्रिया एवं उत्पादन एवं वितरण के कारकों पर सरकार का नियंत्रण रहता है। यह बहुत गंभीर और तीव्रतम हो जाता है जब विकासोम्मुखी योजनाओं को समुचित रूप से लागू नहीं कराया जा सकता। इस आर्थिक प्रगति का विपरीत प्रभाव राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की उन्नति पर पड़ता है।

अवश्यंभावी (विवश) उन्नति :– सार्वजनिक क्षेत्रों की कमियों को पूरा करने के लिये, मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी क्षेत्रों का मार्ग अवरूद्ध करती है। कभी–कभी सरकार निजी क्षेत्रों पर बहुत सारे प्रतिबन्ध लगा देती है, जिसके परिणाम स्वरूप निजी क्षेत्र का विकास धीमी गति से होने लगता है।

1.4 सारांश

इस इकाई में हमने अर्थव्यस्था से संबंधित कुछ बिन्दुओं से आत्मसात किया। अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी राष्ट्र के लोग अपने जीवनयापन के लिये अर्जन करते हैं। या हम कह सकते हैं कि यह समस्त आर्थिक गतिविधियों का सार है जिसके अन्तर्गत किसी राष्ट्र या क्षेत्र के लोग जीवनयापन के लिये धन अर्जन करते हैं या इस ओर प्रयास करते हैं। इस इकाई में अर्थव्यवस्था की प्रकृति और उसका वर्गीकरण वर्णित किया गया है जिसके अनुसार आर्थिक अर्थव्यवस्था तीन प्रकार की बतायी गयी हैः– (1) पूंजीवाद (2) समाजवादी व्यवस्था (3) मिश्रित व्यवस्था । भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को आर्थिक संगठनात्मक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें स्वतंत्र उद्यम प्रतिस्पर्धा एवं सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के प्राथमिकता दी जाती है। इस अर्थव्यवस्था का सर्वोच्च गुण यह है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुएं एवं उपभोक्ताओं की पसंद एवं इच्छा को ध्यान में रखते हुये उत्पादित की जाती है। पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य दोष है धन और आय का असमान वितरण, जिससे उनका ध्यान एकाधिकार स्थापित करना और आर्थिक शक्ति दिखाने पर केन्द्रित हो जाता है। समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत देश की आर्थिक व्यवस्था पर सरकार का नियंत्रण रहता है और सरकार द्वारा ही इसका संचालन होता है जिससे समाज में लोगों को अवसर की समानता और कल्याण की भावना की स्थापना होती है । इस व्यवस्था के मुख्य गुण हैं कि आर्थिक संसाधनों की सर्वोत्तम उपयोगिता होती है और इन संसाधनों का उपयोग सुव्यवस्थित तरीके से किया जाता है। इस व्यवस्था द्वारा मौलिक समस्याओं का समाधान होता है जैसे उत्पादन के स्त्रोतों के ऊपर सरकार का नियंत्रण रहते हुये उत्पादन कैसे और क्या किया जाना है। इस का समाधान भी होता है। इस व्यवस्था के मुख्य आलाचेना यह है कि उत्पादन और वितरण की लागत की गणना के आधारों को खोज पाना बहुत मुश्किल है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के ही गुणों का समावेश रहता है जैसे आर्थिक स्वच्छंदता एवं देश में पूंजी निर्माण की प्रतिबद्धता। तथापि, ऐसा कहा जाता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था एक अस्थिर अर्थव्यवस्था है जिसके अन्तर्गत निजी क्षेत्र प्रभावकारी एवं कुशलता के साथ काम करते हैं जबकि सार्वजनिक क्षेत्र अप्रभावी रहते हैं।

1.5 शब्दावली

अर्थशास्त्रः– अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों और वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के परस्पर सम्बन्धों के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।

समाजवाद : एक ऐसी व्यवस्था में जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक व्यवस्था सरकार के द्वारा संचालित एवं नियंत्रित की जाती है ताकि समाज में लोगों को कल्याणकारी और अवसरों की समानता की निश्चितता प्राप्त हो सके।

1.6 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

1. द्वितीय अर्थशास्त्रीय गतिविधियों को .... कहा जाता है ।

2. आर्थिक संगठन की व्यवस्था है जिसमें स्वतंत्र उद्यम, प्रतिस्पर्धा ....सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को साधारणतया प्राथमिकता देती है।
3. ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सरकार और निजी व्यक्ति दोनों ही आर्थिक नियंत्रण रखते हैं, ...जानी जाती है ।
4. अर्थशास्त्र की पूंजीवादी व्यवस्था में श्रम का .... संभाव्य है।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(ए) (1) विनिर्माण क्षेत्र, (2) पूंजीवाद (3) मिश्रित अर्थव्यवस्था (4) शोषण

1.8 स्वपरख प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था शब्द की व्याख्या कीजिए।
2. अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में श्रम बल से आप क्या समझते हैं ?
3. पूंजीवाद से आपका क्या तात्पर्य है ? इसके गुण एवं दोष बताइए ?
4. समाजवादी अर्थव्यवस्था की व्याख्या कीजिए और इसका विवेचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
6. अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
7. मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण एवं दोष क्या है ?

1.9 संदर्भ पुस्तकें

1. सी.पी चन्द्रशेखर, भारतीय अर्थव्यवस्था में संगठनात्मक परिवर्तन और प्रगति का स्वरूप । आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, विशिष्टि अंक, नवंबर, 1998
2. अजीत के. दासगुप्ता, भारत में कृषि और आर्थिक विकास नई दिल्ली, सहयोगी प्रकाशन सदन, 1993
3. भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण (वार्षिक)
4. अशोक देसाई वी., भारतीय उद्योग में तकनीकी विलीनीकरण, नई दिल्ली, विली ईस्टर्न, 1998
5. भारतीय आर्थिक पुनर्विलोकन (दिल्ली स्कूल अर्थशास्त्र)
6. भारतीय आर्थिक जर्नल (भारतीय आर्थिक एसोसियेशन)
7. दीन खातेकेव, भारत में राष्ट्रीय आर्थिक नीति, साल्वेटर, डिमोनिक एड. आर्थिक नीतियों की तुलनात्मक हैंडबुक वोल्यु. 1 राष्ट्रीय आर्थिक नीतियाँ, ग्रीनवुड प्रेस पृष्ठ 231–75, 1991,
8. राजकुमार सेन और बिस्वजीत चटर्जी, 21 वीं शताब्दी के लिये भारतीय अर्थव्यवस्था का मसौदा, दीप एंड दीप पब्लिकेशन नयी दिल्ली, 2002
9. ए.एन. अग्रवाल, भारतीय अर्थव्यवस्था, नियोजन और विकास की समस्याएँ, विली ईस्टर्न लिमिटेड, नयी दिल्ली 2002
10. योजना आयोग, सरकारी पंचवर्षीय योजना।
11. जी.एस.भल्ला, आर्थिक स्वतंत्रता और भारतीय कृषि, औद्योगिक विकास के अध्ययन का संस्थान, नयी दिल्ली, 1994.
12. 12 संजय लाल, एल.डी.सी. में तकनीकी विकास और निर्यात वृद्धि, भारत में इंजीनियरिंग एवं कैमिकल फर्म, विश्व अर्थशास्त्र का पुनर्विलोकन, वोल्यूम 122(1) पृष्ठ 80–1996

इकाई 2 भारतीय अर्थव्यवस्था की रचना एवं मुख्य विशेषताएँ

संरचनाः–

2.1 भूमिका
2.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा एवं अर्थ
2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना
2.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व
2.5 भारतीय अर्थव्यवस्था एवं उद्योग
2.6 भारतीय अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक नीतियाँ
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 बोध प्रश्न
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 स्वपरख प्रश्न
2.12 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- भारतीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व का वर्णन कर सकें।
- आर्थिक नीतियों एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के मध्य संबंधों की याख्या कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं एक अविकसित अर्थव्यवस्था बनाती हैं। तथापि, इसके तीन चरण हैं– पहला पूर्व–स्वातंत्र्य काल, दूसरा 1990 तक का स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का और तीसरा चरण 1991 के बाद का, जिसे भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण की अवधि कहा जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत अविकसित देशों की श्रेणी में आता था जिसका मुख्य कारण था, अंग्रेजी शासन की गलत नीतियाँ, जिन्होंने भारत को कच्चे सामान के स्त्रोत एवं तैयार वस्तुओं के लिये अच्छे उपभोक्ता के रूप में जाना । ऐसी विशेषताएं जिन्होंने इसे अविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में रखाा वे स्वतंत्रता प्राप्ति के समय विद्यमान थीं और आज भी वही विशेषताएं इससे जुड़ी हुई हैं। उनमें से कुछ की चर्चा हम इस अध्याय में करेंगे।

2.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा एवं अर्थ

भारत की जनसंख्या : स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की जनसंख्या लगभग 37 करोड़ थी और 2011 की जनगणना के आधार पर यह लगभग 121 करोड़ पहुँच चुकी है। भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश बन गया है। पूरे विश्व की 2.4 प्रतिशत जमीन ही भारत के पास है भारत की जनसंख्या में प्रतिवर्ष 2.1 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुयी है। बढ़ती हुयी जनसंख्या का असर जमीन और अन्य संसाधनों जैसे कच्चामाल, बिजली, उत्पादन पर असर, तथा अन्य विकासोन्मुखी गतिविधियों, पर पड़ा है। जैसा कि साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि कृषि के क्षेत्र में

जनसंख्या का दबाव है, देश में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि में लगातार गिरावट आ रही है परिणाम स्वरूस्प कृषि कार्यों में विकास पर असर पड़ रहा है।

मानव नियोजन (रोजगार) में कृषि का प्रभाव :– भारत में जनसंख्या की रोजगार की स्थिति भी बहुत सहज नहीं है जो कि आर्थिक पिछड़ेपन का एक बहुत बड़ा कारण है। 1951 में योजना की प्रक्रिया के दौरान भारत में 69.5 प्रतिशत जनता कृषि कार्यों में लिप्त थी, जो कि 1991 में घटकर 66.9, 2001 में 56.7 प्रतिशत रह गयी। और इसी तरह 2007 से 2010 के दौरान 46 प्रतिशत पुरूष कामगार एवं 65 प्रतिशत स्त्री कामगार ही रह गये। इसी समय के दौरान ब्रिटेन अमेरिका और जर्मनी में यह अनुपात 1 प्रतिशत, चीन में 10 प्रतिशत, फ्रांस में 2 प्रतिशत आंका गया, किन्तु इन देशों में अन्य क्षेत्रों जैसे औद्योगिक गतिविधियाँ और सेवा क्षेत्रों में उनकी सकल घेरलू उत्पाद में अधिकतम वृद्धि की । यह दिखाता है कि संसार के अन्य विकसित या विकासशील देशों की अपेक्षा भारत का कृषि क्षेत्र में अधिक विश्वास है। यद्यपि कि जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि एवं उससे संबंधित नियोजन में संलग्न है किन्तु सकल घरेलू उत्पाद को इसका योगदान मात्र 14 प्रतिशत ही है। 1950–51 की तुलना में यह बहुत कम है, उस समय सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत 50 था। भारतीय अर्थव्यवस्था, बहुत से क्षेत्रों में पिछड़ रही है। कृषि पर निर्भरता के रवैये में कमी या क्षय होने का कारण है 2007–10 के दौरान अन्य उत्पादन क्षेत्रों का प्रभाव में आना। अन्य दूसरे विकसित देशों जैसे पाकिस्तान में पुरूषों में यह प्रतिशत 37 एवं महिलाओं में 75 प्रतिशत था। विकसित देश जैसे फ्रांस और जापान के मामलों में यह 4 प्रतिशत एवं 2007–10 के दोरान ब्रिटेन में यह केवल 2 प्रतिशत था । 1950–51 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं उससे संबंधित सभी गतिविधियों का हिस्सा 53.1 प्रतिशत था, 1990–91 के दौरान 29.6 प्रतिशत, 2005–6 के दौरान 21 प्रतिशत एवं 2011–12 में 14 प्रतिशत था। इसी गिरावट के रूख ने अन्य उद्योग, व्यापार, वाणिज्य एवं सेवा देने वाले क्षेत्रों को आगे आने में सहयोग प्रदान किया। ब्रिटेन और अमेरिका में केवल 2 से 3 प्रतिशत जनता ही कृषि कार्यो में संलग्न है, फ्रांस में 7 प्रतिशत और आस्ट्रेलिया में यह प्रतिशत लगभग 6 है। कृषि क्षेत्रों में इतनी अधिक संलग्नता केवल पिछड़े और कम विकसित देशों में ही पायी जाती है। उदाहरण के लिये 1997 में यह मिश्र में 35 प्रतिशत, बांग्लादेश में 59 प्रतिशत, इंडोनेशिया में 50 प्रतिशत और चीन में 68 प्रतिशत थी। अन्य क्षेत्रों में विकास के कारण इन देशों के रवैये में गिरावट देखी जा रही है। यद्यपि कृषि क्षेत्र की उपरोक्त स्थिति संतोषजनक नहीं है, फिर भी इसमें असाधारण सुधार देखे गये हैं।

गरीबी की समस्या :–सम्पत्ति एवं आय के असमान वितरण के` कारण भारत में गरीबी ने बड़ा रूप ले लिया, योजना आयोग के आंकड़ों के अनुसार, गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के प्रतिशत में गिरावट आयी है, यह 1979–80 में ग्रामीण क्षेत्रों में 50.7 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्रों में 40.3 प्रतिशत था जो कि 1993–94 में ग्रामीण क्षेत्रों में 37.3 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्र में 32.4 प्रतिशत रह गया है। योजना आयोग द्वारा 19 मार्च 2012 में 2009–10 के लिये गरीबी के आंकड़े प्रस्तुत किये गये जो कि एन.एस.एस. ओ. उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण पर आधारित था जिसमें यह बताया गया कि ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 22.40 पेसे एवं शहरी क्षेत्र में प्रति व्यक्ति दिन 28.60 पैसे व्यय किये गये, जिससे यह दर्शित होता है कि 2009–10 में 29.8 प्रतिशत जनता गरीबी रेखा के नीचे बसर कर रही थी, इसमें से 20.9 प्रतिशत शहरी क्षेत्र की एवं 33.8 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनता थी। 2009–10 में गरीबों की संख्या 373 अरब थी।

मानव विकास की स्थितिः–

मानव विकास सूची (एच.डी.आई.) संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी) के द्वारा जारी शर्तों के आधार पर कार्य करती है, जिसके अन्तर्गत मानव विकास सूची को मापने के लिये तीन कारको पर विशेष ध्यान दिया जाता है– दीर्घायु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान में वृद्धि, एवं शालीन जीवन स्तर . 2011 की मानव विकास रिपोर्ट मानव विकास सूची को सामान्यीकृत सूचकांकों के भौगोलिक साधन के रूप में परिभाषित करती है जिनका कार्य इन तीन कारकों की उपलब्धियों को देखना है। 2013 की रपट के अनुसार भारत की स्थिति 136 वीं एवं मानव विकास सूची के साथ इसकी उपयोगिता 0.554 है। चीन 0.699 सूची मात्र के साथ 101 वें स्थान पर है। जबकि नार्वे 0.955 सूची बिन्दु के साथ पहले स्थान पर है। आस्ट्रेलिया 0.938 सूची बिन्दु के साथ दूसरे पर है। धीमी मानव विकास सूची भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये एक चुनौती है।

पूंजी का अभाव :– आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण घटक पूंजी है और योजनाओं के प्रारंभिक दौर 1951 में ही भारत में पूंजी निर्माण एक बहुत बड़ी समस्या थी। किसी भी देश की बचत पर ही पूंजी निर्माण निर्भर करता है। 1950–51 में सकल घरेलू बचत 9.5 प्रतिशत थी एवं सकल घरेलू पूंजी निर्माण 9.3 प्रतिशत था। 1970–71 में इस क्षेत्र में वृद्धि हुई, इस समय सकल घरेलू बचत 14.3 प्रतिशत एवं सकल घरेलू पूंजी निर्माण 15.1 प्रतिशत था। 2001–02 में क्रमशः 23.8 और 24.4 हुआ। 2004–05 में क्रमशः 32.4 और 32.8 प्रतिशत, 2007–08 में क्रमशः 36.8 एवं 38.1 प्रतिशत रहा। सन् 2011–12 में सकल घरेलू बचत 30.8 प्रतिशत और सकल घरेलू पूंजी निर्माण 35 प्रतिशत थी। निजी व्यावसायिक क्षेत्रों के योगदान के कारण लगातार वृद्धि हुयी । जिसका 2011–12 में सकल घरेलू उत्पाद में प्रतिशत 7.2 प्रतिशत रहा। फिर भी अन्य विकासशील राष्ट्र जैसे दक्षिण कोरिया और चीन की तुलना में हम पूंजी निर्माण में आज भी पीछे हैं।

तकनीकी पिछड़ापन :–औद्योगिक विकास की आत्मा तकनीकी ज्ञान का संवर्धन होती हैं जिसमें कि भारत अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत पीछें है। उन्नत प्रौद्योगिकी के लिये भारत विकसित देशों पर आश्रित रहता है, उन्नत प्रौद्योगिकी को आयात करने का प्रभाव बजट पर पड़ता है, विदेशी मुद्रा की मात्रा में भी उतार–चढ़ाव होता है।

योगदान देने वाले कारकों में संरचनात्मक परिवर्तन :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, देश का मूलभूत आर्थिक ढाँचा मजबूत हुआ। मात्रात्मक दृष्टि में, ठोस विकास हुआ। 2006–07 में वार्षिक वृद्धि दर 9.6 प्रतिशत थी। भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त विशेषताओं को अविकसित अर्थव्यवस्था के नाम से जाना जाता है। फिर भी संरचनात्मक परिवर्तन एवं वृद्धि दर उस स्थिति के प्रमाण हैं जब वर्ष 1950–51 में केन्द्रीय योजना को स्थापित करने की प्रक्रिया चल रही थी, इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं उससे संबंधित क्रियाकलापों का योगदान 53.1 प्रतिशत था। पहले दो दशकों तक कृषि एवं उससे संबंधित क्षेत्रों का योगदान घरेलू सकल उत्पाद में बहुत अधिक था जो 53.1 से लेकर 42.2 प्रतिशत तक रहता था। किन्तु 1970–71 के बाद सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों के हिस्से में गिरावट आयी। 1991 में यह 29.6 प्रतिशत था और 2010–11 में 14 प्रतिशत हो गया। ठीकइसके विपरीत 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद में उद्योगों का योगदान 16.6 प्रतिशत था जो कि 1990–91 में बढ़कर 27.7 प्रतिशत हो गया तथा 2011–12 में यह बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया। 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्रों का योगदान 30.3 प्रतिशत था जो कि 1990–91 में बढ़कर 42.7 प्रतिशत एवं 2011–12 में 59 प्रतिशत हो गया। फिर भी, भारत की मोजूदा आर्थिक वृद्धि दर विनिर्माण क्षेत्र की अपेक्षा सेवा क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

विनिर्माण क्षेत्र में ठहराव आ गया है। यह क्षेत्र सकल घरेलू उत्पादन में केवल 15–16 प्रतिशत ही योगदान देता है जबकि चीन में जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) में इसका प्रतिशत लगभग 42 है।

पूंजी बाजार एवं बैंकिंग क्षेत्रः भारत के आर्थिक विकास में भारतीय वित्त व्यवस्था निवेश प्रक्रिया के मध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, साथ ही इसने देश के पूंजी निर्माण को एकत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पैसे की मांग और पूर्ति के आधार पर इस व्यवस्था ने धन उधार एवं ऋण देकर अपनी सेवाएं दीं, जिसके दो हिस्से हैं, एक भारतीय मुद्रा बाजार (संगठित और असंगठित क्षेत्र) और दूसरे भारतीय पूंजी बाजार। स्वतत्रंता प्राप्ति के बाद भारतीय बैंकिग व्यवस्था ने बहुत उन्नति (वृद्धि) की। भारत में सभी क्षेत्रों में उचित आर्थिक नियोजन के कारण यह सब संभव हो सका । 1950–57 में 430 व्यावसायिक बैंक थे किन्तु भारतीय रिजर्ब बैंक की छोटी बैंको के बड़ी बैंकों में विलय की नीतियों के कारण व्यावसायिक बैंकों की संख्या में तेजी से गिरावट आयी। 1969 में 14 बड़ी अनुसूचित व्यावसायिक बैंक जिनमें लगभग 50 करोड़ रूपये तक राशि जमा थी, भारत सरकार द्वारा ले ली गयीं। 15 अप्रैल 1980 को छः और बड़ी व्यावसायिक बैंक जिनमें 200 करोड़ रूपये से ज्यादा राशि जमा थी, को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। अतः समस्त भारतीय स्टेट बैंक, भारतीय स्टेट बैंकों की 7 सहयोगी बैंक, 19 राष्ट्रीयकृत बैंक इस तरह 27 व्यावसायिक बैंकों को मिलाकर सार्वजनिक क्षेत्र के व्यावसायिक बैंकों की स्थापना हुई।

मुद्रा बाजार से अभिप्रायः ऐसे तंत्र से है जहाँ एक उधार लेने चाले व्यक्ति कम अवधि की शर्तों के आधार पर धन प्राप्त करने की कोशिश करता है और वहीं दूसरी ओर उधार देने वाला उधारकर्ताओं को ऋण देने में सफल हो जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक को भारतीय मुद्रा बाजार में विशेष स्थान प्राप्त है, क्योंकि यह बैंक देश की ऋण आपूर्ति को विनियमित एवं नियंत्रित करती है। भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार की बैंकों के लिये बैंकर के रूप में कार्य करती है। इन सबके अतिरिक्त, सार्वजनिक ऋण का व्यवस्थापन एवं चालू वित्तीय सौदों की देख रेख भी भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा की जाती है। सरकारी खर्चों के वित्त पोषण में भारतीय रिजर्व बैंक का एक बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं पुर्नसंगठन की अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (जिसे विश्व बैंक के नाम से भी जाना जाता है) में भारतीय सदस्यता प्राप्ति हेतु यह बैंक सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है। वृहद स्तर पर भारतीय मुद्रा बाजार संगठित एवं असंगठित क्षेत्र दो भागों में बँटा हुआ है। संगठित क्षेत्र में सम्मिलित है भारतीय स्टेट बैंक और उसकी 7 सहयोगी बैंक, 19 राष्ट्रीयकृत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, को–आपरेटिव बैंक, गैर सरकारी क्षेत्र एवं अन्य बैंक, और असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं,–महाजनों एवं स्वदेशी बैंकर तथा उनके सहयोगी । भारत में संगठित धन बनाने वालों के तीन मुख्य अवयव हैं –(अ) अर्न्त बैंक कालमनी (अवधि आधारित धन) बाजार (ब) रसीद बाजार (स) बैंक ऋण संबंधी बाजार। असंगठित मुद्रा बाजार के तीन उप बाजार भी है, उसमें अन्तर केवल कालमनी बाजार में है। असंगठित क्षेत्र में कालमनी बाजार बहुत कम और सीमित होता है।

पूंजी निर्माण भारत के आर्थिक विकास की कुंजी है। पूंजी निर्माण बचत एवं निवेश पर निर्भर करता है। औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप लोगों की आय मे ंवृद्धि होती है, इससे देश की सुरक्षा व्यवस्था को भी सहयोग मिलता है। आधुनिक समय में देश की सुरक्षा अत्यन्त दुरूह कार्य है। मिलिट्री हार्डवेयर जैसे शस्त्र, टैंक, हवाई जहाज, युद्धपोत, हेलिकॉप्टर, बन्दूकें, इत्यादि की आवश्यकता देश को पड़ती है। आमूल चूल विकास एवं प्रगति के लिये विदेशी विनियम की उपलब्धता

को बरकरार रखने के लिये आयात में कमी और निर्यात को बढ़ावा देना औद्योगिक विकास की प्राथमिक शर्त है ।

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना

भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य अवयव हैं– आर्थिक स्थिति, आर्थिक व्यवस्था एवं आर्थिक नीतियाँ। आर्थिक, स्थिति के अन्तर्गत आने वाले कारक हैं– राष्ट्रीय आय, पूंजीगत आय और इनका वितरण, पूंजी निर्माण की दर, व्यय एवं आपूर्ति की प्रवृत्तियाँ, अर्थव्यवस्था में मंहगाई दर, औद्योगिक एवं निर्यात में वृद्धि दर, अर्थव्यवस्था में प्रचलित व्याज दर, विनिमय दर, औद्योगिक स्थापना की प्रवृत्तियों एवं निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में औद्योगिक एवं व्यावसायिक स्थापना मं कुशलता।

अर्थव्यवस्था : भारत की प्रगतिशील अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति में औद्योगिक विकास का महत्वपूर्ण योगदान है। गरीबी जैसी समस्या के समाधान में औद्योगिक विकास सहायक की भूमिका अदा करता है। औद्योगिक विकास, बेरोजगारी, लोगों का पिछड़ापन, कृषि पर निर्भरता, प्रतिकूलता, भुगतान संतुलन आदि से सुरक्षा प्रदान करता है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन औद्योगिक विकास ही लाता है। इस परिवर्तन की सफलता बहुत सारे क्षेत्रों जैसे सम्प्रेषण एवं यातायात बल, बैकिंग और अन्य, पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक विकास ग्राहक एवं सामाजिक मूल्यों में बदलाव लाने हेतु भी सहयोग प्रदान करता है। यह विशेष रूप से शहरीकरण एवं स्वास्थ एवं शैक्षणिक सुविधाओं की प्रक्रियाओं में सहायता देता है। अतः औद्योगिक विकास, विकास का महत्वपूर्ण बिन्दु है और व्यक्ति एवं समाज दोनों के ही विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास का योगदान निम्नलिखित तथ्यों से इंगित होता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था असंतुलित है क्योंकि बहुतायत में पूंजी और जनसंख्या कृषि कार्यों में कार्यरत हैं। भारतीय कृषि पिछड़ी है और यह मुख्यतः वर्षा पर निर्भर करती है। उद्योगों का तीव्रतम गति से वृद्धि होना संतुलित अर्थशास्त्र की प्राथमिक शर्त है।

उद्योंगों के विकास के कारण प्रतिव्यक्ति उत्पादकता भी तेजी से बढ़ती है। भारतीय औद्योगिक विकास ने कृषि के विकास को उन्नत किया है। औद्योगिक विकास उन प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग को संभाव्य बनाता है जो अर्थ व्यवस्था में लाभकारी हैं। भारत में उद्योगों एवं तृतीय श्रेणी के उद्योगों की राष्ट्रीय आय की हिस्सेदारी में वृद्धि हो रही है। वास्तविक राष्ट्रीय आय में भी लगातार प्रगति हो रही है।

बहुत सारे नये उद्योगों की स्थापना के साथ औद्योगिक विकास होता है। श्रमिकों की मांग बढ़ जाने के कारण रोजगार के अधिक से अधिक अवसर निर्मित होते हैं। व्यक्तियों के जीवन स्तर को सुधारने में भी उद्योग एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

2.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व

वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार, 'खेतो पर पशुपालन एवं फसलों के उत्पादन की कला एवं विज्ञान ही कृषि है।' अर्थशास्त्र में इस शब्द का उपयोग खेती की गतिविधि से संबंधित है। कृषि से हम अनाज, सब्जी, दालें जैसी चीजें प्राप्त करते हैं साथ ही उद्योगों के लिये कच्चा माल भी कृषि से प्राप्त होता है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता है। लगभग 58 प्रतिशत श्रमिक बल कृषि पर निर्भर करता है। सकल घरेलू उत्पाद में भी इसका योगदान 15 प्रतिशत है। भारतीय निर्यात में 12 प्रतिशत का योगदान है। भारतीय कृषि मानसूनी बारिश पर निर्भर करती है क्योंकि कृषि की सुविधाएं बहुत कम है एवं अधिकांशतः अर्धव्यवसायिक खेती, कम खेती की प्रबलता, कभी–कभी

मानसून की अनियमितता के कारण भी उत्पादकता में कमी देखी जाती है। बेरोजगारी, जनसंख्या में वृद्धि, खाद एवं कीटनाशकों का अधिक प्रयोग मृतप्राय भूमि सुधार, खेती एवं उत्पादन की खराब तकनीक भी अर्थव्यवस्था में भारतीय कृषि के योगदान में कमी दिखाती है।

विकसित अर्थव्यवस्था में कृषि सर्वाधिक लोगों का मुख्य पेशा होता है। मात्र एक प्राकृतिक संसाधन जो कि अधिकतर उपयोग में लाया जाता है, वह है भूमि। भूमि का उपयोग केवल खेती के लिये ही नहीं किया जाता है बल्कि कारखाने स्थापित करने, जंगल में वृद्धि करने, सड़क निर्माण और रेल लाइन आदि बिछाने के लिये भी किया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भूमि सुधार से संबंधित बहुत सारे बिन्दुओं पर सरकार ने ध्यानाकर्षित किया है, ताकि कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो तथा साथ ही कृषि में नयी तकनीक भी सम्मिलित हो, ऐसा प्रयास सरकार द्वारा किया गया है। भारत में कृषि सुधार से संबंधित कार्यक्रम इस प्रकार हैं – 1 बिचौलियों की समाप्ति, 2. काश्तकारी सुधार, 3 प्रति परिवार द्वारा खेती का निर्धारण, 4 अतिरिक्त पड़ी भूमि का भूमिहीन व्यक्तियों में वितरण, 5. खातों की चकबन्दी । कृषि रोजगार का मुख्य स्त्रोत है, भारत में 64 प्रतिशत काम करने वाली जनसंख्या कृषि के क्षेत्र में व्यस्त है। अतः भारत की दो तिहाई जनसंख्या कृषि के रोजगार पर आश्रित है। भारत में खेती, जीवन निर्वाह का मुख्य स्त्रोत है। अधिकांश उद्योग जैसे, सूती, जूट, गन्ना, तिलहन आदि कृषि आय में वृद्धि करते हैं। कृषि का भारतीय विदेश व्यापार में एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के पूरे निर्यात में कृषि जन्य उत्पादन का योगदान लगभग 20 प्रतिशत है। अधिकांश भारतीय अपनी आय का कुछ हिस्सा खाद्य सामग्री, शक्कर, चाय, दूध, दाले, सब्जियाँ, फल और अन्य उपयोगी सामान खरीदने में व्यय करते हैं, अतः इस प्रकार कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के आन्तरिक व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कृषि यातायात के लिये वस्तुएं मुहैया कराती है और इस तरह यातायात उद्योग की बढ़ोत्तरी में भी कृषि का योगदान हैं यह सरकार का एक बहुत बड़ा आय का स्त्रोत है और कृषि क्षेत्र का देश की धन संपदा में महत्वपूर्ण स्थान है।

2.4 भारतीय अर्थव्यवस्था एवं उद्योग

यह अर्थव्यवस्था का एक अन्य महत्वूर्ण अवयव है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। जहाँ उत्पादन, भूमि, श्रम, धन और संगठन के माध्यम से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, उसे उद्योग कहते हैं। अन्य चीजों जैसे कच्चा सामग्री, बिजली, मशीन इत्यादि का वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग किया जाना औद्योगिक विकास कहलाता है। नियोजन और उत्पादन के समावेश से एवं औद्योगिक विकास की सहायता से भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को उन्नत करने सहायता मिलती है। कृषि की अपेक्षा उद्योग अधिक उत्पाक है। औद्योगिक विकास के कारण उद्योग के उन्नत साधन, मशीन, ट्रैक्टर, ट्यूबवैल, रसायन, खाद, कीटनाशक, आटोमोबाइल, लोहा और रेल्वे पटरी इत्यादि के अवसर प्राप्त होते हैं। बौर एवं गेमे के शब्दों में, विस्तृत संदर्भों में औद्योगिकरण आर्थिक प्रगति और उच्चस्तरीय जीवन स्तर की कुंजी है। इससे रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी होती है। औद्योगीकरण की महत्ता को स्पष्ट करते हुए जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, ''समस्त देश जिस ईश्वर की पूजा करता है, वह औद्योगीकरण का ईश्वर, मशीन का देवता, उच्च उत्पादकता और प्राकृतिक शक्ति एवं अधिक लाभांश हेतु संसाधनों के देवता।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के 60 वर्षों बाद भी भारत की 56.7 प्रतिशत आबादी कृषक है (2007–10) एवं सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान केवल लगभग 14 प्रतिशत है। निर्यात में इसकी हिस्सेदारी 12.3 प्रतिशत (2011–12) सार्वजनिक क्षेत्र का कुल मिलाकर कृषि में निवेश 15.1 प्रतिशत एवं कुल मिलाकर कृषि पर निवेश 7.5 प्रतिशत है। जहाँ तक ग्रामीण जनसंख्या का संबंध है, यह

रोजगार के अवसर प्रदान करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है। यह क्षेत्र राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों के लिये कच्चा माल उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। राष्ट्रीय महत्व के उद्योग हैं कपड़ा, जूट, चीनी, वनस्पति, डिब्बा बंद खाना इत्यादि। यद्यपि कि भारत की एक तिहाई जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहत है। उत्पादक इकाइयों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजारीकरण करने के लिये यह ग्रामीण जनता जनसंचार का सर्वोत्तम आधार है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है।

मिश्रित अर्थव्यवस्थाः—भारतीय अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों के सहभागिता का सम्मिश्रण है। जैसे यहाँ औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों में निवेश सरकारी क्षेत्र जिसे कि सार्वजनिक क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है, के द्वारा किया जाता है साथ ही व्यक्तियों का योगदान भी (व्यावसायिक, साझेदारी फर्म, संयुक्त पूंजी कम्पनी) निजी क्षेत्रों के रूप में प्राप्त होता है।

प्रथम एवं द्वितीय योजनाओं के दौरान कुल निवेश का 54 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र तथा शेष 46 प्रतिशत निजी क्षेत्र के लिये अवंटित था। तीसरी योजना के दौरान यह यथानुसार 60 प्रतिशत एवं 40 प्रतिशत था, सातवीं योजना के दौरान यह प्रतिशत क्रमशः 45.7 एवं 54.3 था। वर्ष 1990 में भारतीय अर्थशास्त्र की उदारता के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश का हिस्सा अविश्वसनीय रूप से गिरकर आठवीं योजना में कुल निवेश का 34.3 प्रतिशत हो गया तथा नवीं योजना में 29.5 प्रतिशत रहा। इसी दौरान निजी क्षेत्रों के निवेश में वृद्धि हुई, जिनमें उभरता हुआ सूचना तकनीक का क्षेत्र भी सम्मिलित था। पुनः इसमें गिरावट आयी, दसवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्रों में निवेश 23.6 प्रतिशत एवं ग्यारहवीं योजना में 24 प्रतिशत ही रहा। वर्ष 1990 के पश्चात् उत्पादन के मुख्य स्त्रोत एवं संसाधन निजी क्षेत्रों के हाथ में आ गये ताकि भारत उदार अर्थशास्त्र की नीति को स्वीकार एवं अंगीकार कर सके।

विकासशील अर्थव्यवस्थाः किसी भी अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिये अविकसित स्तर से विकासशील स्तर में परिवर्तित करने हेतु मुख्य मानदंड यह है कि आधारभूत संरचना का विकास बहुत तीव्र गति से होना चाहिए।

भारत में आर्थिक विकास के दो आयाम हैं। एक है मात्रात्मक विकास और दूसरा है संरचनात्मक विकास। जहां तक मात्रात्मक विकास का संबंध है, इसमें कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है। 1951 में भारत का कुल राष्ट्रीय उत्पादन 2,55,405 करोड़ रूपये था जो कि 2011—12 में बढ़कर 45, 72, 75 करोड़ रूपये हो गया। 62 वर्ष बीत जाने के बाद राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 4.7 प्रतिशत आंकी गयी। अन्तर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में भारतीय राष्ट्रीय आय की गति बहुत धीमी है। और इसी तरह अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम है। भारत में प्रति व्यक्ति आय अमेरिकन प्रति व्यक्ति आय की तुलना में 1/75 है। भारत में 26.1 प्रतिशत जनता गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करती हैं। बेरोजगारी बहुत अधिक मात्रा में है। भारत में बेरोजगारी मूलरूप में ही प्राकृतिक रूप से विद्यमान है क्योंकि उत्पादन क्षमता संतोषजनक रोजगार के अवसर प्रदान करने में अक्षम हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या गंभीर रूप में देखने को मिलती है। उस व्यक्ति को कार्यरत माना जाता है जो साल में 273 दिन आठ घंटे प्रतिदिन कार्य करता है/करती है। राष्ट्रीय आय में कमी और अधिक खर्चे की वजह से भारत में बचत कम मात्रा में है। कम बचत या धींमी गति से बचत के परिणाम स्वरूप पूंजी निर्माण में कमी हो जाती है जो कि उत्पादन का मुख्य कारक है। यदि बचत अधिक मात्रा में होती है तो पूंजी निर्माण भी अधिक होता है। तीव्रतम विकास

के लिये पूंजी और संसाधनों की आवश्यकता होती है। यद्यपि हाल ही के वर्षों में, घरेलू बचत दर 26 प्रतिशत हुयी है किन्तु अभी इसमें और संवर्धन की आवश्यकता है। भारत में धीमी विकास गति का एक और कारक है वह है भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। 1991–2001 के दौरान, जनसंख्याय में 21.34 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। जनसंख्या की तीव्रतम वृद्धि दर से भारत में जनसंख्या में 1.7 करोड़ लोग प्रति वर्ष जुड़ने लगे। 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत की जनसंख्या 102.7 करोड़ है जो कि विश्व की कुल जनसंख्या की 16.7 प्रतिशत है। विश्व की आबादी का 16.7 प्रतिशत को भली भांति चलाने के लिये भारत के पास विश्व का कुल 2.42 प्रतिशत भूमि है। भारत में बड़े उद्योगों का आभाव है। आधुनिक और उन्नत तकनीक के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी से वृद्धि होगी। जहां तक संरचनात्मक विकास का संबंध है स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन वांछनीय थे, परिवर्तन अपेक्षित क्षेत्र थे घरेलू उत्पाद का क्षेत्रीय वितरण। 1950–51 में उद्योग में सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा 16.6 प्रतिशत था जो 1990–91 में बढ़कर 27.7 प्रतिशत हो गया और आगे 2011–12 में यह 27 प्रतिशत पर स्थिर हो गया सकल घेरलू उत्पाद में कृषि और उसकी सहयोगी गतिविधियों के हिस्से की कीमत 53.1 थी जिससे गिरावट का रूख दर्शित होता है। जैसा कि 1990–91 में यह 29.6 प्रतिशत था और 2011–12 में 14 प्रतिशत सेवा क्षेत्र के मामले जैसे व्यापार, यातायात, सम्प्रेषण, वित्त, बीमा, समाज सेवा इत्यादि में 1950–51 में 30.3 प्रतिशत से बढ़कर 1990–91 में 42.7 प्रतिशत रहा एवं 2011–12 में 59 प्रतिशत हो गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि सकल घरेलू उत्पाद के क्षेत्रीय वितरण में बहुत परिवर्तन हुये। विकासशील अर्थव्यवस्था में, जनसंख्या का विभिन्न पेशें को अपनाना उद्योग और सेवा क्षेत्र के पक्ष में जाता है। कृषि क्षेत्र के स्थान पर अन्य क्षेत्रों ने स्थान ले लिया । 1950–51 में कृषि एवं अन्य सहयोगी गतिविधियों के रोजगार के रूप में 72.1 प्रतिशत से गिरावट आ गयी। 1991 में 66. 9 प्रतिशत एवं आगे 2009–10 में यह गिरावट का स्तर 53.2 हो गया । भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के कारण 1991 में तेजी से गिरावट आयी । इसका असर यह हुआ कि कृषि एवं सहयोगी क्षेत्रों का हिस्सेदारी तीव्रतम गति से गिरकर 53.1 प्रतिशत के 14.6 प्रतिशत हो गयी। इसके विपरीत इसी समय में सेवा के क्षेत्र में रोजगार के अवसर 17.3 प्रतिशत से बढ़कर 25.3 के ऊपर पहुँच गये। सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी 30.3 प्रतिशत से बढ़कर 57.3 प्रतिशत के ऊपर पहुंच गयी । ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इसी दौरान वास्तविक उद्योगों की पूंजी में भी वृद्धि हुई। ऐसा सिर्फ इसलिए संभव हो सका क्योंकि दूसरी योजना के दौरान अर्थव्यवस्था की पूर्ण रूपेण वृद्धि के लिये प्राथमिक व भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता के तौर पर निश्चित किया गया । सामाजिक क्षेत्रों जैसे बिजली, रेल्वे, यातायात, शिक्षा व्यवस्था इत्यादि पर विशेष निवेश के रूप में सामाजिक व्यय में बढ़ोत्तरी हुयी। इस दौरान भारत में यातायात व्यवस्था में वृद्धि हुयी परिणाम स्वरूप यातायात के संसाधन संरचनात्मक रूप से आधुनिक एवं अधिक क्षमातवान हो गये। पूर्व में विस्तृत रेलमार्ग में भी नौ हजार किलोमीटर से अधिक दुगुना विस्तार हुआ। भाप के इंजनों के स्थान पर डीजल और बिजली के इंजन आ गये। सड़कों के नेटवर्क में भी वृद्धि और राष्ट्रीय राजमार्ग एवं अन्य ग्रामीण सड़कों को मिलाकर सड़कों कुल लंबाई 41 लाख किलोमीटर तक पहुंच गयी। इसी तरह बिजली उत्पादन एवं वितरण की क्षमता में भी वृद्धि हुई। यद्यपि इस क्षेत्र में अभी भी बहुत कमी है। और अधिक की आवश्यकता है। 2012 में यह पाया गया कि भारत में स्थापित विद्युत निर्माण क्षमता 2,09,276/– मेगावाट थी जो कि 1950–51 में मात्र 2,300 मेगावाट थी। इसी तरह 1950–51 में सिंचाई के क्षेत्र में वृद्धि हुयी, सिंचाई के अन्तर्गत 22.6 मिलियन हेक्टेयर

क्षेत्र आता था जो कि दसवीं योजना के अन्त तक 102.77 मिलियन हेक्टेयर तक पहुंच गया । बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्रों में भी खासी प्रगति हुयी। 1949 में भारतीय रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण का सटीक प्रभाव पड़ा, 1955 में इंपीरियल बैंक, भारतीय स्टेट बैंक में परिवर्तित हो गयी और 1969 में 14 अन्य बड़ी बैंकों को भी राष्ट्रीयकृत बैंक घोषित कर दिया गया। इन सभी प्रयासों के कारण बचत एवं ऋण की नीतियों में तीव्रतम गति से परिवर्तन हुये जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न वित्तीय क्षेत्रों में कृषि, आवास, लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योग, व्यापार, खुदरा व्यवसाय, साख, शिक्षा एवं बड़े, औद्योगिक संगठनों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करते हुये इस क्षेत्र में निवेश को समुचित रूप से बढ़ाने का प्रस्ताव किया। परिणाम स्वरूप 1969 में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के द्वारा प्राथमिकता के आधार पर साख 14.06 प्रतिशत थी वह 2012 में समुचित साख 37.2 प्रतिशत हो गयी। उपर्युक्त समस्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुये भारतीय अर्थव्यवस्था आज विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में जानी जाती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार है :-

- राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्रों का योगदान 20.8 प्रतिशत है।
- सकल उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्रों का योगदान 20 प्रतिशत से कम है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र हैं।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के द्वितीयक क्षेत्र उद्योग, बिजली निर्माण आदि से संबंधित हैं, इसका सकल घेरलू उत्पाद में लगभग 21.8 प्रतिशत योगदान है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था का तृतीय क्षेत्र व्यवसाय, यातायात, सम्प्रेषण और सेवाओं से संबंधित है। सकल घेरलू उत्पाद में इसका सर्वाधिक योगदान है।
- किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास का सबसे अच्छा द्योतक प्रति व्यक्ति आय होती है।
- प्राकृतिक संसाधनों, देश की जनसंख्या को सर्वोत्तम हितों की उपयोगिता ।
- न्यायसंगत सामाजिक, शहरीकरण, भ्रष्टाचार से मुक्ति, अतिरिक्त लाभांश, फसल की बिक्री, राजनीतिक स्वतंत्रता, तकनीकी ज्ञान एवं सामान्य शिक्षा आदि भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के मुख्य कारक हैं।

2.6 आर्थिक नीतियां एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

1 **औद्योगिक नीति :-** 24 जुलाई 1991 को भारत सरकर ने नयी औद्योगिक नीतियों की घोषणा की। नयी औद्योगिक नीतियाँ बहुत ही उदारवादी थीं जिसका मुख्य उद्देश्य था भारतीय अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रशासन एवं विधिक नियंत्रण से मुक्ति प्रदन करना।

2 **नयी विदेशी व्यापार नीति-** नयी विदेशी व्यापार नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को अनेकों बन्धनों से मुक्त करना है ताकि यह अधिक प्रतियोगी बन सके। साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य है समस्त प्रतिबन्धों को समाप्त करते हुये विदेशी निवेश एवं विदेशी व्यापार को बढ़ावा देना। स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के लिये नयी आर्थिक नीति ने निम्नलिखित प्रावधान बनाये हैं-

(i) नयी आर्थिक नीति से पहले, 1991 में पूंजीवादी भारतीय गणना की किसी भी सीमा तक निवेश कर सकते थे किन्तु पूंजी की पारदर्शिता का प्रतिशत नहीं था एवं विदेशी निवेश के प्रत्येक मामले में सरकारी अनुमति की आवश्यकता थी।

(ii) जुलाई 1991 में भारतीय सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय के द्वारा भारतीय रूपये का 20 प्रतिशत विकास किया।

(iii) नयी विदेशी व्यापार नीति 1992 –97 तक पांच वर्षों के लिये निर्धारित की थी। इस नीति की मुख्य विशेषता उदारीकरण थी। स्वस्थ प्रतियोगिता को बढावा दिया गया, औद्योगिक इकाइयों एवं निर्यात व्यवस्था को समस्त सुविधाएं प्रदान की गयीं।

(iv) अन्तराष्ट्रीय स्तर पर स्वस्थ प्रतिद्वन्दिता रहे इस हेतु सीमा शुल्क एवं प्रशुल्कों को धीरे–धीरे कम किया गया।

(v) अर्थव्यवस्था की बाहरी स्वच्छंदता रहे इस हेतु विदेशी निवेश और विदेशी तकनीक को बढ़ावा दिया गया।

(vi) भुगतान में संतुलन स्थापित करने हेतु बहुत सारे कदम उठाये गये । विश्व व्यापार की हिस्सेदारी में वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुये प्रयास किये गये।

(3) **राजकोषीय नीति** :– राजकोषीय नीति का संबंध सरकार के आय एवं व्यय से है। इसे सरकारी बजट नीति के नाम से भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत कराधान, सरकारी व्यय, घाटे की वित्त व्यवस्था और सार्वजनिक ऋण आते हैं। इस नीति के तहत् सरकारी व्यय और राजस्व के स्त्रोतों को इस तरह व्यवस्थित किया जाता है जिससे मूलभूत उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। इन उद्देश्यों के माध्यम से आर्थिक विकास तीव्रतम होता है और पूंजी निर्माण दर में वृद्धि, सम्पत्ति की समाप्ति, क्षेत्रीय असमानताओं की समाप्ति में भी सहायक होते हैं। राजकोषीय नीति के संदर्भ में नयी आर्थिक नीतियों के निम्नलिखत बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए–

(i) करारोपण में कटौती

(ii) अविकासशील व्यय में कटोती

(iii) राजसहायता में कटौती

(iv) बाह्य उधारी पर निर्भरता में कटौती

(v) घाटे की वित्त व्यवस्था को हतोत्साहित करना।

(vi) कर प्रक्रिया का सरलीकरण एवं अप्रत्यक्ष कर निर्धारण में सुधार ताकि अच्छी मात्रा में अप्रत्यक्ष कर की प्राप्ति की जा सके।

(4) **मौद्रिक नीतिः**– मौद्रिक नीति ने अर्थव्यवस्था में ब्याज दर एवं धन आपूर्ति से संबंधित नीति में सुधार किया। यह नीति भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा निर्मित एवं निष्पादित की गयी। मूल्य स्थिरता, वित्तीय स्थिरता एवं उधार आसान रूप में उपलब्धत होना इस नीति का मुख्य उद्देश्य है। मौद्रिक नीति के संदर्भ में नयी आर्थिक नीति में कुछ बिन्दुओं को सम्मिलित किया गया जो कि निम्नलिखित हैः–

1. अर्थव्यवस्था में साख की उपलब्धता को बढ़ाने हेतु बैंक दर में कटौती, संविधिक तरलता अनुपात एवं नकद आरक्षित अनुपात को व्यवस्थित किया गया।

2 ब्याज दरों में कटौती की गयी जिससे कि ब्याज दर अन्तर्राष्ट्रीय माहौल के साथ सामंजस्य बैठा सके।

3 उत्पादन में वृद्धि या अनुत्पादन को हतोत्साहित करने हेतु व्यावसायिक बैंकों के ब्याज दर निर्धारित करने हेतु नियमों को लचीला बनाया ।

4 बैंकों की वित्तीय व्यवस्था को सुधारने हेतु समस्त बैंको के लिये समान वित्तीय व्यवस्था लागू करने का प्रावधान बनाया। इसके अन्तर्गत साहूकारी एवं उधार की समस्त कार्यों में एक रूपता आयी। यह भी प्रावधान बनाया गया कि तुलना पत्र को भलभांति तैयार किया जाना चाहिये। क्योंकि तुलना पत्र बेंक के आर्थिक स्तर का प्रतिबिंब होता है ।

अन्य आर्थिक घटक (कारक)

पूंजी बाजार :– पूंजी बाजार वह बाजार है जहाँ दीर्घकाल के लिये पैसा बाजार में उपलब्ध होता है। इसके अन्तर्गत वह सभी सुविधाएं एवं संस्थागत व्यवस्थाएं सम्मिलित हैं जिनके अन्तर्गत ऋण एवं पैसा उधार लिया जाता है। एक आदर्श पूंजी बाजार का यह प्रयत्न होता है कि वह किसी भी व्यवसाय या "औद्योगिक स्थापना के लिये युक्तियुक्त दर पर रिटर्न मिलने हेतु सटीक पूंजी की उपलब्धता कराए।

भारतीय पूंजी बाजार के अन्तर्गत दो समूह :– भारतीय पूंजी बाजार के अन्तर्गत दो समूह हैं पहला व्यवस्थित पूंजी बाजार एवं दूसरी अव्यवस्थित पूंजी बाजार। अव्यवस्थित पूंजी बाजार के अन्तर्गत साहूकार या अन्य लोगों के द्वारा उधारी या ऋण की शर्तें दीर्घकालीन होती हैं व्यवस्थित पूंजी बाजार विस्तृत रूप में स्टाक एक्सचेंज के क्रियाकलापों एवं वित्तीय बिचौलियों के माध्यम से दीर्घकालीन धन उधार देने के मध्य विभाजित है।

गिल्टधार बाजार :– भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सरकारी एवं अर्धसरकारी प्रतिभूतियों के लिये बाजार मुहैया कराना इस बाजार के अन्तर्गत आता है। इस बाजार में प्रतिभूति का व्यापार स्थिर मात्रा में होना है एवं बैंकों तथा अन्य संस्थानों में इसकी बहुत मांग है।

औद्योगिक प्रतिभूति बाजार:– नयी एवं पुरानी कंपनियों के अंश एवं ऋण पत्र के लिये बाजार की उपलब्धता इसके अन्तर्गत आती है। यह बाजार पुनः दो भागों में विभाजित हो जाता है– नवमुद्रा बाजार एवं पुराना पूंजी बाजार (स्टाक एक्सचेंज)/नव मुद्रा बाजार (प्राथमिक बाजार) से तात्पर्य है शेयर (अंश) एवं ऋण पत्र के रूप में नयी पूंजी में वृद्धि करना, जबकि पुराने पूंजी बाजार (स्टाक एक्सचेंज) के अन्तर्गत कम्पनियों द्वारा जारी प्रतिभूतियाँ आती हैं। इसे द्वितीयक बाजार के नाम से भी जाना जाता है।

बैंकिंग एवं साख (वित्त) :– भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना अप्रैल 1935 में पाँच करोड़ की राशि के अंश के साथ हुयी। 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण हो गया।

भारतीय रिजर्व बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। बैंक के कार्यकारी प्रमुख को गवर्नर कहा जाता , उसकी सहायता हेतु उप गवर्नर और अन्य अधिकारी होते हैं। रिजर्व बैंक के कार्यों का संचालन केन्द्रीय संचालक मण्डल द्वारा होता है, रिजर्व बैंक के कार्यों का संचालन केन्द्रीय संचालक मण्डल द्वारा होता है, इसके साथ ही चार क्षेत्रों में चार स्थानीय मंडल दिल्ली, कलकत्ता, चेन्नई, एवं मुम्बई में स्थित हैं। समस्त देश को चार भागों में बाँटा गया है– उत्तरी क्षेत्र, पूर्वी क्षेत्र, दक्षिणी एवं पश्चिमी क्षेत्र। रिजर्व बैंक का मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थित है।

रिजर्ब बैंक को नोट जारी करने का अधिकार है। एक रूपये के नोट को छोड़कर भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किये जा रहे हैं, बाकी सभी नोट रिजर्व बैंक द्वारा जारी किये जाते हैं। रिजर्व बैंक अन्य बैंकों के बैंकर के रूप में कार्य करता है। बैंकों को उनको जमापूंजी का कुछ प्रतिशत राशि की व्यवस्था बनाये रखना आवश्यक है। रिजर्व बैंक अनुसूचित बैंक को वित्तीय

सहायता की व्यवस्था करता है। सरकारी अभिकर्ता के रूप में रिजर्व बैंक सार्वजनिक ऋणों का प्रबन्ध करता है। सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने की पद्धति एवं व्यवस्था से लेकर निश्चित तिथि पर ब्याज तथा मूलधन के भुगतान तक का सारा प्रबंध रिजर्व बैंक द्वारा ही किया जाता है। रिजर्ब बैंक राष्ट्रीय विदेशी विनिमय को स्थिर बनाये रखता है। आर्थिक उन्नति के लिये वित्तीय ढाँचा तैयार करने में रिजर्ब बैंक सहायता करती है। रिजर्ब बैंक सूचनाओं के प्रचार प्रसार को एकत्रित करके इन क्षेत्रों में अनुसंधान की व्यवस्था भी करती है।

बीमा :– मध्य 1950 तक जीवन बीमा संबंधी सेवाएं सार्वजनिक उपक्रम जीवन बीमा निगम (एल.आई.सी.) द्वारा एवं साधारण बीमा साधारण बीमा निगम (जी.आई.सी) द्वारा दी जाती थीं और 1970 से चार अन्य सहयोगी उपक्रमों द्वारा यह सेवाएं दी जाने लगी हैं। सन् 2000 से बीमा उद्योग ने निजी क्षेत्र के लिये द्वार खोल दिये और तब से लेकर अब तक देश में लगभग 48 बीमा कंपनियाँ जीवन एवं जीवन से संबंधित होने वाले खंड) कार्यरत हैं। इससे बीमाक्षेत्र में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण तैयार हुआ जिसे जनसंख्या के विभिन्न वर्गों की असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नये–नये आयामों की खोज तीव्रगति से होने लगी।

विदेशी विनिमय :– भुगतान के मजबूत सन्तुलन से हाल ही के दिनों में स्थिति यह हुयी कि धीरे–धीरे काफी मात्रा में विदेशी विनिमय एकत्रित हो गया। रक्षित जमापूंजी के एकत्रीकरण से न केवल पूंजी के अन्तः प्रवाह को गति मिली बल्कि चालू वित्त खाता भी अतिरिक्त की स्थिति आ गया। यदि लाभ का आकलन किया जाय तो यू.एस. डालर की अपेक्षा, रूपया उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर था। यद्यपि कि 2013 में स्थिति कुछ भिन्न है, यू.एस. डालर की तुलना में रूपये का महत्व कम हो गया एवं विदेशी जमा पूंजी की स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश :–प्रत्यक्ष विदेशी निवेश देश के राष्ट्रीय वित्तीय लेखांकन का हिस्सा है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से तात्पर्य है विदेशी सम्पत्ति का निवेश घरेलू संरचनाओं, उपकरणों एवं संगठनों के विकास के लिये करना। इसके अन्तर्गत स्टाक बाजार में विदेशी निवेश सम्मिलित नहीं है। कम्पनी के साम्या पर आधारित निवेश की अपेक्षा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अधिक उपयोगी है क्योंकि साम्या निवेश बहुत तेजी से आने वाला धन है जिससे कि पहली बार में परेशानी आ सकती है। जबकि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अधिक समय तक चलने वाला और उपयोगी निवेश है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश ने भारतीय उद्योग को तकनीकी सुधार के लिये, वैश्विक प्रबंधकीय कुशलता में वृद्धि करने के लिये अवसर प्रदान किये। यह मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिये उपयोगी है और वैश्विक स्तर पर उच्च गुणवत्ता के साथ उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व उत्पादन श्रृंखला के साथ सामंजस्य बैठाने में एफ.डी.आर. की महती भूमिका है जिसके अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उत्पादन सम्मिलित है।

एफ.डी.आई के दो उदाहरण हैं स्वचालित अनुमोदन मार्ग एवं सरकारी अनुमोदन मार्ग। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को कृषि एवं वृक्षारोपण, सम्पत्ति, एकीकृत शहरी निवास, लाटरी व्यवसाय, व्यवसाय, जुआ एवं सट्टा, निजी प्रतिभूति सेवाएँ, रेल्वे एवं परमाणु ऊर्जा आदि क्षेत्रों में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

मुद्रा स्फीति :– एक निश्चित समय काल के बाद वस्तुओं और सेवाओं के दाम में साधारण बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति कहलाती है। शब्द मुद्रास्फति का संबंध मौलिक रूप से पूंजी के मानमर्दन से है और इसका उपयोग धन आपूर्ति में वृद्धि के रूप में होता था। यद्यपि इसका आज के युग में प्राथमिक उपयोग कीमतों में कमी की विवेचना से है।

मुद्रास्फीति का आकलन मुद्रास्फीति दर की गणना के आधार पर किया जाता है, जिसका तात्पर्य है मूल्य सूचकांक के परिवर्तन की प्रतिशत दर। अधिकतर जीवन मूल्य सूचकांक एवं उपभोक्ता मूल्य सचकांक की सहायता से मुद्रास्फीति को आंका जाता है। सुनिश्चित सेवाओं और वस्तुओं की औसत मूल्य वृद्धि एवं गिरावट का सूचक है मूल्य सूचांक।

निश्चित मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं की सूची इस बात को ध्यान में रखते हुये तैयार की जाती है कि जो भी परिवर्तन किये गये हैं वह खुदरा थोक उत्पादक मूल्य इत्यादि को ध्यान में रख कर किये गये हैं। वस्तुओं और सेवाओं की यह सूची (डलिया) अर्थशास्त्र, क्षेत्र एवं सेक्टरों में अलग–अलग हो सकती है।

वर्तमान में खुदरा स्तर की कीमतों को लेकर एक अलग सूची की अनुक्रमणिका तैयार की जाती है। और उससे भारत के थोक मूल्य का स्तर निर्धारित होता है। देश में मुद्रास्फीति को मापने का सर्वाधिक प्रचलित पैमाना है थोक मूल्य सूचकांक एवं उपभोक्ता मूल्य सूचकांक । राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य सूचकांक का संकलन करने के लिये चार मुख्य कड़ियां हैं जिनमें औद्योगिक श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, कृषि मजदूरों या ग्रामीण मजदूरों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, शहरी गैर नामांकित कर्मचारियों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक हैं।

चतुर्थ मूल्य सूचकांक थोक मूल्य सूचकांक है जिसके लिये साप्ताहिक सूचनाओं के आधार पर आंकड़े संकलित किये जाते है। इस चतुर्थ कड़ी के माध्यम से अर्थव्यवस्था हेतु थोक की कीमतों की ताजा जानकारी पर नज़र रखी जाती है।

2.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने भारतीय अर्थव्यवस्था की व्याख्या की। इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना एवं इसकी विशेषताएं भी सम्मिलित हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। विश्व बैंक की ताजा प्रतिवेदन के आधार पर यह संसार की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में सम्मिलित हो गयी है। बहुत सारे क्षेत्रों में भारतीय अर्थव्यवस्था पिछड़ रही है। भारतीय अर्थव्यव्स्था की संरचना में आर्थिक स्थितियाँ, आर्थिक व्यवस्था, आर्थिक नीति एवं आर्थिक कारक सम्मिलित है।

2.8 शब्दावली

पूंजी बाजार : से तात्पर्य ऐसे बाजार से है जिसमें लंबी अवधि के लिये राशि उपलब्ध रहती है।
मुद्रा स्फीति : कुछ समय के पश्चात् वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में साधारण मूल्य वृद्धि मुद्रास्फति कहलाती है।

2.9 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. .... को मापने के लिये एक लंबा एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान एवं शालीन जीवन स्तर तीन कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
2. .... को भारत सरकार ने नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की है।
3. राजकोषीय नीति को .... की सरकारी नीति के नाम से भी जाना जाता है।
4. .... बाजार से तात्पर्य ऐसे बाजार से है जो भारतीय रिजर्ब बैंक द्वारा सरकारी एवं गैर सरकारी प्रतिभूतियों के लिये तैयार किया जाता है।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 मानव विकास सूचकांक 2. 24 जुलाई, 1991, 3. बजट 4. गिल्ट एजेड

2.11 स्वपरख प्रश्न

1 भारतीय अर्थवस्था की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2 कृषि प्रधान, मिश्रित एवं विकासशील अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?
3. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई) से आपका क्या तात्पर्य है? भारतीय अर्थव्यवस्था का इससे क्या संबंध है ?
4. मुद्रा स्फीति एवं विदेशी विनिमय शब्दों की व्याख्या कीजिए।
5. नयी आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ?
6. भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित आर्थिक कारकों की व्याख्या कीजिए।
7. स्टाक एक्सचेंज (विनिमय) से आप क्या समझते हैं ?
8 बैकिंग तथा बीमा पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

2.12 संदर्भ पुस्तकें

1. सी.पी. चन्द्रशेखर – आस्पैक्ट्स ऑफ ग्रोथ एंड स्ट्रक्चरल चेंज इन इंडियन इकोनॉमी, इकानोमिक एंड पालिटिकलवीकली, स्पेशल नंबर, नवंबर, 1998
2. अजीत के दास गुप्ता, एग्रीकल्चर एंड इकोनामिक डेवलपमेंट इन इंडिया, न्यू दिल्ली, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, 1993
3. भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण (वार्षिक)
4. अशोक वी. देसाई, टेक्नोलोजी एब्जारपशन इन इंडियन इंडस्ट्री, न्यू दिल्ली, विली ईस्टर्न, 1998
5. इंडियन इकोनोमिक रिव्यू (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स)
6. इंडियन इकोनोमिक जर्नल (इंडियन इकोनोमिक एसोसियेशन)
7. खातेकट, डीन, नेशनल इकोनोमिक पालिसी इन इंडिया, साल्वेटर, डीमोनिक, एड. हैण्ड बुक ऑफ कम्पैरिटव इकोनोमिक पालिसीज, वाल्युम 1, नेशनल इकोनोमिक पालिसीज, ग्रीनवुड प्रेस, पृष्ठ 231–75, 1991
8. ए.एन. अग्रवाल, इंडियन इकोनोमी, प्रोब्लम्स ऑफ डेवलपमेंट एंड प्लानिंग । विली ईस्टर्न लिमिटेड, न्यू दिल्ली 2002,
9. राजकुमार सेन एवं बिस्वजीत चटर्जी, इंडियन इकोनॉमी एजेण्डा फॉर द 21ज सेन्चुरी, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली 2002,
10. योजना आयोग, सरकारी पंचवर्षीय योजना ।
11. जी.एस. भल्ला एड, इकोनोमिक लिबरलाइजेशन एंड इंडियन एग्रीकल्चर, इंस्टीट्यूशन फार स्टडीज इन इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट, न्यू दिल्ली 1994
12. संजय लाल, टेक्नोलोजी डेवलपमेन्ट, एंड एक्सपोर्ट परफारमेन्स इन एल.डी.सी., लीडिंग इंजीनियरिंग एंड कैमिकल फर्म्स इन इंडिया, रिव्यू ऑफ वर्ल्ड इकोनोमिक्स वाल्युम 122(1), पृष्ठ 80–1996

––––

इकाई 3 भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न सोपान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 ब्रिटिश शासन से पूर्व या शासन के दौरान का भारत–एक आदर्शात्मक अविकसित अर्थव्यवस्था
3.3 स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रतीकात्मक विशेषताएं
3.4 स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था
3.5 सुधार अवधि के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 बोध प्रश्न
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.10 स्वपरख प्रश्न
3.11 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् की भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।
- सुधार अवधि के पूर्व की भारतीय अर्थव्यवस्था की व्याख्या कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

पारंपरिक रूप से देखा जाए तो भारत में उद्योग धंधे हल्के फुल्के विनिर्माण एवं कृषि कार्यों तक सीमित है, विशेषतः सूती, ऊनी, रेशमी, जूट एवं अन्य चमड़े के सामानों का हाल ही के वर्षों में वृह्द रूप में विस्तार हुआ । इसमें लगभग 15 प्रतिशत लोग कार्यरत हैं। मुम्बई एवं अहमदाबाद में बड़ी–बड़ी कपड़ा मिल, जमशेदपुर में बहुत बड़ा लोहे एव इस्पात का कारोबार, राउरकेला , भिलाई, दुर्गापुर और बोकारों में इस्पात कारखाने स्थापित हैं। बंगलौर इलैक्ट्रोनिकी एवं अस्त्रशस्त्र उद्योग का केन्द्र हैं।

भारत में बड़ी संख्या में मशीन कलपुर्जे, स्वेद उपकरण रसायन एवं हीरों की कटाई छंटाई एवं कम्प्यूटर साफ्टवेयर उद्योग कार्यशील है। मुंबई में फिल्म (चलचित्र) उद्योग एक विशाल उद्योग के रूप में विद्यमान है और इसी तरह कलकत्ता और चेन्नई में फिल्म उद्योग भलीभांति संचालित हो रहा है।

1990 में सरकार ने औद्योगिक गतिविधि एवं विकास की स्वविश्वास की पारंपरिक नीति को समाप्त कर भारतीय उद्योग को नियंत्रण मुक्त करने हेतु विदेशी निवश की ओर ध्यान आकृष्ट किया। तब तक सेवा उद्योगों ने अपना सिक्का जमाया, अन्तर्राष्ट्रीय कॉल (बातचीत) केन्द्र ने रोजगार के अवसर प्रदान किये।

अधिकांश शहर रेल सड़क व्यवस्था के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुये हैं, रेल एवं सड़क का जाल संसार का सबसे विस्तृत संजाल है। लंबी दूरी के मार्गों के लिये साधारण और मंहगी बस सुविधाओं एवं राजमार्गों की महत्ता के कारण सड़क यातायात में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। किन्तु

ग्रामीण क्षेत्रों में बैलगाड़ी आज भी यातायात का मुख्य साधन है। दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई और चेन्नई में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की यातायात सुविधाएं उपलब्ध हैं। रत्नों और आभूषणों, वस्त्रों, तैयार वस्त्रों, इंजीनियरिंग सामानों, रसायनों, कम्प्यूटर साफ्टवेयर सूती धागा, वस्त्र और हाथ से बने सामानों का निर्यात सर्वाधिक होता है। भारत में मुख्यतः मशीनरी सामान, पेट्रोल, खाद, एवं रसायन का आयात होता है। अमेरिका, यूरोपीय संघ के देश, हाँगकाँग , कुवैत, सऊदी अरब और जापान भारत के मुख्य व्यवसायी साझेदार हैं।

3.2 ब्रिटिश शासन से पूर्व या शासन के दौरान का भारत–एक आदर्शात्मक अविकसित अर्थव्यवस्था

पूर्व योजना काल विशेषतः ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में कुछ मौलिक प्रश्न एवं मुद्दे सामने आये। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक शोषण के कारण भारतीय अर्थवस्था बहुत पिछड़ गयी, जिसका परिणाम भारत में बड़ी संख्या में गरीबी के रूप में सामने आया। निम्नलिखित बिन्दु उन तथ्यों को उजागर करेंगे कि कैसे ब्रिटिश द्वारा भारत में भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ लूट और इसका शोषण किया गया :

भारत को ब्रिटिश उद्योग को कच्चामाल वितरित करने वाला एक उपनिवेश समझा जाता था। भारत पर लगभग 200 वर्षों तक राजनीतिक शासन के दौरान ब्रिटेन इसे एक ऐसे उपनिवेश के रूप में देखता था जो ब्रिटिश उद्योग को कच्चामाल उपलब्ध कराता था और भारत में बढ़ती हुयी जनसंख्या को तैयार माल के लिये उपयुक्त बाजार उपलब्ध कराना। अठाहरवीं शताब्दी का काल ब्रिटेन में औद्योगिक पुनःवैधीकरण के विस्तार के रूप में देखा जाता है जिसके लिये सस्ता एवं नियमित कच्चे माल के स्रोत की आवश्यकता थी। ब्रिटेन ने भारतीय अर्थव्यवस्था का दोहन अपने विस्तार की हद तक किया।

ब्रिटिश उत्पादनों हेतु बाजार के रूप में भारत :–

ब्रिटिश उत्पादों के लिये भारत का उपयोग एक बाजार के रूप में होता था। मन्तव्य यह था कि भारत में बाज़ार का विस्तार हो जो कि ब्रिटिश सरकार द्वारा सुनियोजित था और इसी उद्देश्य की पूति हेतु रेल संजाल (नेटवर्क) को प्रतिस्थापित किया गया ।

भारतीय हस्तशिल्प के संदर्भ में विनाशकारी दृष्टिकोण :

ब्रिटिश शासन से पहले, भारतीय हस्तशिल्प को अच्छी गुणवत्ता प्रापत होने के साथ–साथ विश्वस्तरीय साख भी प्राप्त थी। भेदभावपूर्ण नीतियों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने भारतीय उत्पादों को जो घरेलू उपयोग में लाये जाते थे और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन उत्पादों की मांग को सफलतापूर्वक समाप्त कर दिया।

शोषक भू–राजस्व नीति :

इस संदर्भ में स्थायी जमींदारी व्यवस्था का विशेष उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों के साथ मिलकर भू–राजस्व का स्थायी समझौता करना प्रारंभ किया। शासन ने जमींदारों को प्राधिकृत किया कि वे जहाँ तक चाहे उद्वरण कर सकते थे, परिणाम स्वरूप किसानों का अकल्पनीय शोषण हुआ। किसानों के अधिकार समाप्त हो गये, कृषकों को बेदखल कर दिया गया और स्थिति भूमिहीन होने तक आ गयी।

बुनियादी सुविधाओं की जानबूझकर उपेक्षाः–

बुनियादी सुविधाओं से तात्पर्य समस्त उपयोगी सेवाओं से है जिसके अन्तर्गत यातायात, सम्प्रेषण, बिजली एवं ऊर्जा के अन्य साधन आते हैं। ब्रिटेन की इन सेवाओं के विकास में कोई दिलचस्पी नहीं थी क्योंकि इसमें अधिक मात्रा में निवेश (वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया में राज्य का सहयोग) की आवश्यकता थी। यातायात के साधन (विशेषतः रेल्वे) का विस्तार किया गया, ताकि ब्रिटिश उत्पादों के लिये वृहद स्तर पर बाजार उपलब्ध हो सके, जैसा कि पहले कहा जाा चुका है सेना की तैनाती का भी विस्तार किया क्योंकि ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता एवं अशांति में निरंतर वृद्धि हो रही थी।

बड़े पैमाने पर धन प्रेषण एवं प्रशासन की उच्च्व गुणवत्ताः

ब्रिटिश सरकार का भारतीय अर्थव्यवस्था से तात्पर्य बहुत ऊँचे स्तर के प्रशासन से है। इस व्यवस्था से इंग्लैंड में बचत और अतिरिक्त धन के रूप में बहुत बड़ी मात्रा में धनप्रेषण हुआ। भारत में व्यावसायिक शताब्दी के कारण ही अफगान युद्ध 1880 एवं वर्मा युद्ध (1885) संभव हो सका।

3.3 स्वतत्रता प्राप्ति के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रतीकात्मक विशेषता

पिछले पृष्ठों में हमने यह पाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था एक पिछड़ी अर्थव्यवस्था थी। अर्थव्यवस्था की संरचना के बिन्दुओं एवं वृद्धि के स्तर दोनों के परिप्रेक्ष्य में इसका पिछड़ापन सिद्ध हो गया। भारतीय अर्थव्यवस्थ के मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालकर हम स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान की अर्थव्यवस्था का पूर्णरूपेण चित्रण कर सकते हैं या स्वतंत्रता के दौरान कुछ विशेषतमाओं या आदर्शात्मक स्थितियों के आधार पर भी भारतीय अर्थव्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। इस संदर्भ में कुछ मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं :–

कृषि :– कृषि जीवनयापन का मुख्य स्रोत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कृषि जीवनयापन का मुख्य स्रोत था। भारत की लगभग 73 प्रतिशत जनता कृषि पर अधारित है और राष्ट्रीय आय में 59 प्रतिशत का योगदान है।

अपरिपूर्ण कृषि उत्पादन :– कृषि क्षेत्र में हो रहा उत्पादन देश की मांग की पूर्ति के लिये अपूर्ण था। 1947 में 13 करोड़ हेक्टेयर जमीन खेती के लिये उपलब्ध थी। इसमें 527 लाख टन खाद्य सामग्री 64 लाख टन गेहूँ एवं 17 लाख टन चावल का उत्पादन हुआ।

कृषि में धीमा उत्पादन एवं उत्पादकता :–

भारतीय कृषि में उत्पादन एवं उत्पादकता का स्तर 2006–07 की अपेक्षा अत्यधिक धीमी गति का था, जैसा कि निम्नांकित सारणी से स्पष्ट होता हैः–

कृषि की उत्पादकता एवं उत्पादनः

क्र. सं.	फसल	उत्पादन (लाख टन में)		उत्पादकता प्रति हेक्टेयर कि.ग्रा.	
		1947	2006–07	1947	2006–07
1	गेहूँ	64	749	660	2671
2	चावल	17	927	110	2127

स्रोत : धीरे भट्टाचार्य : (इकानोमिक, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भारतीय सर्वेक्षण 2007–08)

तालिका से यह स्पष्ट होता है कि 2006–07 की गेहूँ उत्पादकता की तुलना में 1947 में गेहूँ की उत्पादकता चार गुना धीमी गति से हुआ। 2006–07 में चावल की उत्पादकता की तुलना में

1947 मे ंचावल का उत्पादन लगभग 19 गुना धीमी गति से हुआ, गेहूँ का संपूर्ण निष्कर्ष का स्तर लगभग 12 गुना एवं चावल का स्तर लगभग 55 गुना धीमा था।

भूमि अवधि व्यवस्था – तीन प्रकार की भूमि अवधियाँ विद्यमान थीं – (अ) जमींदारी व्यवस्था (ब) महलवारी व्यवस्था (स) रैयतबारी व्यवस्था । इन व्यवस्थाओं को सरकार और कृषक के बीच बिचौलिये के माध्यम से संचालित किया जाता था। यह बिचौलिये किसानों से असीमित भू–राजस्व वसूलते थे। इस शोषण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। आगे जाकर कृषि उत्पादकता पिछड़ गयी।

कृषि का सीमित व्यवसायीकरणः– कृषि का व्यवसायीकरण इस बात का साक्षी है कि उत्पादन केवल किसान परिवारों के स्वयं के जीवन–निर्वाह के लिये होता था, उसमें से बहुत थोड़ा हिस्सा बाजार में विक्रय के लिये उपलब्ध होता था। पिछड़ेपन का यह एक और सूचक है।

खराब संरचनाः– स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर संरचनात्मक विकास जैसे बिजली,, यातायात, संप्रेषण इत्यादि बहुत ही असंतोषजनक थे। यद्यपि कि, सरंचनात्मक विकास के पीछे वास्तविक उद्देश्य लोगों को मौलिक सुविधाएं मुहैया कराना नहीं था, बल्कि विभिन्न औपनिवेकि हितों को बढ़ावा देना था। आधुनिक यातायात के लिये सड़क निर्माण, सटीक नहीं था, प्रारंभिक रूप से इनका निर्माण भारत में सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये एवं गांवों से निकटतम रेलवे स्टेशन तक कच्चा माल पहुंचाने के उद्देश्य से किया गया था या इसी तरह से सामान एवं लोगों को सुदूर इंग्लैंड या अन्य विदेशी स्थानों तक पहुँचने के लिये इन सड़कों का प्रयोग होता था। 1948 में बिजली उत्पादन क्षमता मात्र 2100 मेगावाट, रेल्वे लाइन की लंबाई 53,596 कि.मी. तथा लगभग 155 हजार कि.मी. तक की पक्की सड़कें थीं।

उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की शैशवावस्था :– ब्रिटेन द्वारा पूँजी के सहयोग से कुछ उपभोक्ता वस्तु जैसे वस्त्र, जूट, शक्कर , माचिस आदि उद्योगों की स्थापना भारत में की गयी किन्तु इन उद्योगों से होने वाले लाभ एवं पूंजी पर प्राप्त होने वाले ब्याज को ब्रिटेन भेजा जाता था । यह देश के औद्योगिक विकास के लिये पुनः वापिस नहीं भेजा जाता था।

मौलिक उद्योगों का अभाव :–स्वतंत्रता प्राप्ति के समय एक मात्र टाटा लोहा एवं इस्तपत मिल ही मुख्य उद्योग था। यह देश के औद्योगिक आधार के पिछड़ेपन को दर्शित करता है।

कुटीर एवं लघु उद्योगों का पतन :– ब्रिटिश शासन के पूर्व भारतीय कुटीर एवं लघु उद्योगों को उनके कलात्मक, उत्पादन के लिये वैश्विक स्तर पर सम्माननीय स्थिति प्राप्त थी। यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल की नीतियों के कारण इनका पतन होने लगा। स्वतंत्रता के समय, भारतीय कुटीर एवं लघु उद्योग करीब–करीब अन्तिम अवस्था में थे।

तृतीयक क्षेत्र की शैशव सदृश उन्नति :–तृतीयक क्षेत्र द्वारा दी जाने वाली यातायात एवं सम्प्रेषण की सेवाएं अपने शैशव काल में थीं। इसके अन्तर्गत रेल्वे, यातायात के अन्य साधन, बिजली, बैंकिंग इत्यादि सम्मिलित हैं। स्वतंत्रता के समय इन सभी का विकास बहुत कम हुआ। उस सयम रेल्वे लाइन 33 हजार मील तक डाली गयीं, पक्की सड़कों की लंबाई 97,500 मील तक थी। इस तरह प्रत्येक नौ वर्ग मील के क्षेत्र पर 26 मील सड़कें थीं और प्रति लाख जनसंख्या का केवल 85 मील सड़कें थीं। देश में भी समान रूप से 31 लाख जी आर टी के साथ पिछड़ी अवस्था में थी । बैंकिंग व्यवस्था भी पूरे देश में 4,113 शाखाओं के साथ उद्भव अवस्था में थी, बिजली उत्पादन क्षमता केवल 23 लाख किलोवाट थी और देश में केवल 3000 गाँवों को बिजली प्राप्त थी।

अज्ञानता :–स्वतंत्रता पूर्व साक्षरता स्तर कुल मिलाकर 16 प्रतिशत से भी कम था। जिसमें महिला साक्षरता स्तर लगभग 7 प्रतिशत से भी कम था। 1948 में साक्षरता दर 18 प्रतिशत थी एवं इस तरह देश की 82 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर थी। गाँवों में निरक्षरता का प्रतिशत बहुत ज्यादा था।

सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएँ:–ये सुविधाएं जनसंख्या की बड़ी मात्रा में या तो अनुपलब्ध थीं या उपलब्ध थीं तो अपरिपूर्ण थीं। परिणामस्वरूप जल एवं वायु से उत्पन्न बीमारियां होने लगीं और अनगिनत लोगों की जानें चली गयीं। आश्चर्य की कोई बात नहीं, मृत्युदर बहुत अधिक बढ़ गया इसमें शिशु मृत्यु दर चौंका देने वाला था। यह करीब प्रति हजार व्यक्तियों पर 218 था। उम्र की संभावित आयु 30 वर्ष थी । और देश की 17 प्रतिशत जनसंख्या शहरी एवं शेष 43 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती थी।

3.4 स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था

आर्थिक दृष्टि से, भारत देश के दो वियोज्य ग्रामीण भारत की तरह दिखता है जिसे प्राचीन कृषि का समर्थन प्राप्त है, जहां दस मिलियन की एक चौथाई जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे गुजर बसर करती है, और शहरी भारत भारी तौर पर औद्योगीकृत है, जिसकी वजह से मध्यम वर्गीय जनसंख्या में वृद्धि हुयी।

कृषि से सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 25 प्रतिशत प्राप्त होता है और इससे लगभग 70 प्रतिशत भारतीय लोग रोजगार प्राप्त करते हैं। बहुत अधिक मात्रा में चावल, जहाँ भूमि समतल है और पानी समुचित मात्रा में उपलब्ध है, अन्य फसलें गेहूँ, दालें, गन्ने, बाजरा, भुट्टे आदि उगाये जाते हैं। कुछ अन्य अखाद्य फसलें सूती, तम्बाकू, दलहन और जूट आदि भी उगाये जाते हैं। असम, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में अधिक मात्रा में चाय बागान उपलब्ध हैं। दोनों तरह विधिक औषधि बाजारएवं अवैधानिक औषधि व्यापार दोनों के लिये ही कनस्टस अफीम का उत्पादन किया जाता है।

खालों का विखण्डन, फसल उगाने का अप्रचलित तरीका, नये को स्वीकार करने में विलंब होना, उन्नत अनाज से बेदखली आदि, भारतीय व्यवस्था की विशेषताएं थीं, 1970 की हरित क्रांति आने के बाद आश्चर्यजनक उन्नति ने अपना स्थान बनाया। बेहतर सिंचाई, रासायनिक खादों का प्रयोग एवं गेहूँ तथा चावल की उन्नत किस्म से फसल में बेजोड़ वृद्धि हुयी और 1980 के दशक में भारत अनाज का निर्यातक देश बन गया।

भारत में जंगल और पहाड़ हैं, जिसमें बांस या बालूत, चीड़, साल, सागौन, आबनूस, पामवृक्ष, बाँस आदि के वृक्ष सम्मिलित हैं और लकड़ी की कटाई ग्रामीणों का मुख्य पेशा है। कोयला, लोहा, अभ्रक, मैंगनीज और लीमोनाइट भी हमारे जंगलों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उपलब्ध हैं। भारतीय खनिज संपदा बड़े स्तर पर विद्यमान है किन्तु इसको पूरी तरह शोषित नहीं किया गया है। छोटा नागपुर के पठार झारखंड और पश्चिम बंगाल की दक्षिण पश्चिमी पहाड़ी भूमि, उत्तरी उड़ीसा और छत्रीग्राम खनिज संपदा के मुख्य क्षेत्र हैं, ये कोयला, लोहा, अभ्रक और तांबे के बढ़िया स्रोत हैं।

यहाँ चुंबकीय, बाक्साइट, क्रोमेट, नमक, ताँबा एवं खड़िया मिट्टी आदि भी प्रयोग में लाये जाते हैं । असम, गुजरात, मुंबई अपतटीय तेल क्षेत्रों के रहने के बावजूद भारत में पेट्रोलियम की भारी कमी है।

3.5 सुधार अवधि के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था

आर्थिक सुधाार की प्रक्रिया अपनाने में भारत बहुत पीछे था, भुगतान संकट के भारी असंतुलन के साथ 1991 में सुधार कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। पूर्वी एशिया के बहुत सारे देशों द्वारा अपनायी

गयी सुधारात्मक नीतियां इस बात का प्रमाण हैं कि इन देशों का वृद्धि दर उच्च रहा और निर्यात एवं निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने की ओर अधिक ध्यान दिया। भारत ने 1980 में इस ओर कुछ कदम उठाये थे । 1991 में, सरकार ने बाजार पर अधिक विश्वास करते हुये अधिक खुली अर्थव्यवस्था की ओर व्यवस्थित परिवर्तन का संकेत दिया। भारत सरकार ने विदेशी निवेश के साथ–साथ निजी क्षेत्र की महती भूमिका पर ज़ोर दिया।

पश्चात्वर्ती सुधार काल में भारत के आर्थिक प्रदर्शन के सकरात्मक परिणाम रहे। 1992–93 से लेकर 2001–02 तक के दस वर्ष में औसत वृद्धि दर लगभग 6 प्रतिशत थी, जिसके कारण 1990 में भारत विकसित देशां की श्रेणी में आा गया। पूर्ण ऐशियाई संकट के बावजूद 1990 में बाह्य स्थिरता के साथ वृद्धि दर संतोषजनक थी। 1980 की अपेक्षा पश्चात् वर्ती सुधारकाल में गरीबी का पतन तेजी से हुआ।

भारत पुनः तेजी से बढ़ने वाली विकसित देशों की श्रेणी में आ गया क्योंकि पूर्ण एशियाई पतन के पश्चात् अन्य विकासशील देशों की वृद्धि दर भी कम हो गयी थी। किन्तु वार्षिक वृद्धि दर 5.4 प्रतिशत से भी कम थी, जबकि सरकार द्वारा 7.5 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया था दुर्भाग्यवश, इस दर ने सुधारों के प्रभावकारी होने के संदर्भ में कुछ प्रश्नों को जन्म दिया।

1990 के अर्धदशक के दौरान विश्व आर्थिक दर की गति धीमी थी, जिसके असर कुछ सही नहीं थे, किन्तु विश्व अर्थव्यवस्था का भारत की निर्भरता पर धीमी रफ्तार (गति) का कोई असर नहीं पड़ा। उदारवाद के आलोचकों ने घरेलू उत्पाद पर व्यापार नीति सुधारों के असर पर धीमी गति को दोषी करार दिया है।

यद्यपि विरोधी मत यह है कि वृद्धि दर में मंदी सुधारों का असर न होकर बल्कि सुधारों को प्रभावकारी रूप से लागू करने में असफल रहने के कारण हुयी।

बचत, निवेश एवं राजकोषीय अनुशासन :– 1991 में भुगतान संकट के असंतुलन का एक बहुत बड़ा कारण चालू वित्त वर्ष में फिजूलखर्ची पाया गया, अतः राजकोषीय घाटे को समाप्त करना तत्काल प्राथमिकता थी। 1990–91, 1991–92, 1992–93 के सकल घरेलू उत्पाद में केन्द्र एवं राज्य सरकार का संयुक्त राजकोषीय घाटा 9.4 प्रतिशत से सफलतापूर्वक घटा कर 7 प्रतिशत कर दिया गया और 1993 तक भुगतान संकट के संतुलन से उबर गये। यद्यपि उन्नत सार्वजनिक बचत के अर्द्धवार्षिक राजकोषीय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सुधार किये गये थे ताकि आवश्यक सार्वजनिक निवेश में धन लगाया जा सके।

इन प्रवृत्तियों से भविष्य में भारत की उच्च वृद्धिदर को प्राप्त करने की योग्यता पर संदेह उत्पन्न होने लगा। सुधारावधि के पश्चात् प्रतिवर्ष 6 प्रतिशत उन्नत दर, सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 23 प्रतिशत का निवेश दर प्राप्त किया गया। 8 प्रतिशत की दर से वृद्धि दर में तेजी लाने के साथ–साथ निवेश में वृद्धि की भी आवश्यकता थी। पूर्वी एशिया का वृद्धिदर 36–38 प्रतिशत निवेश दर से संबंधित था। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि पूर्वी एशिया में निवेश जरूरत से ज्यादा था, भारत 8 प्रतिशत तक तीव्र गति से की जा सकती है। यदि सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 29–30 प्रतिशत निवेश दर को बढ़ा दिया जाये।

क्या इतनी राशि की घरेलू बचत में वृद्धि की जा सकती है ? केन्द्र एवं राज्य दोनों सरकारों को अपने अपने क्षेत्रों के सुधारों के संदर्भ में कठिन निर्णय लेना होगा।

केन्द्र सरकार के सीधे प्रयास राजस्व बढ़ाने हेतु होने चाहिये क्योंकि इस ओर किये गये प्रयास लगातार घटते जा रहे है। 1990–91 में केन्द्र का पूर्ण राजस्व कर सकल घरेलू उत्पाद में 9.7

प्रतिशत था 2000–01 में 8.9 प्रतिशत से नीचे आ गया। उनकी कम से कम दो प्रतिशत वृद्धि अपेक्षित थी। कर की दरों में कमी, कर के क्षेत्रों में बढ़ोत्तरी करना एवं कर के दायरे में होने वाली कठिनाईयों में कमी लाना आदि कर सुधारों के अन्तर्गत आते हैं। इन कर सुधारों के माध्यम से यह आशा थी कि कर के दायरे में वृद्धि होगी और वे व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक आयकर में सफल होगें किन्तु अप्रत्यक्ष कर ने सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत गिरा दिया।

राज्य सरकारों को भी उचित कदम उठाने की आवश्यकता है। बहुत से राज्यों में बिक्री कर को आधुनिक होने की जरूरत है। संवैधानिक रूप से कृषि आय कर पर राज्यों को अधिकार प्राप्त है, किन्तु किसी भी राज्य ने कृषि आय कर लेने का प्रयास नहीं किया। केन्द्र एवं राज्य दोनों हीं सरकारों की राजकोषीय असफलता ने दोनों ही सरकारों की सार्वजनिक निवेश की क्षमता को संकुचित कर दिया। उच्च स्तर के सरकारी ऋण ने भी निजी निवेश को बढ़ावा दिया। इस कठिनाई के परिणाम स्वरूप, अन्य क्षेत्रों में भी लाभ की संभावनाओं में कमी आ गयी और पिछले दस वर्षों में स्थापित औसत वृद्धि दर 6 प्रतिशत को कायम रखना कठिन हो गया, जिसे कि 8 प्रतिशत तक तो बढ़ना ही था।

औद्योगिक एवं व्यापार नीति में सुधार :–भारत में किये जाने वाले सुधार के प्रयासों में मुख्य रूप से औद्योगिक एवं व्यापार नीति में सुधार केन्द्र में था। औद्योगिक नीति के अन्तर्गत निजी निवेश के ऊपर बहुत तरह का नियंत्रण था। जिसने निजी निवेशकों के कार्य क्षेत्र सीमित कर दिये थे, उनकी कार्य प्रणाली, नये क्षेत्रों में निवेश एवं यहां तक कि कौन सी तकनीक उपयोग में लायी जायेगी, इस पर नियंत्रण था। अकुशल औद्योगिक ढांचे को पूर्ण सुरक्षित व्यावसायिक नीति की आवश्यकता थी, जैसी कि अक्सर दर्जी की भांति उसके द्वारा तैयार सुरक्षा, उद्योग के प्रत्येक क्षेत्र को दी जाती है।

औद्योगिक नीतिः– औद्योगिक नीति में बहुत बदलाव आया, विशेषतः केन्द्र सरकार का औद्योगिक नियंत्रण समाप्त कर दिया गया। केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की सूची सुरक्षित थी– इसके अन्तर्गत 18 उद्योग थे, जिनमें लोहा एवं इस्पात, भारी मशीनरी उद्योग, दूरसंचार एवं दूरसंचार उपकरण, खनिज, तेल, खदानें, वायु यातायात सेवाएं एवं विद्युत उत्पादन एवं वितरण को घटाकर तीन कर दिया– रक्षा, एवं एयरक्राफ्ट एवं युद्धपोत, परमाणु बिजली उत्पादन एवं रेल्वे यातायात । केन्द्र सरकार के औद्योगिक लायसेंस प्रदान करने के अधिकार को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया, केवल कुछ खतरनाक एवं पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि के उद्योगों पर ही केन्द्र सरकार का अधिकार रह गया।

लघु उद्योग के क्षेत्र में जहां उत्पादन के कुछ वस्तुओं पर दीर्घावधि नीति संरक्षित थी, वह अपूर्ण थी। कुछ अनुसूचित चीजें जैसे वस्त्र, जूतें एवं खिलौनों में निर्यात करने की प्रबल संभावनाएं थीं और अत्याधुनिक यंत्रों के साथ उत्पादन इकाई को विकास की आज्ञा देने में असफलता ने भारत की निर्यात संबंधी प्रतिद्वन्द्विता पर रोक लगा दी। इन वस्तुओं में वस्त्र, जूते, खिलौने एवं गाड़ियाँ सम्मिलित हैं, और यह सभी निर्यात के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि यह परिवर्तन तात्कालिक हैं, इन्हें आर्थिक मंच पर क्रियान्वित होने में अभी समय लगेगा।

औद्योगिक स्वतंत्रता को राज्य सरकार की सहायता की आवश्यकता होती है। राज्य के अन्तर्गत कोई नया उपक्रम स्थापित करने के दौरान निजी निवेशकों को राज्य सरकार की बहुत सारी अनुमतियों की आवश्यकता होती है। जैसे बिजली एवं पानी की आपूर्ति हेतु एवं पर्यावरण मुक्त उद्योग हेतु आज्ञा प्राप्त करना । उन्हें राज्य सरकार के राजतंत्र में भी दिन प्रतिदिन के क्रिया कलापों हेतु मिलना होता है क्योंकि प्रदूषण, स्वच्छता, कामगारों के कल्याण एवं सुरक्षा के नियमों के क्रियान्वयन

हेतु राज्य सरकार के पदाधिकारियों से सामंजस्य बैठाना होता है। क्योंकि स्वतंत्रता के कारण अधिक प्रतिद्वदी वातावरण तैयार होता है, अच्छी नीतियों में वृद्धि होती है, और परिणाम स्वरूप राज्य स्तरीय कार्यों की महत्ता को भी बढ़ावा मिलता है। संरचनात्मक कमियों में सुधार लाने के लिये समय एवं संसाधन दोनों की आवश्यकता होती है, किन्तु सरकारी कामकाज में कमी को उपयुक्त राजनीतिक इच्छा शक्ति के माध्यम से शीघ्रता से समाप्त किया जा सकता है।

व्यापार नीति :– यद्यपि औद्योगिक स्वतंत्रता की अपेक्षा उन्नति की गति धीमी थी, व्यापार सुधार नीति में भी विस्तार किया गया। सुधार से पहले, व्यापार, नीतियां उच्च आयात कर एवं आयात प्रतिबंधों के साथ बनायी गयी थीं बाहर बनी हुयी उपभोक्ता वस्तुओं का आयात पूर्णतः प्रतिबंधित था। आर्थिक सुधारों के माध्यम से आयात अनुज्ञा को समाप्त किया गया एवं आयात पर लगने वाले शुल्कों में भी कटौती की गयी। मुख्य वस्तुओं के उत्पाद के लिये आयात हेतु अनुशा को समाप्त कर दिया गया, जो 1993 में स्वतंत्र रूप से आयात करने योग्य हो गया, साथ– साथ नमनीय विनियम दर की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। पूंजीगत वस्तुओं और उसके सहयोगी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध हटाना अधिक आसान था, क्योंकि घरेलू उत्पादकों की संख्या कम थी और भारतीय उद्योग ने इस बदलाव का स्वागत किया एवं यह अधिक प्रतिस्पर्धात्मक हो गया। यद्यपि भारत का मूल्य दर 1991 से कम था, विकासशील जगत में यह पुनः सर्वोच्च स्थान पर हो गया क्योंकि अन्य विकासशील देशों ने भी इस कालखण्ड में अपने मूल्य दरों में कमी कर दी थी। चीन और दक्षिण पूर्वी एशिया का आयात शुल्क भारत के स्तर से लगभग आधा था।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश :प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को स्वतंत्रता देना भारत के सुधारों का अन्य महत्वपूर्ण हिस्सा था, यह मुहिम इस विश्वास के साथ चलायी जा रही थी कि इससे अर्थव्यवस्था में भारी मात्रा में निवेश में वृद्धि होगी, उत्पादन की तकनीक सुदृढ़ होगी और विश्व बाजार में पदार्पण तेजी से होगा। 1993 में, संस्थागत विदेशी निवेश को कहा गया कि वे स्टॉक बाजार में स्थापित भारतीय कंपनियों के अंश खरीदे, विद्यमान कंपनियों में शयेर समूह निवेश एक स्वागत योग्य कदम था।

इन सुधारों ने 1991 की अपेक्षा, भारतीय उद्योग के लिये एक पृथक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तैयार किया, जिसके कारण बहुत सारे परिवर्तन आये। भारतीय कंपनियों की तकनीक उन्नत हो गयी एवं उत्पादन सकुशल तरीके से होने लगा । उन्होनें विलय और प्राप्ति के द्वारा पुनः संरचना की और योग्यता की ओर विशेष ध्यानाकर्षित किया। विदेशी फर्मों एवं उनके उत्पादों का घरेलू बाजार में उपलब्धता इस बात का प्रमाण है एवं निरंतर गुणवत्ता में सुधार पर बल दिया। इन परिवर्तित नीतियों से यह आशा की जा रही थी कि औद्योगिक उन्नति बहुत तीव्र गति से होगी एवं औद्योगिक उत्पादों का विश्व बाजार में बहुत जोरों से प्रवेश होगा, किन्तु इस संदर्भ में प्रदर्शन निराश पूर्ण था।

एक कारण जिसकी वज़ह से निर्यात मामूली एवं आयात शुल्क बहुत कम था, इसने भारत को उच्च मूल्य वाला उत्पादक बना दिया और निर्यात की ओर ध्यानाकर्षित कर दिया। निर्यातक लंबे समय तक आयात कर सकें उसके लिये आवश्यक था कि निर्यात शुल्क शून्य हो किन्तु निशुल्क आयात अनुशा (लाइसेंस) प्राप्त करने के लिये कठिन प्रक्रिया होने के कारण संव्यवहापर का मूल्य बढ़ गया और कारोबार के संव्यवहार में विलंब भी होने लगा । उच्च स्तरीय सुरक्षा की तुलना यदि अन्य देशों से की जाए तो यह स्पष्ट होता है, कि संरक्षित घरेलू बाजार में प्रत्यक्ष विदेश–निवेश की आवश्यकता है या भारत को निर्यात के लिये जमीनी तौर पर तैयार करना। श्रम बाजार के नियमों में कठोरता भी निर्यात में भारत की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में कठोरता भी निर्यात में भारत की

प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में कमी का एक बहुत बड़ा कारण है और साथ ही औद्योगिक उत्पादकता में कमी का भी कारण श्रम बाजार में कठोरता का होना है। (योजना आयोग 2001)

यह तर्क दिया जा सकता है कि नियंत्रण पर शुरूआती रियायतों से निवेश में बढ़ोत्तरी होगी, लीकिन यह सब केवल तभी संभव था यदि औद्योगिक निवेश निर्यात बाजार पर ध्यान दे जैसा पूर्वी एशिया के मामले में था। ऐसा ही हुआ, भारत के औद्योगिक एवं ब्यापार सुधार बहुत उन्नत नहीं थे और न ही श्रम बाजार सुधार एवं उनके ढाँचे (संरचना) का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। एक क्षेत्र जिसने 1990 में उन्नत निर्यात उन्मुखीकरण के साथ प्रबल उन्नति हासिल की वह क्षेत्र है सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा दी जाने वाली विभिन्न सेवाएं एवं साफ्टवेयर विकास। यह सूचना प्रौद्योगिकी की सेवाएं चिकितसकीय लिप्यंतरण, लेखांकन एवं ग्राहक से संबंधित सेवाओं के समान है।

कृषि सुधारः– भारतीय आर्थिक सुधारों की एक आम आलोचना यह है कि ये सुधार कृषि सुधारों की ओर ध्यान न देकर विशेष रूप से औद्योगिक एवं व्यापार नीतियों पर केन्द्रित हैं जबकि, 60 प्रतिशत जनसंख्या की जीविका कृषि होती है। और जैसे ही इन व्यापार नीतियों से कृषि लाभान्वित होना शुरू करती, इन नीतियों में परिवर्तन हो जाता है, अन्य मामलों में भी हानि का सामना हुआ है, विशेषतः कृषिगत उन्नति के लिये कठिन क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश में कमी दृष्टिगत हुयी, इसके साथ ही सिंचाई एवं जल निकासी, मृदा संरक्षण एवं जल प्रबंधन और ग्रामीण सड़कें भी इसी में सम्मिलित हैं। यद्यपि अधिक उत्पादन हेतु कृषि क्षेत्रों में निवेश दुरूह कार्य है और यह निवेश केवल सार्वजनिक क्षेत्र से ही संभव है। यदि इन कठिन क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश को नहीं बढ़ाया जाता है तभी वास्तव में निजी क्षेत्र में निवेश के बढ़ते हुये रवैये में कमी की जा सकती है। ग्रामीण आधारित संरचना के सार्वजनिक निवेश में कमी का मुख्य कारण है राज्य सरकार की राजकोषीय स्थिति में गिरावट एवं राजनीतिक लोकप्रियता की प्रवृत्ति का होना, किन्तु अकुशल एवं अन्यायपूर्ण छूट के कारण भी अधिक उत्पादक निवेश को बाहर कर दिया गया। प्रारंभिक दौर में खाद्य सामग्री के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिये बनायी जाने वाली कुछ नीतियाँ महत्वपूर्ण थी, जब यह मुख्य उद्देश्य था, अब कृषि विविधता में निरोधक के रूप में पायी गयीं। गेहूँ जैसी खाद्य सामग्री का सरकारी मूल्य सहायक स्तर कृषि मूल्य आयोग जो कि एक तकनीकी निकाय है, की अनुशंसाओं के आधार पर निश्चित किया गया। कृषि मूल्य आयोग से यह अपेक्षा की गयी है कि यह मूल्य का युक्तियुक्त स्तर निर्धारित करेगा।

कृषि में विविधता के कारण पुराने नियमों में भारी परिवर्तन संभव हो सका। आवश्यक वस्तु अधिनियम राज्य सरकार को अधिकार देती है कि वह राज्य के आसपास या कभी–कभी जिले की सीमाओं तक सीमित कृषि उत्पादों पर प्रतिबंध लगा सकती है, पूर्ण विक्रेता एवं खुदरा विक्रेता दोनों के वस्तुओं के संग्रहण की अधिकतम सीमा पर भी प्रतिबंध लगा सकती है। यह व्यवस्था व्यवसायियों द्वारा शोषण पर रोक लगाने हेतु की गयी ताकि दिन प्रतिदिन की आपूर्ति को अन्य क्षेत्रों की ओर मोड़ा जा सके या कीमत बढ़ाने हेतु आपूर्ति पर रोक लगाने हेतु भी राज्य सरकार को अधिकार प्रदान किये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान और ग्राहक दोनों एकीकृत राष्ट्रीय बाजार के लाभों से दूर रहे। आधुनिक खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के विकास को, जो कि कृषि विकास की अगली सीढ़ी के लिये आवश्यक है, पुरानी एवं अर्न्तविरोधी विधि एवं नियमों के द्वारा बाधा उत्पन्न हुयी। यदि स्वतंत्र कृषि–विस्तार अपेक्षित है तो इन पुरानी विधियों में परिवर्तन की आवश्यकता है।

बुनियादी ढाँचे का विकासः– वैश्विक पर्यावरण की तीव्रतम उन्नति को दृष्टिगत रखते हुये यह आवश्यकता थी कि सुचारू रूप से संचालित एक बुनियादी ढाँचे की जरूरत थी जिसमें विशेष रूप

से बिजली, सड़क एवं रेल से जुड़ाव टेलीफोन, वायु यातायात और बंदरगाह सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में भारत पूर्वी एवं दक्षिण पूर्वी एशिया से काफी दूर था मूलतः यह सेवाएं सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा एकाधिकार रूप से दी जाती थीं किन्तु गुणवत्ता एवं क्षमता में सुधार की आवश्यकता हेतु निवेश की आवश्कयता थी और सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा गतिमान नहीं हो सका, यह सारे क्षेत्र निजी निवेश के लिए खोल दिये गये, जिसमें विदेशी निवेश भी शामिल था। यद्यपि निजी विशकों के अपनी शर्तों , के साथ प्रवेश करने में बहुत कठिनाई थी। निजी निवेशकों द्वारा विभिन्न आवश्यक क्षेत्रों में निवेश के द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि ग्राहक को युक्तियुक्त कीमत पर सामान उपलब्ध हो सकें, निवेशकों की जोखिम का कारक भी महतवपूर्ण था, उसे कम कर आँका गया । परिणाम स्वरूप बहुत सारी गलत शुरूआत एवं निराशा प्राप्त हुयी।

सर्वाधिक निराशा विद्युत क्षेत्र से हुयी जो कि निजी निवेश के लिये खोला गया, प्रथम क्षेत्र था। निजी निवेशकों से यह आशा की गयी थी कि वे बिजली उत्पादन करके राज्य विद्युत बोर्ड को बेचेंगे , विद्युत बोर्ड का बिजली वितरण पर नियंत्रण का अधिकार था। यद्यपि राज्य विद्युत बोर्ड वित्तीय रूप से बहुत कमजोर था, क्योंकि बहुत सारे ग्राहकों के लिये विद्युत मूल्य बहुत कम था एवं एक कारण यह भी था कि बहुत बड़ी मात्रा में विद्युत वितरण एवं हस्तांतरण में धन बर्बाद हो रहा था। इन कठिनाईयों के चलते, 1990 तक विद्युत निर्माण की क्षमता में विस्तार का लक्ष्य जो निर्धारित किया गया था उसका आधा ही लक्ष्य पूर्ण हो पाया विद्युत कम गुणवत्ता वाली हो गयी जिसमें काफी बड़ी मात्रा में वोल्टेज अस्थिरता एवं लगातार अवरोध उत्पन्न हो रहे थे।

नीति में बहुत सारी कमियाँ निकल कर आयीं और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा उनमें सुधार करने का प्रयास किया गया। मूल्य निर्धारण के लिये स्वतंत्र सांविधिक नियामक स्थापित किये गये ताकि ग्राहक और उत्पादक दोनों के लिये सुविधाजनक स्थिति बन सके। विभिन्न राज्यों द्वारा विद्युत वितरण का निजीकरण इस आशा के साथ करने का प्रयास किया गया कि इससे भ्रष्टाचार समाप्त हो सकेगा। इन सुधारों को लागू करना आसान नहीं था। लंबे समय तक रियायती दरों पर विद्युत उपयोग में लाये जाने वाले उपभोक्ताओं का बिजली दरों के युक्तिकरण का विरोध होना संभाव्य था। यहाँ तक कि विद्युत की गुणवत्ता की स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी।

यह समस्याएं दुर्जय हैं और बहुत सी राज्य सरकारों ने अब यह अनुभव किया कि निजीकरण को सफलता पूर्वक लागू करने से पहले प्रारंभिक कार्यो को करना आवश्यक है। कुछ प्रारंभिक कदम जैसे युक्तियुक्त दरों का निर्धारण एवं विद्युत चोरी एवं बकाया न देने वालों पर शास्ति लागू करना, शायद सर्वोत्तम पहल है। उपरोक्त प्रक्रिया शायद सार्वजनिक क्षेत्र के ढांचे में सफलता पूर्वक लागू किये जा चुके थे और यह प्रयास विद्युत क्षेत्र के लिये आवश्यक थे। अतः इनको लागू करना आवश्यक था क्योंकि अकेले निजीकरण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। यदि आधा दर्जन राज्यों में भी यह प्रयास सफलतापूर्वक लागू हो जाते हैं, तो आगे आने वाले कुछ वर्षों में सुधार होता हुआ दिखायी देगा। दूर संचार के परिणाम सुदृढ़ नज़र आ रहे थे, और भारत की सफलता में सूचना तकनीक एक महत्वपूर्ण कारक है। आरंभिक स्तर पर गलत पहल का प्रारंभ हुआ था क्योंकि निजी निवेशकों में लायसेंस प्राप्ति की बोली के लिये अधिक फीस निर्धारित की, यथा संभव बनाये रखने में नाकामयाब रहे, फलस्वरूप इसने दीर्घ एवं विवादास्पद रूप ले लिया, शतों में पुनःवार्ता की आवश्यकता महसूस हुई, तब से नीति सफलतापूर्वक कार्य करती हुयी नजर आयी।

भारत में सड़क का तंत्रजाल व्यापक है, किन्तु इनमें से कुछ खराब गुणवन्ता वाली है ओर यह आंतरिक स्थानों के लिये एक बड़ी बाधा है। इससे जुडे हुये छोटे–छोटे मार्ग भी कम क्षमता वाले

थे एवं उनकी खराब देख देख एवं रखरखाव के दौर से गुज़र रहा था। हाल ही में कुछ वायदों की पहल की गयी।

रेलमार्ग माल ढुलाई का संभावित मुख्य साधन है किन्तु इस क्षेत्र में अभी तक कोई सुधार की पहल नहीं की गयी। यह क्षेत्र खतरनाक वित्तीय बाधाओं से जूझ रहा है, आंशिक रूप से यह राजनीतिक रूप से निर्धारित किराया संरचना के कारण है, जिसमें यात्री भाड़े में कमी करने के लिये माल भाड़े में अत्यधिक वृद्धि की गयी, एवं इस क्षेत्र के वित्तीय बाधाओं से गुजरने का आंशिक कारण सरकार का स्वामित्व भी है जिसकी वज़ह से व्यर्थ क्रियान्वित प्रथाएं थीं।

वित्तीय क्षेत्र में सुधार :– भारत के सुधार कार्यक्रमों में बैकिंग व्यवस्था एवं पूंजी बाजार में विस्तृत सुधार सम्मिलित हैं जिसमें बाद में बीमा को भी सम्मिलित कर लिया गया। बैंकिग क्षेत्र के सुधारों में सम्मिलित है – (अ) उदारीकरण के उपाय जैसे नियंत्रित ब्याज दरों की मिश्रित व्यवस्था का विघटन, बड़े कर्जों के लिये भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति को समाप्त करना, सरकारी प्रतिभूतियों में सांविधिक आवश्यकताओं में कमी करना, (बी) वित्तीय सुदृढ़ता को बढ़ावा देने हेतु किये गये उपाय, जैसे बैंक के विवेकपूर्ण मानदंडों एवं आवश्यक पूंजी पर्याप्तता को प्रभाव में लाना, साथ ही बैंकों के पर्यवेक्षण को मजबूत बनाना, (स) प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने वाले उपाय जैसे विदेशी बैंकों का सवतंत्र विस्तारीकरण एवं निजी बैंकों की उदार लाइसेंस नीति। इन प्रयासों के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुये। बैंकां की दक्षता को सीमित करने का एक अन्य मुख्य कारक विधिक ढाँचा है, जिसके अन्तर्गत लेनदारों को उनके द्वारा लाये गये दावावें का निराकरण बहुत कठिन था। सरकार ने हाल ही में दिवालियेपन के नियम एवं विधायन बनाने की शुरूआत की जोकि स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के बहुत करीब थे। यह एक बहत सुधारात्मक कदम होता किन्तु इसके लिये न्यायालयीन प्रक्रिया में भी सुधार की आवश्यकता थी, न्याय में विलंब कम करना अति आवश्यक था जो कि वर्तमान विधिक व्यवस्था की विशेष कमजोरी है।

1992 के स्टॉक बाजार घोटाले के वज़ह से स्टाक बाजार के सुधारों में तेजी आयी, इस घोटाले से नियामक तंत्र में महान कमजोरी प्रकाश में आयी। सांविधिक नियामक की स्थापना, पूंजी बाजार में भाग लेने वाले विभिन्न प्रकार के नियमों एवं विनियमों को लागू करने एवं अंदरूनी सूत्र प्रशिक्षण एवं अधिग्रहण हेतु बोलियों से संबंधित गतिविधियों को कार्यान्वित करना, अंशों के रखरखाव एवं मूल्य निर्धारण में पारदर्शिता को बढ़ावा देने हेतु इलेक्ट्रॉनिक व्यापार की शुरूआत के साथ सुधारों को लागू किया गया ताकि व्यक्ति की स्वयं की आवाजाही को समाप्त कर कागज प्रतिभूतियों का संग्रहण भलीभांति हो सके। हाल ही में एक महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम जो उठाया गया है वह है, सार्वजनिक क्षेत्र की म्युचुअल फंड की कम्पनी यूनिट ट्रस्ट को दिये गये विशेषाधिकारों की वापिसी । यद्यपि यूनिट ट्रस्ट ने सरकारी प्रत्याभूति का उपभोग नहीं किया, किन्तु दोनों को एक ही माना जाता है क्योंकि इसके उच्च प्रबंधन की नियुक्ति सरकार द्वारा ही की जाती थी।

निजीकरण :– भारत में औद्योगिक मूल्य का लगभग 35 प्रतिशत धन सार्वजनिक क्षेत्र में लगाया गया किन्तु अधिकांश देशों में निजीकरण ही आर्थिक सुधार का मुख्य अवयव बन गया। भारत की स्थिति इस संदर्भ में स्पष्ट नहीं थी । शुरूआती दौर में सरकार ने उन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में हिस्सेदारी कम कर दी जिनका प्रबंधन सरकार के नियंत्रण में था, एक नीति बनायी जिसे विनिवेश नाम दिया गया जिसका काम था निजीकरण एवं सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर बताना। हाल ही का महत्वपूर्ण नवोन्मेष, जो निजीकरण की लोक स्वीकारोक्ति में वृद्धि करेगा, वह है निजीकरण की कार्यवाही को स्थापित करने हेतु सामाजिक क्षेत्र के विकास पर होने वाले अतिरिक्त व्यय की ऋण

द्वारा पूर्ति करने का निर्णय लेना निजीकरण स्पष्टतः राजस्व का एक स्थायी स्त्रोत नहीं है, परन्तु यह आगामी पांच से दस वर्षों में विषम दूरी को भर सकता है वह भी तब जबकि दूरगामी राजकोषीय समस्या के समधान का प्रयास किया जा रहा है। कुछ राज्यों में राज्य स्तरीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निजीकरण प्रारंभ भी प्रारंभ भी कर दिया । यह उपक्रम हानि में चलने वाले उपक्रम हैं और उनसे कुछ अधिक पाने की संभावना भी नहीं है किन्तु निजीकरण से वित्तीय घाटों के आवर्ती भार की समाप्ति होगी।

स्वास्थ्य एवं शिक्षा में सामाजिक क्षेत्र में विकास :–

1991 में सुधारों की शुरूआत में भारत के सामाजिक सूचकों ने दक्षिण पूर्व द्वारा प्राप्त स्तरों को पीछे छोड़ दिया, किन्तु सामाजिक विकास में आये अन्तराल को समाप्त किये जाने की आवश्यकता थी। गरीबों के कल्याण एवं उनकी आय में वृद्धि की क्षमता में सुधार हेतु इसकी आवश्कता नहीं थी, बल्कि आर्थिक उन्नति की तीव्रतम वृद्धि करने हेतु कुछ शर्तों का तय किया जाना भी आवश्यक था। जबकि आर्थिक सुधारों हेतु यह तर्क दिया जाता था कि राज्य उन क्षेत्रों से अपना क्षेत्राधिकार वापिस ले लें जहां निजी क्षेत्र अच्छा कार्य कर सकते थे, किन्तु अच्छा नहीं किया गया, साथ ही यह भी जरूरत महसूस होने लगी कि सामाजिक क्षेत्र के विकास के लिये सार्वजनिक क्षेत्र के सहयोग में वृद्धि की जाए। भारत और दक्षिण पूर्व एश्यिा के अन्य देशों के मध्य आयी सामाजिक क्षेत्र की दूरी को कम करने के लिये अतिरिक्त खर्च की आवश्यकता थी जो कि राज्य एवं केन्द्र दोनों ही सरकारों की राजकोषीय स्थिति पर निर्भर था। यद्यपि इस क्षेत्र में उपयोग में लाये जाने वाले संसाधनों को अधिक कौशल पूर्ण होना महत्वपूर्ण था। आधा समाधान तो शिक्षा एवं चिकित्सा व्यवस्था में उचित निगरानी है, जिसके लिये क्षेत्रीय स्तर और इस स्तर पर प्रभावित लोगों के सहयोग के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता थी। इस प्रक्रिया में गैर सरकारी संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते थे कुछ राज्य सरकारें इस बदले हुये आकार के साथ परीक्षण भी कर रहे हैं, लेकिन इस क्षेत्र में अभी बहुत काम करना बाकी है।

3.6 सारांश

भारत में पर्यावरण नीति पर आर्थिक सुधारों के प्रभाव की एक मिश्रित प्रतिकृति उजागर हुयी। औद्योगिक एवं व्यापार नीति के सुधार बहुत दूर रह गये, क्योंकि उन्हें श्रम बाजार के सुधारों द्वारा सहयोग की आवश्यकता थी, जो कि महत्वपूर्ण थे एवं पूरी तरह से गायब थे। उदारवाद के तर्क को भी कृषि तक विस्तारित होने की आवश्यकता थी, जिनमें बहुत सारे प्रतिबंध, अब भी मौजूद थे। सुधारों का उद्देश्य था आधारभूत, संरचना में निजी निवेश को बढ़ावा देना। इस क्षेत्र में समस्याओं की जटिलता को कमतर आंका गया, विशेषतः विद्युत क्षेत्र की समस्याओं को । अब इसे मान्यता मिल गयी और उसी आधार पर नीतियों को पुन निर्माण किया गया । विभिन्न क्षेत्रों के वित्तीय सुधारों में उन्नति हुयी फिर भी बैंकों के सरकारी स्वामित्व से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर अब भी ध्यान देना आवश्यक था। यद्यपि कि प्रारंभिक अवस्था की अपेक्षा, दस वर्षों के अन्त तक राजकोषीय स्थिति का परिणाम दिखाता है कि स्थिति संतोषजनक नहीं थी।

आलोचक अक्सर देरी से लागू करने का आरोप लगाते हैं एवं एक रणनीति के रूप में धीमी गति से कार्य करने में असफल होना भी एक आरोप है। यद्यपि क्रमिकतावाद का तात्पर्य है उद्देश्य की स्पष्ट परिभाषा एवं जानबूझकर ऐसा चुनाव करना जिससे कि किसी भी नीति को कार्यान्वित करने में समय लगे, ताकि गति या अवस्था तक में सुगमता लायी जा सके। यह सभी क्षेत्रों में लागू नहीं था। अक्सर उद्देश्य विस्तृत निर्देशों के साथ सूचित किये जाते थे जिसमें इन उद्देश्यों

का समापन बिन्दु भी तय रहता था और गति को बिना बताये छोड़ दिया जाता था, ताकि कम से कम विरोधाभास हो और संभवतः ऐसा इसलिये किया गया ताकि यदि आवश्यकत हो तो पीछे हटने का भी अवसर मिल सके। इसके राजनीतिक रूप से बंटवारे के विवादों में कमी देखी गयी, एवं विकास करने हेतु एवं सक्षम अवधारणा सामने आयी, किन्तु इसका यह अर्थ भी हुआ कि हर बिन्दु पर मतों में समानता से समझौता का प्रादुर्भाव हुआ, बहुत से इच्छुक समूह सिर्फ इसलिये जुड़ने लगे कि उन्हें ऐसा लगने लगा कि यह सुधार बहुत ज्यादा देर तक नहीं चलेंगे। परिणामस्वरूप परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव हुआ और यह इतना क्रमिकतावादी नहीं था कि संपूर्ण एवं अवसरवादी हो सके। उन्नति वैसी ही और तब तक हुयी जब तक राजनीतिक रूप से संभव हो पाया, किन्तु अंतिम बिन्दु तक भी स्पष्टतः इंगित नहीं किया गया था। परिवर्तन कितना किया जाना है इस संदर्भ में बहुत से प्रतिभागी अस्पष्ट थे, जिसकी वज़ह से सामंजस्य में कमी आयी जबकि इससे ज़्यादा परिवर्तन संभव था।

परिवर्तन की विस्तृत मात्रा पर स्पष्टवादिता के उद्देश्य पर विस्तृत तर्क वितर्क की आवश्यकता ही एकमात्र विकल्प था, ताकि सोद्देश्य पूर्ण तरीके से सुधारों को लागू किया जा सके। यद्यपि यह कहना कठिन होगा कि क्या यह तरीका अच्छे परिणाम दे पायेगा या यह भारत के सर्वोच्च बहुलतावादी प्रजातंत्र में एक अवरोध का काम करेगा। इसके अलावा भारत परिवर्तन की उस अवरोधात्मक प्रक्रिया का साक्षी है जिनके अन्तर्गत वह राजनतिक दल जब वह विरोधी दल की अवस्था में होते है तो कुछ सुधारों का विरोध करते हैं, पर जब वह स्वयं सत्ता पक्ष में होते हैं तो उन्हीं सुधारों पर काम करते है। प्रक्रिया को परिस्थिति जन्य रूप से कमजोर सुधारों के लिये मजबूत मतैक्य के रूप में निर्धारित किया जा सकता है।

क्या यह सुधार भारत की 8 प्रतिशत वार्षिक दर से उन्नति की ओर अग्रसर हैं ? आशावादी होने का मुख्य कारण है कि यह सामूहिक या संचयी परिवर्तन ठोस रूप लेगा। धीमी गति से कार्यान्वयन का तात्पर्य है कि बहुत सारे सुधार जिनकी पहल की गयी है उन्हें एक स्थान पर रख दिया जायेगा एवं उसके लाभान्वित प्रभावों का अनुभव किया जायेगा। वर्तमान में पर्यावरण नीति कुछ अधिक सहायक है, और विशेषतः तब जब समालोचनात्मक गायब कड़ी अपना स्थान ले रही हो। राजकोषीय स्तर पर असफलता के संदर्भ में कुछ नहीं किया जा सकता। राज्य एवं केन्द्र दोनों ही सरकारें खतरनाक राजकोषीय तनाव में है जिससे उनकी सामाजिक विकास एवं आधारभूत ढाँचे में निवेश की क्षमता कमजोर पड़ती है, जहाँ कि सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश ही एकमात्र विश्वसनीय स्त्रोत है। यदि यह प्रवृत्तियाँ बदल नहीं जातीं, भविष्य में 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर को कायम रखना कठिन होगा, जो कि आगे 8 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। यदि राजकोषीय क्षेत्र में सही विश्वसनीय कदम उठाये जाते हैं, तब सम्पूर्ण नीति बदल जायेगी जो कि विभिन्न क्षेत्रों में पहले से ही प्रभावी है, निरन्तर उन्नति करने हेतु अगले कुछ वर्षों में 6 प्रतिशत वृद्धि से अधिक की नीति निर्धारित करनी होगी।

3.7 शब्दावली

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश :– किसी व्यवसाय में अन्य निवेशक द्वारा निवेश जिसके लिये विदेशी निवेशक को खरीदी गयी कम्पनी पर नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त होता है।

निजीकरण :– स्वामित्व पूर्ण सम्पत्ति या व्यवसाय का सरकार द्वारा निजी क्षेत्र को अन्तरण निजीकरण कहलाता है।

3.8 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

1. भारत की अधिकांश जनसंख्या .... पर निर्भर है।
2 जमींदारी, महलवारी और........................ भारत की प्रचलित भूमि पट्टा व्यवस्थाएं थीं।
3 भारत में सबसे बड़ी सूती मिलें .... और .... में हैं।
4. संरचनात्मक ढाँचा तैयार करने के पीछे वास्तविक उद्देश्य लोगों को .... प्रदान करना था।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 कृषि 2. रैयतवारी, 3. मुंबई, अहमदाबाद, 4. मूलभूत सुविधाएं ।

3.10 स्वपरख प्रश्न

1 स्वतंत्रता पूर्व की भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. स्वतंत्रता के पश्चात् की भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. सुधारात्मक अवधि से पूर्व की भारतीय अर्थव्यवस्था की व्याख्या कीजिए।
4 भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंग्रजों के शासन का क्या प्रभाव पड़ा, व्याख्या कीजिए।
5. सकल घरेलू उत्पाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6 भारतीय कृषि से आप क्या समझते हैं ?
7 आधारभूत संरचनात्मक विकास से आप क्या समझते है ?
8 आर्थिक सुधारों से या तात्पर्य है?

3.11 संदर्भ पुस्तकें

1 चन्द्रशेखर, सी.पी. आस्पैक्टस ऑफ ग्रोथ एंड स्ट्रक्चरल चेन्ज इन इंडियन इकोनॉमी, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, स्पेशल नंबर, नवंबर, 1998.
2 दास गुप्ता, अजित के, एग्रीकल्चर एंड इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन इंडिया, न्यू दिल्ली, एसोसिएटड पब्लिशिंग हाउस, 1993
3 गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया इकोनॉमिक सर्वे (वार्षिक)
4 देसाई, अशोक, बी, टैनोलॉजी, एब्जार्वशन इन इंडियन इंडस्ट्री, नयी दिल्ली, विली ईस्टर्न, 1998
5 इंडियन इकोनॉमिक रिव्यू (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स)
6 इंडियन इकोनॉमिक जर्नल (इंडियन इकोनामिक ऐसोसिएशन)
7 खावेकेत डीन, नेशनल इकोनॉमिक पॉलिसी इन इंडिया, साल्वेटर, डेमोनिक, एड. हैन्डबुक ऑफ कम्पैरेटिव इकोनॉमिक पालिसीज, वाल्युम 1, नेशनल इकोनॉमिक पालिसीज, ग्रीनवुड प्रेस, पृष्ठ 231 – 75, 1991 ।
8 राजकुमार सेन एंड बिस्वजीत, चटर्जी, इंडियन इकोनॉमी एजेण्डा फार द 21 वीं शताब्दी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 2002 ।
9 ए.एन. अग्रवाल, इंडियन इकोनॉमी, प्राब्लम्स ऑफ डेवलपमेन्ट एण्ड प्लानिंग, विली ईस्टर्न लिमिटेड, नयी दिल्ली 2002 ।
10 योजना आयोग, सरकारी पाँच वर्षीय योजना।

11 भल्ला जी.एस., एण्ड इकोनॉमिक लिबरलाइजेशन एण्ड इंडियन एग्रीकल्चर, इंस्टीट्यूशन ॉफर स्टडीज इन इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट, नयी दिल्ली 1994

12 लाल, संजय, टेक्नोलॉजी डेवलपमेन्ट एण्ड एक्सपोर्ट परफार्मेन्स इन एल.ऊी.सीः लीडिंग इंजीनियरिंग एण्ड केमिकल फर्म्स इनं इंडिया रिव्यू ऑफ वर्ल्ड इकोनॉमिक्स, वाल्युम 122(1) , पृष्ठ 80–199 ।

––––

इकाई 4 भारत में योजना

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 योजना का अर्थ
4.3 योजना की मुख्य विशेषताएँ
4.4 भारत में संचालित योजनाएँ
4.5 भारत में आर्थिक योजनाओं के उद्देश्य
4.6 भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं की मुख्य विशेषताएँ
4.7 भारत में लागू योजनाओं की उपलब्धियाँ
4.8 भारत में योजनाओं की असफलता एवं पंचवर्षीय योजनाओं के दोष
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 बोध प्रश्न
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 स्वपरख प्रश्न
4.14 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- योजनाओं की व्याख्या कर सकें।
- योजनाओं के विशिष्ट बिन्दुओं की व्याख्या कर सकें।
- भारत में आर्थिक योजनाओं के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकें।
- भारत में लागू योजनाओं की उपलब्धियों की व्याख्या कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

समस्त आर्थिक बीमारियों के लिये योजनाएं रामबाण साबित हुयीं। किसी भी देश का आर्थिक विकास आर्थिक याजनाओं पर निर्भर करता है। यद्यपि कि योजना का विचार 2400 वर्ष पुराना है जिसका पहला उद्धरण प्लेटो की 'रिपब्लिक' नामक किताब में मिलता है किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद पुनर्वास हेतु इसी विचार ने एक व्यवस्थित रूप लिया एवं युद्ध के कारण खराब अर्थव्यवस्था की वापिसी हेतु अविकसित अर्थव्यवस्था के तीव्रतम विकास के लिये अर्थशास्त्र को पुनः निर्मित एवं पुनर्वासित किया। योजनाबद्ध कार्य प्रगति की अनिवार्य शर्त हैं।

4.2 योजना का अर्थ

आर्थिक गतिविधि से संबंधित कार्य योजना को व्यवस्थित तरीके से कार्यान्वित करना योजना का एक भाग है। योजना को दो तत्वों द्वारा परिभाषित किया जा सकता ह– (अ) एक ऐसी कार्य योजना जिसे प्राप्त करने के लिये उसी के द्वारा प्रस्तावित किया जाता है एवं (ब) उस तारतम्य में व्यवस्थाएं बनाना, ताकि परिणाम प्राप्त किया जा सके। विभिन्न खंडों के विकास के लिये विभिनन योजनाएं हो सकती हैं जैसे उत्पादन के लिये योजना, वितरण के लिये योजना, वित्त की योजनाएं, आर्थिक योजनाएं आदि। किन्तु एक देश के मामले में सभी कुछ आर्थिक योजनाओं पर निर्भर करता

है। साधारणतया आर्थिक योजना वह योजना है जो सम्पूर्ण आर्थिक जीवन से संबंधित है या अर्थव्यवस्था की संपूर्ण गतिविधि से संबंधित है। आर्थिक योजना की अवधारणा के संदर्भ में शिक्षाविदों एवं अर्थशास्त्रियों के मध्य मतभेद है।

परिभाषाएँ :–

लेवी के अनुसार आर्थिक नियोजन का अर्थ मांग एवं आपूर्ति के मध्य ऐसे व्यवस्थित सन्तुलन से है जिसमें अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारित सत्ता द्वारा यह विचारपूर्वक निर्णय लिया जाता है कि क्या और कितना उत्पादन किया जायेगा तथा किसके बीच उनका बँटवारा किया जायेगा। कुछ अर्थशास्त्री सोचते हैं कि योजना आर्थिक स्वतंत्रता से पूर्णतः भिन्न है। इसी प्रकार एच.डी. डिकिन्सन के अनुसार नियोजन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें अर्थ व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारित सत्ता के द्वारा विचारपूर्वक निर्णय लिया जाता है कि क्या और कितना उत्पादन किया जायेगा तथा उसका बँटवारा किस आधार पर होगा।'' **अतः विस्तृत अर्थों में योजना के मुख्य बिन्दु :–**

(अ) उद्देश्यों के सूत्रीकरण को निश्चित समय एवं आकार के अन्दर प्राप्त कर लेना चाहिये।

(ब) विभिन्न खंडों के प्राथमिकताओं एवं लक्ष्य का निर्धारण ।

(स) योजना के निष्पादन हेतु वित्तीय एवं अन्य संसाधनों की क्रियाशीलता की आवश्यकता ।

(द) योजना को निष्पादित करने हेतु आवश्यक संगठन या अभिकरण को विस्तारित करना एवं

(य) किसी भी योजना की प्रगति का मूल्यांकन या निर्धारण करने के लिये एक निर्धारण मशीनरी की व्यवस्था करना।

अतः विभिन्न आर्थिक, गतिविधियों को नतोतदर (अवतल) शुरूआत, नियंत्रित और संचालित करने की क्रमबद्ध व्यवस्था ही योजना कहलाती है जिसका प्रादुर्भाव केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा किया जाता है ताकि सुनिश्चित उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके।

4.3 योजना की मुख्य विशेषताएँ

सुनियोजित अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैः–

आर्थिक योजना वह सुसंगठित एवं सामंजस्यपूर्ण प्रयास हैं जिनके माध्यम से सव परिक्षाषित उद्देश्यों को सुनिश्चित समय पर प्राप्त करने में सहायक हैं जिनके माध्यम से समुदाय के संसाधनों का सकारात्मक उपयोग भी होता है।

(i) सुनियोजित अर्थव्यवस्था से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की मिली जुली तस्वीर सामने आती है जहाँ किसी भी तरह की कमी, बाधाओं या संदेह की कोई गुंजाइश नहीं होती है।

(ii) सुनियोजित अर्थव्यवस्था एक स्थिर अर्थव्यवस्था है जहां आर्थिक गतिविधियों के समस्त उतार–चढ़ावों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

(iii) सुनियोजित अर्थव्यवस्था वह है जो किसी भी अर्थव्यवस्था के भविष्य से संबंधित हितो की रक्षक होती है और इस संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक मुद्दों हेतु आवश्यक उपबन्ध बनाती है।

(iv) सुनियोजित अर्थव्यवस्था बहुत समतावादी होती है, यह समाज के कमजोर एवं शोषित लोगों के हितों की रक्षा करती है और इस तरह सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है।

(v) सुनियोजित अर्थव्यवस्था तर्कसंगत अर्थव्यवस्था है, यह अवशिष्ट चीजों को समाप्त करती है और अर्थव्यवस्था के आवश्यक तत्वों पर विशेष जोर देती है।

(vi) सुनियोजित अर्थव्यवस्था को संसाधनों के अनुकूलतम उपयोगिता हेतु व्यापक नियंत्रण के रूप में भी जाना जाता है एवं आर्थिक व्यवस्था की निपुणतम कार्यशैली के रूप में भी इसे विशेष रूप से जाना जाता है।

(vii) अंततः, एक सुनियोजित अर्थव्यवस्था को केन्द्रीय निर्देशित अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। यहां प्रत्येक बड़े आर्थिक निर्णय आवश्यक विबंधन एवं सलाह के द्वारा निर्देशित होते हैं ताकि अर्थव्यवस्था संबंधी कार्य एक निर्धारित योजना के अन्तर्गत अपना रूप ले सकें।

4.3 भारत में संचालित योजनाएँ

राज्यों के संघ ने केन्द्र एवं राज्य दोनों सरकारों के लिये आर्थिक योजना स्वीकृत की है। मार्च 1950 में योजना आयोग के गठन के बाद योजना आयोग एवं विभिन्न राज्यों के मध्य एवं समन्वित संस्था की आवश्यकता महसूस की गयी एवं समन्वित संस्था एवं योजना आयोग की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 6 अगस्त 1952 को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गयी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में योजना आयोग द्वारा लिये गये प्रत्येक निर्णय को राष्ट्रीय विकास परिषद की अनुशंसा आवश्यक हो गयी है। योजना अयोग में इसके अध्यक्ष के रूप में प्रधान मंत्री, चार पूर्ण कालिक सदस्य, उपाध्यक्ष योजना मंत्री, वित्त मंत्री, रक्षा मंत्री सम्मिलित हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद के अन्तर्गत प्रधानमंत्री समस्त राज्यों के मुख्यमंत्री एवं योजना आयोग के सदस्य आते हैं। भारतीय योजना व्यापक' कहलाती है क्योंकि यह उन्नति एवं विकास के आर्थिक परिधि पर ही केन्द्रित नहीं होती बल्कि उन्नति एवं विकास के सामाजिक दायरों पर भी ध्यान देती है। यह गुणवत्ता पूर्ण जीवन के सम्पूर्ण सुधारों पर ध्यान देती है। साथ समाज के समाजवादी तरीके को प्राप्त करने हेतु विशिष्ट प्रयास करती है। इसका तात्पर्य यह है कि केवल विकास की गति की तीव्रता पर ही ध्यान नहीं दिया जाना चाहिये, बल्कि जीवन यापन के उच्च स्तर की प्राप्ति हेतु प्रयास होने चाहिये साथ ही समाज में विभिन्न वर्गो में व्याप्त भेदभाव को भी न्यूनतम किये जाने हेतु योजना का निर्माण होना चाहिये, यदि पूरी तरह से समाप्त करना असंभव हो तो कम से कम इस भेदभाव की नीति में कमी तो लानी चाहिए।

4.5 भारत में आर्थिक योजनाओं के उद्देश्य

भारत जैसे विकासशील देश में, आर्थिक विकास के संदर्भ में आर्थिक योजना एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। हमारे देश की आर्थिक योजना के मौलिक उद्देश्य है आर्थिक उन्नति की तीव्रतम गति प्रदान करना एवं साधारण लोगों को न्याय प्रदन करना। अतः भारत में आर्थिक योजना का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ उन्नति है। दीर्घावधि उद्देश्यों के अलावा, हमारी योजनाओं ने अल्पावधि उद्देश्यों जैसे मल्य वृद्धि पर नियंत्रण, औद्योगीकरण, निर्वासितों के पुनर्वास, अधोसंरचनात्मक सुविधाओं इत्यादि पर विशेष जोर दिया है। योजना आयोग ने इन छः योजनाओं को मूर्तरूप दिया जिसे दोनों ही निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा स्वीकार किया गया। सारणी में देश की प्रथम आठ योजनाओं के विषय में विवरण दिया गया है।

भारत में विकास की योजना मिश्रित अर्थव्यवस्था की चारदीवारी के अन्दर बनाया एवं निष्पादित किया गया है। भारत में आर्थिक योजना दो प्रकार की है, एक, विकासशील के वादों को व्यवहार में प्रभावशील बनाने के उद्देश्य से बनायी गयी योजना एवं दूसरी सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु बनायी गयी योजनाएं । विकास के लगभग सभी क्षेत्रों के लिये लक्ष्य निर्धारित करने का

काम योजनाओं का होता है। इसके अन्तर्गत आर्थिक योजना के साथ–साथ सामाजिक योजना भी सम्मिलित है। आर्थिक योजना का केन्द्र बिन्दु आर्थिक उन्नति, आत्मनिर्भरता, बेरोजगारी में कमी, समाज में व्याप्त आय की असमानता में कमी लाना, गरीबी समाप्त करना, उत्पादन के आधुनिक तरीकों को अपनाना एवं उन्नति में स्थिरता कायम रखना है। इनमें से कुछ उद्देश्यों को द्वितीय एवं तृतीय पंचवींय योजनाओं में सम्मिलित किया गया तथा आर्थिक उन्नति की तीव्रतम गति को महत्व दिया गया । पाँचवी एवं छठी पंचवर्षीय योजना में आत्मनिर्भरता, रोजगार के अवसर मुहैया कराना एवं गरीबी समाप्त करने जैसे मुद्दों को महत्व दिया गया। सातवीं योजना आधुनिकीकरण से संबंधित थी। ग्यारहवीं योजना में आर्थिक उन्नति पर प्रकाश डाला गया जबकि बारहवीं योजना में उन्नति की स्थिरता पर चर्चा की गयी। 1991 की नयी आर्थिक योजना के द्वारा योजना का केन्द्र बिन्दु वित्तीय सुधारों के माध्यम से समष्टि अर्थशास्त्र के स्थिरीकरण के कार्यक्रम को लागू करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया। उद्देश्यहीन के योजना बनाना, बिना गन्तव्य के गाड़ी चलाने जैसा है। समय के साथ देखा जाए तो यहां योजना के दो उद्देश्य हैं। पहला अल्पावधि उद्देश्य एवं दूसरे दीर्घावधि उद्देश्य । अल्पावधि उद्देश्य प्रत्येक योजना में अलग–अलग हो सकते हैं, अर्थव्यवस्था से संबंधित कोई तात्कालिक समस्या पर आधारित भी हो सकते हैं। जबकि दीर्घावधि योजनाएं सदैव दीर्घकालिक उद्देश्यों हेतु प्रेरित होती है।

भारत में आर्थिक योजनाओं के मुख्य उद्देश्यों का निम्नानुसार संक्षिप्तीकरण किया जा सकता है –

(अ) बहुतायत में जीवन स्तर को सुधारने की दृष्टि से, उच्च आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त करना ।
(ब) विभिन्न वर्गों में व्याप्त आर्थिक असमानता को कम करना।
(स) पूर्णतः रोजगार प्राप्त करना।
(द) आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करना।
(य) विभिन्न क्षेत्रों का आधुनिकीकरण करना।
(र) अर्थव्यवस्था में व्याप्त असंतुलन को समाप्त करना।
(ल) आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करना।
(व) सामाजिक न्याय प्रदान करना।
(त) अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण
(ध) आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना।

कुछ मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा नीचे की गयी है:

(i) **उच्च वृद्धि दर** : समस्त भारतीय पाँचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक रूप से आर्थिक वृद्धि को महत्व दिया गया जबकि कुछ पंचवर्षीय योजनाओं में कुछ अन्य उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाला गया। ब्रिटिश शासन के दौरान, भारतीय अर्थ व्यवस्था गतिहीन थी। व्यक्ति अधम गरीबी में जीवनयापन कर रहे थे। ब्रिटिश के लोगों ने ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के उद्देश्य से औपनिवेशिक प्रशासन के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण किया। परिणामतः यूरोपियन उद्योग निखरने लगे और भारतीय अर्थव्यवस्था को गरीबी के घोड़े ने जकड़ लिया । उस समय व्याप्त गरीबी ही सबसे प्रमुख समस्या थी। स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से गरीबी से संबंधित मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक समझा गया। भारत में आर्थिक योजनाएं बनाने का काल वर्ष 1951 से प्रारंभ हुआ, प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 से 1956 तक कार्यान्वित थी, जिसका लक्ष्य था

राष्ट्रीय आय में 2.1 प्रतिशत तक वार्षिक वृद्धि प्राप्त करना। योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि दर 8.2 प्रतिशत तक वास्तविक रूप से प्राप्त की गयी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1956 से 1961 था जिसका लक्ष्य था राष्ट्रीय आय में 4.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि प्राप्त करना। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ावा देने के साथ–साथ भारी उद्योगों के विकास पर भी ध्यान दिया गया। योजना के अन्तिम पड़ाव पर यह पाया गया था कि राष्ट्रीय आय में 4.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दरें प्रापत की गयी । वार्षिक वृद्धि दर 5.6 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस योजना में कृषि पर ध्यान केन्द्रित किया गया। योजना के अन्त तक यह पाया गया कि राष्ट्रीय आय में 2.6 वार्षिक वृद्धि दर को प्राप्त किया गया जो कि निर्धारित लक्ष्य की अपेक्षा कम था । 1966 से 1969 तक पंचवर्षीय योजनाओं के अतिरिक्त सरकार ने वार्षिक योजनाओं का पुनः तीसरी पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1961 –66 तक था और राष्ट्रीय आय में आकलन किया एवं परिणाम स्वरूप चौथी पंचवर्षीययोजना 1969 में कार्यान्वित की गयी। जिसका कार्यकाल 1969 से 1974 तक था। चतुर्थ योजना में अर्थव्यवस्था की वृद्धि (स्थिरता के साथ पर विशेष जोर दिया गया क्योंकि यह माना गया था कि कृषि उत्पादन में अस्थिरता एवं विदेशी सहायता की अनिश्चितता का असर आर्थिक स्थिरता पर पड़ रहा था। खाद्य उत्पादन का संवर्धन और विदेशी सहायता पर निर्भरता को ध्यान में रखते हुये कृषि उतपादन का भारी संग्रहण किया गया और यह निर्धारित किया गया कि विदेशी सहायता केवल आवश्यक क्षेत्रों में ही प्राप्त की जाए। पांचवी पंचवर्षीय योजना 1974 से 1979 तक के लिये कार्यान्वित की गयी, तथा सकल घरेलू उत्पाद का 4.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये निवेश दर में वृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया जिससे कि उत्पादन के स्तर में भी वृद्धि हो सके। सकल घरेलू उत्पाद में वास्तविक वृद्धि 4.9 प्रतिशत वार्षिक थी। 1980–85 का काल छठवीं पंचवर्षीय योजना के लिये निश्चित किया गया जिसमें सकल घरेलू उत्पाद का वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत निश्चित था। इसी दौरान पूंजीकरण का भंडारण, निवेश दर में वृद्धि, निवेश शैली में जागरूकता, भुगतान संतुलन में नुकसान पर नियंत्रण आदि विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया गया ताकि विदेशी विनिमय संकट का सामना न करना पड़े। वास्तविकता में 5.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त यिका गया जिसका मुख्य कारण था कृषि एवं अन्य सेवा क्षेत्रों का उच्च प्रदर्शन । 1985–90 का समय सातवीं पंचवर्षीय योजना का था, जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर की प्राप्ति का लक्ष्य था और वासतविकता में 3.5 प्रतिशत प्राप्त किया गया । आठवी पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1992–97 तक था जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में 6.7 प्रतिशत वार्षिक दर प्राप्त किया गया । यह वह समय है जब उदारवादी अर्थव्यवस्था क्रियाशील थी एवं योजना और नीति निर्माता बहुत आशावादी थे कि भारतीय अर्थव्यवस्था भविष्य में उच्च वृद्धि दर प्राप्त करेगी। 1997–2002 का काल 7 वीं पंचवर्षीय योजना के लिये निर्धारित हुआ, जिसमें सकल घरेलू उत्पाद का वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत वार्षिक निर्धारित किया गया, ठीक इसके विपरीत 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्रापत की गयी, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उदारवाद के प्रभाव से भी अपेक्षित उन्नति के परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। कृषि उत्पादन में कमी, औद्योगिक क्षेत्रों के द्वारा घटिया प्रदर्शन यिका जाना, तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था का धीमा होना ही घटिया प्रदर्शन का कारण रहा।

दसवीं पंचवर्षीययोजना 2002 से 2007 की समय–सीमा तक थी जिसका वार्षिक औसत वृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद का 8 प्रतिशत रखा गया और वास्तविक रूप से 7.9 प्रतिशत प्राप्त हुआ। 2007 से 2011 तक ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तैयार की गयी जिसकी वृद्धि दर प्रतिशत यह सोचकर रखी गयी कि 2007–8 में 9.3 प्रतिशत आर्थिक वृद्धि दर रही और 2009–10 में यह आंकड़ा 8.6 प्रतिशत रहा। यद्यपि योजना के अन्त तक वास्तविक रूप से 7.9 प्रतिशत, वृद्धिदर प्राप्त की गई । 2011–15 तक बारहवीं पंचवर्षीय योजना तैयार की गयी जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर 5 प्रतिशत 2012–13 में प्राप्त की गयी जो कि अब तक की सबसे नीची वृद्धि दर थी। यह माना गया कि योजना के पहले तीन दशकों में आर्थिक वृद्धि दर बहुत उत्साहवर्धक नहीं थी, सकल घरेलू उत्पाद की औसत वार्षिक वृद्धि दर 3.73 प्रतिशत थी जबकि जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत थी। अतः प्रतिव्यक्ति आय केवल 1 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ी । छठी योजना`स लेकर अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। छटी, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं योजना के दौरान वृद्धि दर क्रमशः 5.4 प्रतिशत , 5.5 प्रतिशत, 6.7 प्रतिशत, 5.5 प्रतिशत, 7.8 प्रतिशत और 7.9 प्रतिशत थी। इस उच्च वृद्धि दर को भारतीय योजना की महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया।

(ii) **आर्थिक आत्म निर्भरता** :–तीसरी पंचवर्षीय योजना से यह मान लिया गया था कि विदेशी सहायता पर निर्भरता कम से कम रखी जाये। जैसा कि योजना के प्रारंभिक काल में भारत को अपने घरेलू मांग की पूर्ति हेतु अनाज आयात करना पड़ता था। इसी तरह, देश को मुख्य वस्तुए भारी मशीनरी एवं तकनीकी के रूप में आयात करनी पड़ीा थी, किसी तरह का कोई विकल्प ही नहीं था, बल्कि कुछ मूलभूत सुविधाओं जैसे– सड़क, बिजली आदि में सुधार लाने के लिये विदेशी सहायता के निवेश पर ही आश्रित थे। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुये, योजना बनाने वालों एवं नीति निर्धारकों ने तीसरी योजना से आत्म निर्भरता को मुख्य उद्देश्य के रूप में उल्लेखित किया । चौथी योजना में आत्म निर्भरता पर विशेष जोर दिया गया , विशेषतः अनाज के उत्पादन करने में इस पर बहुत जोर दिया गया। पांचवी योजना का मुख्य उद्देश्य था निर्यात के द्वारा समुचित विदेशी विनिमय प्राप्त करना। इस बात का साक्ष्य है कि पांचवीं योजना के अन्त तक, भारतीय अनाज उत्पादन के क्षेत्र में आत्म निर्भर हो गये थे। 1999–2000 में, भारत का खाद्यान्न उत्पादन 205.91 मिलियन टन तक पहुंच गया था। भारत के पास मजूबत पूंजी उद्योग थे जो आधारभूत ढाँचे पर आधारित थे। इसके साथ ही, विज्ञान और तकनीक के मामले में भी देश की उपलब्धियाँ कुछ कम नहीं हैं। योजना में विदेशी सहायता के हिस्से में कटौती करके 28.1 (दूसरी योजना में) प्रतिशत एवं आठवीं योजना में यह घटकर 5.5 प्रतिशत ही रह गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम पदार्थों में मूल्यवृद्धि के कारण भुगतान में संतुलन स्थापित करना कठिन हो गया जिसने चीजों को और दुरूह बना दिया।

(iii) **सामाजिक न्याय** – प्रारंभ में बहुत से देश जैसे भारत जो कि विकासशील देशों के समूह में गिना जाता था, का यह मत कि गरीबी उन्मूलन का समाधान आर्थिक उन्नति में वृद्धि कर ही किया जा सकता है, किन्तु विभिन्न तीसरे देशों के अनुभव से यह ज्ञात हुआ कि सामाजिक समस्याओं के गरीबी, बेरोजगारी आदि का शत–प्रतिशत समाधान आर्थिक उन्नति ही नहीं है। बाजारों ने अर्थव्यवस्था विस्तार पर जोर डाला जो कि कभी कभी

आर्थिक शक्ति की एकाग्रता को बढ़ावा देती थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक उन्नति के लाभ विकास के विभिन्न दिशाओं में बट गये। गरीबी, अज्ञानता, बेरोजगारी जैसी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की आवयकता थी और इसके लिये पृथक योजनाओं की आवश्यकता थी और यह अनुभव किया गया कि सामाजिक न्याय की अवधारणा से संबंधित कार्यक्रमों को भारत की योजनाओं में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

सामाजिक न्याय से तात्पर्य देश के धन एवं आय का समाज के विभिन्न वर्गों में समान वितरण है। भारत में बहुत बड़ी संख्या में लोग गरीब हैं, जबकि कुछ समय वैभवशाली जीवन व्यतीत करते है। अतः सुनियोजित विकास का एक और मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय के द्वारा समाज के निर्धन वर्ग का ध्यान रखना है। पांच वर्षीय योजनाओं ने सामाजिक न्याय के निम्नलिखित पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जो कि इस प्रकार हैः–

(1) देश के राजनीतिक ढाँचे में प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को लागू करना।

(2) सामाजिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना एवं क्षेत्रवाद को समाप्त करना।

(3) आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को समाप्त करना।

(4) पिछले एवं शोषित वर्ग के लोगों की जीवनशैली में सुधार हेतु प्रयास करना।

अतः पाँच वर्षीय योजनाओं का लक्ष्य कमजोर वर्ग जैसे अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोागें की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास करना था। भूमि सम्पत्तियों के वितरण में असमानता को समाप्त करने के लिये भूमि सुधारों को भी स्वीकार किया गया। देश के पिछड़े क्षेत्रों के लिये विभिन्न कार्यक्रमों को स्वीकार किया गया ताकि क्षेत्रीय असमानता में कमी लायी जा सके। किन्तु इतने प्रयासों के बावजूद, असमानता की समस्या आज भी उतनी ही दुरूह है जैसी कि पहले थी। विश्व विकास प्रतिवेदन (1994) के अनुसार भारत में शीर्ष 20 प्रतिशत घराने राष्ट्रीय आय का 39.3 प्रतिशत उपभोग करते हैं जबकि निचले 20 प्रतिशत केवल 9.2 प्रतिशत ही उपयोग करते हैं। इसी तरह अध्ययन बताता है कि ग्रामीण 40 प्रतिशत लोग केवल 1.58 प्रतिशत ही कुल जमीनी संपत्ति रखते हैं जबकि शीर्ष 5.44 प्रतिशत लगभग जमीन के 40 प्रतिशत पर अपना हक रखते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक न्याय प्राप्ति के क्षेत्र में उन्नति संतोषजनक नहीं है।

(iv) **अर्थव्यवस्था आधुनिकीकरण** :– स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हमारी अर्थव्यवस्था पिछड़ी एवं सामंती प्रकृति की थी। अतः नीति निर्माताओं ने स्वतत्रंता प्राप्ति के बाद देश के संस्थागत ढाँचे में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था को आधुनिक करने का प्रयास किया। आधुनिकीकरण के पीछे मुख्य उद्देश्य था उतपादन के समुचित वैज्ञानिक तरीके को अपनाकर लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने का लक्ष्य रखना । तर्क परीक्षण के द्वारा पुराने पिछड़े पारंपरिक विचारों को हटाकर संस्थाओं और ग्रामीण ढांचे में परिवर्तन लाना भी आधुनिकीकरण का उद्देश्य था।

इन परिवर्तनों का लक्ष्य राष्ट्रीय आय में औद्योगिक परिणामों की हिस्सेदारी में बढ़ोत्तरी करना था। साथ ही उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार एवं भारतीय उद्योगों में विविधता लाने का लक्ष्य भी आधुनिकीकरण का उद्देश्य था। साथ ही, बैकिंग एवं गैर बैकिंग वित्तीय संस्थाओं का विस्तार कृषि एवं उद्योगों की उन्नति के लिए करना भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित है। आधुनिक कृषि के अन्तर्गत भूमि सुधारों की परिकल्पना भी सम्मिलित है।

(v) **आर्थिक स्थायित्व :–** आर्थिक स्थायित्व से तात्पर्य बेरोजगारी एवं मुद्रास्फीति पर नियंत्रण से है। दूसरी योजना के बाद, बहुत लंबे समय तक मूल्य दर में वृद्धि रही। अतः योजनाकारों ने मूल्य वृद्धि के स्तर पर नियंत्रण करने के लिये अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास किया। इस ओर किये गये प्रयास बहुत संतोषजनक नहीं रहे।

अतः भारतीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ आत्म निर्भर बनाना एवं गैर मुद्रास्फीति को कायम करना था। ष

4.6 भारतीय पंचवर्षीय याजनाओं की मुख्य विशेषताएं

भारत में योजनाओं को पांचवर्षीय अभ्यास के रूप में शुभारंभ किया गया, अतः योजना पंचवर्षीय योजना के रूप में प्रचलित हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना का शुभारंभ 1 अप्रैल 1951 को होकर 31 मार्च 1956 को समाप्त किया गया। तब से हमने सफलतापूर्वक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा किया एवं बारहवीं योजना मार्च 2015 के अन्त तक पूर्ण होने वाली है। पांचवर्षीय योजनाओं एवं विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान कुछ छोटी वार्षिक योजनाओं ने भी विस्तार लिया। पांचवर्षीय योजनाओं की कुछ मुख्य विशेषताएं है कि हमारा देश विश्व में सबसे बड़ा प्रजातंत्र होने की भांति हमारी योजनाएं भी प्रजातांत्रिक हैं जहां प्रत्येक मौलिक बिन्दु प्रजातांत्रिक रूप से चयनित सरकार एवं विकेन्द्रीकृत योजना के द्वारा पांच वर्षीय योजना से संबंधित रहता है। विकेन्द्रीकृत योजना के अन्तर्गत जिला स्तरीय योजना, उपसंभागीय योजना एवं ब्लॉक स्तर पर योजना के प्रारंभ पर जोर दिया जाता है ताकि ग्राम स्तर तक योजना पहुँच सके। भारतीय योजना की और महत्पूर्ण विशेषता है कि यह केन्द्रीय योजना प्राधिकरण द्वारा निर्देशित होती है जैसे– भारतीय योजना आयोग जिसका काम नियामक तंत्र की भूमिका अदा करना है, और इस हेतु यह आयोग योजना व्यवस्था को आवश्यक दिशा निर्देश देता है एवं नियम बनाता है। भारतीय योजना में केन्द्र एवं राज्य दोनों ही योजनाओं का सह–अस्तित्व है। भारत की पांचवर्षीय योजना की मुख्य विशेषता यह भी है कि प्रत्येक योजना में सार्वजनकि एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों के लिये एक अलग परिणाम निर्धारित होता है एवं इसने पांच वर्षों के काल का एक अलग वार्षिक अवयव के साथ सामयिक योजना को अंगीकार कर लिया है। भारत में पाँचवर्षीय योजनाएँ देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये अपनी प्राथमिकता के आधार पर कार्य कर रही हैं जैसे यह क्षेत्रीय संतुलित विकास को प्रमुखता देते हुये पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करती हैं जो कि विकास का मुख्य उद्देश्य भी है। योजना परिप्रेक्ष्य है, विस्तृत रूप में कार्यक्रम का कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन मशीनरी द्वारा समर्थित है, जो कि संपूर्ण योजना की प्रक्रिया में एक महती भूमिका अदा करती है।यद्यपि पांचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय वृद्धि की भूमिका के विषय में, रोजगार, जनसंख्या, कुछ महत्वपूर्ण सामानों के उत्पादन आदि मामलों के लक्ष्य प्रत्येक योजना में निश्चित रहते हैं, किन्तु अधिकांश मामलों में, इन लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाती है, कुछ अपवादों को छोड़कर निम्नलिखित सारणी योजना व्यय, संसाधन आबंटन , वृद्धि इत्यादि के विषयों को दर्शाती है –

सारणी 4.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना की व्यय योजना

स. क्र.		प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुर्थ योजना	पंचम योजना	छठी योजना	सातवीं योजना	आठवी योजना
1	संपूर्ण वयय (अनुमानित)	3870	7900	11600	24880	53410	158711	34850	871000

अ	सार्वजनिक क्षेत्र	2070	4800	7500	15900	37250	97500	180000	434000
ब	निजी क्षेत्र	1800	3100	4100	8990	16210	61210	168150	437000
2	सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के मध्य व्यय का अनुपात	53.47	61.39	65.35	64.36	69.37	61.39	52.48	50.50
3	सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक व्यय	960	4600	8577	15990	34926	109292	218730	485460

स्त्रोतः योजना आयोग से संकलित भारत योजना खर्च एवं सांख्यिकीय विवरण 1989 एवं अन्य योजना संबंधी दस्तावेज।

सारणी 4.2 वित्त के स्त्रोत : प्रथम सात योजनाएँ

योजनाएं	घरेलू बजट संबंधी स्त्रोत		बाह्य सहायता		घाटे का वित्त पोषण		कुल राशि	
	राशि (रू. करोड़)	:	राशि	:	राशि	:	राशि	
प्रथम योजना	1440	73	190	10	330	17	1960	100
द्वितीय योजना	2560	56	1090	24	950	20	4600	100
तृतीय योजना	5090	59	2390	28	1150	13	8630	100
चतुर्थ योजना	12010	74	2090	13	2060	13	16160	100
पांचवी योजना	82120	32	5830	15	5830	3	39300	100
छठीं योजना	86610	78	8530	8	15680	14	110820	100
सातवीं योजना	148000	522	18000	10	14000	78	180000	100
वास्तविक 1985–86 से 1988– 89 तक	128012	75.7	12413	8.5	26786	15.8	169211	100

स्त्रोत : योजना से संबंधित विभिन्न दस्तावेज, योजना आयोग, भारत सरकार।

सारणी 4.3 नवीं योजना में क्षेत्रीय विकास लक्ष्य

क्रम संख्या	क्षेत्र	लक्ष्य विकास दर
1	कृषि एवं संबंधित क्षेत्र	3.9
2	खनन एवं खदान	7.2
3	विनिर्माण	8.2
4	विद्युत, गैस एवं जल	9.3
5	भवन निर्माण	4.9

6	व्यापार	6.7
7	रेल यातायात	3.9
8	अन्य यातायात	7.4
9	सूचना (संचार)	9.5
10	वित्तीय सेवाएं	9.5
11	लोक प्रशासन	9.9
12	अन्य सेवाएँ	6.6
13	सकल घरेलू उत्पाद की संपूर्ण उन्नति	6.5

सारणी 4.4 नवीं योजना की वित्तीय सहायता

क्रम संख्या	मद	राशि (रूपये करोड़ में)	प्रतिशत
1	संपूर्ण बजट संबंधी सहायता	374000	43.54
2	बजट संबंधी आंतरिक एवं बाह्य संसाधन	290000	33.76
3	राज्य के अधीन आने वाले संसाधन	1,95,000	22.70
	कुल व्यय	859,000	100.00

स्त्रोत : योजना एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय :

सारणी 4.5 विभाग के मुख्य मदों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के अनुमानित व्यय

क्रम संख्या	मद	राशि (रूपये में)	प्रतिशत
1	कृषि एवं उससे संबंधित	37,546	4.4
2	सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	55,439	6.5
3	ग्रामीण विकास	73,439	8.5
4	विशिष्ट कार्यक्रम	3,649	0.4
5	ऊर्जा	2,15,545	25.1
6	उद्योग एवं खनिज	69,973	8.1
7	यातायात	121324	14.1
8	संचार	47616	5.5
9	विज्ञान, तकनीक एवं पर्यावरण	25,529	3.0
10	सामान्य एवं आर्थिक सेवाएं	26,978	3.1
11	सामाजिक सेवाएं	1,82,005	21.2
12	कुल व्यय	8,59,200	100.00

स्रोत : योजना आयोग, नवीं योजना (1997–2002) 1 फरवरी, 1999

सारणी 4.6 क्षेत्र संबंधी वृद्धि अनुपात एवं वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात

क्र.सं.	मद	नवीं योजना		दसवी योजना	
		वृद्धि दर (प्रतिशत)	वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात	वृद्धि दर (प्रतिशत)	आई.सी.ओ. आर. प्रतिशत
1	कृषि एवं उससे संबंधित सेवाएं	2.06	4.05	3.97	1.99
2	खनन एवं खदान	3.81	5.44	4.30	7.99
3	विनिर्माण	3.68	18.37	9.82	7.77
4	विद्युत, गैस एवं जल आपूर्ति	6.45	15.43	7.99	14.97
5	भवन निर्माण	5.86	1.09	9.44	0.91
6	व्यापार	4.70	9.87	5.40	14.66
7	रेल यातायात	5.63	6.09	7.54	5.37
8	अन्य यातायात	17.14	5.28	15.00	8.33
9	संचार	8.93	1.35	11.69	1.56
10	वित्तीय सेवाएं	9.2	4.09	6.43	5.45
11	लोक प्रशासन	8.19	3.70	9.26	0.53
12	अन्य सेवाएं	5.35	4.53	7.93	3.5

स्त्रोत : दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002–2007

सारणी 4.7 दसवीं योजना 2002–07 के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र का समग्र वित्तपोषण तरीका

क्र. सं.	संसाधन	केन्द्र व्यवस्थापिका के अतिरिक्त	राज्य व्यवस्थापिका के साथ	कुल
1	चालू राजस्व से तुलना	–6,385	26578	20193 (1.27)
2	सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधन	545,556	82684	398240(37.5)
3	ऋण (एम.सी.आर.एम. अन्य दायित्व सहित)	685185	261482	946667 (59.4)
4	कुल संसाधन	1221556	370744	1592300 (100. 00)
5	राज्य द्वारा बनायी गयी योजना को सहायता एवं व्यवस्थापिका से	–3,00,256	300265	–
6	सार्वजनिक क्षेत्र की योजना हेतु संसाधन	921,291	6,71009	1592300 (100. 00)

स्त्रोत : योजना आयोग आर्थिक सर्वेक्षण 2002–2003 पृष्ठ क्र.–5–46

सारणी 4.8 विकास कार्यों के लिये दसवीं योजना के अन्तर्गत व्यय : केन्द्र,राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेश (2002–2007)

क्र. सं.	विभागों के नाम	राशि	प्रतिशत वितरण

1	कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियाँ	589333.0	3.4
2	ग्रामीण विकास	121928.0	8.0
3	विशिष्ट क्षेत्र हेतु कार्यक्रम	20,879.0	1.4
4	सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	103315.0	6.8
5	ऊर्जा बिजली पेट्रोल कोयला एवं पत्थर कोयला गैर पारंपरिक ऊर्जा	403927.00 । । । ।	26.5 छ। छ। छ। छ।
6	उद्योग एवं खनिज (खनिज उद्योग) (अ) ग्रामीण एवं लघु उद्योग (ब) अन्य उद्योग	58939.00 । ।	3.9 छ। छ।
7	यातायात (अ) रेल्वे (ब) अन्य	2251977.0 । ।	14.8 छ। छ।
8	संचार	98,968.0	6.5
9	विज्ञान, तकनीक एवं ऊर्जा	30424.0	6.5
10	सामान्य आर्थिक सेवाएं	38630.0	2.5
11	सामाजिक सेवाएं (अ) शिक्षा (ब) चिकित्सा एवं लोक स्वास्थ्य (स) परिवार कल्याण (द) आवास (य) शहरी विकास (र) अन्य सामाजिक सेवाएं	347391.0 । । । । । ।	22.8 छ। छ। छ। छ। छ। छ। छ।
12	सामान्य सेवाएं	16,328.0	1.1
13	कुल (1 से 12) (अ) केन्द्रीय योजना (ब) राज्य योजनाएं (स) केन्द्र शासित प्रदेश भी योजनाएं	1525639.0 893183.0 632456.0 छ।	100 58.5 41.5 छ।

स्त्रोत : योजना आयोग और आर्थिक सर्वेक्षण 2002–03 पृष्ठ 5–44

सारणी 4.9 ग्यारहवीं योजना के लिये समष्टि अर्थशास्त्र के संकेतक

क्र. संख्या	दर	दसवीं योजना	ग्यारहवीं योजना
1	सकल घेरलू उत्पाद वृद्धि दर : (अ) कृषि (ब) उद्योग धंधे	7.2 9.0 27.8	9.0 4.1 10.5

	(स) सेवाओं	3.0	9.9
2	निवेश दर (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत) (अ) सार्वजनिक (लोक) (ब) निजी	27.8 6.7 21.1	35.1 10.2 24.9
3	घेरलू बचत दर (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत) (अ) (ब) निगम (स) पी.एस.ई. (द) सरकार	28.2 22.8 4.5 4.2 –3.2	32.3 22.0 6.1 3.0 1.2
4	चालू वित्त तुलना सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत	0.2	2.8
5	सरकारी राजस्व तुलना सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत	4.4ा	0.2
6	सरकारी राजकोषीय तुलना सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत	8.0	6.0

स्त्रोतः ग्यारहवीं योजना दिसंबर 2006

सारणी 4.10 केन्द्र, राज्य एवं संघ के विकास की मदों पर होने वाले व्यय : ग्यारहवीं योजना

क्र. संख्या	विकास के मद	ग्यारहवीं योजना 2006–07 राशि (रू. में)	–012 का प्रतिशात की दर पर विवरण
1.	कृषि एवं संबंधित गतिविधियाँ	136381	3.7
2	ग्रामीण विकास	301089	8.3
3	विशिष्ट क्षेत्र हेतु कार्यक्रम	26329	0.7
4	सिंचाई बाढ़ नियंत्रण	210326	5.8
5	ऊर्जा	854123	23.4
6	खनिज उद्योग	153600	4.2
7	यातायात	572442	15.7
8	संचार	95380	2.6
9	विज्ञान तकनीक एवं पर्यावरण	87,933	2.4
10	सामान्य आर्थिक सेवाएं	62,523	1.7
11	सामाजिक सेवाएं	1,11,02,327	30.2
12	सामान्य सेवाएं	42,283	1.2
13	कुल (1 से 12) (अ) केन्द्रीय योजना (ब) राज्य एवं केन्द्र शासित योजनाएं	36,44,718 21,56,571 14,88,147	100.0 59.2 40.8

स्त्रोतः (अ) ग्यारहवीं योजना विस्तृत क्षेत्र की दृष्टि से बनायी गयी थी।
(ब) केन्द्र शासित योजनाएं राज्य योजना के अन्तर्गत सम्मिलित है।

4.7 भारत में लागू योजनाओं की उपलब्धियाँ

वृद्धि कारक प्रक्रिया का शुभारंभ :–

प्रथम पंचवर्षीय योजनाएं राष्ट्रीय आय 2.1 प्रतिशत वार्षिक एवं 0.9 प्रतिशत प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर से प्रस्तावित थीं जिसके विपरीत राष्ट्रीय आय 4.2 प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति आय 2.4 प्रतिशत प्राप्त किया गया था। द्वितीय योजना में राष्ट्रीय आय 4.5 प्रतिशत यौगिक दर एवं प्रतिव्यक्ति आय 3.3 प्रतिशत बढ़ोत्तरी के साथ प्रस्तावित थी, जबकि वार्षिक वृद्धि दर 4.2 प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति आय 2.2 प्रतिशत प्राप्त किया गया था। तीसरी योजना में राष्ट्रीय आय में 5.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य था एवं प्रतिव्यक्ति आय में 2.6 प्रतिशत वार्षिक लक्ष्य था। चौथी योजना के अन्तर्गत सकल घरेलू उत्पाद में वार्षिक वृद्धि दर 5.7 प्रतिशत निश्चित था, जबकि राष्ट्रीय आय के संदर्भ में 3.2 प्रतिशत प्राप्त हुयी थी। पाँचवी योजना का लक्ष्य 4.37 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर था, जबकि 4.9 वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त किया गया था। छठी योजना में प्रदर्शन संतोषजनक नहीं था एवं सातवीं योजना में राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत वृद्धि दर्शायी गयी थी। आठावीं योजना में वृद्धि दर 6.7 प्रतिशत एवं प्रतिव्यक्ति आय 4.6 प्रतिशत पंजीयत थी। नवीं योजना के दौरान राष्ट्रीय आय का वृद्धि दर वार्षिक 5.5 प्रतिशत जबकि दसवीं योजना राष्ट्रीय आय की असाधारण वृद्धि दर 7.5 प्रतिशत पंजीकृत थी एवं प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर 5.9 प्रतिशत थी, साथ ही सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि 7.9 प्रतिशत वार्षिक एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर 7.8 प्रतिशत वार्षिक थी। 1950–51 से 2011–12 तक समस्त योजनाओं से प्राप्त उपलब्धियों के आधार पर राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि दर 4.7 प्रतिशत एवं प्रतिव्यक्ति आय 2.7 प्रतिशत वार्षिक थी।

संरचनात्मक विकास :भारत में प्रचलित योजनाओं से प्राप्त उपलब्धियों के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन योजनाओं ने भारत में प्रत्येक क्षेत्र के लिये एक ठोस आधार तैयार किया विशेष रूप से सिंचाई, यातायात , रेल्वे, बिजली एवं ऊर्जा, सुरक्षा एवं अन्य क्षेत्रों के लिये भी आधारभूत स्तंभ तैयार किया उनमें से कुछ उदाहरण है कि मार्च 2011 को भारतीय रेल के पास 7.025 रेल्वे स्टेशन, 64460 किलोमीटर की रेल्वे मार्ग सहित उपलब्ध थे साथ ही 43 प्रतिशत रेल मार्ग बिजली ,ारा चलित थीं। जहां तक भारतीय रेल मार्ग की लंबाई का संबधं है, यह विश्व में चौथा सबसे लंबा रेल मार्ग था, पहले तीन अमेरिका, रूस एवं चीन थे। 11.32 करोड हेक्टेयर सिंचाई के लिये निर्धारित था। इसी प्रकार सड़क एवं बिजली के क्षेत्रों में सराहनीय सुधार किये गये। बिजली उत्पादन क्षमता 2,09,276 मेगावाट थी जो कि 1970–71 में 55.8 बिलियन किलोवाट से बढ़कर 2011–12 में 923.2 बिलियन किलोवाट हो गयी। जहाँ तक सड़कों का संबंध है वर्तमान में भारत में सड़कों का तंत्रजाल 41 लाख किलोमीटर था, वर्तमान में बहुत बड़ा क्षेत्र सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार, वर्तमान में 14,500 किलो मीटर जलमार्ग भारत में उपलब्ध है। बारह बड़े बन्दरगाह एवं दो सौ अन्य बन्दरगाह भारतीय समुद्रीरेखा के साथ स्थापित हुये हैं। इस दौरान वायु यातायात ने भी अपना स्थान बनाते हुये तीव गति से बढ़त ली। दूस संचार के क्षेत्र में भारत क्रांतिकारी बदलाव का साक्षी है, भारत में 2004 में 76.54 मिलियन टेलीफोन थे जो कि 2012 में बढ़कर 935.18 मिलियन हो गये। इसके अलावा, 2004 में मोबाइल धारकों की संख्या 35.62 मिलियन थी 2012 में बढ़कर 904.23 मिलियन हो गयी।

पूंजीगत माल का विकास :– सवतंत्रता के समय, भारत का औद्योगिक ढाँचा नगण्य था, इंजीनियरिंग एवं मशीनरी उद्योग पूर्णतः अस्तित्व में नहीं थे। पंचवर्षीय योजनाओं में भारी मशीनरी, मशीन यन्त्र उद्योग, बिजली, यांत्रिकी, यातायात संबंधी उद्योग लोहा एवं इस्पात आदि उद्योगों को स्थापित करने को प्राथमिकता प्रदान की गयी। परिणामस्वरूप भारत में न केवल विनिर्माण कारी सभी प्रकार के उद्योग उपलब्ध हैं बल्कि अपनी आवश्यकताओं के अलावा निर्यात करने की क्षमता भी भारत के पास है। 2011 के सर्वेक्षण के अनुसार भारत विश्व में चौथा सबसे बड़ा कच्चा इस्पात विनिर्माण देश है, इस उद्योग में 90,000 करोड़ रूपये का परिव्यय है एवं यह उद्योग लगभग पाँच लाख लोगों को रोजगार प्रदान करता है। पटसन उद्योग, वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, मशीन यंत्र उद्योग, सीमेन्ट उद्योग आदि योजनाकाल के दौरान ही विकसित हुये।

कृषि एवं हरित क्रांति संस्थागत सुधार :– प्रथमतः कृषि के अन्तर्गत भूमि सुधार को सम्मिलित किया गया, द्वितीय, 1966 तक कृषि के तकनीकी उन्नति पर ज़ोर दिया गया । जिसका समापन हरित क्रांति से हुआ। 2006–07 में कृषि विकास दर 4 प्रतिशत थी।

सामाजिक ढाँचे का विकासः–योजनाओं के दौरान, देश में सुविधाएं परिवार नियोजन आदि सेवाओं का विकास हुआ।

नियोजन :–पहली योजना में स्वास्थ्य संबंधी विकृत लोगों को, दूसरी योजना में सौ लाख व्यक्तियों को एवं तीसरी योजना में 145 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया गया। चौथी योजना में 180 लाख व्यक्तियों को एवं पाँचवी योजना में 190 लाख व्यक्तियों को नौकरी का अवसर मिला। सातवीं एवं आठवी योजना के दौरान 340 लाख एवं 398 लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध हुआ, नवीं योजना के अन्त तक 34.4 करोड़ लोगों का रोजगार के अवसर मिले। 2006–07 के अन्त तक 38.4 लोगों को रोजगार मिला। नवीं योजना के अन्त तक यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 40.3 करोड़ व्यक्तियों को रोजागर का लाभ मिला।

आधुनिकीकरण :– योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन इस तथ्य का परीक्षण करने हेतु हये कि अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य आधुनिकीकरण है।

आत्म निर्भरता एवं आत्म पर्याप्तताः– योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान आत्म निर्भरता के मामले में निश्चित सफलता अर्जित की। तीसरी योजना में बाहरी सहायता का अनुपात 12.8 प्रतिशत था। छटी योजना में यह घटकर 10 प्रतिशत रह गया। 1948 में विश्व व्यापार में भारतीय निर्यात का हिस्सा 2.2 प्रतिशत था जो घटकर 1983 में 0.5 प्रतिशत रह गया। 2005–06 में आयात के वृद्धि दर 1 प्रतिशत थी, दूसरी योजना में 27 प्रतिशत, तीसरी योजना में 38 प्रतिशत, छठी योजना में 14 प्रतिशत एवं सातवीं योजना में 16 प्रतिशत थी। आठवीं योजना में आयात वृद्धि दर 17 प्रतिशत थी। 2005–06 में यह प्रतिशत बढ़कर 20.9 प्रतिशत हो गया। भारत में 3 बड़े स्तर पर आयात स्थानापन्न उपलब्ध है।

4.8 भारत में योजनाओं की असफलता एवं पंचवर्षीय योजनाओं के दोष

भारतीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों का जीवन स्तर सुदृढ़ करना, औद्योगिक एवं कृषि उत्पादन में आत्म निर्भरता लाना, धन एवं आय में असमानता को समाप्त करना एवं समाजवादी समाज की स्थापना करना था। योजनाकाल के दौरान प्राप्त उपलब्धियों का अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि योजनाएं अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल रहीं । भारतीय योजनाओं के असफल होने के निम्नलिखित कारण हैः–

1 लोगों के जीवन स्तर में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई।

2. माल (साामन) आवश्यक वस्तुओं की कीमत में निरंतर वद्धि।
3 बेरोजगारी में वृद्धि विशेषतः ग्रामीण क्षेत्र के रोजगार में ।
4. विशेष रूप से औद्योगिक मामलों में, उत्पादन में कमी।
5. अपर्याप्त संरचनात्मक विकास।
6. आय एवं धन के वितरण में असमानता, फलस्वरूप असमानता के कारण दूरी बढ़ना।
7. अकुशल प्रशासन एवं सुशासन की कमी।
8. प्रशासकीय सुधारों को लागू करने के लिये मजबूत नींव (आधार) की कमी।
9 योजना प्रक्रिया से बहुत अधिक अपेक्षाएं।
10 बचत एवं निवेश में विरोधाभास ।

4.9 सारांश

योजना को समस्त आर्थिक बीमारियों के रामबाण के रूप में माना गया । देश का आर्थिक विकास काफी कुछ आर्थिक योजनाओं से जुड़ा रहता है। यद्यपि योजना का विचार 2400 साल पुराना है और प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो' ने अपनी कृति 'रिपब्लिक' में इसे स्थान दिया था, किन्तु इसी विचार ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पुर्नस्थापना एवं पुनः संरचना के लिये एक व्यवस्थित आधार लिया, जिससे कि अविकसित अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास तीव्रतम गति से हो सका। अतः विकासशील देशों के लिये योजनाओं का क्रियान्वयन प्रगति की अनिवार्य शर्त हो गयी।

योजना, किसी भी आर्थिक गतिविधि से संबंधित कार्ययोजना को आगे बढ़ाने हेतु विनिश्चित व्यवस्था की समग्रता है। योजना को दो तत्वों के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है, (अ) एक ऐसी कार्य योजना जिसका अन्त तब होता है जब कोई उसे प्राप्त करने के लिये प्रस्तावित करता है (ब) एवं उस हेतु व्यवस्थाओं को निश्चित करना, ताकि पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके, जोकि साधनों के पुनः विनिश्चीकरण को ओर इंगित करता है। उत्पादन, आबंटन या वितरण निवेश आदि विभिन्न प्रकार की योजनाएं हो सकती हैं जिन्हें आंशिक योजना माना जा सकता है, किन्तु संपूर्ण अर्थों में, आर्थिक योजना वह योजना है जो संपूर्ण आर्थिक जीवन या अर्थव्यवस्था की संपूर्ण गतिविधि के विषय में चर्चा करती है। आर्थिक योजना की अवधारणा के विषय में अर्थशास्त्रियों के मध्य किसी भी प्रकार की अस्पष्टता नहीं है।

अतः विस्तृत अर्थों में एवं निश्चित समय सीमा के अन्दर स्वयं परिभाषित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये संगठित एवं प्रयासों में समन्वय ही आर्थिक योजना है।

4.10 शब्दावली

आर्थिक स्थायित्वः समष्टि अर्थशास्त्र में अत्यधिक उतर चढ़ाव की अनुपस्थिति को संदर्भित करता है।

आर्थिक आत्म निर्भरता : इससे तात्पर्य है मौलिक अवश्यकताओं जैसे खाना, कपड़ा ओर मकान की पूर्ति हेतु होने वाली आय की राशि।

4.11 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1 निश्चित उद्देश्य एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये केन्द्रीय प्राधिकारी द्वारा विभिन्न आर्थिक गतिविधियों प्रारंभ नियंत्रण एवं विनियमन की क्रमबद्ध व्यवस्था ——— है।
2 राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना —————— को हुई।
3 बिना किसी ——————योजना बिना गंतव्य के गाड़ी चलाने जैसा है।

4 ———————— भारतीय योजना की केन्द्रीय योजना प्राधिकारी है।

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) योजना (2) 6 अगस्त 1952 (3) उद्देश्य (4) भारतीय योजना आयोग

4.13 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक योजना का अर्थ समझाइये एवं परिभाषित कीजिए तथा योजना के विभिन्न निहितार्थों की व्याख्या कीजिए।
2 योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की योजना की विशेषताओं को समझाइये ।
3 आर्थिक सुधारों के पश्चात् भारत में योजना के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
4 ऐसे कौन से क्षेत्र है जहां योजना के अन्तर्गत चाही गयी सफलता दर को प्राप्त करने में असफल रहे ? उन कारणों की व्याख्या कीजिए।
5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की योजनओं के उद्देश्यों का विवरण दीजिए।
6. भारत की योजनाओं से प्राप्त उपलब्धियों की विस्तार में चर्चा कीजिए।
7 भारत में कार्यान्वित योजनाओं की मुख्य विशेषताओं को सूचीबद्ध कीजिए।

4.14 संदर्भ पुस्तकें

1 चन्द्रशेखर, सी.वी. आस्पैक्ट्स ऑफ ग्रोथ एंड स्ट्रक्चरल चेंज इन इंडियन इकोनामी, इकोनॉमी एण्ड पालिटिकल वीकली स्पेशल नंबर, नवंबर, 1998

2 दास गुप्ता, अजित के. एग्रीकल्चर एंड इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन इंडिया, न्यू दिल्ली, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, 1993

3 भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण (वार्षिक)

4 देसाई, अशोक, वी, टेक्नोलॉजी एब्जरपशन इन इंडियन इंडस्ट्री, न्यू दिल्ली विली ईस्टर्न, 1998

5 इंडियन इकोनॉमिक रिव्यू (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स)

6 इंडियन इकोनॉमिक जर्नल (इंडिया इकोनॉमिक एसोसियेशन)

7 खातेकेत, डीन, नेशनल इकोनॉमिक पालिसी इन इंडिया। साल्वेटर डेमोनिक एड. हैण्डबुक, ऑफ कम्पैरेटिव इकोनॉमिक पालिसीज, वाल्युम–1, नेशनल इकोनॉमिक पालिसीज, ग्रीनवुड प्रेस पृष्ठ 231–75, 1991

8 राजकुमार सेन एंड विश्वजीत, चटर्जी इंडियन इकोनॉमी एजेंडा फॉर द ट्वेन्टी फर्स्ट सेन्चुरी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन न्यू दिल्ली, 2002

9 ए.एन. अग्रवाल, इंडियान इकोनॉमी, प्राब्लम्स ऑफ डेवलपमेन्ट् एण्ड प्लानिंग विली ईस्टर्न लिमिटेड, न्यू दिल्ली, 2002

10 योजना आयोग, पांचवर्षीय योजना ।

11 भल्ला, जी.एस. इकोनॉमिक लिबरलाइजेशन एण्ड इंडियन एग्रीकल्चर, इंस्टीट्यूशन फॉर स्टडीज इन इंडस्ट्रियल डेवलपमेन्ट, न्यू दिल्ली, 1994

12 लाल, संजय, टैक्नालाजी डेवलपमेन्ट एण्ड एक्सपोर्ट परफारमेन्स इन एल.डी.सी., लीडिंग इंजीनियरिंग एण्ड कैमिकल फर्म्स इन इंडिया । रिव्यू ऑफ वर्ल्ड इकोनॉमिक्स, वाल्युम 122(1) पृष्ठ 80, 1996

———

इकाई 5 नवीन आर्थिक सुधार संरचना

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 आर्थिक सुधार : आवश्यकता, उद्देश्य एवं तर्क
5.3 आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताएं
5.4 भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्य आर्थिक सुधार
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 बोध प्रश्न
5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.9 स्वपरख प्रश्न
5.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नये आर्थिक सुधारों की आवश्यकता, उद्देश्यों एवं तर्को की व्याख्या कर सकें।
- आर्थिक सुधारों के मुख्य बिन्दुओं एवं महत्व की व्याख्या कर सकें।
- आर्थिक सुधारों की भूमिका की विवेचना कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

1991 से भारत सरकार ने देश को आर्थिक संकट से उबारने एवं वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी के लिये विभिन्न आर्थिक सुधारों को लागू किया। इन सुधारों ने औद्योगीकरण हेतु अनुज्ञप्ति प्रदान करने की अपेक्षा उदारीकरण की नीतियों पर अधिक ज़ोर दिया। नियंत्रित निवेश के स्थान पर निजीकरण की नीति अपनायी गयी। आयात –निर्यात की अनुशंसाा के स्थान पर भूमंडलीकरण की नीति अपनायी गयी। इन सब सुधारों की अक्सर नयी आर्थिक नीति या एल.पी.जी की नीति के रूप में चर्चा की जाती है, जिसका तात्पर्य है, उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीयकरण। नयी नीति उन सभी आर्थिक सुधारों की व्याख्या करती है जिनका लक्ष्य अर्थव्यवस्था को अधिक कुशल प्रतिस्पर्धी एवं विकसित बनाना है।

5.2 आर्थिक सुधार : आवश्यकता, उद्देश्य एवं तर्क

1991 से पहले, गैर सरकारी एव सरकारी खर्चों के निरंतर वृद्धि के चलते राजकोषीय घाटे में बढ़ोत्तरी हो गयी। 1981–82 वें वर्ष में सकल घरेलू उत्पाद 5.4 प्रतिशत था किन्तु 1991–92 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 7.8 प्रतिशत तक बढ़ गया। राजकोषीय घाटे को कम करने के लिये, सरकार ने राजकोषीय असंतुलन की जाँच के लिये कुछ बड़े सुधारात्मक कदम उठाये, जैसे 1991–92 में समस्त मंत्रियों /विभागों के लिये स्वीकृत बजट के द्वारा व्यय के प्रावधानों में 5 प्रतिशत तक कटौती लागू की। इन उपायों से 1990–91 में राष्ट्रीय सकल उत्पाद का राजकोषीय घाटा घटकर 5.6 प्रतिशत रह गया, 1992–93 में यह आंकड़ा 5.3 प्रतिशत तक बढ़ गया। यद्यपि 1996–97 में राजकोषीय घाटा 4.8 प्रतिशत तक गिर गया, 1997–98 में बढ़कर 5.8 प्रतिशत हो गया, 1998–99 में 6.5 प्रतिशत एवं 2001–02 में सकल घरेलू उत्पाद का 6.2 प्रतिशत तक पहुंच गया। 2002–03 में

राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 5.9 रह गया, 2003–04 में 4.5 प्रतिशत 2004–05 में 3.9 प्रतिशत 2008–09 में 6 प्रतिशत 2009–10 में 6.5 प्रतिशत, 2010–11 में 4.9 प्रतिशत एवं 2011–12 में 5.7 प्रतिश्त रहा। राजकोषीय घाटा बढ़ते रहने के कारण सार्वजनिक ऋण एवं ब्याज के भुगतान में भी लगातार वृद्धि होती रही । 1980–81 में सार्वजनिक ऋण पर ब्याज का भुगतान समस्त सरकारी व्यय का 10 प्रतिशत था। 1991 में यह ब्याज का भुगतान बढ़कर समस्त सरकारी व्यय का 36.4 हो गया । 1991–92 में केन्द्र सरकार के ब्याज की भुगतान राशि 26,596 करोड़ से बढ़कर 1996–97 में 59,478 करोड़ रूपये हो गयी एवं 2011–12 में 2,75618 करोड़ रूपये तक पहुंच गयी। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं जैसे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि ने सरकार की राजकोषीय स्थिति से अपना विश्वास खाो दिया। राजकोषीय घाटे को कम करने हेतु सरकार द्वारा विशेष प्रयास करना आवश्यक हो गया।

वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात के भुगतान के लिये भारत को विदेशी विनिमय की आवश्यकता थी। विदेशी विनिमय का मुख्य स्रोत निर्यात था। भारत में विदेशी विनिमय का दूसरा स्रोत विदेशों में रहने वाले अप्रवासी भारतीयों द्वारा भेजा जाने वाला धन एवं उनके द्वारा भारत में किया जाने वाला निवेश है। जब विदेशी विनिमय भुगतान की अपेक्षा कम हो या सकल आयात की कीमत सकल निर्यात से अधिक हो तब भुगतान के संतुलन की समस्या उत्पन्न होती है। यद्यपि सरकार ने निर्यात संवर्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्यातकों के लिये विभिन्न प्रकार की प्रोत्साहन राशि एवं रियायते दी है । निर्यात वांछित हद तक वृद्धि नहीं कर सका। 1980–81 में भुगतान के संतुलन का घाटा 2. 214 करोड़ रूपये था जो 1990–91 में बढ़कर 17,367 करोड़ रूपये हो गया। इस असंतुलित भुगतान की समस्या से उबरने के लिये आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस हुई। 2011–12 की भारतीय रिजर्ब बैंक की भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय हैण्डबुक के अनुसार, 1993 से 2011–12 तक की भारत की व्यापार की भुगतान की स्थिति इस प्रकार हैः–

अमेरिका + मिलियन

वर्ष	व्यापार संतुलन
1993–94	– 4056
1994–95	–9049
1995–96	–11360
1996–97	–14815
1997–98	– 15507
1998–99	–13246
1999–2000	–17841
2000–01	–12460
2001–02	–11574
2002–03	–10690
2003–04	–13718
2004–05	–33702
2005–06	–51904
2006–07	–61782

2007–08	–91467
2009–10	–118202
2010–11	–130593
2011–12	–189759

1990–91 में इराक युद्ध के कारण पेट्रोल की कीमत बढ़ गयी पेट्रोलियम पदार्थों की कीमत में वृद्धि के कारण भुगतान के संतुलन पर दबाव आ गया। भारत को विदेशी विनिमय में बड़ी मात्रा में खाड़ी देशों से रियायतें प्राप्त हुयीं और अचानक सब बन्द हो गयीं। खाड़ी देशों के इस संकट के कारण भुगतान संतुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

1990–91 में भारत की मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 10.3 प्रतिशत तक बढ़ गयी । वर्ष 1990–91 में लगातार तीन वर्षों तक अच्छे मानसून के रहते हुये भी अनाज की कीमतों में वृद्धि होती रही । मुद्रास्फीति के बढ़ते दबाव के कारण देश की आर्थिक स्थिति पुनः बिगड़ने लगी। अतः सरकार को नयी आर्थिक नीति एवं सुधार लाने की आवश्यकता का एहसास हुआ।

भारतीय विदेशी विनिमय की बचत इतनी गिर गयी कि 1990–91 में दस दिनों में आयात का बिल भुगतान करने के लिये भी राशि पर्याप्त नहीं थी। विदेशी विनिमय बचत 1989–90 में 6252 करोड़ रूपये थी। । स्थिति इतनी गंभीर हो गयी कि चंद्रशेखर सरकार को विदेशी कर्ज को चुकाने के लिये देश का सोना बंधक रखना पड़ा। ऐसी स्थिति में सरकार उदारीकरण की नीति को अपनाने के लिये बाध्य हो गयी। जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों द्वारा प्रस्तावित भी था।

1951 में भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम बहुत कम मात्रा में थे, किन्तु 1990–91 में इस क्षेत्र के उद्योंगों की संख्या 246 हो गयी। कई हजार करोड़ की सार्वजनिक राशि का निवेश इस क्षेत्र में किया गया। प्रारंभिक वर्षों में उनका कार्य संतोषजनक था किन्तु बाद में इनमें से अधिकांश उद्यम घाटे में चले गये। अपने खराब प्रदर्शन के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम दायित्व में परिवर्तित हो गये। इन परिस्थितियों में आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस हुई, जिन्होंने सार्वजनिक क्षेत्रों की अपेक्षा निजी क्षेत्र पर अधिक बल दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत कुछ सीमित उद्योग ही जैसे सिंचाई, बिजली रेल्वे, बंदरगाह, सम्प्रेषण, रक्षा एवं कुछ अन्य उद्यम जैसे एटमी ऊर्जा आदि आते थे। 1948 एवं 1956 की प्रारंभिक औद्योगिक नीति संकल्प के अन्तर्गत भारत में तीन प्रकर के उद्योग थे, जिसमें से एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम कहा गया जिनमें उपक्रम सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही उपक्रम स्थापित किये जाते थे जैसे सरकारी क्षेत्र, दूसरा प्रकार निजी क्षेत्र था जहां उद्यमियों को उद्योग स्थापित करने का अधिकार था, और तीसरा प्रकार मिश्रित क्षेत्र था जहाँ सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र उद्योग स्थापित कर सकते थे। पहली एवं दूसरी योजना के दौरान, सार्वजनिक क्षेत्र में 54 प्रतिशत का निवेश था एवं बाकी 46 प्रतिशत का निवेश निजी क्षेत्र में था। तीसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 60 प्रतिशत एवं निजी क्षेत्र में 40 प्रतिशत का अनुपात था। किन्तु सातवीं योजना तक यह अनुपात कम हो कर सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश 45.7 प्रतिशत एवं बाकी 54.3 प्रतिशत का निवेश निजी क्षेत्र में था। 1990 में निजीकरण की नीति के साथ आठवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश का हिस्सा कम होकर 34.3 प्रतिशत हो गया एवं नवीं योजना में 23.5 प्रतिशत रह गया। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से निजी क्षेत्र को गति प्राप्त हुयी, परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र ने भारत की आर्थिक वृद्धि करने के लिये एक मजबूत आधारभूत ढाँचे के विकास में सहयोग प्रदान किया । इसमें पूंजी निर्मार्ण, अर्थव्यवस्था के लाभ क्षेत्रीयता को समाप्त

करने में आयात के वस्तुओं का विनिर्माण करना एवं निर्यात को बढ़ावा देने में काफी सहयोग प्रदान किया। भारत सरकार के लिये आर्थिक सुधारों को लागू करना अवश्यंभावी हो गया, इस हेतु सरकार ने उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण की नीति को अपनाया। इसके पीछे एकमात्र उद्देश्य था तीव्रतम आर्थिक उन्नति एवं विदेशी पूंजी को आकर्षित करना।

5.3 आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताएं

आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताएं हैं उदारीकरण, निजीकरण एवं अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण

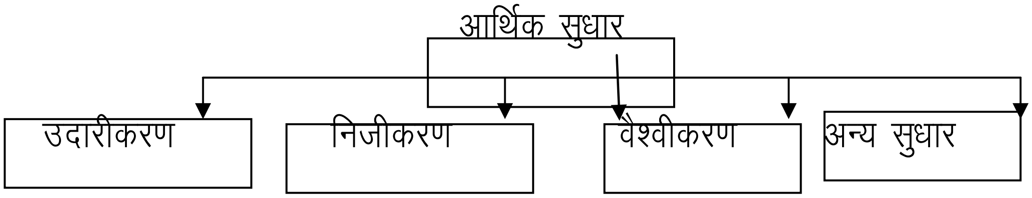

उदारीकरणः– उदारीकरण से तातपर्य स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था है। इसके अन्तर्गत निर्बन्धनों से होकर स्वतंत्र उद्यम आता है। इससे तात्पर्य आर्थिक गतिविधियों में सरकारी नियंत्रण का निराकरण एवं कमी, और सरल है। सरकारी नियंत्रण के स्थान पर स्व–निर्मित नियम सम्मिलित है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण प्रदर्शन में सुधार लाने के लिये केन्द्र सरकार ने 24 जुलाई 1991 को नयी औद्योगिक नीति का ऐलान किया। इसे नयी आर्थिक नीतिगत सुधार के नाम से जाना गया क्योंकि यह 1956 में लागू नेहरूवादी आर्थिक नीति से पूरी तरह हटकर थी। नयी नीति ने औद्योगिक अर्थाव्यवस्था को 'लाभ कमने' के उद्देश्य से भलीभांति नियंत्रण मुक्त कर दिया। साथ ही पुरानी आर्थिक नीतियों में व्याप्त विकृतियों या कमियों में सुधार किया ताकि लाभकारी नियोजन एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्विन्द्विता भी कायम रखने का प्रावधान किया गया। इसने उदारीकण के युग की शुरूआत की जिसकी वजह से निजीकरण एवं भूमंडलीकरण को बढ़ावा मिला। निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ भारत सरकार ने इनसे संबंधित क्षेत्रों जैसे औद्योगिक अनुज्ञप्ति, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक अधिनियम, विदेशी विनिमय एवं तकनीक आदि के लिये बहुत सारे कार्यक्रमों की घोषणा की। इन उपायों पर निम्नानुसार प्रकाश डाला गया हैः–

औद्योगिक अनुज्ञप्ति (लाईसेंस) की समाप्ति :– अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के लिये एवं निवेश हेतु स्वतंत्रता प्रदान करने के लिये औद्योगिक अनुज्ञप्ति की आवश्यकता नहीं थी, कोई भी व्यक्ति बिना अनुज्ञप्ति के उद्योग स्थापित कर सकता, किन्तु केवल 18 उद्योग –कोयला एवं पत्थर का कोयला पेट्रोलियम (अपरिष्कृत के अलावा) एवं इसके समकक्ष उत्पाद, मादक पेय इसको परिष्कृत करना एवं बनाना, शक्कर पशु वसा एवं तेल, सिगार और सिगरेट, अभ्रक एवं उस पर आधारित उत्पाद, खाल एवं चमड़ा, प्लायवुड एवं अन्य लकड़ी आधारित उत्पाद, फर, मोटर कार, कागज एवं अखबार, इलेक्ट्रोनिक वायुयान एवं रक्षा के उपकरण, औद्यागिक विस्फोटक, खतरनाक, रसायन, दवाओं, मनोरंजन इलेक्ट्रोनिक्स एवं श्वेत वस्तुएं (घरेलू रेफ्रिजेटर, कपड़े धोने की मशीन, वातानुकूल संयंत्र) आदि ही सम्मिलित है। तथापि आज की स्थिति में केवल पांच उद्योगों तक ही सीमित है वे उद्योग हैः– मदिरा, सिगरेट, खतरनाक, रसायन, इलेक्ट्रोनिक अंतरिक्ष एवं सुरक्षा उपकरण तथा औद्योगिक विस्फोटक। अब किसी भी तरह की औद्योगिक अनुज्ञप्ति की आवश्यकता नहीं है, कोई भी औद्योगिक प्लांट एवं दस करोड़ से अधिक की कोई भी मशीनरी स्थापित की जा सकती है।

सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का ह्रास :– 1956 की औद्योगिक नीति संकल्प में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम हेतु 173 उद्योग धंधे आरक्षित थे जो कि 1991 की नीति के अन्तर्गत घटकर 8 ही रह गये जो इस प्रकार हैं – हथियार एवं गोला बारूद, आर्थिक शक्ति, कोयला, खनिज तेल, लोहा खदान, अभ्रक, जस्ता, तांबा, सल्फर, सोना, हीरा टिन, मोलिबेडनम रासायनिक तत्व, आणविक शक्ति से संबंधित विशिष्ट खनिज तत्व एवं रेल यातायात। इस आरक्षित अनुक्रमणिका में यह सब सममिलित हैं और अब आणविक शक्ति, आणविक शक्ति से संबंधित खनिज तत्व एवं रेल यातायात यह तीन उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र हेतु सुरक्षित हैं। आगे यह भी अनुमान लगाया गया था कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सरकार की भागीदारी म्युचुअल फंड, वित्तीय संस्थाओं, के रूप में होनी चाहिये। 1991–92 से लेकर अप्रैल 2013 तक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सरकार की भागीदारी 1,36,971 करोड़ रूपये तक हो गयी।

एकाधिकार एवं अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम का संविलयनः

प्रमुख उपक्रमों एवं पारस्परिक जुड़े हुये उपक्रमों की अवधारणा को एकाधिकार एवं अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम ने पूर्णतः समाप्त कर दिया एवं अधिनियम ने एकाधिकार पूर्ण नियंत्रण, अवरोध एवं गलत व्यापारिक व्यवहारों की समाप्ति पर अधिक बल दिया।

विदेशी विनियम एवं तकनीक का स्वतंत्र प्रवेशः–

1991 से पहले भारतीय कंपनियों के लिये यह आवश्यक था कि विदेशी निवेश या बाहर से तकनीक आयात के मामले में सरकार का पूर्व अनुमोदन प्राप्त हो। विशिष्ट उच्च तकनीक एवं उच्च निवेश की नयी नीति के अन्तर्गत स्वचलित अनुज्ञा का प्रावधान बनाया गया, यह अनुज्ञा विदेशी साम्या का 51 प्रतिशत था और यह प्रावधान प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर उपलब्ध था, यह निवेश कुछ मामलों में 74 प्रतिशत तक बढ़ा और आगे 100 प्रतिशत तक वृद्धि हुई। आणविक शक्ति, लाटरी एवं जुआ ऐसे क्षेत्र थे जहां प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रतिबंधित था और अब खुदरा व्यापार में इसका प्रवेश सभी के लिये खुला था और यह चर्चा का विषय था। उच्च स्तरीय निवेश के लिये, तकनीकी दूरी को कम करने के लिये, प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ावा देने के लिये, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की आवश्यकता महसूस हुई। मौलिक आर्थिक संरचना की उन्नति एवं विकास को बढ़ावा देने के लिए एवं भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार के लिये भी विदेशी निवेश आवश्यक हो गया था।

अन्य उदारवादी उपायः–

नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत कुछ अन्य उपाय जैसे औद्योगिक स्थानीय मानदंडों में विलय, नयी योजनाओं के विनिर्माणकारी कार्यक्रमों के लिये प्रोत्साहन राशि को चरणबद्ध करना आदि लागू किये गये। बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा कर्ज देने के मामले में परिवर्तनीयता खंड को हटाने हेतु नियम बनाये गये, जैसे कि पहले सह नियम था कि कर्ज देते समय यह शर्त होती थी कि कर्ज की राशि का भुगतान न करने की स्थिति में वह ऋण की राशि साम्या में परिवर्तित हो, जायेगा उस उद्योग पर बैंक या वित्तीय संस्थाओं का कब्जा हो जायेगा जिसकी वज़ह से उद्योग कर्मी उद्योग स्थापित करने से पहले ग्रस्त रहते थे।

नयी आर्थिक नीति एवं समष्टि अर्थशास्त्रीय सुधारात्मक नीतियों की श्रृंखला को ध्यान में रखते हुये सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों में सुधार हेतु विभिन्न उपायों को अपनाया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण को आगे गति मिली।

लघु उद्योगों की निवेश सीमा 5 करोड़ रूपये तक हो गयी ताकि वे भी अपने उद्योगों में आधुनिकता का समावेश कर सकें। अत्यन्त छोटे उपक्रमों की निवेश सीमा बढ़कर 25 लाख रूपये

तक हो गयी। उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत भारतीय उद्योग एवं विदेशों से मशीन एवं कच्चा माल खरीदने के लिये स्वतंत्र हो गये ताकि अपने उद्योगों को आधुनिक बना सकें एवं उनका विस्तार कर सकें। नयी सुधारात्मक अर्थशास्त्रीय नीतियों ने आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने के लिये उच्च तकनीक पर विशेष जोर दिया। नये आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत भारतीय उद्योगों में तकनीकी गतिशीलता को बढ़ावा देने के लिये सरकार ने उच्च तकनीक को आयात करने के लिये समझौतों को स्वीकृति प्रदान की। प्रारंभ में विदेशी विनिमय मामलों को नियंत्रित करने के लिये सरकार ने विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम (फेरा) अधिनियमित किया। बाद में फेमा के स्थान पर 1999 में विदेशी विनिमय प्रबंधन अधिनियम (FEMA) को अधिनियमित किया गया।

फेमा के प्रावधान बहुत उदार हैं। इसके अन्तर्गत सरकार ने आयात निर्यात की नीतियों को बहुत सरल बना दिया था। आयात नीति पर लाये निर्बन्धनों को हटाकर इसे अधिक सरल बना दिया गया। आयात – नियतांश , आयात–अनुमति, आयात अनुज्ञरित से संबंधित प्रावधानों को एवं आयात निर्यात से संबंधित प्रक्रियाओं एवं दस्तावेजों को सरलतम बनाया गया।

पहले, करों की दर बहुत अधिक थी जो तीव्र आर्थिक विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा थी, जिसे तर्कसंगत होने की आवश्यकता थी। नये उद्योग धंधे स्थापित करने में उच्च करों की दरें उद्यमियों को हतोत्साहित करती थी। कराधान संबंधी नीतियों में निम्नलिखित परिवर्तन किये गयेः–

(1) व्यक्तिगत आयकर सीमा को घटाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया।

(2) बढ़े हुये सीमा शुल्क को 25 प्रतिशत से कम कर 10 प्रतिशत कर दिया गया।

(3) उत्पाद शुल्क दरों में भी कमी लायी गयी।

(4) कठिन बिक्री कर संरचना के स्थान पर सरल मूल्य वर्धित कर को लाया गया।

औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों का निजीकरणः–

निजीकरण एक वैधानिक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सरकार ने सर्वजनिक क्षेत्र जो सरकारी नियंत्रण में थे, की उत्पादक गतिविधि को निजी क्षेत्र में अन्तरित किया। निजीकरण के पीछे तर्क सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का उत्कृष्ट प्रदर्शन एवं दक्षता में सुधार है, जैसा कि स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र का मुख्य लक्ष्य अधिक लाभ अर्जित करना है, और यह बेहतर व्यावसायिक प्रबंधात्मक निर्णय एवं संगठन के मामलों को व्यवस्थित करने के लिये व्यावसायिक प्रबंध को तैयार करके संभव था । निजी क्षेत्र के संगठनों के मामले में यह निश्चित है, यहाँ व्यावसायिक पद एवं फाइल, नियत्रण रेखा एवं सुनिश्चित उत्तरदायित्व है जिससे बाजार में अनुशासन बनाया रखा जा सके। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप अपरिहार्य है जिससे कभी–कभी व्यावसायिक उद्देश्यों को सुवयस्थित ढंग से करने में बाधा उत्पन्न होती है और फिर इन राजनीतिक कारणों से उनकी कुशलता अथवा दक्षता के सुधार में कठिनाई उत्पन्न होती है। बहुत सारे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम नेतृत्वहीन है क्योंकि उच्च श्रेणी के अधिकारियों की नियुक्ति नौकर शाही प्रणाली में उलझी हुयी रहती है। निजी क्षेत्र की इकाईयाँ सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी हैं क्योंकि उनमें तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता होती है। निजीकरण से उनके अंशधारकों एवं ग्राहकों को अच्छी सेवाएं मिल पाती हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों पर विभिन्न साधनों का प्रभाव पड़ा है जिनमें से मुख्य हैं सरकारी अंशधारिता वित्तीय संस्थानों एवं अन्य संस्थाओं का साधारण काम करने वाले लोगों में संविलयन । अन्य तरीका है उपक्रम का विक्रय सामरिक भागीदारों को करना, ताकि कुशल व्यवहार्य बनाया जा सके। कभी–कभी विदेशी भागीदारों के मालिक या प्रबंधक के रूप में हाथ मिलाने से इस

पर असर पड़ता है। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी, कुछ इकाईयों का विक्रय आदि निजीकरण के कुछ अन्य तरीके हैं।

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत निजीकरण के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने कुछ और उपाय अंगीकार किये । जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित असंख्य उद्योगों की संख्या घटाकर केवल तीन (3) कर दी । यह तो उद्योग हैं –आणविक शक्ति , आणविक खनिज एवं रेल्वे एवं तीन शेष अन्य उद्योग निजी क्षेत्रों के लिये खुल गये। इन उपायों का एक मात्र लक्ष्य निजी क्षेत्रों में अधिाकाधिक निवेश करना था। सार्वजनिक क्षेत्र के 74 प्रतिशत तक के अंश विदेशी निवेशकों, संस्थागत निवेशकों, म्युचुअल फंड, श्रमिकों एवं आम लोगों को बेच दिये गये।

यहां तक कि कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के शत्–प्रतिशत अंश विनिवेशित हैं। इन इकाइयों के अंश बोली लगाने की प्रक्रिया द्वारा बेचे गये। बीमार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को बीमार निजी उद्योगों की भांति ही,बीमार उद्योग कंपनी अधिनियम 1985 के अन्तर्गत इलाज किया गया । इस अधिनियम का संशोधन दिसंबर 1991 में हुआ। संशोधित प्रावधानों के अन्तर्गत, सार्वजनिक क्षेत्र के बीमार उद्योगों को पुनर्गठित करने के लिये, औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्सरंचना का मंडल को सौंपा गया । सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार कंपनियों के मामले बी.आई.एफ.आर. को सौंपे गये। कुछ मामलों में यह बीमार इकाईयाँ निजी क्षेत्रों को बेच दी गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की कार्यशैली में सुधारात्मक कदम हेतु एम.ओ.यू. व्यवस्था का प्रारंभ किया गया । 2006–07 में 112 उपक्रमों समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये। 77 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम जिन्होंने समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये थे, उनके प्रदर्शन में सुधार हुआ। नियोजितों के हितों को ध्यान में रखते हुये उनकी सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय कोष की स्थापना की गयी। कामगारों (नियोजितों) को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना की सुविधा दी गयी, जिसके अन्तर्गत मार्च 2006 तक 5.67 लाख नियोजितों ने सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। भारत में निजीकरण की अवधारणा को सर्वप्रथम 1991–92 में वित्त मंत्री द्वारा बजट के अभिभाषण में स्थान मिला। 1993 में अंशों के विनिवेश पर रंगराजन समिति के प्रतिवेदन ने विनिवेश एवं विविधता पूर्ण तरीके को अनुमोदित किया, जिसे सरकार द्वारा लागू किया गया। जिसके अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के लिये 49 प्रतिशत विनिवेश एवं निजी क्षेत्र की इकाईयों के लिये 74 प्रतिशत का विनिवेश आरक्षित किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी में काम करने वाले कर्मचारियों के अंशों के मामले में उक्त कर्मचारियों को प्राथमिकता देने का प्रावधान था। सार्वजनिक उपक्रमों को रियायती ऋण देने के लिये विनिवेश का दस प्रतिशत अलग रख दिया गया।

सरकार ने योजना के तहत सम्पूर्ण निवेश में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ा दी।

अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण :–

भूमंडलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था के साथ अन्य देशों की अर्थव्यवस्था को एकीकृत करना है। इस शर्त के साथ कि व्यापार एवं पूंजी का स्वतंत्र प्रवाह होगा एवं व्यक्तियों का सीमा के पार आना जाना सरल होगा। खुलेपन को बढ़ावा देने आर्थिक अर्न्तनिर्भरता को बढ़ाना एवं विश्व अर्थव्यवस्था में आर्थिक अखण्डता के रूप में भूमंडली करण को परिभाषित किया जा सकता है।

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत यह माना जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का सीधा संबंध विश्व अर्थव्यवस्था से होना चाहिये। परिणामस्वरूप वस्तुओं एवं सेवाओं का अप्रतिबंधित प्रवाह, विभिन्न देशों के मध्य तकनीक एवं दक्षता का मुक्त प्रवाह होगा। इस प्रकार समाज विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सहयोग में वृद्धि होगी। और विकसित देशों से पूंजी

एवं तकनीक भारत की ओर अग्रसर होगी। भारतीय अर्थव्यवस्था भूमंडलीकरण के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं:–

(i) विदेशी निवेश की इक्विटी (अंश) सीमा में वृद्धि :–विदेशी पूंजी निवेश की अंश सीमा 47 प्राथमिक उद्योगों में 40 प्रतिशत से बढ़कर 50 से 100 प्रतिशत हो गयी एवं विदेशी प्रत्यक्ष निवेश बिना किसी प्रतिबंध के 100 प्रतिशत तक करते हुये, कुछ प्राथमिक उद्योगों में लालफीताशाही को समाप्त किया गया। निर्यात करने वाले व्यापारिक घरानों को सौ प्रतिशत तक विदेशी पूंजी निवेश करने की अनुमति दी गयी। स्पेयर पार्टस, कच्चा माल के आयात एवं तकनीकी जानकारी के लिये विदेशी विनिमय प्रबंधन अधिनियम (फेमा) लागू किया गया। उक्त विदेशीपूंजी निवेश इकाइयां साधारण नियमों के अन्तर्गत ही आती थी।

(ii) आंशिक बदलाव (संपरिवर्तन) :– भूमंडलीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये भारतीय रूपये में आंशिक बदलाव की अनुमति दी गयी। यह आर्थिकसुधारों के अनुपालन में था। आंशिक बदलाव से तात्पर्य विदेशी मुद्रा जैसे डालर या पाउण्ड को खरीदेन या बेचने से है और डालर या पाउण्ड की खरीद फरोख्त बाजार द्वारा सुनिश्चित मूल्य पर विदेशी लेन देन के लिये उपलब्ध थी। यह बदलाव निम्नलिखित लेन देनों के लिये वैध था:–

(अ) वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात निर्यात के लिये ।

(ब) निवेश पर लाभांश या ब्याज के भुगतान के लिये।

(स) परिवार के खर्च के लिये भेजी जाने वाली राशि । इसे आंशिक बदलाव कहा जाता है क्योंकि यह पूंजी लेन–देन के अन्तर्गत नहीं आती है।

(iii) दीर्घावधि व्यापार नीति :– आर्थिक सुधारों के अनुपालन में, दीर्घावधि के लिये विदेशी व्यापार नीति लागू की गयी, जैसे, पांचवर्षीय नीति । इस नीति की मुख्य विशेषता है कि यह एक उदार नीति है, इस नीति के अन्तर्गत विदेशी व्यापार पर लगे समस्त निर्बन्धन एवं नियंत्रण हटा लिये गये और खुली प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया गया और इस हेतु समस्त सुविधाऐं प्रदान की गयी। कुछ विशिष्ट वस्तुओं को छोड़कर, सामानों का आयात– निर्यात निर्बधनों के बिना किया जा सकता था। कुछ सीमित वस्तुओं के आयात – निर्यात पर राज्य सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाये गये थे। सभी को व्यापार का समान अवसर प्रदान किया गया। इस नीति का अन्य बिन्दु यह हे कि प्रशासनिक नियंत्रण कम कर दिया गया।

(iv) प्रशुल्क में कटौती :– भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाभकारी रूप में प्रस्तुत करने के तत्वाधान में, आयात एवं निर्यात पर लगाये जाने वाले सीमा शुल्क एवं प्रशुल्क धीरे–धीरे कम कर दिये गये।

5.4 भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्य आर्थिक सुधार

1991 से, उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण से संबंधित आर्थिक सुधार निम्नलिखित है :–

राजकोषीय सुधार :– राजकोषीय सुधार से तात्पर्य सरकार के सार्वजनिक व्यय को कम करना एवं राजस्व की लेनदारी इस तरीके बढ़ाने से है जिससे आर्थिक कल्याण एवं उत्पादन पर विपरीत प्रभाव न पड़े। केन्द्र सरकार का सकल राजकोषीय घाटा 1981–82 में 5.1 प्रतिशत था जो 1990–91 में बढ़कर 7.8 प्रतिशत तक पहुंच गया राजकोषीय घाटे की पूर्ति उधारी के सहारे पूरी की जा रही थी जिसके कारण केन्द्र सरकार का आन्तरिक ऋण 1980–81 के अन्त तक सकल घरेलू उत्पाद का 33.3 प्रतिशत तक बढ़ गया । एवं 1990–91 में ह ऋण सकल घरेलू उत्पाद का 49.7 प्रतिशत हो

गया। इसी तारतम्य में ऋण का ब्याज चुकाने में ही सकल घरेलू उत्पाद का 2 प्रतिशत भुगतान हो रहा था एवं 1980–81 में केन्द्र सरकार के समस्त व्यय 3.8 प्रतिशत से बढ़कर 22 प्रतिशत हो गये। स्थिति इतनी खराब थी कि केन्द्र सरकार द्वारा राजस्व उगाही का 39.1 प्रतिशत व्यय ऋण के ब्याज के भुगतान पर ही हो रहा था। दूसरे शब्दों में, यह कर्ज के जाल में में फंसा हुआ काल था। 1991–92 में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 5.6 प्रतिशत पहुंच गया, 1992–93 में 5.3 प्रतिशत, 1993–94 में 7 प्रतिशत तक पहुंच गया और इसके पश्चात् चार वर्षों तक गिरावट जारी रही। एक बार फिर 1998–99 में यह घाटा बढ़कर 6.5 प्रतिशत पहुंच गया। इसी बीच सरकार ने 2004 में राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम अधिनियमित किया। जिसके कारण राजकोषीय घाटा कम होकर 2006–07 में सकल घरेलू उत्पाद का 3.3 प्रतिशत रह गया, 2007–8 में 2.5 प्रतिशत हो गया, किन्तु 2009–10 में यह पुनः 6.5 प्रतिशत तक बढ़ गया। 2010–11 में राजकोषीय घाटा कम होकर 4.8 प्रतिशत हो गया, जो पुनः 2011–12 में 5.7 प्रतिशत तक बढ़ गया । 2012–13 में सकल घरेलू उत्पाद का 5.2 प्रतिशत तक पहुँच गया। भारत में राजकोषीय असंतुलन के लिये सार्वजनिक व्यय में लापरवाही को जिम्मेदार ठहराया । स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये केन्द्र सरकार ने सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण रखना आवश्यक समझा जो 2009–10 में जीडीपी का 29.1 प्रतिशत था। यद्यपि तैयार संरचनात्मक ढाँचे पर होने वाले व्यय पर कटौती करना वांछनीय नहीं था। इन सबके अतिरिक्त, तर्कपूर्ण कर संरचना के द्वारा कर विस्तार का विवेकपूर्ण मिश्रण एवं करके अलावा अन्य स्त्रोतों के द्वारा राजस्व में विस्तार करना भी सम्मिलित है। अन्य संसाधनों के लिये काले धन को मुख्य मुद्दा बनाने की ओर प्रयास किया गया। एक क्षेत्र जहां राजस्व बढोत्तरी हेतु महत्वपूर्ण क्षेत्र है, वह है सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र जैसे बिजली, सिंचाई, शिक्षा, जल, यातायात आदि जहां व्यय अधिक है किन्तु उपयोग करने वालों से वसूली बहुत कम है। यद्यपि इस स्त्रोत को संसाधनों के विस्तार के लिये बहुत दिनों तक छुआ नहीं गया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सरकार का मुख्य ध्यान राजकोषीय घाटे में सुधार हेतु उठाये जाने वाले कदमों पर था। राजकोषीय घाटे में सुधार हेतु कराधान व्यवस्था को अधिक वैज्ञानिक, सरल एवं तार्किक बनाया गया। सीमा शुल्क कम किया गया जो कि कुछ वस्तुओं पर 250 प्रतिशत तक था, करीब 10 प्रतिशत तक की कटौती की गयी। बहुत से सामानों पर लगाये जाने वाले उत्पाद शुल्क में भी कटौती की गयी। अनुदानों में कमी की गयी। सरकार के सार्वजनिक व्यय में कटौती करने हेतु विशेष प्रयास किये गये।

वित्तीय सुधार :– 1991 में वित्तीय सुधारों हेतु भारत सरकार ने एक समिति की स्थापना की एवं 1998 में बैकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिंहम समिति की स्थापना की गयी। उक्त समिति की सिफरिशों के आधर पर कुछ साल बाद सरकार ने बैकिंग क्षेत्र के सुधारों को लागू किया जैसे संविधिक नकदी अनुपात का स्तर (एस.एल.आर.) एवं सांविधिक तरल अनुपात (सी.आर.आर.) जो 1980 में घाटे के बजट पर मुद्रास्फीति के दबाव को रोकने के लिये तीव्र गति से बढ़ रहे थे, 2008 नवंबर से संविधिक नकदी अनुपात का स्तर 24 प्रतिशत तक कम हो गया। नवंबर 2009 में संविधिक तरल अनुपात 25 प्रतिशत रखा गया था एवं 2010 दिसंबर में 24 प्रतिशत था। इसी प्रकार संविधिक नकदी अनुपात जून 2003 में 4.5 प्रतिशत कम हो गया, किन्तु अक्टूबर 2005 में 5 प्रतिशत तक बढ़ गया, एवं अगस्त 2008 में 9 प्रतिशत पर ही रहा। आगे भी मुद्रास्फति के दबाव के कारण साविधक नकदी अनुपात अप्रैल 2010 में 6 प्रतिशत तक बढ़ गया, जो कि माच्र 2012 में कम होकर 4.5 प्रतिशत रह गया था एवं 2013 में 4 प्रतिशत ही रह गया। विभिन्न बैंकों को उनके अपने पदाधिकारी नियुक्त करने की स्वतंत्रता दी गयी, साथ ही विभिन्न जगहों पर नयी शाखाओं की स्थापना एवं

उनके विघमान शाखाओं के तंत्रजाल को और अधिक तर्कपूर्ण बनाने के लिये भी बैंक स्वतंत्र थी, भारतीय रिजर्व बैंक आय की मान्यता के, सम्पत्तियों के वर्गीकरण के लिये, खराब कर्ज के प्रावधानीकरण के लिये, पूंजी पर्याप्तता के प्रावधानीकरण के लिये, देश में बैंकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने के तारतम्य में नये नियम बनाये । निजी क्षेत्रों में बैंकों की स्थापना हेतु बैंकों की आर्थिक व्यावहारिकता सुनिश्चित करने के लिये एवं लाख की एकाग्रता एवं औद्योगिक घरानों के साथ वित्तीय जोत पार से परहेज करने के लिये दिशा–निर्देश अधनियमित किये। 1991 से पहले की स्थिति की तुलना के बैंकिंग व्यवस्था में ब्याज दर अधिक उदार बना दिये गये ताकि बैंकों के मध्य लचीलापन बना रहे एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिले। बैंकिंग के संबंध में एक और कमी कर्ज की उगाही से संबंधित थी, इसमें सुधार के लिये 1993 में संसद ने विशिष्ट वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम लागू किया।

एल.पी.जी. नीतियों का सकारात्मक प्रभाव :– भारतीय अर्थव्यवस्था पर एलपीजी नीतियों के सकारात्मक प्रभाव के मुख्य बिन्दुओं को निम्नलिखित उदाहरणों से समझा जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था निश्चय ही एक अधिक जीवित अर्थव्यवस्था है। एल.पी.जी. नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अैद्योगिक उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। एल.पी.जी. ने राजकोषीय घाटे पर पूरी नज़र रखी । कीमतों पर नज़र रखना लोगों की आय या धन की क्रयशक्ति कोई भविष्यवाणी नहीं है। उपभोक्ता की संप्रभुता निश्चय ही समय के साथ विस्तार लेती रहीं। एल.पी.जी. नीति के देश में – विदेशी विनिमय में बढ़ोत्तरी की । एल.पी.जी. नीतियों को स्वीकार करने के बाद निजी विदेशी निवेश ने लंबी छलांग लगायी । इससे भारत को आपातकालीन अर्थशास्त्रीय शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त हुयी। एकाधिकार बाज़ार से अभिप्राय प्रतिस्पर्धात्मक बाजार से है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर एल.पी.जी. नीति का नकारात्मक प्रभाव : एल.पी.जी. नीतियों के जागरण काल में ध्यान कृषि से हटकर उद्योग की ओर स्थानांतरित हो गया, परिणामसवरूप कृषि की वृद्धि दर को नुकसान का सामना करना पड़ा। नयी आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप शहरी क्षेत्रों में वृद्धि प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित हो गया। औद्योगिक घरानों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा समस्त व्यापारिक गतिविधियाँ संचालित होने लगीं जिनका एकमात्र ध्यान शहरी क्षेत्रों पर केन्द्रित था। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था हावी हो रही थी, हमें कुछ हद तक आर्थिक उपनिवेशवाद का सामना करना पड़ सकता था। एल.पी.जी. के परिणामस्वरूप देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विस्तार ने बड़ी मात्रा में उपभोक्तावाद को स्थान दिया। वैश्वीकरण के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक कबखराव भी हुआ। जीवन के समस्त मापदंडों को पूरा करते हुये आर्थिक समृद्धि ने अपना स्थान लिया।

आर्थिक सुधारों के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था कर प्रदर्शन– एक मूल्यांकन –मौद्रिक मुद्रा स्फीतिः– मई 2002 में मुद्रास्फीति के क्षेत्र में, मौद्रिक मुद्रा स्फीति दर 2 प्रतिशत से कम था, किन्तु 2008 में यह प्रतिशत बढ़कर 12.6 प्रतिशत तक पहुंच गया, यद्यपि 2009 में यह दर 0.18 प्रतिशत और 2010–11 में बढ़कर 9.6 प्रतिशत हो गयी, 2011–12 में पुनः 8.9 प्रतिशत एवं 2012–13 में 7.4 प्रतिशत हो गयी।

राजकोषीय असंतुलन :– 1990–91 में केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा जीडीपी का 5.6 प्रतिशत था , 2007–08 में घटकर 2.5 प्रतिशत हुआ, 2009–10 में जीडीपी. का 6 प्रतिशत बढ़ा, 2011–12 में 5.7 प्रतिशत एवं 2012–13 में सकल घरेलू उत्पाद का 5.2 प्रतिशत तक रहा।

विदेशी मुद्रा भंडारः– 1990–91 में आयात से उपलब्ध विदेशी मुद्रा भंडार 2.5 महीनों से बढ़कर 2007–08 में 14.4 महीने के लिये हो गया, 2009–10 में 11.1 महीने 2010–11 में 9.6 महीने

2011–12 में 7.1 महीनों तक पहुंच गया। दिसंबर 2012 के अन्त में विदेशीमुद्रा भंडार 295.6 बियिन डालर था।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश :– जहाँ तक भारत में विदेशी निवेश प्रवाह का संबंध है, मुख्य मार्ग इक्विटी, कमाई के पुनः निवेश, पूंजी निवेश के अन्य तरीकों, अंश समूह निवेश जीडीआर। ए.डी.आर. एवं यूरो इक्विटी, विदेशी संस्थागत निवेशक एवं अपतटीय धन आदि के रूप में प्रत्यक्षनिवेश के द्वारा विदेशी निवेश संभव था। उपरोक्त समस्त मदों द्वारा कुल विदेशी निवेश प्रवाह 1991–92 में 133 मिलियन डालर, 1993–94 में 4153 मिलियन डालर, 1999–2000 में 181 मिलियन डालर 2000–01 में 6789 मिलियन डालर, 2007–08 में 62106 मिलियन 2008–09 में 28019 मिलियन, 2009–10 में 70121 मिलियन, 2010–11 में 64372 मिलियन एवं 2011–12 में 63961 मिलियन डालर था।

रोजगार के अवसर :– यद्यपि रोजगार के क्षेत्र में, आर्थिक सुधारों ने भारत में रोजगार के समुचित अवसर प्रदान किये परन्तु जनसंख्या वृद्धि में तेजी के कारण इसका प्रभाव नकारात्मक रहा।

कृषि पर प्रभाव :– जैसा सोचा गया था वैसे ही आर्थिक सुधार कृषि के लिये लाभकारी साबित नहीं हुये, बल्कि वृद्धि दर की गति भी धीमी हो गयी। कृषि में सार्वजनिक निवेश कम हो गया, विशेषतया आधारिक संरचना जैसे सिंचाई, विद्युत, सड़कें , बाजार से संबंधी अनुसंधान एवं उनका विस्तारीकरण आदि के निवेश में कमी आयी। खाद पर मिलने वाली छूट के समाप्त होने से उत्पादन की लागत में वृद्धि होने लगी, जिसका प्रभाव छोटे एवं सीमांत किसानों पर पड़ा।

उद्योग पर प्रभावः– भूमंडलीकरण के कारण विदेशी देशों से वस्तुओं एवं सेवाओं के मुक्त संचालन का विपरीत प्रभाव स्थानीय उद्योगों एवं अविकसित देशों में रोजगार के अवसरों पर पड़ा। विकसित देशों के बाज़ारों तक भारत की पहुँच अभी तक भी नहीं थी क्योंकि उच्च गैर प्रशुल्क बाधाा थी। भूमंडलीकरण के कारण, भारतीय औद्योगिक क्षेत्र पर विपरीत असर पड़ रहा था और उसका मुख्य कारण था चीन की वस्तुओं की कीमतों से प्रतिस्पर्धा।

विनिवेश का प्रभाव :– भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश के लिये सरकार ने वार्षिक लक्ष्य निर्धारित कर दिया। उदाहरण स्वरूप 1991–92 में विनिवेश के माध्यम से 2500 करोड़ रूपये की लामबंदी का लक्ष्य था किन्तु सरकार 3038 करोड़ रूपये की लामबंदी हेतु समर्थ थी, जो कि एक आरामदायक स्थिति थी। 1994–95 के दौरान 4000 करोड़ रूपये का लक्ष्य था और वास्तव में 4,843 करोड़ रूपये की प्राप्ति हुयी थी। 1999–2000 में 10,000 करोड़ रूपये के लक्ष्य के विरूद्ध 1,876 करोड़ रूपये की प्राप्ति हुई। 2010–11 में 40,000 करोड़ रूपये का लक्ष्य निर्धारित था और 22,144 करोड़ रूपये प्राप्त हुये। 2012–13 में लक्ष्य 30,000 करोड़ रूपये था और 23,956 करोड़ रूपये प्राप्त हुये। अतः सार्वजनिक क्षेत्र में कुल विनिवेश 1,36,971 करोड़ रूपयों का था जो लक्ष्य से कम थाा। फिर भी, भारत में आर्थिक सुधाारों के मार्ग पर सही दिशा में उठाया गया कदम एक अच्छी शुरूआत थी।

5.5 सारांश

आर्थिक सुधाारों से तात्पर्य उन सभी मापदंडों से है जिनका उद्देश्य (लक्ष्य) अधिक कुशल, प्रतिस्पर्धी एवं विकसित मापदंडों का प्रतिपादन करना है। मुख्य आर्थिक सुधाार हैं – उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण । आर्थिक संकट के रहते हुये भी अर्थव्यवस्था को संकट से उबारने एवं आर्थिक वृद्धि को तीव्रतम गति से आगे बढ़ने के लिये, विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि, भुगतान के विपरीत संतुलन को ठीक करना, बढ़ी हुयी कीमतों के कारण वित्तीय असंतुलन को ठीक करना (सुधारना) अत्यंत आवश्यक था। इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आर्थिक सुधारों को

अपनाना या एक समुचित आर्थिक नीति का पालन करना अवश्यंभावी था। नयी आर्थिक नीति या आर्थिक सुधारो के भारतीय अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़े।

5.6 शब्दावली

भूमंडलीकरण :– वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं का विदोहन करने की दशा में अग्रसर होता है।

विनिवेश :– आंशिक या पूर्णतः सरकारी उपक्रम के लिये सरकार द्वारा स्थापित पैमाना विनिवेश कहलाता है।

5.7 बोध प्रष्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. ––––––––––– वह उपाय हैं जिनका लक्ष्य अर्थव्यवस्था को अधिक कुशल, प्रतिस्पर्धात्मक एवं विकसित बनाना है।
2. आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी नियंत्रण एवं विनियमन का निराकरण करना, कम करना और सरलीकरण करना ही –––––––––– है।
3. 1956 औद्योगिक नीति अध्यादेश के अन्तर्गत ––––––––––– सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग सुरक्षित हैं।
4. –––––––––––– से तात्पर्य है राजस्व प्राप्ति में वृद्धि एवं सरकार के सार्वजनिक व्यय में कटैती करने से है।

5.8 बोध प्रष्नों के उत्तर

1 आर्थिक सुधार 2. निजीकरण 3. 17 4. राजकोषीय सुधार

5.9 स्वपरख प्रष्न

1. सुधारों की नयी आर्थिक नीति का क्या अर्थ है ? इसकी मुख्य विशेषताएं क्या है ?
2. भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अर्थिक सुधारों के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
3 आर्थिक सुधारों का क्या अर्थ है ?
4. आर्थिक सुधारों की आवश्यकता की व्याख्या कीजिए।
5 आर्थिक सुधारों की विशेषताओं को सूचीबद्ध कीजिए।
6. राजकोषीय नीति से आप क्या समझते हैं ?
7. FDI, GPP एवं विनिवेश को परिभाषित कीजिए।
8. LPG की व्याख्या कीजिए एवं भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले इसके प्रभाव की चर्चा कीजिए ।

5.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. चन्द्रशेखर सी.जी. आस्पैक्ट्स ऑफ ग्रोथ एण्ड स्ट्रक्चरल चेंज इन इंडियन इकोनामी, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, स्पेशल नंबर, नवंबर, 1998
2. दास गुप्ता, अदीति के. एग्रीकल्चर एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट इन इंडिया, न्यू दिल्ली, एसोसियेटेड पब्लिशिंग हाउस, 1993
3. भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण (वार्षिक)

4. देसाई अशोक वी, टैक्नोलजी, एब्जारपशन इन इंडिया, इंडस्ट्री, न्यू दिल्ली, विली ईस्टर्न 1998,
5. इंडियन इकोनॉमिक रिव्यु (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स)
6. इंडियन इकोनॉमिक जर्नल (इंडियन इकोनॉमिक एसोसियेशन)
7. खातेकेट, डीन, नेशनल इकोनॉमिक पालिसी इन इंडिया, साल्वेटर डेमोनिक, एड. हैंडबुक ऑफ कम्पैरेटिव इकोनॉमिक पालिसीज वाल्युम 1 नेशनल इकोनॉमिक पालिसीज, ग्रीनवुड़ प्रेस, पृष्ठ 231–75, 1991
8. राजकुमार, सेन, एण्ड विस्वजीत चटर्जी, इंडियन इकोनॉमी एजेण्डा फार द 21वें सेन्चुरी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2002
9. ए.एन. अग्रवाल, इंडियन इकोनॉमी, प्राब्लम्स ऑफ डेवलपमेन्ट एंड प्लानिंग, विली ईस्टर्न लिमिटेड, न्यू दिल्ली 2002 ।
10. योजना आयोग, सरकारी पांच वर्षीय योजना ।
11. भल्ला जी.एस, इकोनॉमिक लिबरलाइजेशन एण्ड इंडियन एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूशन फार स्टडीज इन इंडस्ट्रीयल डेवलपमेंट, न्यू दिल्ली, 1994 ।
12. लाल, संजय, टैनोलॉजी डेवलपमेन्ट एण्ड एक्सपोर्ट परफार्मेंस इन एल.डी.सी., लीडिंग इंजीनियरिंग एण्ड कैमिकल फर्म्स इन इंडिया, रिव्यु ऑफ वर्ल्ड इकोनॉमिक्स, वाल्युम 122(1) पृष्ठ 80–1996.

———

इकाई 6 मुद्रास्फीति

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 मुद्रास्फीति के प्रकार
6.3 मुद्रास्फीति के कारण
6.4 मुद्रास्फीति के प्रभाव
6.5 मुद्रास्फीति नियंत्रण के उपाय
6.6 भारत में मुद्रास्फीति का रवैया (प्रवृत्ति)
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 बोध प्रश्न
6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.11 स्वपरख प्रश्न
6.12 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे–

- मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या कर सकें।
- मुद्रास्फीति के प्रभावों की विवेचना कर सकें।
- मुद्रास्फीति नियंत्रण के मापदण्डों की विवेचना कर सकें।

6.1 प्रस्तावना

मुद्रास्फीति शायद अकेला ऐसा शब्द है जिसका उपयोग विस्तृत रूप में आम बोलचाल एवं आर्थिक बोलचाल दोनों ही रूपों में किया जाता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मुद्रास्फीति की घटना एक वैश्विक आयाम लिये हुये हैं एवं यह आम आदमी एवं उत्कृष्ट प्रादेशिक सीमाओं के समान विशेषज्ञों के दिमाग पर असर डालती है। विश्व का आर्थिक इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि विकास की सुनियोजित प्रक्रिया पर मुद्रास्फीति का प्रभाव पड़ता है और इस संदर्भ में भारत इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद, भारत ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश के माध्यम से आर्थिक विकास पर ध्यान देने की रणनीति का अनुसरण किया । समष्टि अर्थशास्त्र के समस्त उत्पादन, रोजगार, आय, बचत, पूंजी निर्माण एवं निवेश में सुधार लाना अपेक्षित भी था। यह सभी कार्य योजनाएं लंबी परिपक्वता /अवधि के लिये कार्यरत थीं जैसे उद्योगों में किया गये निवेश को वस्तुओं या सेवाओं के रूप में वापिस प्राप्त करने में 5 से 10 साल लग जाते थे। अतः निवेश के कारण उन मजदूरों, ठेकेदारों, अभियंताओं, आपूर्तिकर्ताओं और अन्य लोगों की जेब भरती हैं जो इस तरह की परियोजनाओं को पूरा करते समय भुगतान प्राप्त करते हैं और एक तरीके से वे अपनी क्रयशक्ति बढ़ाते हैं और साथ ही वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग भी। अब, परियोजना या फर्म उत्पाद वितरण के लिये उपलब्ध हैं किन्तु उत्पाद ही उपलब्ध नहीं थे, मांग की आपूर्ति में वृद्धि करना और वस्तुओं और सेवाओं के दाम में बढ़ोत्तरी करना। इन निवेशों की लंबी कड़ी के कारण मूल्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी जिसे मुद्रास्फीति मान लिया गया।

यद्यपि विश्व के विभिन्न हिस्सों में मुद्रास्फीति की समस्या समान रूप से प्रारंभ हुयी, आकार और प्रकार ने बाद में विविधताओं को रूप दिया। समष्टि अर्थशास्त्र का मुख्य कारक होने के कारण मुद्रास्फीति के विषय की गहन अध्ययन की आवश्यकता है। आगे इसके विवरण के आधार पर आप मुद्रास्फीति के संबंध में मुख्य बिन्दुओं के विषय में विचार कायम रखने के योग्य हो पायेंगे विशेषतः भारत के संदर्भ में।

मुद्रास्पीति की परिभाषाः—

शब्द मुद्रास्फीति, वैश्विक स्तर पर सभी के द्वारा इसके उपयोग के अलावा, इसके सटीक अर्थ एवं संदर्भों के संबंध में मतैक्य को समाप्त (खारिज) करता है। मुद्रास्फीति की परिभाषा एवं इसके अर्थ की व्याख्या करने के लिये अर्थशास्त्रियों द्वारा उपयोग में लाये जाने के लिये तीन प्रकार की दृष्टिकोण हैं प्रथम, सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार सामान्यतः कीमतों की दरों में वृद्धि के परिणामस्वरूप मुद्रा के मूल्य एवं उसी अनुपात में गिरावट ही मुद्रास्फीति है। क्रोदर ने जब यह महसूस किया तब उनके यही विचार थे।" मुद्रास्फीति वह स्थिति है जहां कीमतों में वृद्धि के साथ मुद्रा का मूल्य गिर जाता है।" यह बहुत ही सरल परिभाषा है किन्तु यह वास्तविक प्रकृति एवं, मुद्रास्फीति के कारणों के अलावा केवल लक्षणों पर ही प्रकाश डालती है। इस विचारधारा की स्वीकृति से यह दर्शित होता है कि साधारण कीमत स्तर में वृद्धि की प्रत्येक विशिष्ट स्थिति मुद्रास्पीति के समान ही होती है,

सरकार द्वारा आर्थिक मंदी के गंभीर परिणामों की रोकथाम के लिये जानबूझकर कठोर प्रयास किये जाने के कारण भले इसका शुभारंभ धीमी गति से होता है।

दूसरे, अर्थशास्त्रियों द्वारा मौद्रिक घटना का दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया, जैसे, हाटे, मिल्टन, फ्रायडेमेन एवं कालबर्न ने इस बिन्दु पर अधिक जोर दिया कि मुद्रास्फीति विशुद्ध मौद्रिक घटना है और तब प्रारंभ होती है जब मुद्रा का वृद्धि दर आपूर्ति के अनुपात में उसी तरह बढ़ जाता है जिस अनुपात में उत्पादन के दर में वृद्धि होती है। अतः मुद्रा के वितरण में वृद्धि तथा मूल्य स्तर में बढ़ोत्तरी के मध्य एक अवैध संबंध स्थापित होने का कारण एवं प्रभाव दोनों ही विद्यमान हैं, जहाँ कि मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि कीमतों के स्तर में वृद्धि को बढ़ावा देती है। फ्रायडमैन का मत है कि "मुद्रास्फीति सदैव एवं सर्वत्र एक मौद्रिक घटना है एवं उत्पादन की अपेक्षा मुद्रा की मात्रा तेजी से बढ़ने के द्वारा ही उत्पन्न होती है।" कालबर्न इस विचार को इस मत के साथ सहमति देते हैं— "बहुत कम वस्तुओं हेतु अत्यधिक मुद्रा के पीछे भागना ही मुद्रास्फीति है।" हार्टे भी कहते है कि अत्यधिक धन का मामला मुद्रास्फति के समान है। मुद्रास्फीति की उपरोक्त समस्त परिभाषाओं का सावधानी पूर्वक विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि मुद्रास्फीति की स्थिति केवल तभी उत्पन्न होती है जब उत्पादन में वृद्धि की तुलना में मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि भी उसी के समान हो जाती है। किन्तु यह कहना गलत होगा कि आपूर्ति में वृद्धि से मुद्रास्फीति का एक मात्र कारण है। मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि एवं कीमत स्तर में वृद्धि के कारण एवं प्रभावकारी संबंध हमेशा दिशाहीन नहीं होते हैं, कभी कभी यह विपरीत दिशा में भी कार्यान्वित होते हैं। मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि के साथ मुद्रास्फीति की स्थिति में, यह उसी अवस्था में कार्य करती है, कीमत स्तर में असामान्य वृद्धि को बढ़ावा नहीं दिया जाता है। ताकि आकाश छूती कीमतों का सामना जनता कर सके और आय में भी वृद्धि हो सके। इसके अतिरिक्त, अवसाद काल के दौरान सरकार जानबूझकर अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त दवा का समावेश करती है ताकि प्राथमिकता से नीति कार्यान्वित हो सके एवं अवसाद के दलदल से निकल कर, अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो सके। अर्थव्यवस्था में बढ़ती लहर के परिणाम जो कि कीमतों में वृद्धि के

द्वारा लाभान्वित होते हैं, उनको, किसी भी तार्किक स्तर की सोच के द्वारा म्रुदास्फीति नहीं कहा जा सकता है। लार्डकीन्स, विकसैल, हैन्सेन, पिगू एवं अन्य विचारकों द्वारा समर्थित पूर्ण रोजगार की घटना के अनुसार मुद्रास्फीति की स्थिति तभी आती है जब वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि के साथ–साआथ मौद्रिक आय में वृद्धि होती है।

संक्षेप में, मुद्रास्फीति तब उत्पन्न होती है जब वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग वर्तमान कीमत पर होती है, एवं उनकी आपूर्ति कहीं बेहतर होती है। कीन्स के अनुसार– पूर्ण रोजगार या उनके बाद की अवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पूर्णतः अलचकदार हो जाती है एवं अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त निवेश का परिणाम, अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है बल्कि कीमतों में वृद्धि दृढ़ता को स्थान नहीं देती है जिसे मुद्रास्फीति कहा जाता है। अर्थव्यवस्था की पूर्ण रोजगार की पूर्व स्थिति निवेश में वृद्धि उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी करता है, कारण उत्पादन की अन्तः उपयोगी क्षमता का शोषण करना है, किन्तु अतिरिक्त निवेश एवं उत्पादन में वृद्धि के परिणामों के मध्य समय अंतराल है जिस दौरान कीमतें बढ़ जाती हैं किन्तु इस प्रकार कीमतों में वृद्धि को कीन्स ने ‘‘आंशिक मुद्रास्फीति’ कहा है। पूर्ण मुद्रास्फीति पूर्ण रोजगार के बाद अस्तित्व में आती है, मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि के द्वारा जरूरत से ज्यादा बचत, अधिक निवेश का उत्पादन वृद्धि से कोई तालमेल नहीं है। अतः, यह स्पष्ट है कि विकासशील एवं विकसित दोनों ही अर्थव्यवस्था ने मुद्रास्फीति का अनुभव प्राप्त किया है, बस अन्तर इतना है कि विकासशील अर्थव्यवस्था ने आंशिक मुद्रास्फीति का सामना किया है एवं विकसित अर्थव्यवस्था को पूर्ण मुद्रास्फीति की कठिन समस्या ने जकड़ा हुआ था।

<u>अपस्फीतिः–</u> अपस्फीति सााधारणतया वह स्थिति है जिसमें वस्तुओं और सेवाआं के सामान्य मूल्य के स्तर में गिरावट होती है। किन्तु मूल्य के स्तर में गिरावट ही मुद्रा आपूर्ति की गिरावट का एकामत्र कारण है। यह आपूर्ति की कमी भी इसका एक कारण हो सकती है। यदि मूल्यों में निरन्तर गिरावट होती रहती है, अर्थव्यवस्था को कम मुद्रा की आवयश्यकता होती ठीक इसके विपरीत जैसा भूतकाल में होता था। मूल्य के स्तर में गिरावट मुद्रा आपूर्ति की गिरवट का परिणाम भी है, और कारण भी। अपस्फीति तभी होती है जब वार्षिक मुद्रास्फीति की दर शून्य प्रतिशत की दर से भी नीचे गिर जाती है जिसके फलस्वरूप मुद्रा के असली रूप में वृद्धि हो जाती है जिससे एक क्रेता उस राशि से अधिक माल खरीदने की सुविधा पा जाता है या यह मूल्य स्तर की गिरावट का प्रभाव है।

<u>मुद्रास्फीति बनाम् अपस्फीति :–</u> मुद्रास्फीति एवं अपस्फीति दोनों ही समाज के लिये हानिकारक हैं, किन्तु मुद्रास्फीति को दो बुराइयों के कारण कम तर आँका जा सकता है। जे.एम. कीन्स के अनुसार, मुद्रास्फीति अन्यायपूर्ण है, अपस्फीति अनुपयुक्त या अनुचित है, दोनों ही सामाजिक लाभ की दृष्टि से गलत हैं, क्योंकि दोनों का ही परिणाम आय एवं संपत्ति का पुनः वितरण नहीं है बल्कि आर्थिक व्यवस्था में खतरनाक विकृति उत्पन्न करना है। मुद्रास्फीति में, गरीब से अमीर को क्रय शक्ति अन्तरित करने के द्वारा इसके पुनर्वितरित प्रभाव के माध्यम से आर्थिक असमानता में वृद्धि होती है, अपस्फिीति में कीमतों में गिरावट के कारण देश की राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में गिरावट आती हैं जिससे बेरोजगारी बढ़ती है और यदि यह नियंत्रित नहीं की गयी तो आर्थिक अवसर को बढ़ावा मिलता है। अपस्फीति को भी अन्यायपूर्ण माना जाता है क्योंकि जब यह एक बार प्रारंभ हो जाती है, इस पर नियंत्रण की भी बहुत कम संभावनाएं बचती हैं और परिणाम स्वरूप देश में आर्थिक तबाही की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मुद्रास्फीति अन्यायपूर्ण है, पर अपस्फीति अधिक अराजक एवं अनुपयुक्त है।

विस्फीति (अवस्फीति) – विस्फति मुद्रास्फीति के समान एक भयानक विस्फोटक स्थिति का सामना करने का प्रयास है, ताकि अपस्फीति के बुरे प्रभावों को समाप्त किया जा सके। मुद्रा आपूर्ति की अधिकता के कारण कीमतों में वृद्धि की स्थिति में सरकार को अवस्फीति की नीति निर्धारित करनी होगी ताकि कीमतों में गिरावट कर सामान्य स्तर लाया जा सके।

अपस्फीति बनाम् विस्फीति :– समानताओं के बावजूद अपस्फीति एवं विस्फीति में अन्तर भी हैं। हालांकि, अवस्फीति सरकारी नीति का परिणाम है। अपस्फीति सरकारी नीति से अलग हो सकती है, जो कि उसकी प्रकृति एवं व्यवस्था के कारण उत्पन्न होती है। अच्छे मौसम के कारण अच्छी फसलों का उत्पादन अवस्फीति का सटीक उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अवस्फीति मूल्यों में गिरावट करके, सामान्य स्तर पर ला सकती है, जबकि अपस्फीति मूल्यों में कमी कर सामान्य से भी नीचे स्तर तक गिरा सकती है। अवस्फीति की नीति तब स्वीकार की जाती है जब मुद्रास्फीति के कारण चिंताजनक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ठीक इसके विपरीत अपस्फीति, कुछ प्राकृतिक कारकों का परिणाम हो सकती है।

मुद्रास्फीति जनित मंदीः– यह अर्थव्यवस्था की वह अवस्था होती है जिसमें आर्थिक तरक्की की गति घट जाती है और बेरोजगारी के सथ मंहगाई भी ऊंचे स्तर पर रहती है। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि जरूरी सामान की कीमतों में तेजी से उछाल आने से मुद्रास्फीति के हालात बनते हैं और आपूर्ति में अचानक कमी आ जाती है। परिणामतः उत्पादन और रोजगार में गिरावट आ जाती है एवं कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

6.2 मुद्रास्फीति के प्रकार

मुद्रास्फीति की ओर मुख्य ध्यान देने योग्य बात है कि इसकी गति में बहुत उतार–चढ़ाव हैं, अतः इसे दौड़ती हुये, चलती हुयी, टहलती हुयी एवं रैंगती हुयी मुद्रास्फीति नामक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1 **मंद मुद्रास्फीति –** जब मुद्रास्फीति की वृद्धि दर घोंघे की भांति इतनी मंद हो कि दीर्घावधि में थोड़ा ही परिवर्तन आये तो यह स्थिति मंद मुद्रास्फीति कहलाती है। यह मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था को शक्ति प्रदान करने के रूप में जानी जाती है। इसके अन्तर्गत , मंदगति से मूल्य में वृद्धि अर्थव्यवस्था के दोनों खंडों को प्रोत्साहन देने का काम करती है, कामयाब उद्योगों को अवसर प्रदान करती है ताकि वे अतिरिक्त धनार्जन कर सकें और उसी समय उपभोक्ता नकारात्मक प्रभाव पर ध्यान नहीं दे पाता जो उसकी क्रय क्षमता पर पड़ता है और उपभोक्ता मात्र अच्छे उत्पादों की उपलब्धता से ही संतुष्ट हो जाता है चाहे फिर यह उत्पाद उसे अधिक कीमत पर ही क्यों न उपलब्ध हों।

2. **चलती हुयी मुद्रास्फीति –** जब कीमतों में वृद्धि मध्यम होती है एवं वार्षिक मुद्रास्फीति एक अंक में होती है, चलती फिरती मुद्रास्फीति कहा जाता है। चलती मुद्रास्फीति के अन्तर्गत कीमतों में वृद्धि का रवैया जिस दर से होता है, और तेज गति प्राप्त कर लेता है, और यदि इस प्रवृत्ति पर प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रण न किया जाए, तब दौड़ती हुयी, मुद्रास्फीति में बदल जाती है।

3 **दौड़ती हुयी मुद्रास्फीति** :– जब कीमतों में वृद्धि बहुत तेज गति से होती है, या यूँ कहें 10 प्रतिशत से ऊपर वृद्धि दर होती है, इसे दौड़ती हुयी मुद्रास्फीति कहते हैं। यदि इसे समय पर नियंत्रित न किया जाए, तो यह सरपट मुद्रास्फीति का रूप ले लेती है।

4 **सरपट मुद्रास्फीति** :– इसे बेलगाम मुद्रास्फीति के नाम से भी जाना जाता है और इसमें बहुत तीव्र गति से 20 प्रतिशत और यहां तक कि 100 प्रतिशत से भी ज्यादा तेज गति से वृद्धि होती है। इस मुद्रास्फीति के अन्तर्गत, कीमतों में वृद्धि की कोई सीमा नहीं हैं । सरपट मुद्रास्फीति के दो अच्छे उदाहरण है– पहला प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जर्मनी की मुद्रास्फीति और दूसरे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चीन की मुद्रास्फीति परन्तु यह साधारण मामले नहीं हैं एवं अक्सर पूर्ण रोजगार के बिन्दु पर ही उत्पन्न होते हैं।

5. **शीर्ष बनाम् मुद्रास्फीति** – शीघ्र मुद्रास्फीति के अन्तर्गत उत्पाद एवं सेवाओं का वह समूह जो सामान्य अनुसूची में सम्मिलित हो, आते है। मुद्रास्फीति सामान्य अनुसूची के अस्थिर चीजों को सम्मिलित नहीं करती है। उदाहरणार्थ, कोई नकारात्मक झटका जैसे फसल का खराब होना या सकारात्मक आपूर्ति प्रभाव जैसे अपवादस्वरूप बहुत अच्छी फसलों का प्रभाव शीर्ष मुद्रास्फीति पर पड़ता है, किन्तु मुद्रास्फीति इन अस्थायी उतार चढ़ाव की उपेक्षा करती है।

6.3 मुद्रास्फीति के कारण

कुल मांग और कुल आपूर्ति के मध्य सामंजस्य स्थापित अर्थात बेमेल होने की वजह से मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है। यह स्थितियां तो अत्यधिक मांग या आपूर्ति में कमी के कारण उत्पन्न होती है। पहली स्थिति को मांग जन्य मुद्रास्फीति के नाम से जाना जाता है एवं दूसरी को कीमत जन्य मुद्रास्फीति । यह दो स्थितियां जिनके कारण मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है उनकी व्याख्या इस प्रकार हैः–

मांग जन्य मुद्रास्फति– इस दृष्टिकोण के अनुसार यह मुद्रास्फीति उन कारकों का परिणाम हैं जो अर्थव्यवस्था की कुल मांग को पूरा करते हैं या प्रेरित करते हैं। जबकि कुल उत्पादन अभी भी पूर्ण रोजगार की शर्तों या मांग में वृद्धि की अपेक्षा कम वृद्धि की शर्तों के साथ स्थिर अवस्था में रहता है। इन स्थितियों की व्याख्या इस प्रकार हैः–

(अ) जब पूर्ण रोजगार की कुलमांग बढ़ जाती है किन्तु संपूर्ण उत्पादन में विद्यमान उत्पादन क्षमता के शोषण के कारण किसी तरह की वृद्धि नहीं है। परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि को इस आरेख में दिखाया गया है।

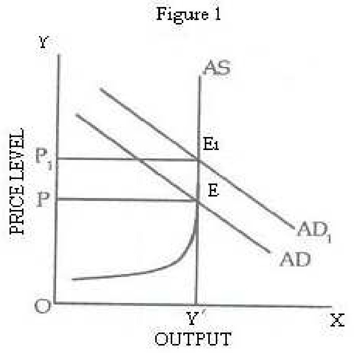

चित्र 6.1.

उपरोक्त आरेख से यह स्पष्ट होता है कि AS (कुल पूर्ति मोड़) लचकदार नहीं है । उत्पादन में वृद्धि नहीं दिखा रहा है जबकि AD (कुल मांग) EE1 तक बढ़ोत्तरी रिखा रहा है। परिणामस्वरूप OP से OP1 तक के स्तर से कीमतों में भी वृद्धि दिखायी देती है।

(ब) जब अर्थव्यव्स्था कुल रोजगार से कम की स्थिति में क्रियाशील है एवं AS एवं AD दोनों ही बढ़ रहे हैं किन्तु कुल मांग कुल पूर्ति में वृद्धि से अधिक है। इस चित्र में कीमतों में वृद्धि को दिखाया गया है–

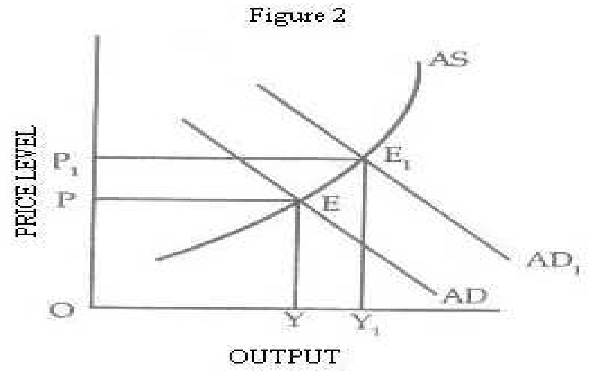

चित्र 6.2

उपर्युक्त आरेख से यह स्पष्ट है कि AD रेखा AD से AD1 की ओर खिसक गयी, कुल उत्पादन की OY से OY1 तक बढ़ गया किन्तु कुल मांग में वृद्धि कुलपूर्ति में वृद्धि से अधिक है। जिसमें कीमातों में वृद्धि को OP से OP1 तक बढ़ावा दिया।

मांग जन्य मुद्रास्फीति को प्रेरित करने वाले कारकः– निम्नलिखित कारक अर्थव्यवस्था में अत्यधिक मांग निर्मित करते हैं। जिसके कारण मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पनन होती है।

1 धनपूर्ति में वृद्धि– मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के अनुसार, मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा की उपयोगिता में आनुपातिक संबंध है। निम्नलिखित समीकरणों के माध्यम से इस संबंध को समझा जा सकता है।

(i) $MV = PT$

(ii) $P = MV/T$

यहाँ M= मुद्रा पूर्ति

V= मुद्रा का वेग

P= कीमत

T= संपूर्ण संव्यवहार या उत्पादन

T पूर्ण रोजगार के पश्चात् स्थिर रहता है, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के कारण सेवाओं और उरत्पादन में अनुपातिक वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में जब मुद्रापूर्ति में वृद्धि होती है तब मुद्रा की उपयोगिता में निश्चय ही आनुपातिक गिरावट आती है।

प्रयोज्य आय में वृद्धि – जब प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि या व्यक्तिगत आय में कमी या व्यक्तिगत बचत आदि कारणों से लोगों की प्रयोज्य आय में वृद्धि होती है, व्यक्ति की व्यय करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है जिसका अर्न्तमांग जन्म मुद्रास्फीति के रूप में होता है।

उपभोग की ओर सीमांत झुकाव में वृद्धि :– जब व्यक्तिगत आय के साथ–साथ उपभोग के सीमांत झुकाव में भी वृद्धि होती है, विशेषरूप से विकासशील अर्थव्यवस्था में, परिणामतः मांग तेजी से बढ़ जाती है एवं कीमतों में भी वृद्धि होती है।

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि – सार्वजनिक व्यय में वृद्धि से व्यक्तियों के हाथ में मौद्रिक आय की प्राप्ति होती है । फलस्वस्रूप वस्तुओं के खपत की मांग बढ़ जाने से कीमतों में वृद्धि भी हो जाती ।

मुद्रास्फीति की स्थिति पर सार्वजनिक व्यय का प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है विशेषतः जब व्यय अनुत्पादक उद्‌देश्य या परियोजनाओं हेतु किया जाता है।

सार्वजनिक ऋण का उन्मोचन :–जब सरकार उसके द्वारा लिये गये ऋण का उन्मोचन करती है, तब उन व्यक्तियों की आय में वृद्धि हो जाती है जिन्होंने सार्वजनिक ऋण में कहीं से कोई योगदान दिया होता है और परिणाम स्वरूप उनके व्यय करने की क्षमता बढ़ जाती है, साथ ही कीमतों में भी उछाल आ जाता है।

राजस्व घाटा – जब सरकार को या तो नोट छपाई के द्वारा या देश की केन्द्रीय बैंक के उधारों के कारण बजट संबंधी घाटा हो जाता है, इसे राजस्व घाटा कहा जाता है। इससे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के बिना भी अर्थव्यवस्था में धन की अतिरिक्त आपूर्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इसी कारण मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है।

सस्ती मौद्रिक नीति – जब व्यावसायिक बैंकों द्वारा व्यक्तिगत एवं उत्पादन हेतु ऋण आसान शर्तों में दिये जाते हैं, तब अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रवाह बढ़ जाता है और साथ ही मांग में वृद्धि के साथ–साथ कीमतों में भी वृद्धि हो जाती है।

काले धन का क्रियान्वयन :– भ्रष्ट तरीकों से काले धन के क्रियान्वयन होने से एक समकक्ष अर्थव्यवस्था का जन्म होता है, जिसमें मांग की ओर दबाब बढ़ता है और इससे कीमतों में उछाल आ जाता है। कालाधन रखने वाले लोगों की मांग अस्थिर होती है एवं वह ऊंची कीमत पर भी वस्तुएं खरीदने में परहेज नहीं करते हैं और कीमताों में वृद्धि लगातार बढ़ती जाती है।

निजी क्षेत्रों का विस्तार :– अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्रों की बढ़ती हुयी भूमिका का ही परिणाम है जिससे वहां निवेश एवं रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न हो रहे हैं, जब कि मौद्रिक आय से मांग एवं कीमतों में सकारात्मक वृद्धि होती है।

कीमत जन्म मुद्रास्फीतिः– कुल आपूर्ति में कमी के साथ–साथ कीमत में वृद्धि के कारण कीमत जन्य मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है। कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि, मजदूरी ब्याज और उद्यमियों का लाभ आदि के कारण लागत में वृद्धि होती है। उपरोक्त सभी कारकों के कारण कुल आपूर्ति मोड़ बाई और खिसक जाती है। निर्धारित कुल मांग की दशा, कुल आपूर्ति के बाई ओर की दशा के कारण उत्पादन में कमी आती है एवं कीमतों में उछाल आ जाता है। इस स्थिति को निम्नलिख्ति आरेख में दिखाया गया है।

Figure 3

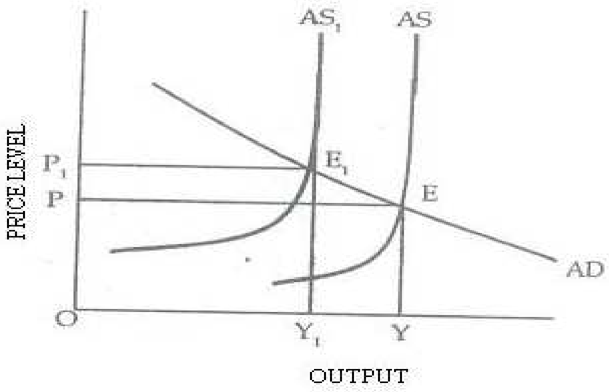

चित्र 6.3

उपरोक्त आरेख से स्पष्ट है कि प्रारंभिक तौर पर कीमत का स्तर OP एवं कुल उत्पादक OY है। जब कुल आपूर्ति बाई ओर AS1 के रूप में दिखाई गयी है जा सकती है, उत्पादन Oy1 तक कम हो जाता है और OP से OP1 तक कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

मांग जन्य मुद्रास्फीति एवं लागत जन्य मुद्रास्फीति के मध्य अर्न्तसंबध :

यहाँ इस बात पर प्रकाश डालना होगा कि मुद्रास्फीति की स्थिति न तो पूर्णतः मांग पर आधारित कारकों का परिणाम है और न ही लागत या मूल्य जन्य कारकों का ही परिणाम है। यह दोनों कारक अर्थव्यवस्था में समानान्तर रूप से संचालित होते हें, एक साधारण सा कारण है कि दोनों ही एक दूसरे से संबंधित है। जब मांग बढ़ने के कारण कीमतों में वृद्धि होती है, साथ ही मजदूरी में भी वृद्धि होती है और अन्य लागत जो उस उत्पाद में लगी होती है में भी वृद्धि के कारण कीमत जन्म मुद्रास्फीति का प्रादुर्भाव होता है। परिणामस्वरूप उत्पादन की कीमत में वृद्धि से मौद्रिक संसाधनों का विस्तार होता है, जबकि मांग जन्य मुद्रास्फीति प्रारंभ होती है। अतः, यह स्पष्ट है कि मांग जन्य मुद्रास्फीति एवं कीमत जन्य मुद्रास्फीति के मध्य संबंध होने के कारण भी हैं और प्रभाव भी है दोनों ही मुद्रास्फीति के दो विकल्प हैं न कि मुद्रास्फीति का ऐसा प्रकार जो एक दूसरे से संबंधित न हो।

आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक : आपूर्ति से संबंधित वह कारक जो अर्थव्यवस्था पर भयानक दबाव डालते हैं, इस प्रकार हैं–

1 **उत्पादन के कारकों की अपर्याप्तताः–** वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पर प्रभाव डालने वाले कारकों में एक महत्वपूर्ण कारण है उत्पादन के कारकों की कमी होना जैसे भूमि, कच्चामाल, कुशल कारीगर एवं साज–सज्जा का सामान। सामान की आपूर्ति में कमी के परिणामस्वरूप उत्पादन में भी कमी आ जाती है।

2 **राष्ट्रीय आपदा–** प्राकृतिक आपदाएं जैसे बाढ, सूखा आदि कृषि उत्पादों की पूर्ति पर विपरीत प्रभाव डालते हैं जिससे आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

3 **सामानों (माल) का संचय–** उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं दोनों के द्वारा सामान के एकत्रीकरण के द्वारा कृत्रिम संकट निर्मित किये जाती है, विशेषतः जब अर्थव्यवस्था पहले से ही भयानक दबाब की स्थिति से गुजर रही हो बाजार में व्याप्त सामान के कृत्रिम संकट के कारण कीमतों में वृद्धि की समस्या भी प्रारंभ हो जाती है।

4 **निर्यात को बढ़ावा एवं आयात में कमी–** रोजमर्रा के सामानों को अधिक मात्रा में निर्यात से एवं आयात में कमी करने से घरेलू अर्थव्यवस्था में सामान की कमी पायी गयी जबकि आवश्यक वस्तु की कीमतों में वृद्धि हो गयी।

5 **औद्योगिक विवादः–** मजदूरों की समस्या के तालाबंदी की एवं हड़ताल जैसी स्थितियों को जन्म दिया जिसके कारण उत्पादन कम होने की वजह से कीमतों में उछाल आ गया।

6 **घटती रिटर्न के कानून का संचालन–** घटती रिटर्न का कानून उत्पादन के कारकों के अपरिवर्तनीय प्रतिस्पापन के चलते चल रहा है जिससे अंतर और स्थिर कारकों के आदर्श संयोजन को परेशान किया जा सकता है। यह अंततः उत्पादकता और उत्पादन की मात्रा में गिरावट का अनुमान है।

7 यदि आराम और ऐश की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता दी जाती है एवं जीवन के लिये आवश्यक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाली वस्तुओं के उत्पादन को द्वितीय स्थान पर रखा जाता है, तब आवश्यक वस्तुओं की कमी होने के कारण उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

8 **अन्तर्राष्ट्रीय कारकः–** वैश्विक स्तर पर कीमतों में वृद्धि करने में खुली अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। उदाहरण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम पदार्थों के भाव बढ़ने से इसका असर घरेलू बाजार में कीमतों में वृद्धि के रूप में पड़ता है।

9 **उत्पादन की लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले कारकः–** पूंजी में कमी, मजदूर संघों द्वारा उच्च वेतनमान की मांग, बिजली एवं ऊर्जा की कीमतों में वृद्धि एवं लाभ की सीमा में वृद्धि के कारण उत्पादन की कीमत में भी वृद्धि होती है और कीमताों में वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।

6.4 मुद्रास्फीति के प्रभाव

देश की सामाजिक बुनियाद एवं आर्थिक संरचना पर मुद्रास्फीति के प्रभाव के विभिन्न आयाम है। मुद्रास्फीति के प्रभावों को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से समझा जा सकता है–

1. उत्पादन एवं रोजगार पर प्रभाव
2. पुनर्वितरित प्रभाव
3. सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव

उत्पादन और रोजगार पर प्रभाव :– प्रारंभिक अवस्था में मुद्रास्फीति उत्पादन और रोजगार के लिये लाभकारी होती है। बढ़ती कीमतों से उत्पादकों के लाभ का अंश भी बढ़ जाता है जिससे वे अधिक मात्रा में उत्पादन के लिये अधिक संसाधनों का प्रयोग करने में सक्षम हो जाते थे और बढ़े हुये लाभ का फायदा उठाते थे। मंदी मुद्रास्फीति एवं उत्पादन वृद्धि के लिये एक प्रोत्साहन के रूप में कार्य करती है और अर्थव्यवस्था में रोजगार के लिये भी लाभकारी है। इस लाभप्रद स्थिति का क्रियान्वयन मात्र छोटे से कारण के लिये रूक जाता है कि अतिरिक्त संसाधनों का प्रयोग करने के अवसर उचित संसाधनों की अनुपलब्धता के कारण अवरूद्व हो जाते हैं। इसके अलावा, जब मुद्रास्फीति अत्यन्त दुरूह होकर तीव्रगति की स्थिति में आ जाती है, उत्पादन की असामान्य बढ़ी हुयी कीमतों के कारण लाभ की मात्रा में कमी आ जाती है। तीव्रगति से बढ़ती हुई, मुद्रास्फीति में बढ़ी हुई मूल्य वृद्धि आज की मांग हो जाती है एवं प्रारंभिक अवस्था की कीमत की वृद्धि बाइंडिग के लिये प्रयोग में लायी गयी कुंडली के अन्दर छिपी हुई होती है। संक्षेप में, मंद मुद्रास्फीति पूर्ण रोजगार की अवस्था में आने तक, अनुपयोगी उत्पादक क्षमता के उपयोग को बढ़ावा देती है, और उसके बाद मुद्रास्फीति की तीव्रता में वृद्धि अर्थव्यवस्था के लिये हानिकारक सिद्ध होती है। उत्पादन एवं रोजगार के क्षेत्र में मुद्रास्फीति के नकारात्मक प्रभावों को इस प्रकार समझा जा सकता है :–

1. **बाजार तंत्र की विकृति** – संसाधनों के उपयोग के विभिन्न रास्तों से प्राप्त विविध लाभ के कारण मुद्रास्फीति से बाजार तंत्र में विकृति उत्पन्न होती है। काल्पनिक गतिविधियों एवं परियोजनाओं से तुरन्त लाभ प्राप्त करने के रवैये के कारण दुर्लभ संसाधनों का कुशल आवंटन नहीं हो पाता है, स्थिति बिगड़ जाती है।

2 **पूंजी निर्माण में बाधाः–** ऊंची कीमतों के कारण पूंजी निर्माण को बांधा पहुंचाने के साथ साथ बचत एवं निवेश की क्षमता में भी कमी आ जाती है।

3 **अर्थव्यवस्था में अनिश्चितताः–** अर्थव्यवस्था के किये हुये अर्थ में अनिश्चितता एवं संदेह है उसका एक मुख्य कारण है उपभोक्ता की क्रय करने की शक्ति को तेजी से ह्रास होना। मुद्रास्फीति व्यवसायी समुदाय को बेईमानी पूर्वक अधिक लाभ कमाने की ताकत देती है क्योंकि संपूर्ण वातावरण धुंधला एवं अनिश्चित है।

(4) **वस्तुओं का संग्रहण एवं कालाबाजारी–** बढ़ती हुई कीमतों से वस्तु संग्रह एवं अर्थव्यवस्था में कालाबाजारी की स्थिति उत्पन्न होती है क्योंकि विक्रेता माल को छुपा कर रखना चाहता है ताकि

भविष्य में उस सामान पर बढ़ी हुई कीमतों से अधिक लाभ कमा सके। कालाबाजारी भी बड़े पैमाने पर हो रही है, क्योंकि व्यापारी वर्ग को सरकार द्वारा नियंत्रित कीमतों के तंत्र की उपेक्षा करने की आदत होती है।

(5) **खराब गुणवत्ता वाले उत्पादों का उत्पादन** – सामान उत्पादकों का यह प्रयत्न होता है कि कम लागत पर खराब वस्तुओं का निर्माण करें, ताकि मूल्य वृद्धि को सामान्य रखा जा सके, इन उत्पादों को बाद में कम कीमतों पर बेचा जाता है।

(6) **उत्पादन के कारकों की गतिशीलता में बाधा–** मजदूरों द्वारा स्वतंत्र एवं बिना बाधा के काम किया जा सके एवं उत्पादन के कारकों में भी गतिशीलता बनी रहने के मार्ग में बहुत रूकावटें थीं क्योंकि उत्पादक बढ़ी हुयी कीमतों पर नये अवसर देना ही नहीं चाहते थे। समस्त उत्पादक संसाधन उनके रास्तों में संकीर्ण एवं कम थे जिनकी गतिशीलता की कम संभावना थी।

(7) **मुद्रा की उपयोगिता में आत्म विश्वास का ह्रास** :– लगातार बढ़ती कीमतों के कारण मुद्रा वीरयता ने जमीनी स्तर को छू लिया एवं नागरिकों को जल्द से जल्द मुद्रा से छुटकारा दिलाने की कोशिश की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति मुद्रा की तेज गिरावट से भयभीत था और इसी कारण मुद्रा की उपयोगिता में आत्मविश्वास में भी कमी आने लगी। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि मंहगाई, सामान्य स्तर तक रहती है, उत्पादन को बढ़ावा मिलता है किन्तु जब मंहगाई बहुत अधिक तेजी से बढ़ती है, तब इसका अर्थव्यवस्था पर बहुत गलत प्रभाव पड़ता है।

(8) **पुन वितरण प्रभावः–** समाज के विभिन्न वर्गों की वास्तविक आय की एकरूपता पर मुद्रास्फीति का असर नहीं पड़ता है और इस तरह मुद्रास्फीति के पुनर्वितरण प्रभाव कुछ वर्गों के लिये अनुकूल होते हैं और कुछ वर्गों के लिये अनुकूल नहीं होते है। इसके पुनर्वितरण प्रभाव की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार हैः–

(अ) **निश्चित आय अर्जकः–** वह व्यक्ति जो वेतन, किराया या ब्याज के माध्यम से धन अर्जन करते है उन्हें अधिक नुकसान होता है क्योंकि उनकी आय में वृद्धि हमेशा मुद्रास्फीति में वृद्धि दर को पीछे छोड़ देती है। उसका परिणाम यह होता है कि निश्चित आय कमाने वालों की आय में गिरावट आ जाती है एवं उन्हें बड़ी हुई कीमतें बहुत चुभती सी हैं।

(ब) **देनदार और लेनदार** – मुद्रास्फीति देनदारों एवं लेनदारों के लिये ही अनुकूल होती है क्योंकि वर्तमान कारणों के आधार पर उनके द्वारा किया गया मौद्रिक भुगतन उन पर कम भार डालता है। दूसरे शब्दों में लेनदार जिस समय कर्ज लेता है उसे व्यय उपयोगिता वाली मुद्रा मिलती है जबकि कर्ज का भुगतान करते समय धन की कीमत बढ़ी हुई होती है। अर्थात भूतकाल में लिये गये धन का अवमूल्यन होने के कारण सही मायने में धन की उपयोगिता भी कम ही होती है।

(स) **व्यापारी एवं उद्यमी** – यह लोग मंहगाई की स्थिति में फायदा उठाते हैं क्योंकि उनको मिलने वाला लाभ उत्पादन की कीमत में वृद्धि की अपेक्षा अधिक तेज गति से बढ़ता है। तथापि, सरकारें कभी कभी आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को अनुशासित करने का प्रयास करते हैं ताकि उपभोक्ता के हित को बचाया जा सके, अनावश्यक लाभ कमाने की संभावनाओं पर रोक लगायी जा सके। किन्तु इन सब परिस्थितियों से एक ऐसा बाजार तैयार करने का मार्ग खुलता है जिसमें बेईमानी पूर्वक त्वरित रूपये कमाये जा सकें।

(9) **निवेशक** :– ऐसे निवेशक जिनकी आय निश्चित है, मुद्रास्फीति से सबसे ज्यादा पीड़ित हैं क्योंकि मूल्य वृद्धि से उनकी वास्तविक आय में बहुत कटौती होती है। तथापि, उपभोक्ता जो त्वरित

आय प्राप्त कर रहे होते हैं उन्हें मुद्रास्फीति (मंहगाई) चुभती नहीं है जैसा कि निश्चित आय वाले उपभोक्ता समूहों के साथ होता है।

(10) **किसान :–** कृषक अपनी भूमि पर जो मुद्रास्फीति से प्राप्त हुई थी पर खेती का काम करने में व्यस्त थे क्योंकि लागत में वृद्धि होने से कहीं ज्यादा उनकी कीमतों में वृद्धि हो रही थी। तथापि, भूमि स्वामी जिन्होंने निर्धारित संविदात्मक भुगतान प्राप्त किया वह घाटे में जा रहे हैं क्योंकि उनकी संविदात्मक राशि निश्चित थी।

(11) **उपभोक्ता –** वह उपभोक्ता जिनकी निर्धारित आय थी वह मंहगाई से सबसे ज्यादा पीड़ित थे क्योंकि बढ़ती हुई कीमतों के कारण उनकी वास्तविक आय में कटौती हो रही थी। उपभोक्ताओं द्वारा बढ़ी हुई आय प्राप्त होने के कारण उन्हें मंहगाई की चुभन नहीं हो रही थी जैसी निर्धारित आय वाले उपभोक्ता समूह की थी।

मुद्रास्फीति का सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव :– मुद्रास्फीति का प्रभाव केवल आर्थिक गतिविधियों पर ही नहीं पड़ता है बल्कि देश के सामाजिक, नैतिक एवं राजनैतिक ढाँचे पर भी इसका असर पड़ता है। मुद्रास्फति से होने वाले सामाजिक एवं राजनीतिक परिणाम इस प्रकार हैः–

1 यह देश में वितरण एवं धन में व्याप्त असमानता की भयावहता को एकत्रित या समेकित करता है। आम आदमी पर मार ज्यादा पड़ती, जबकि उद्योगों के मालिक एवं व्यवसायी बढ़ती कीमतों से लाभान्वित होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक लाभ का अन्दरूनी अन्तरण धनी वर्ग के हित में हो जाता है।

2 मुद्रास्फीति के कारण सामाजिक एवं राजनीतिक अशांति की स्थिति उत्पन्न होती है क्योंकि मध्यम एवं निम्न आय वाले समूहों पर इसका असहनीय प्रभाव पड़ता है। वे विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक संगठनों के समर्थन से सड़क पर प्रदर्शनों के माध्यम से क्रोध एवं विरोध का स्वर बढ़ाते हैं। कई बार बढ़ती कीमतों पर नियंत्रण न कर पाने के आधार पर मताधिकार के प्रयोग के कारण सरकार को सत्ता खोनी पड़ती है।

3 समाज में नैतिक पतन का कारण भी मुद्रास्फीति बनती है क्योंकि कालाबाजारी करने वाले एवं वस्तु संग्रह करके रखने वाले लोग अस्वस्थ एवं बेईमानी पूर्वक व्यवहार से त्वरित लाभ कमाने का प्रयास करते हैं। समाज में रहने वाले अन्य लोग भी उनकी आर्थिक स्थितियों में सुधार करने के उद्देश्य से उन्हीं कालाबाजारियों का अनुसरण करने लगते हैं।

यह सत्य है कि जब यह मान लिया जाता है कि मुद्रास्फीति खतरनाक अनुपात है, उसके गंभीर आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिणाम आते हैं, और यह सरकार को अपनी सत्ता जारी चलाने के लिये खतरा साबित हो सकता है।

6.5 मुद्रास्फीति नियंत्रण के उपाय

मँहगाई की स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये निम्नलिखित तीन उपायों को स्वीकार किया गया हैः–

(1) मौद्रिक उपाय (2) राजकोषीय उपाय (3) प्रत्यक्ष नियंत्रणकारी उपाय।

(1) **मौद्रिक उपायः–** देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिये निम्नलिखित मौद्रिक उपाय उपयोग में लाये जाते हैं–

1 **बैंक दर में वृद्धि –** बैंक दर वह दर है जिसके आधार पर केन्द्रीय बैंक बिलों एवं व्यावसायिक बैंकों की प्रतिभूतियों पर पुनः छूट प्रदान करती है। जब बैंक दर बढ़ जाती है, व्यावसायिक बैंकें जनता को दिये जाने वाले ऋण पर अपनी दर बढ़ा लेती हैं, जिससे बैंक

शाखा की मांग कम हो जाती है और व्यक्तिगत व्यय में भी कटौती हो जाती है। व्यक्तिगत खर्चों की कमी से कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति पर भी रोक लगती है।

2 **सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय** – अर्थव्यवस्था में मंहगाई के दबाव पर नियंत्रण करने के लिये, केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय व्यावसायिक बैंकों को खुले बाज़ार में करती है एवं प्रतिभूतियों की बिक्री के माध्यम से बैंक तरल संसाधनों को एकत्रित करती हैं। व्यावसायिक बैंकों के नगद संसाधन कम हो जाते हैं जिससे उनकी साख बनाने की क्षमता पर नियंत्रण लग जाता है। अंत में इससे मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

3 **नगद आरक्षित अनुपात में वृद्धि** – व्यावसायिक बैंकों को नगद आरक्षित अनुपात एवं तरलता अनुपात को बनाये रखना आवश्यक है। इन अनुपातों में किसी भी प्रकार की वृद्धि से बैंक की तरलता की स्थिति घट जाती है जिससे बैंकों द्वारा साख निर्मित करने की भी सीमा निश्चित हो जाती है। मुद्रास्फीति के नियंत्रण में बैंक साख में कमी आना बहुत प्रभावकारी है।

4 **चयनित उधार (साख) नियंत्रण का उपयोग** :– कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में साख के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिये चयनित साख नियंत्रण के उपाय उपयोग में लाये जाते हैं जबकि साख के अन्य प्रकारों को अप्रभावित छोड़ दिया जाता है। सामान्यतः यह उपाय अनुत्पादक एवं विशिष्ट उद्देश्यों के लिये साख के प्रवाह में कटौती करने के उद्देश्य से उपयोग में लाये जाते हैं। मुख्य चयनित साख नियंत्रण उपायों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:–

(अ) **उपभोक्ता साख पर प्रतिबंध** – मुद्रास्फीति के दौरान सेन्ट्रल बैंक, व्यावसायिक बैंकों को निर्देशित देती है कि उसके द्वारा साख निर्मित करने में दी जाने वाली सुविधाओं में कटौती की जाए। यह प्रतिबन्ध उधार की दरों में वृद्धि एवं पुनः भुगतान की समयावधि को कम करने के रूप में लगाया जाता है।

(ब) **सीमांत आवश्यकताओं में वृद्धि** – प्रतिभूति का बाजार मूल्य एवं अधिकतम ऋण मूल्य के मध्य अन्तर ही सीमांत आवश्यकता है। यदि इस सीमा में वृद्धि होती है, प्रतिभूति के विरूद्ध योग्य साख की राशि कम हो जाती है जिससे निर्मित साख पर नियंत्रण रहता है एवं मूल्य पर दबाव मध्यम रहता है।

2 **राजकोषीय उपायः–** राजकोषीय उपाय कराधान, सार्वजनिक व्यय एवं सरकार की सार्वजनिक ऋण संबंधी नीतियों से संबंधित है। मंहगाई विरोधी राजकोषीय उपाय, जो सरकार द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं, निम्नानुसार है :–

1. प्रयोज्य आय को कम करने की दृष्टि से व्यक्ति करों में वृद्धि करना।
2. सामान की घरेलू आपूर्ति में सुधार करने की दृष्टि से निर्यात नीतियों में वृद्धि करना।
3 देश में विदेशी सामान के प्रवाह को बढ़ाने के लिये आयात शुल्क में कटौती करना।
4 अनावश्यक वस्तुओं पर शुल्क में वृद्धि करना।
5 अनुत्पादक सरकारी व्यय में कटौती करना।
6 घाटे के वित्त पोषण पर प्रतिबंध लगाना
7 लोगों की प्रयोज्य आय को कम करने के लिये सार्वजनिक उधारी में वृद्धि करना।

(3) **प्रत्यक्ष नियंत्रण के उपाय–** अर्थव्यवस्था में मंहगाई के दबाव को नियंत्रित करने के लिये सरकार निम्नलिखित उपाय अपनाती हैः–

(i) कीमतों पर सीधा नियंत्रण – मूल्य नियंत्रण का उद्देश्य कीमत की अधिकतम सीमा निर्धारित करना है, जिसमें आगे जाकर उत्पादक कीमत नहीं वसूली सकते। आवश्यक वस्तुंए जो आम आदमी द्वारा उपयोग में लायी जाती है, उन पर मूल्य नियंत्रया लागू होता है।

(ii) राशन– जब सरकार कुछ वस्तुओं का नियतांश निर्धारित कर देती है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को एक सीमित मात्राा में सामान मिल सके, इसे राशन कहा जाता है। जब आवश्यक उपभोक्ता समानों की आपूर्ति कम होने लगी तब यह आवश्यक हो गया। राशन का उद्‌देश्य ज्यादा से ज्यादा संख्या में लोगों को वस्तुएं उपलब्ध कराना है। एक ओर इसका लक्ष्य मूल्य पर नियंत्रण रखना होता है और दूसरी ओर योग्य व्यक्तियों के हाथों में आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति में सुधार करना होता है।

6.6 भारत में मुद्रास्फीति का रवैया (प्रवृत्ति)

भारत में मूल्यों की प्रवृत्ति को मापने के दो स्तर उपलब्ध है, थोक मूल्य सूची एवं उपभोक्ता मूल्य सूची (CP1)। पहला अर्थात थोक मूल्य सूची (WP1) को इस तर्क के साथ स्वीकार किया गया कि इसमें बहुत सारे क्षेत्र सम्मिलित है, एकरूपता है और तार्किक रूप से अधिक विश्वसनीय है। जब मापने के लिए थोक मूल्य सूचकांक का प्रयोग होता है तब मुद्रास्फीति की दर को दो तरीकों से नापा जा सकता है।

(1) वर्ष दर वर्ष (y- o-y) एवं

वर्ष दर वर्ष का आंकलन इस प्रकार किया जाता है–

मुद्रास्फीति की दर या $R1 = \frac{y1 - y0}{y0} \times 100$

जहां चालू वार्ष के किसी भी सप्ताह में y1 थोकमूल्य सूचकांक (wp1) है और पूर्व वर्ष के उसी सप्ताह में y0 थोक मूल्य सूचकांक (wp1) है ।

(2) **वार्षिक औसत दर (AAR)**

वार्षिक औसत दर का आंकलन इस प्रकार किया जाता हैः–

मुद्रास्फीति की दर या $R1 = \frac{A1 - A0}{A0} \times 100$

जब चालू वित्त वर्ष के 52 सप्ताहों के थोक मूल्य सूचकांक WP1 का औसत है। एवं पूर्व वर्ष के 52 सप्ताहों का थोक मूल्य सूचकांक (WP1) का औसत AO है

यह ध्यान दने योग्य है कि Y-0-Y को शीर्ष मुद्रास्फीति के नाम से भी जाना जाता है।

आधार वर्ष– भारत 1070–71 से 1981–82 तक को आधाार वर्ष मानकर कीमतों का अनुसरण कर रहा था (उन्हें 100 के बराबर मानकर) इसके बाद (1982–83 से) आधाार वर्ष बदलकर 1993–94 हो गया। अब 10 सितंबर 2010 में 2004–05 को सबसे ताजा आधार वर्ष निर्धारित किया हैं

थोक मूल्य सूचकांक के अन्तर्गत 676 वस्तुएं आती हैं। कीमतों का कुल मूल्य उद्धरण 1981 के पुराने क्रम से बढ़ कर नये क्रम में 5482 हो, गया, यह थोक मूल्य बाजार में कीमतों का अच्छा प्रदर्शन दर्शाता है।

थोम मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति की औसत प्रवृत्तिः सरकारों एजेन्सियों द्वारा जारी किये गये आंकड़े बताते हैं कि शीर्ष WP1 मुद्रास्फीति के दस साल (2001 से 2009–10) का औसत 5.9 प्रतिशत था। इन दस सालों में 2000–01, 2003–04, 2004–05, 2006–07 एवं 2008–09 की मुद्रास्फीति का दशकीय औसत बहुत अधिक था। ईंधन एवं विनिर्मित उत्पादन उच्च मुद्रास्फीति दर के विशेष रूप से साक्षी हैं। 2009–10 का वर्ष असंतुष्ट मानसून एवं वैश्विक मंदी के दौर से गुजर

रहा था एवं 2010–11 में औसत मुद्रास्फीति दर 3.6 प्रतिशत थी, पुनः इससे बढ़कर 9.4 प्रतिशत के आंकड़े को छू लिया, जो पिछले दस सालों में सबसे अधिक था। नीचे दी गयी सारणी में 1951–52 से अब तक की वार्षिक मुद्रास्फीति दर की समीक्षा को दर्शाया गया है।

सारणीः औसत दशकीय एवं वार्षिक मुद्रास्फीति (WP1) (प्रतिशत)

वर्ष	प्रतिशत
1951–52 से 1960–61	1.8
1961–62 से 1970–71	6.3
1971–72 से 1980–81	10.3
1981–92 से 1990–91	7.2
1991–92 से 2000–01	7.8
2001 से 2002	3.6
2002–03	3.4
2003–04	5.5
2004–05	6.5
2005–06	4.3
2006–07	6.5
2007–08	4.8
2008–09	8.0
2009–10	3.6

(स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण)

1991 से बाद तक की समय सीमा में मूल्य की प्रकृति का अध्ययन करने के बाद, हम निम्नलिखित अनुमान लगा सकते हैं।

(1) कुख्यात खाड़ी युद्ध के कारण ऊर्जा की कीमतों ने WP1 में 14.23 प्रतिशत के वजन के साथ) थोक मूल्यों में एक तिहाई तक की वृद्धि में अपना योगदान दिया।

(2) विनिर्मित उत्पाद जो थोक मूल्य सूचनांक का 63.75 प्रतिशत निर्मित करता है, कुछ मुद्रास्फीति का 45.3 प्रतिशत के लिये जिम्मेदार है।

(3) प्राथमिक सेवा क्षेत्र जिसका 22.02 प्रतिशत हिससा है, वह 1992 से 2007 तक 24.3 प्रतिश्ता मंहगाई के लिये जिम्मेदार है।

यह ध्यान देने योग्य है कि सुधार काल के प्रारंभिक दौर से ही, मूल्य वृद्धि की प्रवृत्ति सरकार की तदर्थ उपाय मूलक नीतियों का ही परिणाम थी । बजट से पूर्व आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में तेजी जैसे पेट्रोलियम मूल्यों में तेजी एवं आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं पर अप्रत्यक्ष करके जैसे और ऊंचे उठा दिये। खाद्य वस्तुओं की कीमत बढ़ने एवं वसूली के अधिभार से स्थिति बद से बदतर होती चली गयी, खाड़ी युद्ध के संकट से राजस्व का नुकसान हो गया।

इसके अतिरिक्त राजकोषीय घाटे ने एक चेतना की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया, परिणाम स्वरूप राजकोषीय वित्त की धन आपूर्ति में अनिर्धारित वृद्धि हुई। समस्त कारकों ने अन्त में 1990–91 की मुद्रास्फीति की दर को दो गुना बढ़ा (10 से 14 प्रतिशत) दिया।

इस पर ध्यान देना भी दिलचस्प होगा कि सरकार मंहगाई को एक गंभीर समस्या के रूप में स्वीकार नहीं करती है, यह तो अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद के विकास के स्तर को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करती है। योजना बनाने वाले समझते हैं कि अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर से स्वयं ही

देश के नागरिकों की आय में वृद्धि हो जायेगी, यह तथ्य मिथ्या साबित हुआ । सरकारी आंकड़ों से यह साबित होता है कि 2005–06 में खाद्यान्नों में मूल्य वृद्धि 5.3 प्रतिशत थी।, जो बढ़कर 2006–07 में 12.5 प्रतिशत हो गयी। 2005–06 में गेहूँ का मूल्य 2.4 प्रतिशत तक बढ़ा और 2006–07 में 18.6 प्रतिशत रहा। आलुओं का भाव 2006–07 में 10.5 प्रतिशत तक बढ़ा । यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि प्राथमिक खाद्य पदार्थों का थोक मूल्य सूचकांक 2009 दिसंबर में 13.2 प्रतिशत पर स्थिर रहा । मार्च 2010 में 135.8 प्रतिशत दिसंबर 2010 में 144.1 प्रतिशत हो गया। सब्जी जैसे पदार्थों का थोक मूल्य सूचकांक दिसंबर 2009 में 18.0 प्रतिशत दिख रहा था वह गिरकर 2010 मार्च में 132.0 हो गया। किन्तु दिसंबर 2010 में बढ़कर 224.9 प्रतिशत हो गया, ब्याज 105.4 प्रतिशत बढ़ गया मार्च 2010 से दिसंबर 2010 तक 391.10 प्रतिशत वृद्धि हुई। यह तार्किक है कि सरकार मुद्रास्फीति को मापने के लिये कोर–मुद्रास्फीति को पसंदीदा मानक के रूप में स्वीकार करती है, यह खाने योग्य कुछ वस्तुओं की मूल्य स्तर के अल्पावधि उतार चढ़ाव पर ध्यान नहीं देती है।

6.7 सारांश

मुद्रास्फीति शायद अकेला ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग दोनों सामान्य एवं आर्थिक बोलचाल में वृहत रूप में किया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त वाद, भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के वृहत उद्योगों के बड़ी मात्रा में निवेशक के माध्यम से आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुये नीति बनायी, जिनसे यहे अपेक्षा की जा रही थी कि समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तनों – उत्पादन , रोजगार, आय, बचत, पूंजी निर्माण एवं निवेश में बदलाव या सुधार लायेंगे । यह परियोजनाएं दीर्घकालीन थीं जैसे इस निवेश ने 5 से 10 साल लगे मूर्तरूप में वापिस लाभ पाने के लिये, यह लाभ वस्तुओं एवं सेवाओं के रूप में था। यद्यपि मुद्रास्फीति का प्रारंभ विश्व के विभिन्न हिस्सों में लगभग एक जैसा ही था, इसका आकार प्रकार बाद में बना, व्यापक बदलावों ने स्थान लिया। समष्टि अर्थशास्त्र का एक बहुत महत्वपूर्ण कारक होने के कारण, मुद्रास्फीति का गहन अध्ययन आवश्यक है। आगे दिये गये विवरण के आधार पर, आय मुद्रास्फीति के विवेचनात्मक मुद्दों, विशेषकर भारत के संदर्भ में, का अन्दाज लगा पाने में सक्षम हो पाओगे। मुद्रास्फीति की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब चालू मूल्य पर वस्तुओं एवं सामान की मांग बढ़ती है, आपूर्ति नहीं हो पाती। कीन्स के अनुसार, पूर्ण रोजगार की स्थिति में एवं उसके बाद वस्तुओं एवं सामान की आपूर्ति पूर्णतः अलचकदार हो जाती है एवं अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार के नये निवेश के परिणामं स्वरूप अतिरिक्त लाभ नहीं मिलता तब मूल्य में वृद्धि होती है जिसे मंहगाई कहा जाता है। अर्थव्यवस्था की पूर्व रोजगार से पहले की स्थिति में निवेश में वृद्धि के साथ–सथ लाभ भी बढ़ता है और उसका कारण होता है उत्पादन की अनुपयोगी क्षमता का शोषण, किन्तु अतिरिक्त निवेश करने एवं उत्पादन में वृद्धि के परिणामों के मध्य एक अन्तराल होता है और इसी दौरान मूल्य वृद्धि होती है, परन्तु इस प्रकार की मूल्य वृद्धि को कीन्स ने आंशिक मुद्रास्फीति का नाम दिया है। जब पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है तब पूर्ण मुद्रास्फीति होती है जब निवेश की अधिकता, अधिक बचत के कारण मुद्रा में वृद्धि होती है और उसका मिलान उत्पादन में वृद्धि से नहीं हो पाता है, विभिन्न प्रकार की मुद्रास्फीति होती हैः– (1) रेंगती मुद्रास्फीति (2) टहलती हुयी मुद्रास्फीति (3) दौड़ती मुद्रास्फीति। (4) कूदती फांदती मुद्रास्फीति । मंहगाई की स्थिति कुल मांग एवं कुल आपूर्ति के मध्य तालमेल न हो पाने के कारण उत्पन्न होती है। और यह तालमेल न बैठ पाने की स्थिति या तो अधिक मांग के कारण उत्पन्न होती है या आपूर्ति में कमी होने से उत्पन्न होती है।

6.8 शब्दावली

मुद्रास्फीति जनित मंदी : से तात्पर्य है निश्चित उच्च मुद्रास्फीति जिसमें ज्यादा बेरोजगारी एवं देश की अर्थव्यवस्था में स्थिर मांग सम्मिलित है।

विस्फीति – से तात्पर्य मुद्रास्फीति की दर में कमी होना है।

6.9 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

(1) –––––– वह अवस्था है जिसमें मूल्य वृद्धि के साथ धन की कीमत गिर जाती है।

(2) धनापूर्ति में कमी के कारण मूल्य वृद्धि में गिरावट को ––––– के नाम से जाना जाता है।

(3) जब मूल्य वृद्धि मध्यम गति से होती है एवं वार्षिक मुद्रास्फीति एक संख्या में होती है, उसे ––––– के नाम से जाना जाता है।

(4) कीमत में वृद्धि के साथ–साथ आपूर्ति में भी कमी के कारण ––––– की स्थिति उत्पन्न होती है।

6.10 उत्तर माला

(1) मुद्रास्फीति (2) अपस्फीति (3) टहलती मुद्रास्फीति (4) कीमतजन्य मुद्रास्फीति

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मुद्रास्फीति का क्या अर्थ है ? इसे कैसे नियंत्रित किया जा सकता है।
2. अपस्फीति एवं विस्फीति में मध्य अन्तर स्थापित कीजिए ।
3. मुद्रास्फीति जनित मंदी से आप क्या समझते हैं ?
4. मुद्रास्फीति अनुचित है, अपस्फीति बेमतलब है।'' स्पष्ट कीजिए।
5. मुद्रास्फीति क्या है और इसे कैसे नापा जा सकता है ?
6. मांग जनित एवं कीमत जन्य मुद्रास्फीति में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
7. मुद्रास्फीति की परिभाषा दीजिए एवं मुद्रास्फीति के विभिन्न प्रकारों की चर्चा कीजिए।
8. मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या कीजिए । क्या मुद्रास्फीति से विकास हो सकता है ?

6.12 संदर्भ पुस्तकें

1 नेहा बटूरा : अन्डर स्टैन्डिंग रिसैन्ट ट्रैन्ड्स इन इन्फ्लेशन इकानॉमिक एंड पालिटिकल वकीकली, जून 14, 2008

2 भारतीय रिजर्व बैंक, रिपोर्ट आन करेन्सी एंड फायनेंस, 2003–04 (मुम्बई, 2004)

3 सी. रंगराजन, ''इश्यूज इन मॉनेटरी पालिसी'' इन पी.आर. ब्रम्हानन्द एण्ड वी. आर. पंचमुखी (ed) द डेवलपमेन्ट प्रोसेस ऑफ द इंडियन इकानॉमी (1987)

4 पी.डी. ओझा, 'इन्फ्लेशन कंट्रोल एण्ड प्राइस रेल्युलेशन इन वी.एन. मोंगिया (एड) इंडियाज इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट स्टेटजीज, 1951–2000 ए.डी. (न्यू दिल्ली, 1985)

5 इरौल डिसूजा, 'द चेंजिंग मौनेटरी एन्बायरमेन्ट, इकॉनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, जून 27, 2001

6 आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2010–11

7 कन्हैया सिंह, इन्फ्लेशन टारगैटिंग, इंटरनेशनल एक्सपीरिएंस एंड प्रोस्पैक्ट्स फॉर इंडिया, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जुलाई 8, 2006

इकाई 7 भारत में बेरोजगारी

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 बेरोजगारी के प्रकार
7.3 बेरोजगारी के निर्धारक तत्व
7.4 भारत में बेरोजगारी की प्रकृति
7.5 बेरोजगारी का आंकलन
7.6 रोजगार के उभरते परिदृश्य
7.7 बेरोजगारी के कारण
7.8 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की रोजगार परक नीति
7.9 भारत में बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के उपाय
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 बोध प्रश्न
7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.14 स्वपरख प्रश्न
7.15 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप निम्नलिखित को समझ पाने में सक्षम होंगे–

- बेरोजगारी के निर्धारकों एवं प्रकारों की व्याख्या कर सकें।
- भारत में बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या कर सकें।
- भारत में बेरोजगारी की समस्या के समाधान की व्याख्या कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

बेरोजगारी की परिभाषा एक ऐसी स्थिति के रूप में की जा सकती है जिसमें लोगों को उनकी योग्यता होने के बावजूद एवं काम करने के इच्छुक होते हुये भी नौकरी नहीं मिल पाती है, और नियमित आय से वंचित रह जाते हैं। विडंबना है कि बेरोजगारी भारतीय अर्थव्यवस्था का एक समालोचनात्मक लक्षण है। मूलरूप से जनसंख्या में वृद्धि के कारण नौकरी की मांग भी बहुत तीव्र गति से बढ़ी एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि की गति बहुत धीमी रही। ऐसा माना जा रहा था कि उदारीकरण आने से, औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों के तीव्र विकास होने से बहुत हद तक इस समस्या का समाधान हो जायेगा, नौकरी के नये अवसर मिलेंगे जिसमें बहुत सारे लोग लग जायेंगे। किन्तु, भारत में श्रम बाजार को रोजगार में वृद्धि देने वाली विशेषता के रूप में जाना जाता है, इसमें असंगठित क्षेत्र में नयी नौकरियों की उत्पत्ति की गयी क्योंकि संगठित क्षेत्र उत्पादक रोजगार उत्पन्न करने के योग्य होने के बावजूद रोजगार के अवसरों को धीमा कर दिया। लोग बड़ी संख्या में कृषि क्षेत्र से, जिसकी उत्पादक बहुत कम एवं निम्न थी, उन क्षेत्रों का पलायन कर गये जहां उत्पादकता उच्च एवं बढ़ती हुयी थी। ऐसा करने का कारण था कार्य करने का अनुपात। कृषि क्षेत्र से द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों की ओर पलायन कर गये। उदारीकरण की प्रक्रिया उन लाखों लोगों की जो

नौकरी पाने की इच्छा रखते थे, अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल रही क्योंकि यह केवल सेवा क्षेत्र ही थे न कि विनिर्माण क्षेत्र, वहाँ रोजगार के नये अवसर उपलब्ध हो रहे थे, किन्तु यह भी केवल अत्यधिक कुशल लोगों के लिये ही उपलब्ध थे। सत्य तो यह था कि भारतीय मजदूर प्रमुख रूप से अकुशल लोगों को इस तरह की नौकरी पाने में कठिनाई थी। निर्माण क्षेत्र, श्रम अधिकता से पूर्ण, ने अधिकाधिक संख्या में नौकरी के अवसर प्रदान किये, व्यापार, यातायात, होटल एंड रेस्टोरेन्ट, संग्रहण संप्रेषण, बैकिंग क्षेत्र, बीमा, भूमि भवन एवं बहुत सारे सेवा संबंधित क्षेत्र नौकरी के अवसर देने में नाकामयाब रहे। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये, हम भारत में बेरोजगारी की समस्या के विभिन्न आयामों का परीक्षण करेंगे।

7.2 बेरोजगारी के प्रकार

भारत में बेरोजगारी तीन रूपों में विद्यमान है :–

(1) खुली बेरोजगारी (दृश्यमान बेरोजगारी)

(2) ठेका पद्धति से उत्पन्न बेरोजगारी

(3) प्रच्छन्न बेरोजगारी।

(1) खुली बेरोजीगारी – ऐसी स्थिति जिसमें बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान श्रमिक वर्ग को नियमित आय के लिये कार्य करने के अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं, को खुली बेरोजगारी या दृश्यमान बेरोजगारी कहते हैं। इसे संरचनात्मक बेरोजगारी के रूप में पहचान प्राप्त है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक असंतुलन का परिणाम है।

(2) ठेका पद्धति से उत्पन्न बेरोजगारी :– यह अविकसित /विकासशील अर्थव्यवस्था का विशिष्ट लक्षण है जो सामान्यतः दो रूपों में उपलब्ध है–

(अ) जब किसी व्यक्ति को उसकी समर्थता के अनुरूप नौकरी नहीं मिलती है जिस प्रकार की नौकरी के लिये वह कुशल है, ज्ञानी है या योग्यता भी है और वह इन योग्यताओं के आधार पर अधिक अर्जन करने योग्य है किन्तु नौकरी की संख्या में कमी होने के कारण उसे इस अवसर को देने से मना कर दिया जाता है। अतः उस व्यक्ति को रोजगार के अन्तर्गत माना जाता है यदि उसे बेरोजगारी के चलते इस तरह की नौकरी करने के लिये विवश किया जाता है जो उसके कौशल एवं विशेषज्ञता से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता ।

(ब) जब कोई व्यक्ति नियमित या पूर्णकालिक नौकरी पाने में असफल रहता है तब वह अंशकालिक कामगार हो जाता है और उसे उस निश्चित काम करने के स्थान सुनिश्चित काल के लिये कार्य करने का अवसर नहीं दिया जाता है। जहां व्यक्ति, पूरे साल नौकरी पाने का अवसर प्राप्त नहीं कर पाता है, मौसमी बेरोजगारी के नाम से जाना जाता है।

(3) प्रच्छन्न बेरोजगारी :– प्रच्छन्न बेरोजगारी को ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें व्यक्ति नियोजित नजर आते हैं, किन्तु उत्पादन में उनका योगदान उतना नहीं रहता है जितना वह प्रति दिन सामांन्य घंटे काम करके उत्पादन कर सकते हैं। उनकी सीमांत उत्पादकता शून्य या नगण्य होती है। यह बेरोजगारी अनैच्छिक होती है एवं ग्रामीण भूमिहीनों एवं छोटे किसानों के मामलों में यह आम है। जिसका कारण किसानी गतिविधियों का मौसमी प्रकृति का होना एवं अपर्याप्त जमीन एवं उपकरणों का होना होता है जिनकी उपलब्धता उन्हें पूर्णतः रोजगारपूर्ण बना सकता है। इन गतिविधियों से उनकी वापिसी के परिणाम स्वरूप भी उनके उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं आता है। इसे छिपी हुई बेरोजगारी के नाम से भी जाना जाता है। अविकसित कृषि अर्थव्यवस्था

के संदर्भ में, प्रच्छन्न बेरोजगारी को संरचनात्मक बेरोजगारी के एक हिस्से के रूप में भी माना जा सकता है।

7.2 बेरोजगारी के निर्धारक तत्व

कोई व्यक्ति बेरोजगार है या नहीं निम्न आधारों पर निर्धारित किया जा सकता है:–

(अ) **आय कारक** :– यदि किसी व्यक्ति की आय पूरे वर्ष वांछनीय स्तर से भी कम है।

(ब) **समय कारक** – यदि कोई व्यक्ति पूरे वर्ष कुछ सामान्य घंटों या दिनों की अपेक्षा कुछ कम घंटों या दिनों के लिये काम करता है।

(स) **उत्पादक कारक** :– यदि व्यक्ति को उसके नियोजन से इस बात पर निकाला जाता है कि उसका उत्पादन में दिया गया योगदान सामान्य उत्पादकता की अपेक्षा कम है, उसका कार्य से निकाला जाना उत्पादन को कम नहीं करता, बचे हुये कामगारों की उत्पादकता तकनीक या और संगठन में थोड़ा सा परिवर्तन के साथ सामान्य रहती है।

(द) **इच्छा कारक** – यदि वह वर्तमान में किये जाने वाले कार्य से अधिक कार्य करने का इच्छुक है।

7.4 भारत में बेरोजगारी की प्रकृति

भारत में अधिकांश बेरोजगारी संरचनात्मक है एवं जनसंख्या वृद्धि इसका मुख्य कारण है। 2005–06 में जनसंख्या 1108 मिलियन से बढ़कर 2010–11 में 1202 मिलियन हो गयी, इस दौरान 8.5 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। 1961–2001 के बीच भारत में जनसंख्या 2.15 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ी, फलस्वरूप रोजगार के बाजार में अतिरिक्त श्रम बल उपलब्ध हुआ जबकि रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हुयी, और इसी कारण बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती रही।

विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर भारत में बेरोजगारी को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– (1) ग्रामीण बेरोजगारी (2) शहरी बेरोजगारी

(1) **ग्रामीण बेरोजगारी** – भारतीय ग्रामीण बेरोजगारी को बेरोजगारी अन्तः बेरोजगारी एवं प्रच्छन्न बेरोजगारी के रूप में चिन्हित किया जा सकता है जो समय समय पर बदलती रहती है। गाँवों में बढ़ती जनसंख्या का दबाव भूमि पर पड़ता है। भूमि पर इस दबाव के कारण किसानों की संख्या में वृद्धि होती है, जिसके परिणाम स्वरूप कृषि क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी या अनुपयोगी बेरोजगारी की समस्या का प्रादुर्भाव होता है। बड़ी संख्या में मजदूर प्राथमिक नौकरी करने में जुट जाते हैं एवं व्यावसायिक संरचना में सामान्य आलोचना भी समय सीमा के अन्दर मांगपूर्ति करने से रोकती है।

फिर भी, हाल ही में खोज की गयी कि अनौपचारिक गतिविधियों के विस्तार विशेषतः सेवा क्षेत्र ने बेरोजगारी को अन्तः बेरोजगारी में परिवर्तित कर दिया ।

(2) **शहरी बेरोजगारी** – शहरी बेरोजगारी, विस्तृत अर्थों में ग्रामीण बेरोजगारी की ही एक शाखा है। भूमि पर जनसंख्या वृद्धि का भार बढ़ने के कारण, बड़ी संख्या में ग्रामीण लोग जीविका की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करने लगे। गाँवों में रोजगार के अवसरों की कमी एवं विरासत में मिली गरीबी के परिणाम स्वरूप श्रमिक बड़ी मात्रा में शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास करने लगे और अनियोजित श्रम बल की संख्या में भी वृद्धि हुई।

शहरी भारत में शिक्षित वर्ग के मध्य बेरोजगारी की दर बहुत अधिक है। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण शहरी क्षेत्रों में पढ़े–लिखे लोगों की संख्या में वृद्धि हुई, जबकि रोजगार के स्रोतों की गति अभी भी धीमी थी, उसके पीछे कारण आधुनिक श्रम, तकनीकों का

चलन में आना है, और इस आधुनिक तकनीकी विकास के कारण लाखों श्रमिक बेरोजगार के हो गये।

इस बात के साक्ष्य है कि 1990 के दौरान भारत में शहरी रोजगार की दर गिर रही थी। उदाहरण स्वरूप देश के सुधारात्मक काल में विशेष रूप से उद्योग और सेवा के क्षेत्रों में शहरी रोजगारों में गिरावट देखी जा रही थी। ऐसा सरकारी नीति के कारण हुआ जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगारों में कटौती की व्यवस्था की गयी थी। यद्यपि इस दौरान निजी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई, केवल उसकी शाखा होना ही पर्याप्त नहीं था। रोजगार का नुकसान समस्त आर्थिक गतिविधियों में श्रम बचत प्रौद्योगिकी के आगमन के कारण हुआ।

1990 के दौरान शहरी रोजागर में नियमित श्रमिकों की अल्पकालिक पुनर्नियुक्ति का शहरी रोजगार साक्षी है। अधिक लचीली श्रम नीति के नाम पर उदारीकरण की नीति के लिये यह उपयुक्त भी थी। इस स्थिति ने भारत में श्रम की प्रास्थिति को और अधिक असुरक्षित एवं कमजोर बना दिया।

7.5 बेरोजगारी का आंकलन

कोई व्यक्ति एक साल में 273 दिनों तक लगातार आठ घंटे प्रतिदिन काम करता है तो वह सामान्य व्यक्ति वर्ष के आधार पर नियोजित व्यक्ति माना जाता है। बेरोजगारी पर गठित विशेषज्ञों की समिति की अनुशंसाओं के आधार पर योजना आयोग द्वारा बेरोजगारी आंकलन किया गया। बेरोजगारी के तीन अनुमानों का विकास राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) के 27 वें दौर में हुआ था –

(1) **सामान्य मुख्य स्तर की बेरोजगारी :–** सामान्य स्थिति से तात्पर्य है सामान्य गतिविधि की स्थिति को निश्चित करना– रोजगार, बेरोजगार या आर्थिक रूप से निष्क्रिय व्यक्तियों को सर्वेक्षण में सम्मिलित किया गया था। गतिविधि स्थिति दीर्घकाल को संदर्भ में रखकर निश्चित की जाती है, सर्वेक्षण से एक साल पहले की स्थिति को ध्यान में रखा जाता है। सर्वेक्षण में जिन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है उन्हें दो वर्गों में बांटा जाता है, वह व्यक्ति जो काम कर रहे है, या मुख्य गतिविधिक क्षेत्र में काम करने के लिये उपलब्ध है एवं वह व्यक्ति भी जो सहायक क्षेत्रों में भी काम कर रहे हैं या और काम करने के लिये उपलब्ध है, यह वह क्षेत्र है जो मौलिक या प्राथमिक गतिविधि क्षेत्र से अलग है। अतः सामान्य स्थिति की अवधारणा के अन्तर्गत, अनुमानों को सामान्य मुख्य स्थिति के आधार पर प्राप्त किया जाता है जो उस व्यक्ति से संबंधित होता है जो अभी भी पूरी साल बेरोजगार रहा। यह उपाय अशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों के लिये अधिक सटीक है जो आकस्मिक आधार पर काम करने से मना कर देते हैं। इसे जीर्ण या खुली बेरोजगारी के नाम से भी जाना जाता है।

(2) **बेरोजगारी की वर्तमान साप्ताहिक स्थिति :– य**ह स्थिति उन व्यक्तियों का आंकलन करने के बाद निकलती है जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे भी काम करने को नहीं मिलता है।

(3) **बेरोजगारी की वर्तमान प्रतिदिन की स्थिति :–** व्यक्ति के कार्य करने की उस स्थिति के आधार पर आंकलन होता है जहँ पिछले सात दिनों में प्रत्येक दिन व्यक्ति की गतिविधि क्या रही । व्यक्ति जिसे एक दिन या कुछ दिनों तक काम नहीं मिलता है, इस श्रेणी के अन्तर्गत आयेगा।

रोजगार की सामान्य दर को सामान्यतः संदर्भित वर्ष के दौरान खुली बेरोजगारी के उपाय के रूप में जाना जाता है । वर्तमान साप्ताहिक बेरोजगारी दर का भी खतरनाक (जीर्ण) बेरोजगारी के रूप में आंकलन किया जाता है, परन्तु साप्ताहिक काल घटा दिया जाता है, जबकि वर्तमान प्रतिदिन

की स्थिति बेरोजगारी का व्यापक उपाय माना जाता है, जिनमें जीर्ण बेरोजगारी के साथ साथ साप्ताहिक आधार पर रोजगार भी सम्मिलित है।

7.6 रोजगार के उभरते परिदृश्य

पूर्व उदारीकरण काल के दौरान भारत में उद्योगों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। व्यवसाय में नयी फर्म के प्रवेश पर रोक लगाने हेतु नीति थी एवं व्यवसाय करने हेतु अनुज्ञप्ति मात्र कुछ विशिष्ट उद्योगों को ही दी जाती थी। जो आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन हेतु व्यवसाय स्थापित करना चाहते थे। व्यवसाय संघ की स्थिति हावी होते थे एवं वेतन प्रत्यक्ष रूप से उत्पादकता से सरोकार नहीं रखते थे, उसके पीछे मुख्य कारण था वेतन समझौतों में उनकी विनिश्चयात्मक भूमिका का होना। 1990–91 में जिन आर्थिक सुधारों को स्वीकार किया गया उसके अन्तर्गत बड़ी संख्या में उद्योगों के लिये द्वार खुल गये और उनके मध्य प्रतिद्वन्दिता भी बढ़ गयी । अब, उनकी उत्तवीविता के लिये केवल दो ही शर्तें थीं – पहली लाभांश में वृद्धि, दूसरी उत्पादकता में वृद्धि। यद्यपि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, उद्योगों को लागत में कटौती करनी होगी एवं आकार भी घटाना होगा। परिणाम स्वरूप, वेतन निर्धारण के अधिकार के अन्तर्गत व्यवसाय संघों की सौदेबाजी की श्शक्ति को कम करने का दबाव था। आधुनिक तकनीक के बढ़ते हुए उपयोग में कुशल कामगारों की आवश्यकता थी जिन्हें उच्च वेतनमान देकर नियमित आधार पर नियुक्त किया जाना था, नियमित कामगारों के स्थान पर अस्थायी एवं आकस्मिक कुशल कामगारों की नियुक्ति होनी थी। लागत में कटौती की राजनीति का सबसे ज्यादा नुकसान अकुशल एवं आकस्मिक कामगारों को हुआ क्योंकि उनका वेतन कम कर दिया गया। संगठित क्षेत्रों जो एक स्थापित उद्यम के रूप में विद्यमान थे उनमें लागत में कटौती उत्पादकता में वृद्धि के लिये की गयी थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि जिन व्यक्तियों के पास नौकरी नहीं थी वे असंगठित क्षेत्रों में नौकरी करने हेतु खोज करने लगे। असंगठित क्षेत्रों में भी कामगारों की संख्या में वृद्धि ने भी इन क्षेत्रों में वेतन कटौती पर दबाव डालना प्रारंभ किया एवं नौकरियों की मांग एवं आपूर्ति के मध्य अन्तराल आने से नौकरी के अवसरों में कमी आने लगी ।

7.7 बेरोजगारी के कारण

जब हम कहते हैं कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हो रही है, हमारा उससे मतलब होता है कि नौकरी के नये अवसर केवल अपर्याप्त दर पर ही निकले हैं अतः बढ़ती हुई श्रम बल को रोजगार में लाभ दिलाने के उद्देश्य से नौकरी दे पाना संभव नहीं हो सकेगा।

भारत में बेरोजगारी के निम्नलिखित कारण हैः–

(अ) **कृषि क्षेत्र में वृद्धि की धीमी रफ्तार** :– विगत कुछ वर्षों में भारत में वृद्धि दर 2.5 वार्षिक रही है, जो संतोषजनक नहीं है। यह वृद्धि दर बढ़ कर उसे 4 प्रतिशत हो सकेगी, इसके लिये अतिरिक्त उत्पादन करना होगा एवं विपणन एवं वितरण में रोजगार के नये अवसर देने होंगे। रोजगार की यह वृद्धि न केवल कृषि में श्रमिकों के प्रवेश के लिये पर्याप्त होगी, बल्कि ग्रामीण बेरोजगारी एवं अर्न्तबेरोजगारी के कारण आयी कमी को दूर करने में भी सहायक होगी।

(ब) **श्रम बल में वृद्धि** :– बीमारियों के इलाज हेतु अच्छी गुणवत्ता के आने से एवं जीवन स्तर अधिक अच्छा होने से शिशु दर में गिरावट के बिना भी मृत्यु दर में कमी आ गयी। इससे देश की जनंसख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई इससे श्रम बल की संख्या का विस्तार हुआ।

(स) **शिक्षित महिलाओं की स्थिति में वृद्धि** – स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान देने से न केवल शिक्षित महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई, वरन् रोजगार के संदर्भ में उनकी सोच भी परिवर्तित हो गयी। अब, श्रम बाजार में नौकरी के लिये पुरूषों के साथ प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। नौकरी की संख्या में वृद्धि के अलावा और कोई दूसरा समाधान नहीं था, जो असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

(द) **अनुपयुक्त तकनीक :–** भारत में किसान अपना पैसा तीव्र वृद्धि हेतु श्रम पर लगा रहे है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ श्रम जरूरत से ज्यादा उपलब्ध है एवं आधुनिक श्रम तकनीक का प्रवेश इन परिस्थितियों के लिये उपयुक्त नहीं है, इस कारण ऊंचे दर पर बेरोजगारी बढ़ जायेगी।

(ङ) **शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था का अभाव :–** भारत में शिक्षा व्यवस्था, अनुपयुक्त इस संदर्भ में थी कि स्नातक पर स्नातक लगातार निकाले जा रहे थे। और उनके लिये दिन प्रतिदिन रोजगार के अवसर कम होते जा रहे थे, वह भी उस काल में जब तकनीकी रूप से कुशल युवाओं की आवश्यकता के कारण उनकी मांग इस व्यावसायिक वातावरण में बढ़ती जा रही थी।

(क) **वृद्धि की नीची रोजगार परक लोच–** रोजगार लोच को उत्पादन में प्रति इकाई रोजगार में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह माना गया कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये रोजगार उत्पादन की लोच लगातार गिर रही थी, इसके सहयोगी क्षेत्रों में भी इसमें गिरावट देखी जा रही थी। यद्यपि द्वितीयक क्षेत्रों के लिये यह गिरावट बिल्कुल चढ़ती हुई थी एवं प्राथमिक क्षेत्रों के लिये सबसे धीमी थी।

(ख) **जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धिः–** विशेषतः ग्रामीण भारत में जनसंख्या में तीव्र गति से वृंद्धि ने बेरोजगारी की समस्या को और खराब कर दिया। सत्य तो यह है कि ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में नौकरी के नये अवसर नहीं खोजे जा रहे थे, एवं जो आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकते, बेरोजगारी में किसी तरह का मोड़ लाना बहुत कठिन था।

(ग) **कुटीर उद्योगों की गिरावटः–** औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने पारंपरिक कुटीर उद्योगों की उत्तरजीविता पर प्रहार किया जो कि पूर्णतः श्रम घनिष्ठ एवं रोजगार अनुकूल थे। बड़े उद्योग कम कीमतों में पर्याप्त मात्रा में नये उत्पाद ला रहे थे इसी के परिणाम स्वरूप इन लघु उद्योगों की समाप्ति हो गयी।

7.8 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की रोजगार परक नीति

ग्यारहवीं पंचवर्षीय की योजना के दस्तावेज यह रेखांकित करते हैं कि औसतन प्रतिदिन के हिसाब से बेरोजगारी की दर 1993–94 में 6.1 प्रतिशत की दर से, बढ़कर 1999–2000 तक 3 प्रतिशत और आगे 2004–05 में 8.3 तक बढ़ गया। कृषिगत रोजगार 1ः प्रतिवर्ष से भी कम वृद्धि हुई, अकृषि रोजगार में वृद्धि से ज्यादा धीमी थी। अकृषिगत रोजगार 1999–2000 के दौरान 4.75 प्रतिशत वार्षिक की दर से विस्तारित हुये, किन्तु यह वृद्धि प्राथमिक रूप से असंगठित क्षेत्र में थी एवं ऐसा स्वरोजगार के मामलों में था जबकि संगठित क्षेत्र में रोजगार में 1994–2000 के दौरान 0.38 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गति से गिरावट आयी।

यह माना गया कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान श्रम बल में कुल वृद्धि लगभग 65 मिलियन तक हो गयी, यह सब स्त्रियों के बढ़ते हुये सहयोग के कारण संभव हो सका और यदि पिछले बचे हुये लगभग 35 मिलियन अतिरिक्त भर लिये जाते हैं कुल नौकरी की आवश्यकता लगभग 100 मिलियन हो जायेगी। सरकारी योजना के अन्तर्गत 65 मिलियन रोजगार के अवसर खोज निकालने थे।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना मे सेवाओं के क्षेत्र में एवं विनिर्माण के क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों की परिकलपना की गयी। विशेष रूप से श्रम घनिष्ठ विनिर्माण क्षेत्र जैसे– खाद्य निर्माण, चमड़े के सामान, जूते–चप्पल, वस्त्र एवं सेवा क्षेत्रों जैसे पर्यटन एवं निर्माण क्षेत्रों में रोजगार के अतिरिक्त अवसरों की परिकल्पना की गयी। यद्यपि यह योजना निजी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु बहुत आशापूर्ण नहीं थी। योजनाकार इस बात पर आशान्वित थे कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में संगठित क्षेत्र में रोजगार दोगुने हो जायेंगे लगभग 55 मिलियन नये कामगार अब भी असंगठित क्षेत्र में लगना बाकी था। यह भी आशा थी कि गाँव और लघु उद्योगों के माध्यम से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान नये रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे एवं इसके आधे अवसर ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध होंगे।

7.9 भारत में बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के उपाय

यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि देश में व्याप्त बेरोजगारी की वर्तमान स्थिति से निपटने के लिये एक अच्छी नीति की आवश्यकता है जो इस संकट से उबारने के लिये उपयुक्त समायोजन बना सके। अधिक रोजगार देने वाले क्षेत्रों की पहचान करना वांछनीय हो गया और उन क्षेत्रों की भी पहचान आवश्यक थी जो इन क्षेत्रों की पक्ष में उत्पादन की क्षेत्रीय संरचना में पुनः उपयुक्त समायोजन कर सकें। हमारे योजनाकारों को इस समस्या के समाधान के लिये निम्नलिखित उपाय सहायक होंगेः–

(1) **कृषि में पिछड़े हुये क्षेत्रों की पहचान करना एवं उन्हें आवश्यक सहायता पहुँचानाः–** वह क्षेत्र जो कृषि में बहुत पिछड़े हैं, उनमें रोजगार के स्तर बढ़ने की हमेशा संभावना रहती है। इन क्षेत्रों की सुनियोजित वृद्धि रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करती है, गरीबी का उन्मूलन करती है एवं अन्त में पुरानी क्षेत्रीय असमानता में भी कमी लाती है।

इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत फसलों में खेती के स्तर को बढ़ावा देने में वृद्धि, पुरानी कृषि तरीके को बदल कर खेती की उच्च तकनीक को अपनाना एवं धीरे धीरे खेती में गहनता लाना हेतु एक रणनीति बनाकर उस पर ध्यान दिया जाना चाहिये। किन्तु यह परिवर्तन तभी संभव है जब सिंचाई की सुविधा की उपलब्धता, आधुनिक उत्पादन के प्रावधान एवं उचित मूल्य की नीतियाँ निश्चित हों।

(2) **लघु उद्योगों को बढ़ावा देनाः–** कुछ लघु उद्योग मुख्यतः श्रम घनिष्ठ होते हैं और पूंजी की अपेक्षा उत्पादन की प्रति इकाई से ज्यादा श्रम का उपयोग करते हैं, ये बड़े उद्योगों की अपेक्षा वे रोजगार के अवसर अधिक मात्रा में प्रदान करते हैं। अतः सरकार को पर्याप्त साख एवं अच्छी तकनीक देकर इन उद्योगों को आगे बढ़ाना चाहिये।

(3) **खेती में विधिवता को बढ़ावा देनाः–** शहरी क्षेत्रों के बढ़ते हुये जीवन स्तर के आधार पर, उच्च श्रेणी के उत्पाद जैसे सब्जियाँ फल, फूल इत्यादि की मांग भी बढ़ रही थी। छूट देने की जगह, सरकार को प्रत्यक्ष रोजगार देना चाहिये एवं ग्रामीण विविधता के लिये बड़ी मात्रा में निवेश करना चाहिये तथा एक उपयुक्त आधारिक संरचना जैसे, सड़के, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं शीतग्रह आदि तैयार करने चाहिये। इससे खेती एवं अखेती दोनों ही क्षेत्रों के रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी एवं साथ ही साथ उत्पादन भी बढ़ेगा। कार्य जैसे सड़कों का विस्तार, गाँवों को शहरों से जोड़ना, कच्ची सड़कों के स्थान पर पक्की सड़कें बनवाना, चारमार्गी राजमार्ग का विस्तार करना आदि को प्रोतसाहन दिया जाना चाहिये क्योंकि इनसे न केवल रोजगार उत्पन्न होगा वरन् उस क्षेत्र के लिये नये उद्यमियों को व्यापार उद्योग की नयी परियोजनायें प्रारंभ करने हेतु प्रोत्साहन मिलेगा।

(4) ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता से रोजगार के विशिष्ट कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करनाः–

रोजगार संबंधी विभिन्न विशिष्ट कार्यक्रम जिनसे उसे 4 मिलियन वार्षिक नौकरियाँ उत्पन्न हो सकती हैं उन्हें हर साल लगभग 7000 करोड़ रूपये की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त खाद्यान्न राजसहायता कीमत 12,000 करोड़ रूपये एवं मिट्टी का तेल एवं घरेलू गैस राजसहायता की भी एक बड़ी मात्रा में राशि सम्मिलित है। इन उपायों का लक्ष्य गरीबी उन्मूलन करना एवं निवेश के माध्यम से उसे 4 मिलियन नौकरी के अवसर उत्पन्न करना, प्रतिवर्ष लगभग 35000 करोड़ की सहभागिता के साथ, जबकि सिंचाई एवं वनीकरण जैसे क्षेत्रों से कम आंबटन प्रापत होता है। इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से यह पता चलता है कि प्रति व्यक्ति द्वारा 100 रूपये व्यय करने पर 10 से 15 रूपये गरीब कामगार के पास पहुंचते हैं। जबकि ठीक इसके विपरीत कामगार की निर्धारित न्यूनतम मजदूरी 60 रूपये है। सरकार को उन लोगों पर पैनी नज़र रखनी चाहिये जो इस बचे हुये धन का गलत उपयोग करते हैं।

(5) पशुपालन एवं मत्स्यपालन को बढ़ावा देनाः– राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड के ताजा अध्ययन एवं कृषि के राष्ट्रीय आयोग के आकलन यह सुझाव देते हैं कि पशुपालन क्षेत्र 86 मिलियन व्यक्तियों को हर साल रोजगार दे सकता है, इस रोजगार में दुग्ध एवं उससे बने पदार्थों का प्रसंस्करण एवं विपणन सम्मिलित हैं। मत्स्य पालन भी 7 प्रतिशत वार्षिक तक बढ़ सकता है क्योंकि समुद्र और अन्दरूनी जल क्षेत्र का लगभग दो तिहाई हिस्सा अछूता है।

(6) सूचना तकनीक क्षेत्र का विस्तार :– सूचना तकनीकी के क्षेत्र में रोजगार के अवसर प्रदान करने की बहुत क्षमता है। और यह आशा की जाती है कि यह क्षेत्र अकेले ही 25 प्रतिशत तक नौकरी प्रदान करने में सक्षम है। सरकार भी इस क्षेत्र को आगे बढ़ाने का प्रयास कर रही है सूचना तकनीक योजना का सुझाव है मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों में सूचना तकनीक परंपरा का विस्तार होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, सूचना तकनीकी ज्ञान की सार्वभौमिकता के लिये एक सर्वशिक्षा अभियान चलाया गया और इस अभियान ने तीव्र गति से देश में सूचना तकनीक क्षेत्र का विस्तार किया।

(7) सामाजिक संरचना का विस्तार :– यह तथ्य कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र पहले से ही लोगों से परिपूर्ण है यह तार्किक है कि ग्रमीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं शिक्षण संस्थाओं को अधिक मजबूत बनाने के लिये अधिक मानव बल का उपयोग किया जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों की मजबूती, विशेष रूप से मूल विद्यालयों में एकल शिक्षक एवं स्वास्थ्य व्यवस्था में उपयुक्त मानव की उपलब्धता, शिक्षित लोगों के लिये नौकरी के अवसर उत्पन्न करने में सक्षम है।

7.10 सारांश

आर्थिक सुधारों से भारत में व्याप्त बेरोजगारी के आकार और प्रकार में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अविनियमन के कारण व्यावसायिक संगठनों को उनकी कार्यपद्धति एवं उत्पादन क्षमता को पुनः संगठित करने का अवसर प्राप्त हुआ । उत्पादन में नयी एवं उत्तम तकनीक के प्रयोग के माध्यम से व्यवसाय के क्रियान्वयन का विस्तार हुआ। अर्थव्यवस्था के सामान्य क्षेत्र में रोजगार पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा । स्वनियोजित शिक्षित लोगों की नयी पीढ़ी ने मिश्रित आय का लाभ लेना प्रारंभ कर दिया । यह आय श्रम एवं उद्यमिता की आय का सम्मिश्रण थी जो कि रोजगार में दी जाने वाली सामान्य मजदूरी से होने वाली आय से अधिक थी। अध्ययन से पता चलता है कि संगठित क्षेत्रों से अतिरिक्त श्रम को हटा दिया गया ऐसा शिक्षित कामगारों की संख्या में वृद्धि के कारण हुआ,

परिणाम स्वरूप 1993–94 में स्वनियोजित रोजगार का प्रतिशत 53 प्रतिशत था वह बढ़कर 2004–05 में 56.5 प्रतिशत हो गया।

व्यवसायी उद्यमों में उत्पादकता में वृद्धि होने लगी और यह संगठित क्षेत्र में कुशल सघन उत्पादन के कारण संभव हो सका, परिणाम स्वरूप कुशल एवं अकुशल मजदूरी के मध्य, संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों के आय के मध्यम अन्तर स्थापित हो गया। कुशल कामगारों और उदारीकरण से न केवल आय की असमानता में वृद्धि हुई बल्कि आय में असमानता का क्षेत्रीय पक्षपात भी बहुत हुआ।

सेवा क्षेत्रों की उत्पत्ति एक ऐसे क्षेत्र के रूप में हुयी जिसने दोनों क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया– नौकरी के अवसरो में वृद्धि एवं उत्पादन में वृद्धि । इन उपलब्धियों के अधिकांश लाभ निवेशकों द्वारा लिये गये। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि 1993–94 में रोजगार के अंश का प्रतिशत 0.8 था वह बढ़कर 2004–05 में 2 प्रतिशत हो गया जबकि जीडीपी के क्षेत्र अंश में इसी दौरान अधिक वृद्धि हुई जो 8.3 प्रतिशत से बढ़कर 13.5 प्रतिशत हो गयी। यह क्षेत्र उत्पादकों की सेवा उत्पन्न करता आ रहा था जो आधुनिकी करण एवं पुनः संगठित की प्रक्रिया से गहरे जुड़े हुये हैं, इसमें ऐसे श्रम बल की आवश्यकता थी जो अधिक पढ़े लिखे हों अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बेरोजगार देश के सामाजिक आर्थिक विकास में बहुत बड़े बाधक है, भविष्य में उनके प्रति आशान्वित होने के कारण हैं।

7.11 शब्दावली

बेरोजगारी – जब कोई व्यक्ति कोई काम करने के लिये जिसको करने के वह योग्य है, नहीं प्राप्त करता है उसे बेरोजगारी कहते हैं।

7.12 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1 ———————— वह स्थिति है जिसमें लोग उनकी योग्यता एवं काम करने की इच्छा के बावजूद भी बिना किसी नौकरी के होते है।

2 ऐसी स्थिति, जहाँ लोग नियोजित दिखते तो है, किन्तु उत्पादन में, उनका योगदान उनकी क्षमता से कम है, जो काम वे लोग प्रतिदिन साधारण छोटे काम करके कर सकते है, को ——————— कहा जाता है।

3 ————— रोजगार को संरचनात्मक रोजगार के नाम से भी जाना जाता है।

4 शहरी भारत की विशेषता है———————— लोगों के मध्य रोजगार की ऊंची दर होना।

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 बेरोजगारी 2 प्रच्छन्न रोजगार 3 खुला 4. शिक्षित

7.14 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में बेरोजगारी के विभिन्न आकलनों का परीक्षण कीजिए ।
2 अनुपयुक्त तकनीक से आप क्या समझते हैं ?
3 रोजगार सापेक्षता की वृद्धि क्या है ?
4 भारत में बेरोजगारी के कारणों को लिखिये ।
5 भारत की ग्यारहवीं योजना के अन्तर्गत बनायी गयी रोजगार नीति की विशेषणात्मक व्याख्या कीजिए।

6. भारत में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने वाले उपायों का वर्णन कीजिए।
7 भारत में विभिन्न प्रकार के बेरोजगारी के प्रकारों की की व्याख्या कीजिए।
8 ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगारी के मध्य अन्तर स्थापित करने वाली विशेषताओं को लिखिए।

7.15 संदर्भ पुस्तकें

1 योजना आयोग – 9 वीं 10 वी एवं 11 वीं योजना, भारत सरकार ।
2 आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार
3 भारतीय विकास प्रतिवेदन 2011
4. विश्व विकास प्रतिवेदन 2009–2010
5 एशियन ड्रामा वाल्युम 11 गनर मीडल
6. इंडियन इकोनॉमी, मिश्रा एंड पुरी, 2009, हिमालय पब्लिकेशन, मुंबई।
7 इंडियन इकोनॉमी, सदार दत्त एवं के पी एम सुंदरम, एस चाँद एंड कंपनी लिमिटेड, नयी दिल्ली।
8 द इंडियन इकॉनामी एनवायरनमेंट एंड पालिसी, ईश्वर सी. धींगरा, सुल्तान चाँद एण्ड संस, न्यू दिल्ली।
9 विश्व विकास प्रतिवेदन, 2009
10 राजकृष्ण ''द ग्रोथ ऑफ एग्रीगेट अनएम्प्लॉयमेन्ट इन इंडिया – ट्रेन्डस, सर्विसेज एण्ड मैक्रोइकॉनामिक पालिसी ऑपशन्स'' वर्ल्ड बैक स्टॉफ वर्किंग पेपर, नंबर 638 (वाशिंगटन, डी.सी.) 1984
11 एम.ब्लॉक, पी.आर.जी., लायर्ड एंड एम वुडहॉल, ' द कॉलेज ऑफ ग्रजुएट अनएम्पालॉयमेन्ट इन 'इंडिया' (लंदन, 1969)
12 शकुन्तला मेहरा ' सरप्लस लेबर इन इंडियन एग्रीकल्चर, इंडिया इकॉनॉमिक रिव्यु, अप्रैल, 1966, वाल्युम!
13 डब्ल्यू ए. लुईस, द थ्योरी ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ (लंदन, 1955)
14. ''सी एजी रिपोर्ट आन नरेगाः फैक्ट एंड फिशन,'' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जून 21, 2008
15 सी.पी. चन्द्रशेखर एंड जयंती, घोष, द मार्केट दैट फेल्ड–ए डिकेड ऑफ न्यूलिबरल इकोनॉमिक रिफार्म्स इन इंडिया' (नयी दिल्ली, 2002)
16 सेन्ट्रल स्टेटिस्टिकल आर्गनाइजेशन (2010) क्विक एस्टीमेट्स ऑफ नेशनल इनकम, कंजम्पशन एक्सपेडडीचर, सेविंग एंड कैपिटल फार्मेशन 2008–09, नयी दिल्ली, मिनिस्ट्री ऑफ स्टै टिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इंटलीमेन्टेशन भारत सरकार ।
17. डिसूजा ई (2008) सेल्फएम्प्लायमेन्ट एंड ह्यूमन केपिटल इंडिया जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, 51(4)
18 घोष, ए.के. (2004) द एम्प्लायमेन्ट चैलेंज इन इंडिया', इकोनॉमिक एड पालिटिकल वीकली 39(48)
19 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (प्स्व) (1997–98) वर्ल्ड एम्प्लायमेन्ट नेशनल पालिसीज इन ग्लोबल कन्टैक्सट, जिनेवा।
20 महेन्द्र देव एस (2008), 'एप्प्लायमेन्ट, ट्रेन्डस, इश्यूज एंड पालिसीज इन इन्क्ल्यूजिव ग्रोथ इन इंडिया, पृष्ठ 167, 200, नयी दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

21 आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार 2010–11

22 लकड़ावाला डी.टी. 'ग्रोथ, अनएम्प्लयायमेन्ट एंड पवर्टी,

23 रूद्रदत्त, राइट टू वर्क– द इकोनॉमिक इम्पलीकेशंस, इकोनॉमिक टाइम्स, अप्रैल 7, 1990.

24 योजना आयोग (2001) रिपोर्ट ऑफ टास्क फोर्स आन एम्प्लॉयमेन्ट अपारचुनिटीज।

25. योजना आयोग (2006) 'टुवर्डस फास्टर एंड मोर इन्क्लूजिन ग्रोथ। एन एप्रोच टू द 11 वीं फाइव ईयर प्लान' दिसंबर 2006 ।

———

इकाई 8 मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु
8.3 मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सामंजस्य
8.4 भारत का जनसांख्यिकीय परिदृश्य
8.5 जनसांख्यिकीय परिवर्तन के सिव्द्धान्त एवं इसकी प्रासंगिकता
8.6 आर्थिक संवृद्धि एवं मानव विकास पर इसका प्रभाव
8.7 आर्थिक विकास पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 बोध प्रश्न
8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.12 स्वपरख प्रश्न
8.13 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आर्थिक विकास के विशिष्ट संदर्भ के साथ मानव संसाधन की व्याख्या कर सकें।
- मानव संसाधन के आर्थिक विकास के साथ संबंधों की व्याख्या कर सकें।
- आर्थिक विकास पर जनसंख्या संवर्धन के प्रभाव की व्याख्या कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

देश में आर्थिक विकास की उन्नति एवं उत्पत्ति में मानव संसाधन विशेष भूमिका अदा करता है, वास्तव में , यह पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त संसाधनों – प्राकृतिक, शारीरिक, मानव एवं वित्तीय तथा इस संदर्भ में अधिक से अधिक योगदान के मिले जुले प्रयासों का परिणाम है। इस बात की पुष्टि आसानी से की जा सकती है कि जब समस्त संसाधन अर्थव्यवस्था के विकास में एक मार्गी सहयोग रहता है, मानव संसाधन आर्थिक विकास की गाड़ी को अधिक बल लगाकर दोहरी भूमिका अदा करने को प्रेरित करता है। दोहरी भूमिका में पहली है– संसाधन, के रूप में, लोग उत्पादन के साधन के बतौर उपलब्ध हैं जो अन्य कारकों के साथ मिलकर काम करने के लिये उपलब्ध हैं और दूसरे, उपभोक्ता के रूप में, मनुष्य वस्तुआं एवं सेवाओं की मांग करता है जो उत्पादन की मुख्य पूर्व शर्त के रूप में रहती है और आर्थिक विकास की नींव रखती है। इससे मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सामंजस्य की उत्पत्ति होती है। जैसे, जब मानव संसाधन, उदाहरणार्थ लोग आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान करते हैं, आर्थिक विकास का मौलिक उद्देश्य है व्यक्तियों का अधिकाधिक आर्थिक कल्याण सेवा ।

अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मानव संसाधन जनंसख्या प्रतीक है जो विशिष्ट संदर्भों में अर्थव्यवस्था के उपलब्ध कार्य बल के रूप में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करते हैं। यह तथ्य समाने आता है कि देश के आर्थिक विकास में जनसंख्या की मात्रा महत्वपूर्ण

निर्धारक है। यह आवश्यक नहीं है कि बड़ी संख्या में जनसंख्या आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान करें, बड़ी संख्या में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, जनसंख्या वृद्धि का रूप ले सकती है। आगे, यादि अन्य संसाधन उपयुक्त आकार में उपलब्ध नहीं है, अधिक मात्रा में श्रमबल आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हो सकता है। इस अध्याय में, हम मानव संसाधन की भूमिका अध्ययन करेंगे, आर्थिक विकास को मजबूत बनाने वाले संसाधनों का भी अध्ययन इस अध्याय में करेंगे, विशेषरूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, जो विश्व की प्रगतिशील अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि भी है ।

8.2 कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु

जब इस इकाई में वर्णित विषय वस्तु से संबंधित विभिन्न मुद्दों का विश्लेषण एवं परीक्षण करेंगे, आपको कुछ बिन्दु मिलेंगे जिनकी व्याख्या की जानी आवश्यक है। इन बिन्दुओं में से कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को आगे समझाया गया है।

आर्थिक संवर्धन बनाम आर्थिक विकास :– आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास की सीमाओं के मध्य एक रेखा खींचना तर्कसंगत होगा। सामान्यतया तथा आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि को एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द के रूप में माना जाता है किन्तु आधुनिक अवधारणा दोनों के मध्य अन्तर स्थापित करते हुये कुछ विशिष्ट बिन्दुओं पर प्रकाश डालती है। आर्थिक वृद्धि का अर्थ वस्तुओं एव सेवाओं के उत्पादन में सही मायने में वृद्धि से है, जो लंबे काल तक रहती है, जिसे वर्धित मूल्य की शर्तों पर मापा जाता है। आर्थिक विकास वृद्धि की प्रक्रिया है जिसमें उपयोगिता की मात्रा एवं देश में उत्पन्न संसाधनों के उत्पादन में वृद्धि होती है। जिससे समुदाय का आर्थिक कल्याण होता है और राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है। अतः जहां आर्थिक वृद्धि अर्थव्यवस्था की भौतिक निधि की मात्रा पर ध्यान केन्द्रित करती है एवं राष्ट्रीय आय में वास्तविक वृद्धि के रूप में अभिव्यक्त करती है, विशेष रूप से सकल घरेलू उत्पाद के मामलों में, यह आर्थिक वृद्धि कहलाती है, आर्थिक विकास में सम्मिलित हैं क्रियाशील क्षमता में परिवर्तन, शारीरिक सामंजस्य एवं पर्यावरण में परिवर्तन लाने की क्षमता। निरंतर आर्थिक वृद्धि के परिणाम सवरूप मानव कल्याण के विभिन्न आयामों में गुणवत्ता पूर्वक परिवर्तन गरीबी कम करने या हटाने, असमानता, बेरोजगारी, राजनीतिक एवं सामाजिक समानता को बढ़ाने एवं शोषण , डर आदि से स्वतंत्रता के रूप में होता है। अतः:–

आर्थिक वृद्धि – उत्पादन में वृद्धि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में । (मात्रात्मक दृष्टिकोण)

आर्थिक विकास :– उत्पादन में वृद्धि के साथ आर्थिक कल्याण में वृद्धि (गुणात्मक दृष्टिकोण)

यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ आर्थिक विकास के मुख्य सूचक उत्पादन और राष्ट्रीय आय के सूचकांक हैं आर्थिक विकास को आर्थिक वृद्धि की समस्त संपत्तियों एवं राष्ट्र के लोगों के आर्थिक कल्याण के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।

मानवीय साधनः– मानव संसाधन उन व्यक्तियों का समूह है जो किसी संगठन या अर्थव्यवस्था के लिये श्रम का निर्माण करते है। मनुष्यों की उन संपत्तियों का संदर्भ लिया जा सकता है जो किसी संगठन, समुदाय या राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया को सहायता देने में बिचौलिये का काम करते हैं। मानव संसाधन दो मुख्य भूमिकाओं में काम करते है :–

(अ) उत्पादक के घटक के रूप में :– एक ओर, मानव संसाधन, श्रम, उपलब्ध कराते हैं जो उत्पादन का एक महत्वपूर्ण घटक है। एवं दूसरी ओर, वे उद्यमिता उपलब्ध कराते है जो देश की समृद्धि का श्रम की तरह ही महत्वपूर्ण तंत्र है।

(ब) उपभोग इकाई के रूप में :– मनुष्य वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग के मुख्य स्त्रोत है एवं जैसे अधिक संख्या में मनुष्य उदाहरण स्वरूप व्यवसाय एवं देश में प्रचलित अन्य गतिविधियों के

आकार प्रकार एवं गठन को सुनिश्चित करने में जनसंख्या महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है जिसके परिणाम स्वरूप ही आर्थिक उन्नति की दिशा एवं दशा सुनिश्चित होती है।

मानव पूंजी :– शब्द मानव पूंजी की सर्वोत्तम व्याख्या व्यक्तियों की गुणवत्ता उनके कौशल, दक्षता, धैर्य, ज्ञान, अनुभव, कलात्मकता, नैतिकता एवं रवैये के रूप में पहचान कर की जा सकती है, यह समस्त गुण मनुष्य में जन्मजात हो या शिक्षा एवं स्वास्थ्य के माध्यम से प्राप्त किये हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसे दक्षताओं, ज्ञान, सामाजिक एवं व्यक्तित्व निर्माण के भंडारण का भी नाम दिया जा सकता है, इसमें ऐसा व्यक्तित्व भी सम्मिलित है जो श्रमिक के रूप में कार्य करने योग्य भी हो, ताकि आर्थिक उपयोगिता उत्पन्न की जा सके। आधुनिक तकनीकी अवधारणा के अन्तर्गत मानव पूंजी से तात्पर्य सम्पूर्ण मानव क्षमताओं एवं भौतिक संपत्तियाँ, जो वस्तुएं एवं सेवाएं उत्पादित करते हैं, दोनों का ही समान वृद्धि के लक्ष्य से है। साक्षरता दर, कम्प्यूटर साक्षरता, शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय, उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं, स्वास्थ्य पर प्रतिव्यक्ति द्वारा व्यय, स्वच्छ पीने के पानी की उपलब्धता एवं बिजली आदि की उपलब्धता के आधार पर मानव पूंजी को परखा जा सकता है।

इस अध्याय में प्रयोग में लाये गये कुछ मुख्य बिन्दुओं से अवगत होना होगा। अब हमें मानवीय साधन एवं आर्थिक विकास के मध्य संबंधों के विभिन्न आयामों की व्याख्या करनी होगी।

8.3 मानवीय संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सामंजस्य

आर्थिक विकास अर्थव्यवस्था की यात्रा का अतिम गंतव्य है जिसका प्रारंभ उत्पादन में निरंतर वृद्धि से होता है किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि उत्पादन के पारंपरिक कारकों की मात्रा में परिवर्तन का कारक उत्पादन के छोटे से हिस्से में वृद्धि है। अवशिष्ट विकास की व्याख्या श्रम की गुणवत्ता में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा किया जाना चाहिये, श्रम की गुणवत्ता मानवीय साधनों के विकास के द्वारा की जाती है। नये–नये विकसित देश जैसे थाईलैंड,हॉगकॉग, दक्षिणी कोरिया एवं सिंगापुर के ताजा उदाहरण अर्थव्यव्यवस्था के संपूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करते हे। इन सभी देशों द्वारा मानव संसाधन के विकास पर जोर देते हुये उनके चारों ओर एकत्रित एक समान रणनीति अपनायी गयी। यद्यपि यह सिद्ध करने के लिये उपयुक्त साक्ष्य हैं कि पूंजी आवश्यक है किन्तु विकास की उपयुक्त शर्त नहीं है, मानव संसाधन की आवश्यकता हैं किन्तु विकास के लिये उपयुक्त शर्त नहीं है, एवं यह दोनों एक दूसरे के पूरक है । किन्तु बाद में जिन अनुभवों का अनुसरण किया गया (1980 एवं 1990 के दौरान) प्रमुखता से सुझाव देते हैं कि जो देश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ;प्डथ्द्ध के दिशा निर्देशों द्वारा प्रशासित थे एवं आर्थिक स्थिरता एवं संरचनात्मक समायोजन के कार्यक्रमों पर केन्द्रित थे, कर्ज संकट के विरूद्ध मजबूती से आने में असफल हो गये। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, इन अर्थव्यवस्थाओं ने अपने ही सुधार रूपी हथियारों का विपरीत असर डाला। उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि यदि आर्थिक विकास के सामाजिक परिप्रेक्ष्य पर ध्यान दिया जाए तो स्थितियाँ बेहतर हो सकती हैं। बाद में ''मानव मुख'' के साथ कार्यक्रमों के सामायोजन के आग्रह ने विकास प्रक्रिया में मनुष्य की भूमिका की अवधारणा पर ध्यान देते हुये विकास के मुद्दों पर चर्चा करने हेतु एक तत्काल प्रेरित किया ।

अनुभवों से यह ज्ञात होता है कि मानवीय साधनों का विकास आराम में कमी लाने के लिये एक प्रभावी साधन है जो शायद अधिक से अधिक लाभ की प्रक्रिया में रोक लगा सकता है। यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि मानव संसाधन एक वृहद अवधारणा है एवं इसके बहुत सारे अवयव मानव पूंजी की धारणा से अविमोचनीय रूप से जुड़े हुये हैं। इस प्रकार, जिस सीमा तक मानव

संसाधन मानव पूंजी से जुड़े हुये है, उस सीमा तथा आर्थिक विकास पर मानवीय साधनों का प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार मानवीय साधनों एवं आर्थिक विकास के मध्य पारस्परिक आश्रम के सिद्धान्त के अस्तित्व के विषय में शायद ही कोई संदेह हो, परन्तु तीव्रता का स्तर जिस पर यह दोनों एक दूसरे पर असर डालते है, धीरे–धीरे भिन्न होता है। सर्वप्रथम हमें मानव संसाधनों की वृद्धि में आर्थिक विकास के परिणामों पर विचार करना चाहिये। जबकि तथ्य यह है कि आर्थिक विकास से मानवीय साधनों की गुणवत्ता में विस्तृत रूप में सकारात्मक परिवर्तन आते हैं, ऐतिहासिक रूप से भी सिद्ध तथ्य यह है कि आम तौर पर आर्थिक विकास में बहुत सारी सामाजिक बुराईयाँ हैं जो मानवीय साधनों की क्षमता को बिगाड़ती हैं। बेरोजगारी, अमीर एवं गरीब के मध्य बढ़ती हुई दूरी एवं रातों रात अमीर होने की इच्छा के कारण ढेरों अपराध जन्म लेते हैं। यह सभी कारक देश के तीव्रतम औद्योगीकरण से जुड़े हुये हैं जबकि यह माना जाता है कि आर्थिक विकास के लिये सबसे महत्वपूर्ण पूर्व शर्त है औद्योगिकरण । औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप बड़ी तादाद में जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से आकर औद्योगिक शहर में जीवन यापन के अवसरों को खोजते हुये बस जाती है। स्वेच्छा से विस्थापित लोगों के आश्रय की आपूर्ति एवं उनकी मांग के मध्य खाली जगह बढ़ती जाती है।

मलिन बस्तियों के विस्तृत क्षेत्र एवं अस्वास्थ्यकर निवास के लिये यह मांग एवं आपूर्ति के मध्य असंतुलन ही जिम्मेदार है, जिससे बहुत सारी बीमारियां होती हैं, उनमें से बहुत को वास्तव में हटा पाना कठिन है। धनी लोगों की अत्यन्त विलासिता पूर्ण जीवन शैली, उन लोगों के मन में जो झुग्गियों, चालों एवं अस्थिर घरों में रहते हैं निराशा एवं उदासी का भाव लाती है, यह सब उनकी पहुँच के बाहर है, यह उनके सामने एक बहुत बड़ा सपने जैसा है। यह निराशा उनके दिमाग में उच्च श्रेणी के लोगों के विरूद्ध गलत भावनाएं लाती है कि यह धनी लोग उन्हें कम मजदूरी देकर अमीर होते आ रहे हैं और संसाधन पूर्ण होते जारहे हैं। किन्तु, यदि हम समस्या के मूल में जाएं, हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि इस तबाही का दोष योजनाकारों के कंधों पर ज्यादा है न कि औद्योगीकरण पर। यह धारणा इस तथ्य की दृष्टि से सही है कि सामाजिक समस्याओं का सर्वोत्तम एवं आर्थिक समाधान तभी संभव है जब प्राथमिक स्तर पर आर्थिक विकास किया जाए। एक बार जब अपराध की जड़ें गहरी हो जाती हैं, तो उसे समूल नष्ट करना बहुत कठिन हो जाता है।

अब, आपको यह समझ आ गया होगा कि मानवीय साधनों की गुणवत्ता एवं मात्रा पर आर्थिक विकास के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़ते हैं। अब हम इस बात का परीक्षण करेंगे कि किस सीमा तक मानव संसाधन आर्थिक विकास के पहलुओं को प्रभावित करते हैं। यहाँ यह तर्कसंगत होगा कि जनसंख्या वृद्धि के आकार एवं प्रकार पर स्पष्ट नजर रखी जाए। जनसंख्या की संरचना एवं व्यावसायिक वितरण पर नजर रखना भी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के लिये उतना ही सुसंगत है।

8.4 भारत का जनसांख्यिकीय परिदृश्य

अध्ययन के इस भाग में, हम भारतीय जनसंख्या के विभिन्न अवयवों एवं विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे ।

(अ) जनसंख्या वृद्धि दरः–जनसंख्या वृद्धि के आकार का आंकलन करना या मापना एक डलिया में रखे हुये मेढकों की गिनती करने के समान है । जब ऐसा कर रहे हों, आपको विभिन्न घटकों पर विचार करना होता है। जनसंख्या वृद्धि दर जन्मदर, मृत्युदर एवं देश में प्रव्रजन का परिणाम होता है। कुल प्रवास के आधार पर जनसंख्या में बदलाव आप्रवासन एवं प्रवासी में मध्य अन्तर) नगण्य हैं

और फिर उन्हें नज़र अंदाज भी किया जा सकता है। एक विशिष्ट काल में (एक साल में) जनसंख्या वृद्धि दर को उस समय सीमा में जनसंख्या वृद्धि के प्रतिशत के आधार पर मापा जाता है। एक उदाहरण लेकर समझते हैं। मान लो कि एक शहर की जनसंख्या प्रारंभिक वर्षों में 12,00,000/— थी जो वर्ष के अन्त तक बढ़कर 12,15,000/— तक पहुँच गयी। अब प्रारंभिक वर्षों की जनसंख्या को वर्ष के अन्त की जनसंख्या में से घटा देंगे। इस उदाहरण में, यह ऐसे होगा— 12,15,000— 12, 00,000/— = 15,000। अब मूल जनसंख्या को बची हुई संख्या से भाग देंगे। इस मामले में ऐसा होगा—

1500 /12,00,000 = .125

अब दशमल को 100 से गुणा करने पर यह प्रतिशत में बदला जायेगा (उदाहरण के लिये -125 x 100 = 12.5 प्रतिशत) इस प्रकार वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर निकालने का सूत्र इस प्रकार होगा :—

$$PR = \frac{(PPoP - PaPoP)}{PaPoP} \times 100$$

जहाँ – PR प्रतिशत दर

– PPoP वर्तमान जनसंख्या

– PaPoP बाद की जनसंख्या

इसे विशिष्ट समय सीमा के दौरान समय के प्रारंभिक काल में कुल जनसंख्या में वृद्धि एवं कमी के अनुपात के रूप में भी मापा जा सकता है। यह जन्मदर (जन्म x 1000/ कुल जनसंख्या के रूप में मापा जायेगा) एवं मृत्यु दर (मृत्यु x 1000 / कुल जनसंख्या के रूप में मापा जायेगा) एवं मृत्यु दर के मध्य अन्तर पर आधारित होता है।

(ब) भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति या रवैया :—

भारतीय जनांकिकी का इतिहास बताता है कि 2011 में भारत की कुल जनसंख्या 1.2/ बिलियन थी, जिसमें वार्षिक वृद्धि दर 1.41 प्रतिशत जन्मदर प्रति हजार व्यक्तियों पर 22.22 एवं मृत्यु दर प्रति 1000 पर 6.4 था, पूरे साल के दौरान जनसंख्या वृद्धि में अन्तर प्रति हजार पर 13.22 था। भारत में जनसंख्या वृद्धि के इस झुकाव को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है:—

सारणी – 1 भारत में जनसंख्या में दशकीय वृद्धि दर्शाती हुयी।

वर्ष	कुल जनसंख्या	दशकीय वृद्धि दर प्रतिशत
1951	361088000	–
1961	439235000	21.60
1971	548160000	24.0
1981	683329000	24.7
1991	846387888	23.9
2001	1028737436	21.9
2011	1210193422	17.6
2012	1.22 बिलियन	–

आपने ध्यान दिया होगा कि भारत में जनसंख्या वृद्धि दर 1971 से लगातार कम हो रही है। 2001–11 के दशक में भारतीय जनसख्या 17.64 प्रतिशत कम हो गयी। नीचे दी गयी सारणी 1995 से भारत में जनसंख्या वृद्धि दर को दर्शा रही है।

सारणी 2 वार्षिक वृद्धि दर 1995 से

वर्ष	प्रतिशत बदलाव
1995	1.97
1996	1.93
1997	1.92
1998	1.94
1999	1.82
2000	1.86
2001	1.93
2002	1.53
2003	1.53
2004	1.58
2005	1.53
2006	1.49
2007	1.42
2008	1.40
2009	1.38
2.10	1.41
2011	1.08

यह तथ्य कि 1934 में भारत की जनसंख्या केवल 350 मिलियन थी बढ़कर 2001 में 1.02 बिलियन हो गयी, एवं 2012 में 1.22 विलियन का आंकड़ा भी छू लिया, इससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि इस दौरान भारतीय जनसंख्या कितनी तेजी से बढ़ी।

आज भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश है। जबकि विश्व का 2.4 प्रतिशत भूमि उपलब्ध है, यह विश्व के 17.5 प्रतिशत लोगों को आश्रय देती है और 2025 तक सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश होने की संभावना है। 2010 में इसकी जनसंख्या वृद्धि दर 1.41 प्रतिशत के साथ वैश्विक स्तर पर 102 में स्थान पर था। भारत का वर्तमान जनसंख्या वृद्धि दर, प्रतिवर्ष 16 मिलियन से अधिक भारतीयों के साथ बढ़ जाता है, 2016 तक एक जब में लगभग 18 मिलियन तक वृद्धि की संभावना है।

8.5 जनसांख्यिकीय परिवर्तन के सिद्धान्त एवं इसकी प्रासंगिकता

जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के लिये उतनी हानिकारक नहीं है जितनी यह राष्ट्रीय उत्पादन में भी बराबरी से सहायक है। यह श्रम बल के आकार एवं कुल जनसंख्या के अनुपात पर निर्भर करता है। यदि देश की जनसंख्या का सटीक अनुपात वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में श्रम का योगदान आर्थिक विकास के लिये करता है, तो इस संदर्भ में जनसंख्या वृद्धि सकारात्मक है और यदि इसके विपरीत, जनसंख्या में तो वृद्धि हो रही है और इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा, उत्पादन में भागीदारी न करके कवेल उपभोग वृद्धि करता है, तो अर्थव्यवस्था को विकसित करने हेतु किये गये प्रयास निरर्थक सिद्ध होंगे । उदाहरण के लिये, भारत में, अधिकांश संसाधनों का उपयोग बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जा रहा है, जनसंख्या का एक छोटा सा हिस्सा ही

उत्पादन के कार्य में लग रहा है। यह नहीं होना चाहिये था, भारतीय अर्थव्यवस्था को आज की अपेक्षा और अधिक तेज गति से बढ़ना होगा। इसको हल्के में ही लिया जाना चाहिये कि बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के लिये हानिकारक है।

आधुनिक समय में, आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि के मध्य संबंधों पर गहन अनुसंधान किया जा रहा है। इन अध्ययनों में एक बहुत प्रसिद्ध अध्ययन जो कि फ्रेंक नोट्सटीन के द्वारा किया गया था जिन्होंने इसे जनसांख्यिकीय परिवर्तन के सिद्धान्त नाम दिया, यह विकासशील देशों के वास्तविक अनुभवों पर आधारिता था। यह सिद्धान्त मृत्यु एवं जन्मदर का जो आर्थिक विकास से गहनतम रूप से जुड़े हुये हैं, का त्रिस्तरीय परीक्षण करता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, पहले स्तर पर देश की सबसे पिछड़ी स्थिति आती है जिसमें औद्योगिक विकास बिल्कुल न के बराबर है एवं भूमि एवं कृषि विस्तार महत्वपूर्ण है। इस स्तर पर, सर्वव्याप्त अशिक्षा की मौजूदगी के कारण जन्म दर बहुत ऊंचा था, परिवार नियोजन की तकनीकों के प्रति जागरूकता नहीं थी, जल्दी विवाह की परंपरा थी, एवं इस बात पर दृढ़ एवं पूर्ण विश्वास था कि परिवार की संख्या में वृद्धि भाग्य या तकदीर का खेल है। कुपोषण, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण मृत्यु दर भी बहुत अधिक थी। जीवन की मौलिक आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान के लिये मानव जीवन को बहुत भुगतना पड़ता था। इस स्तर पर महामारियाँ आम बात थीं, और इन पर नियंत्रण बहुत कठिन था और जिसकी वजह से बड़ी संख्या में मृत्यु होती थीं। जन्म एवं मृत्यु दोनों ही दर बहुत ऊंची थीं, जनसंख्या वृद्धि या तो स्थिर थी या बहुत धीमी थी।

देश की उच्च वृद्धि क्षमता जो पहले स्तर पर अशोषित रह गयी थी, उसका दूसरे स्तर पर उपयोग किया गया, लोगों की आय का स्तर बढ़ने लगा। इससे जीवन यापन के अच्छे अवसर प्राप्त होने लगे। पर्याप्त भोजन, आश्रय एवं कपड़े अच्छे स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी सुविधाओं की प्राप्ति से मृत्यु दर विशेष रूप से शिशु मृत्यु दर पर नियंत्रण किया गया। अब भी, जन्मदर ऊंचा था क्योंकि जन्मदर की वृद्धि के लिये उत्तरदायी कारकों को रातों रात समाप्त नहीं किया जा सकता था। बड़ी संख्या में निरक्षरता एवं परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता का अभाव अब भी विद्यमान था और इसी कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ती चली गयी। इस स्तर पर जन्म दर समान्यतया प्रति हजार पर 35 से 40 थी, जबकि मृत्यु दर गिरकर प्रति हजार लगभग 15 हो गयी थी। परिणाम सवरूप, जनसंख्या वृद्धि वार्षिक लगभग 2 प्रतिशत या अधिक हुई, विशेष रूप से ऐसे देश में जहां आर्थिक वृद्धि दर बहुत लंबे समय तक के लिये अपर्याप्त थी, जनसंख्या का बड़ा हिस्सा फिर से गरीबी रेखा से नीचे आ गया, ऐसे में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

जनसांख्यिकीय परिवर्तन की तीसरी एवं आखिरी स्तर पर, भी जनसंख्या वृद्धि दर जन्म दर घटने के कारण बहुत कम थी। देश ने औद्योगिक देश की प्रास्थिति प्राप्त कर ली। औद्योगीकरण के कारण शहरीकरण का विस्तार हुआ, जिसके कारण विविधता की स्थिति उत्पन्न हुई एवं वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग बढ़ने लगी एवं उनकी आपूर्ति थोड़े समय के लिये अलोचपूर्ण थी, कीमतों में वृद्धि होने लगी, जीवनयापन की कीमतें भी बढ़ गयी। शहर में रहने वालों के लिये मकान एक जटिल समस्या थी, जिसमें परिवार के बढ़ते आकार की ओर रूझान में परिवर्तन कर दिया। शिक्षा की बढ़ती हुई कीमतों ने भी परिवार के आकार छोटे कर दिये।

भारत में जनसांख्यिकीय परिवर्तन की वर्तमान स्थितिः–

20 वीं शताब्दी तक, भारत जनसांख्यिकीय परिवर्तन के मध्य में था। शताब्दी के प्रारंभ में, स्थानिक रोग, सामयिक महामारियाँ एवं अकाल के कारण मृत्यु दर बहुत ऊंची हो गयी एवं उच्च

जन्म दर के मध्य असंतुलन कठिन हो गया। 1911–1920 के मध्य जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही समान थे– प्रति हजार जनसंख्या पर लगभग 48 जन्म एवं 48 मृत्यु होती थीं। आरोग्यकर एवं निवारक औषधियों की वृद्धि के प्रभाव ने मृत्यु दर में कमी ला दी। 1990 के मध्य तक निर्धारित जन्मदर प्रति हजार पर गिरकर 28 हो गयी, जबकि निर्धारित मृत्यु दर गिरकर लगभग प्रति सौ पर 10 हो गयी। भारत की जनसंख्या का भविष्य विन्यास इस बात पर निर्भर था कि जन्म दर क्या होगी। यहां तक कि आशावादी भी यह अनुमान नहीं लगा पा रहे थे कि जन्म दर आगे भविष्य में कितनी कम होगी।

भारत के आंकड़े बताते हैं कि जनसंख्या में बहुत अधिक मात्रा में वृद्धि के साथ जनसंख्या घनत्व में समन्वित रूप से वृद्धि हुई। 1901 में, प्रति स्क्वेयर किलोमीटर पर भारत में 77 व्यक्ति थे, 1981 में प्रति स्क्वेयर किलोमीटर 216 व्यक्ति रहने लगे एवं 1991 में यह संख्या बढ़कर 267 व्यक्ति (जनसंख्या घनत्व 1981 से अब तक 25 प्रतिशत) हो गया। अविश्वसनीय किन्तु सच देश का औसत जनसंख्या घनत्व किसी अन्य राष्ट्र की तुलना में कही अधिक था।

8.6 आर्थिक वृद्धि एवं मानव विकास पर इसका प्रभाव

सूक्ष्म स्तर पर, मानव विकास के मार्ग में वृद्धि हेतु व्यक्ति एवं घरेलू खपत एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है एवं यह लोगों की वास्तविक आवश्कयताओं पर सरकारी कार्यक्रमों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक प्रतिक्रिया दे सकता है। केवल उन्हीं वस्तुओं की जो मानव विकास में मुख्यतः सहयोग देते हो केवल उन्हीं की व्यक्तिगत खपत नहीं हो सकती। समाज में जहां स्त्री का परिवार में अधिक योगदान होता है एवं घरेलू निर्णयों पर अधिक प्रभाव है, मानव विकास से संबंधित सामानों पर किया गया व्यय अधिक उच्च है। 1990 में गार्सिया द्वारा किया गया अध्ययन बताता है कि कैलोरी एवं प्रोटीन की खपत प्रत्यक्षतः स्त्री की आय में हिस्सेदारी बढ़ाती है।

अति सूक्ष्म स्तर पर, आर्थिक वृद्धि से बढ़ी हुई आय के वितरण का मानव विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब से गरीब से गरीब परिवार अपनी आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा उन वस्तुओं पर खर्च करना शुरू करेंगे जिसका सीधा असर स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक वृद्धि पर पड़ता है, जिसके लाभ प्रत्यक्ष रूप से गरीब को मिलते हैं, उसका मानव विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, खाद्य वस्तुओं एवं शिक्षा पर व्यय बढ़ने से मानव विकास में बनी वृद्धि होगी।

इसके अतिरिक्त, सरकार के मानव विकास व्ययों पर आर्थिक वृद्धि के प्रभाव का असर ही है कि ये निजी व्यय को पूरक करने हेतु बाध्य हैं। आनंद और रेविलियन (1993) का अध्ययन बताता है कि मानव विकास पर अधिकांश आर्थिक वृद्धि के प्रभाव सरकार की बजट संबंधी व्यय के द्वारा गति में आते हैं फिर यह खर्च केन्द्रीय हों या स्थानीय इस प्रभाव की मजबूती प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित व्यय के प्रभावी होने पर निर्भर करती है। सरकार को प्राथमिक क्षेत्रों जैसे प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य को चिन्हित कर लेना चाहिये जिसमें मानव संसाधनों में वृद्धि हेतु सर्वाधिक क्षमता है। मानव संसाधनों के विकास पर सरकारी खर्च कम आय वाले समूहों एवं क्षेत्रों के लिये पहले से ही आवंटित एवं वितरित होना चाहिये, जिसमें सुधार का व्यापक क्षेत्र है।

1 आर्थिक वृद्धि से तात्पर्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में आवश्यक मात्रा में वृद्धि से है जिसे राष्ट्रीय उत्पाद /आय प्रतिव्यक्ति के आधार पर मापा जाता है। आर्थिक विकास, दूसरी ओर, वह स्थिति है जहां एक देश की राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ अर्थव्यवस्था के संख्यागत एवं संरचनात्मक ढाँचे में परिवर्तन होता है।

2 देश के वे लोग जो श्रम बल का निर्माण करते हैं, जों उत्पादन के लिये श्रम देते हैं, वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ाते है, नये व्यवसाय संस्थानों का आरंभ, उन्नति, एवं विकास एक उद्यमी के रूप में करते हैं, उन्हें मानव संसाधन के नाम से जाना जाता है।

3 मानव संसाधन जिसमें कौशल, समझ–बूझ, शिक्षा, ज्ञान एवं अनुभव सम्मिलित हैं की समस्त गुणात्मक सम्पत्तियों का मिश्रण ही मानव पूंजी है। इनमें से कुछ जन्मजात हैं व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानव पूंजी में सम्मिलित हैं– चरित्र, नैतिक मूल्यों का आदर, व्यक्तित्व, रचनात्मकता एवं मनुष्यों में सकारात्मक रवैया जो उन्हें ऊंचे स्तर की श्रम उत्पादकता एवं उद्यमिता में योगदान करने हेतु स्पष्ट रूप से सक्षम बनाता है और जिसका परिणाम अर्थव्यवस्था में वृद्धि होता है।

8.7 आर्थिक विकास पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव

मानव विकास में सीमित मात्रा में उन्नति के साथ बढ़ती हुई जनसंख्या लाभ की अपेक्षा एक दायित्व बन सकता है। 2030 तक भारत में अनुमानित शहरी जनसंख्या संपूर्ण जनसंख्या का लगभग 72 प्रतिशत तक पहुंच जायेगा। अतः 3.6 मिलियन मकानों की अतिरित आवश्यकता के रूप में होगी। प्रत्येक वर्ष नये 66000 प्राथमिक विद्यालय खुलने की आवश्यकता होगी। बढ़ती जनसंख्या की भूख को संतुष्ट करने के लिये कम से कम 3 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता होगी। आर्थिक विकास जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का परीक्षण निम्नलिखित मदों द्वारा किया जा सकता है:–

(अ) **प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभाव** :– प्राकृतिक संसाधन वह संसाधन है जो इस पृथ्वी पर जीवित व्यक्तियों को प्रकृति का उपहार हैं– भूमि, जल, जंगल, खनिज आदि इन संसाधनों के उदाहरण है। अब हम जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का परीक्षण करेंगे, यह प्रभाव विकासशील देशों में प्राकृतिक संशोधनों की अश्रय निधि से संबंधित है।

(1) **कृषि भूमि पर प्रभाव** :– आप जानते हैं कि देश की भूमि सीमित है एवं भूमि का अधिकांश भाग खेती के लिये उपयोग में लाया जाता है। बढ़ती हुयी जनसंख्या के साथ, अधिक से अधिक भूमि की आवश्कयता रहने के लिये मकानों की आवश्कयता है। परिणाम स्वरूप कृषि के लिये जमीन कम ही बच रही है, और इस स्थिति में केवल एक विकल्प बचता है कि जो जमीन बिना उपभोग की हुयी बचती है, और अकृषि भूमि है उसको आधुनिक तकनीकों से कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करना । जैसा मालथस ने कहा है, बढ़ती जनसंख्या आर्थिक उन्नति के लिये हानिकारक है। एक स्थिर अर्थव्यवस्था में जिसमें प्राकृतिक संसाधन निश्चित हैं, एवंपूंजी एकत्रित नहीं है, किसी तरह का तकनीकी परिवर्तन नहीं है, जीवन स्तर के साथ साथ प्राकृतिक संसाधनों के एकत्रीकरण का निर्धारण जनसंख्या की मात्रा के आधार पर होता है।

भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि जनसंख्या वृद्धि के कारण कम होती जा रही है, वर्तमान (2011–12) में यह 0.17 हेक्टेयर से थोड़ी कम है, जैसा कि 1951 में प्रति व्यक्ति 0.33 हेक्अयेर थी। पृथ्वी पर जनसंख्या के दबाव के परिणाम सवरूप खेतों के टुकड़े होकर उपखंडों में बंट गये। बहुत सारी भूमि इन छोटे–छोटे खेतों की सीमा बनाने में उपयोग हो रही थी, और इस तरह फिर से कृषि योग्य भूमि में कमी आ गयी। खंडित खेतों को कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी क्योंकि छोटे–छोटे खेतों में खेती करने क`लिये आधुनिक तकनीक का उपयोग करना असंभव था। इस सिद्धान्त के नायक माल्थस के अनुसार भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव देश के आर्थिक विकास का परीक्षण करेगा, माल्थस को मनुष्य की क्षमताओं पर थोड़ा कम विश्वास था एवं इस दबाव के नकारात्मक प्रभाव को समाप्त करने के लिये तकनीकी उन्नति पर जोर दिया। कुजेट्स, स्पैंग्लर एवं हाथैक्कर जैसे अर्थशास्त्रियों के समझदारी पूर्ण तरीके से प्राकृतिक

संसाधनों की कमी के साथ व्यक्ति की योग्यता के बीच सामंजस्य के शक को दूर कर दिया। भारत में, किसान आंशिक रूप से संसाधनों के चलते एवं आंशिक रूप से उपयुक्त तकनीक के अभाव में उत्पादकता बढ़ाने में असफल रहे, उत्पादकता का यह स्तर सभी जगह प्राप्त किया जा चुका था।

सहारे के रूप में विकल्प की तरह, जमीन का उपयोग बहुत गहराई से किया जा रहा है एवं अधिकांश जमीन मवेशियों के चारागाह के लिये उपयोग में लायी जा रही थी या खुली छोड़ी हुई थी, अब उसका प्रयोग खेती करने के लिये किया जाने लगा। यह विकल्प भी भूमि के अधिक शोषित होने के कारण निकल भागने के लिये बाध्य है। प्रच्छन्न बेरोजगारी बढ़ने के कारण भी जनसंख्या वृद्धि हुई एवं ग्रामीण क्षेत्र में काम करने के अवसर कम मिले, जिसका भार कृषि पर पड़ा, जितने लोगों की आवश्यकता थी उससे कहीं ज्यादा कृषि पर आश्रित हो गये। शहरीकरण में वृद्धि भी उतनी ही महत्वपूर्ण कारक है जो भूमि का बहुत बड़ा हिस्सा निगलता जा रहा है, बड़ी–बड़ी मकानों की कालोनियाँ बनती जा रही है, बहुमंजिला इमारतें, दुकानें, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिये दफ्तर , बहुमंजिला सिनेमाघर, सड़के, बगीचे आदि के लिये जमीन का उपयोग हो रहा है। भारत में, लोगों का कुछ अंश शहरी क्षेत्रों में रहता है। यह अनुपात 1960 में 18 प्रतिशत था जो 2011 में 32 प्रतिशत हो गया । (विश्व बैंक 2010) ।

शहरों में रहने वाले लोग ग्रामीण लोगों की अपेक्षा आमतौर पर प्रदूषण स्तर के प्रति जागरूक रहते है। उनका जीवन अधिक गतिरहित होता है एवं चिन्ता एवं अवसादग्रस्त रहता है, अतः उस पर ध्यान देना आवश्यक है। खतरनाक बीमारियों के बढ़ने से भविष्य में भारतीयों के आर्थिक एवं शारीरिक भय की संभावना है।

हालांकि, शहरीकरण के कुछ सकारात्मक प्रभाव भी हैं। शहर कार्य करने के अधिक अवसर प्रदान करता है, स्त्रियों के काम पर जाने से प्रजनन दर भी कम हो जाती है, उद्योग अर्थव्यवस्थाओं, से लाभ उठा सकते हैं, सारे उद्यम एक दूसरे से आसानी से सीख सकते हैं एवं अच्छे यातायात एवं संप्रेषण व्यवस्था होने से उद्यमी आपस में वार्तालाप के माध्यम से सीख सकते हैं बीमारियों पर नियंत्रण शीघ्र ही लगाया जा सकता है। इससे यह इंगित होता है कि शहरीकरण अपनी सकारात्मक विशेषता या गुण के कारण इस पर पड़ने वाले प्रभावों को सामान्य करने की स्थिति में है। इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्थिक विकास की पूर्ववर्ती शर्त है शहरीकरण एवं बाद का परिणाम भी है।

(2) **संसाधनों की कीमत में वृद्धि :–** भारत संसाधनों की गिरवाट के कारण आर्थिक विकास के लिये बहुत बड़ी कीमत चुका रहा है। विश्व बैंक के अनुसार, संसाधनों में गिरावट के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की कीमत इसकी सकल घरेलू उत्पाद की 4.5 प्रतिशत वार्षिक है। सामान्य सम्पत्ति जैसे बगीचा 25 प्रतिशत तक नीचे गिर गया, जिसके पीछे कारण है अधिक जुताई, अनाधिकृत कब्जे एवं अतिक्रमण । पानी का स्तर प्रतिवर्ष 6 फिट के औसत से नीचे गिर रहा है। भारत की लगभग आधी 329 मिलियन हेक्टेयर मिट्टी बिल्कुल बेकार है। यह वास्तव में भयभीत कर देने वाले आंकड़े हैं कि यदि यही रवैया या प्रवृत्ति चालू रही तो आने वाले 200 वर्षों में समस्त उत्पादित भूमि रेगिस्तान में तब्दील हो जायेगी।

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या की संसाधनों की भविष्य की मांग योजनाकारों के लिये एक बहुत बड़ी धमकी है। भारतीय अर्थव्यवस्था 'अस्तित्व की अर्थव्यवस्था' से 'खपत की अर्थव्यवस्था' की ओर परिवर्तित हो रही है, ऐसा स्टुअर्ट हार्ट ने कहा है, एवं परिणाम स्वरूप भविष्य में संसाधनों की मांग अधिक खतरनाक होने जा रही है। उदाहरण के लिये भविष्य में बिजली की मांग भारतीय

अर्थव्यवस्था के लिये एक बहुत बड़ी चुनौती साबित होगी। गोल्डमैन सैश ने बहुत सही सचेत किया है कि आगे आने वाले 15 वर्षों में विश्व में भारत की तेल की मांग चीन से भी ज्यादा हो जायेगी।

(3) **खनिजों के मौजूदा संग्रहण पर प्रभाव** :– बहुत सारे खनिजों का उपयोग उत्पादन के काम में किया जाता है एवं यह आर्थिक विकास के लिये महत्वपूर्ण है। कुछ खनिज ऊर्जा के स्त्रोत रूप में जैसे कोयला, तेल आदि उपलब्ध है। अधिक जनसंख्या से तात्पर्य इन खनिजों की अधिक मांग है। यद्यपि यह कम मात्रा में जमा हैं। इन अनवीनीकरण संसाधनों के लगातार शोषण से भविष्य में विकासशील देशों के आर्थिक कृषि पर विपरीत प्रभाव पड़ने की संभावना है।

(4) **जंगल से घिरी हुई पृथ्वी पर प्रभाव :–** परिस्थितिकी, संरक्षित तेल एवं आश्रय प्रदान करने हेतु पेड़ पौधों को बनाये रखने में जंगल विशिष्ट भूमिका अदा करते हैं। विश्व में लोगों के लिये भोजन एवं कच्चे माल के स्त्रोत हैं जैसे, जंगल विशिष्ट तरीके से आर्थिक वृद्धि करते हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि भूमि हेतु जमीन की मांग के साथ–साथ ईंधन के रूप में लकड़ी की भी मांग बढ़ने लगी और उसका परिणाम वनोन्मूलन के रूप में प्राप्त हुआ। वनों की कटाई के फलस्वरूप बारिश में कमी आ गयी, मिट्टी में कटाव अधिक होने लगा, लगातार बाढ़ की स्थिति बनने लगी, सूखा पड़ने लगा और ग्लोबल वार्मिंग की स्थिति उत्पन्न हो गयी– और यह सभी आर्थिक वृद्धि के लिये हानिकारक हैं। भारत में, वर्तमान में 22 प्रतिशत से अधिक समतल भूमि पर पेड़ नहीं हैं जबकि इसके विपरीत 1952 की राष्ट्रीय वन नीति के द्वारा 33 प्रतिशत वृक्षारोपण को अनुशंसा की गयी थी। 75 मिलियन हेक्टेयर जमीन जंगल है, यहां तक की आधे में भी पर्याप्त वृक्ष नहीं हैं एक अनुमान के अनुसार, लगभग 20 मिलियन हेक्टयेर जंगल की भूमि पर कटाव का प्रभाव पड़ता है।

(5) **पर्यावरणीय गिरावट की बढ़ती हुई कीमतें :–**

बढ़ती जनसंख्या के कारण पर्यावरण की सम्पत्तियों में गिरावट की एक भयानक स्थिति है। तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था की तीव्र वृद्धि पर्यावरण में बढ़ती हुई गिरावट एवं संसाधन का क्षरण के विरूद्ध जारी नहीं रह सकती। यूरोपीय एवं अमेरिकी अर्थव्यवस्था के खपत प्रारूप का संसाधनों पर एवं भारत में पर्यावरण पर अपरिवर्तनीय प्रभाव पड़ने वाला है। अन्त में भारत को दो रूपों में चुनौती को स्वीकार करना होगा– पहली, जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना, और दूसरे आर्थिक वृद्धि को सतत् अर्थव्यवस्था से जोड़ना । सतत् विकास का मामला पूरे विश्व का मामला है और इसलिये इसे विश्व स्तर पर ही लिया जाना चाहिये। इस विचार को ध्यान में रखते हुये, पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन, जिसे रियो सम्मेलन या पृथ्वी सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है, की पहली बैठक 1992 में हुई। इस सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता एवं बंजर जमीन के विषय में चर्चा हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि 20–22 जून 2012 में रियो–डि–जेनेरो में रियो 20 के नाम से पुनः एक सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें एक दस्तावेज तैयार किया गया जिसका शीर्षक था 'हम कैसा भविष्य चाहते हैं, जिसमें इसके द्वारा लिये गये निर्णय पर व्याख्या की गयी कि सतत् विकास की वस्तुओं को कैसे बनाया जाए एवं एक कार्य समूह बनाने पर भी चर्चा की गयी, इस समूह से यह आशा की गयी कि संयुक्त राष्ट्र महासभा की 68 वीं बैठक में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी, इस प्रतिवेदन में सतत् विकास वस्तु और (एस.डी.जी.) के प्रस्ताव भी सम्मिलित रहेगें। यद्यपि इस दस्तावेज की आलोचना 'आग्रहपूर्ण' एवं 'आकांक्षापूर्ण' के रूप में हुई, और यह विकास रूपी परिवर्तनों पर नियंत्रण रखने में असफल हो गया। 1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन में एक महत्वपूर्ण पहलू उजागर हुआ कि जब पश्चिमी देश रियो 20 सम्मेलन में

मसौदा तैयार कर रहे थे, विकासशील देशों, ब्रिक राष्ट्रों (ब्राजील, रूस, चीन एवं भारत) एवं अन्य को भी देखा और सुना गया ।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम का मानना है कि 'समाज इतना अमीर नहीं हो सकता कि प्रजातंत्र चलाने (बर्दाश्त) के योग्य हो। कोई परिवार इतना सम्पन्न नहीं हो सकता कि प्रत्येक सदस्य के अधिकारों का सम्मान करें । एक राष्ट्र इतना धनी नहीं होता कि पुरूष एवं स्त्री दोनों को समानता का अधिकार दे सके। इसके अतिरिक्त मात्र धन ही ऐसा कारक नहीं है जो लोगों को खुशी प्रदान करता है। बहुत से ऐसे देश है जो उच्च जीडीपी के रहते हुये भी, निम्न मानव विकास सूचकांक की समस्या से जूझ रहे है। अतः धन का एकत्रीकरण एवं अधिकता एवं मनुष्यों की उच्च जीवन शैली को एक ही दिशा में जाने की आवश्यकता नहीं है । आर्थिक वृद्धि एवं मानव विकास के मध्य अव्यक्त एवं जटिल संबंधों का 1996 में मानव विकास प्रतिवेदन में विस्तार से पता चला। अवलोकन का सार यह था कि आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास के मध्य कोई सवचलित संबंध नहीं हैं किन्तु जब इन संबंधों को नीति एवं दृढ़ता के साथ जोड़ा जाता है, उन्हें पारस्परिक रूप से पुनः लागू किया जा सकता है और यह आर्थिक वृद्धि प्रभावशील होगी एवं मानव विकास में भी तेजी से प्रगति होगी। अतः यह वांछनीय है कि मानव विकास और गरीबी को हटाया जाना किसी भी सरकार के मुख्य राजनीतिक एवं आर्थिक कार्यसूची में वरीयता से सम्मिलित होने चाहिये।

(6) **जीवन संसाधनों का विनाशः**–बढ़ती जनसंख्या एवं अनियोजित प्राकृतिक पर्यावरण के अनियोजित विकास के बढ़ते हुये दबाव के अन्तर्गत, हमारी प्रजातियों के निवास या तो समाप्त हो गये या संशोधित हो गये। इसके परिणाम स्वरूप बहुत सी प्रजातियां एवं परिस्थितिकी प्रणालियां विलुप्त हो गयी। भारत में 103 स्तनपायी जीवों एवं चिड़ियों की प्रजातियां है जिन्हें वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अन्तर्गत खतरे के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया है एवं इस तरह की 5 प्रजातियों को पिछले कुछ समय के दौरान विलुप्त घोषित कर दिया गया।

(ब) **मानव संसाधनों पर प्रभावः**– बढ़ती जनसंख्या मानव संसाधनों पर मुख्य रूप से दो प्रकार से प्रभाव डालती हैः–

(1) **जनसंख्या की गुणवत्ता पर प्रभाव** :– जनसंख्या से श्रमबल के रूप में मानवीय संसाधन प्राप्त होते हैं। बड़ी मात्रा में मानव संसाधन आर्थिक विकास में योगदान देते हैं यदि इनका उपयोग वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की मात्रा बढ़ाने में किया जाता है । किन्तु यदि इनका समुचित उपयोग नहीं किया जाता है , तो ये आर्थिक विकास की प्रक्रिया में गले की हड्डी साबित होगें।

तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या का विपरीत असर जनसंख्या की गुणवत्ता पर पड़ रहा है। समस्त विकासशील राष्ट्रों के द्वारा वर्तमान में अपनायी जाने वाली जीवनरक्षक या मृत्यु नियंत्रण से संबंधित रणनीतियों पर ध्यान देने योग्य विशेषता यह रही कि मृत्यु दर में कमी आ गयी एवं बेहतर उत्तरजीविता का आश्वासन भी प्राप्त हुआ। किन्तु उत्तरजीविता के बिन्दु या मृत्यु से पलायन एवं स्वास्थ्य के इस्टतम स्तर के मध्य बहुत ज्यादा अन्तराल है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि गरीब लोग यदि स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं उपयुक्त नहीं होती तो आधुनिक स्वास्थ्य तकनीकों को लाने की इच्छा लिये हुये ही मर जाते, किन्तु अब वे जीवित हैं, इस बात की कोई प्रत्याभूति नहीं है कि वे अपना जीवन स्तर सुधारने के योग्य हो पायेंगे या नहीं। यह सिद्ध करने के प्रयोग सिद्ध साक्ष्य है कि ये उत्तरजीवी पुनः गरीबी की स्थिति, खतरनाक शारीरिक स्थिति एवं शिक्षा के निम्न स्तर में रहना प्रारंभ कर देते हैं। इस तरह उत्तरजीवितों का स्तर से नीचे जीने की स्थिति से देश में मानवीय संसाधनों की गणुवत्ता कम हो जाती है।

(2) खाद्यसामग्री की उपलब्धता बनाये रखने हेतु बढ़ती हुई कीमतेः– खाद्यान्न पर लगातार कीमतों के बढ़ने से देश की आय का बहुत बड़ा हिस्सा केवल वांछित भोजन की उपलब्धता के अनुसंधान एवं प्रशासन पर ही खर्च हो रहा था। इस लक्ष्य में असफलत होने के कारण देश को अपने ही देश में सहायता के रूप में एवं देश के बाहर से खाद्यान्न क्रय करने के रूप में बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही थी।

नीचे दी गयी सारिणी में दशकीय जनसंख्या वृद्धि एवं भारत में खाद्यान्न के उत्पादन की तुलनात्मक स्थिति को दर्शाया गया है ।

सारणी – 3

वर्ष (दशक में)	जनसंख्या (मिलियन में)	खाद्यान्न का उत्पादन (मिलियन में)
1950–51	361	50.18
1960–61	439	82.0
1970–71	548	108.4
1980–81	683	129.6
1990–91	846	176.4
2000–01	1028.7	196.8
2010–11	1210.2	218.2

इस सारणी में दर्शाये गये आंकड़े इंगित करते हैं कि भारत में खाद्य उत्पादन की दर 2000–'01 से 2010–11 के दौरान 10.7 प्रतिशत थी जबकि जनसंख्या में वृद्धि 15 प्रतिशत की दर से हो रही थी। इससे यह अन्दाजा लगता है कि यदि जनसंख्या वृद्धि दर एवं उत्पादन वृद्धि दर में यही उतार चढ़ाव लगातार चलता रहा तो आवश्यक खाद्यान्न की उपलब्धता को पूरा करने के लिये सरकार को हरक्यूलियन प्रयास की आवश्यकता होगी।

(3) पूंजी निर्माण पर प्रभाव :– सामान्यतः तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अनुत्पादक उद्देश्यों के लिये संसाधनों की मांग में भी तेजी से वृद्धि हुई। और फिर पूंजी एकत्रीकरण में रूकावट आ गयी। तथापि दो विरोधाभासी मत हैं जो दो अलग दृष्टिकोणों की सलाह देते हैं जिससे जनसंख्या के आकार में परिवर्तन एवं पूंजी निर्माण की दर में परिवर्तन के मध्य सहसंबंधों को नयी सोच मिले। अर्थशास्त्रियों का एक तबका यह सिद्ध करना चाहता है कि आगे बचत प्रक्रिया के लिये बढ़ती जनसंख्या हमेशा हानिकारक है जिसका तात्पर्य है कम पूंजी निर्माण होना। यह परिवारों की बड़ी संख्या होने के कारण है जिसमें बच्चों का हिस्सा बढ़ना स्वाभाविक है, औसत आय कम हो जाती है और खपत की मात्रा टोकरी भर हो जाती है, परिवार में कोई धन अर्जित करने वाले व्यक्ति के न बढ़ने से कुल आय उतनी ही रहती है। यह दृष्टिकोण माल्थूसियन सिद्धान्त पर आधारित है, यह सिद्वान्त कहता है कि पूंजी का संग्रहण जैसे भूमि उसी अनुपात में नहीं बढ़ती है जितना कि श्रमिक बढ़ते है। यह दृष्टिकोण इस तर्क की पुष्टि करता है कि जनसंख्या वृद्धि प्रति कामगार की उत्पादन वृद्धि में बाधा उत्पन्न करती है। जैसे कि, निम्न एवं निम्न मध्यम आय के वर्ग समूह के लोगों को उनकी रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति दो कारणों से नहीं हो पाती है – पहली, उधार लेकर धन की व्यवस्था करना एवं दूसरी, उपभोग करने से कटौती करना एवं दोनों ही मामलों में बचत या लोन के बराबर होती है या नकारात्मक रहती है।

बिन्दु बहुत सारे प्रयोग सिद्ध साक्षयों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि जनसंख्या वृद्धि का बचत एवं पूंजी निर्माण पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है।

नीचे दी गयी सारणी 1950–51 से 2010–11 तक की भारत की प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय उत्पाद सकल घरेलू बचत एवं सकल घरेलू पूंजी निर्माण को दर्शाती है।

सारणी 4 दशकीय प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद

दशक	प्रति व्यक्ति एनएन.पी कारक कीमत रूपये में	घरेलू बचत जीडीपी का प्रतिशत	सकल घरेलू पूंजी निर्माण वर्तमान कीमत जीडीपी का प्रतिशत
1950–51	5708	8.6	8.4
1960–61	7121	11.2	14.00
1970–71	8091	14.2	15.1
1980–81	8494	18.5	19.9
1990–91	11035	22.8	26.0
2000–01	16172	23.7	24.3
2007–08	30332	26.8	38.1
2008–09	31754	32.0	34.3
2009–10	33843	33.0	36.6
2010–11	35993	32.3	35.1

सारणी में दिखाये गये आंकड़ें इस बात का समर्थन करते हैं कि जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक वृद्धि तथा विकास के मध्य सकारात्मक संबंध हैं। सारणी दर्शाती है कि 1950 –51 से तीनों गतिमान प्रति व्यक्ति एन.एन.पी. सकल घरेलू बचत एवं सकल धरेलू पूंजी निर्माण जनसंख्या वृद्धि दर की अपेक्षा तेजी से बढ़ रहे थे। यह दृष्टिकोण दो मुख्य बातों पर आधारित है– पहला भारत जैसे देश में बचत ऊंची आय वाले समूहों के लोगों द्वारा की जाती है। विभिन्न वर्गों के लोगों के मध्य जन्म दर की सीमित जानकारी जितनी भी उपलब्ध है, यह स्पष्ट है कि देश की औसत जन्मदर की अपेक्षा संबंधित लोगों से बहुत कम है। अतः देश में कुल जन्मदर बचत को खराब नहीं करती है दूसरा निर्धनों के लिये एक अतिरिक्त बच्चा भार नहीं है, क्योंकि वे आशा करते है कि उस बच्चे से प्राप्त होने वाली आय से वे ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त कर सकेंगे। कीमत की तुलना में भविष्य में बच्चे से प्राप्त होने वाली आय, सेवाओं और भविष्य के लिये निर्धन लोग आशा भरी निगाह रखते हैं किन्तु उसी समय इस दृष्टिकोण की कुछ अपनी सीमाएं है जो यह बताती है कि निकाले गये निष्कर्ष सांख्यिकीय औसतों पर आधारित हैं जो आवश्यक रूप से वांछित शतर्म एवं समाज के निर्धन वर्ग की क्षमताओं को सुरक्षित रखने एवं निवेश से संबंधित हैं इसी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करते है। इस सबके बावजूद, तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या का पूंजी निर्माण पर नकारात्मक प्रभाव पड़े ऐसा आवश्यक नहीं है । परिणामतः आर्थिक वृद्धि दर लोगों के विशेषरूप से ऐसे समूह जिसकी आय बहुत कम हो, स्वास्थ्य इत्यादि स्थिति भी छिन्न–भिन्न हो गयी।

वर्तमान समय में सकल घरेलू बचत 30 प्रतिशत से ऊपर तक पहुंच गया जो भारत की वृद्धि दर 7 से 8 प्रतिशत तक पहुंचने के लिये जिम्मेदार साबित हुआ यद्यपि वैश्विक मंदी भी समय–समय पर अपना स्थान ले रही थी। मंदी के इस दौर ने स्थिति पलट दी, वृद्धि दर गिरकर 5 प्रतिशत तक पहुंच गयी। हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि भारत में जनसंख्या वृद्धि अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिये हानिकारक नहीं है, जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपायों से सामाजिक

आर्थिक कल्याण होगा एवं फलस्वरूप देश की सूची में मानव विकास काफी हद तक सुधार के रूप में सम्मिलित होगा।

8.8 सारांश

मानव संसाधन उन लोगों से बनता है जो एक अर्थव्यवस्था और अन्य कारकों जैसे की पूंजी और भूमि के सहयोग से उत्पादन की एक इनपुट के रूप में उपयोग किये जाने के लिये प्रभावी कार्य बल बनाते हैं मोटे तोर पर, मानव संसाधन तीन अलग–अलग भूमिकाएं अदा करता है– सबसे पहले श्रम के रूप में, दूसरा उद्यमी के रूप में और तीसरा सामान और सेवाओं के उपभोक्ताओं के रूप में। हालांकि आम भाषा में, मानव संसाधन जनसंख्या का लगभग समानार्थी समझा जाता है। वर्तमान में भारत सहित तीसरी दुनिया के अधिकांश देश आबादी विस्फोट के चरम से गुजर रहे हैं जो स्वयं को अधिक जनसंख्या में परिवर्तित करता हैं। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि इन देशों में बढ़ती आबादी के साथ आर्थिक विकास की गति को बनाये रखने में विफलता उनके सामाजिक अर्थशास्त्रियों का प्रमुख कारण रहा है। साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य उच्च स्तरीय आपसी सामंजस्य है किन्तु गहराई का स्तर जिस पर दोनों एक दूसरे पर कितने प्रभावी है, इस स्थिति में दोनों एक दूसरे से अलग हैं। यह माना गया कि मानव संसाधन पर आर्थिक विकास के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव हैं। इसी प्रकार जनसंख्या वृद्धि का भी सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव हैं। भारतीय जनसांख्यिकीय परिदृश्य इंगित करता है कि जनजनसंख्या वृद्धि दर ने 1971 से घटना प्रारंभ कर दिया था। सामान्य बात के विपरीत, भारत में लगातार जनसंख्या वृद्धि के बावजूद आर्थिक विकास दर लगातार सुधर रहा है। इससे पता चलता है कि आबादी में विकास आर्थिक विकास के लिये हानिकारक नहीं है, क्योंकि राष्ट्रीय उत्पाद की भयावहता के साथ पर्याप्त रूप से मेल खाता है।

यह कार्यबल के आकार एवं उत्पादन में अनुपात पर निर्भर करता है। जनसांख्यिकीय परिवर्तन के सिद्धांत इस संदर्भ में विशेष व्याख्या करते है– विभिन्न प्रयोगों के अध्ययन बताते हैं कि जनसंख्या की जन्म एवं मृत्यु दर का आर्थिक विकास के स्तर एवं आकार के मध्य मजबूत संबंध है। शोधकर्ताओं ने खुलासा किया है कि जन सांख्यिकीय संक्रमण के तीन चरणों में सबसे पहले जनसंख्या की स्थिर वृद्धि दर की विशेषता, उच्च जन्म और मृत्यु दर के कारण है। यह आर्थिक रूप से पिछड़े समुदाय की एक विशेषता है। दूसरी अवस्था तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर से संबंधित है, इस जनसंख्या वृद्धि का कारण मृत्यु दर का कम होना एंव जन्म दर का लगातार अधिक होना है। अधिकांश विकासशील राष्ट्र इस स्थिति से गुजर रहे हैं, तीसरी अवस्था में, जनसंख्या वृद्धि दर कम है, जन्म और मृत्यु दोनों ही दरें बहुत कम हैं। यह एक विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषता है। सामान्यतः अर्थशास्त्री तर्क देते हैं कि जनसंख्या वृद्धि प्रति कामगार के मुकाबले उत्पादन वृद्धि में बाधा उत्पन्न करती है। यह तर्क इस बात पर आधारित है कि भूमि एवं पूंजी का संग्रहण श्रम के अनुपात में समान रूप से नहीं बढ़ता है। अन्य महत्वपूर्ण कारक जो इस तर्क को सहयोग प्रदान करता है, वह यह है कि जब अधिक बच्चे हैं तो परिवारों के लिये सहेजना अधिक मुश्किल होता है और उच्च उर्वरता के कारण सामाजिक निवेश को उच्च उत्पादकता के उपयोग से दूर किया जा सकता है। यह कारक यह सुझाव देते हैं कि उच्च उर्वरता और अधिक महत्वपूर्ण रूप से बढ़ती जनसंख्या प्रति कर्मचारी उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पैदा करता है, जो अंततः नकारात्मक आर्थिक विकास हेतु अग्रणी है।

जनसंख्या वृद्धि देश के आर्थिक विकास में विभिन्न तरीकों से प्रभाव डालती है जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर इसका प्रभाव, जिसमें कृषि भूमि का वह क्षेत्र भी सम्मिलित है जो जनसंख्या के बढ़ने के कारण कम होता जा रहा है, संसाधनों की बढ़ती लागत, जो आबादी के बढ़ते आकार से अति प्रयोग और शोषण के कारण कम होते जा रहे है, खनिजों पर इसका प्रभाव जो दिन प्रतिदिन कम हो रहा है, वनों की कटाई के रूप में जंगलों पर प्रभाव, इस धरती पर उपलब्ध संसाधनों के अस्तित्व पर इसके हानिकारक प्रभाव सम्मिलित है।

जनसंख्या वृद्धि आमतौर पर नकारात्मक रूप से मानव संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा को प्रभावित करती है। एक देश में लोगों के लिये खाद्य उपलब्धता को बनाये रखने की बढ़ती लागत एक और समस्या है जो जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर के कारण है । सरकार, भोजन की कमी की स्थिति में लोगों को भोजन के रूप में राहत देने पर और विदेशी देशों से भोजन खरीदने पर व्यय के रूप में उच्च लागत वहन करती है। बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण एवं बचत दर पर भी पड़ता है। इस मामलें पर दो अलग–अलग मत हैं। जहाँ अर्थशास्त्रियों का दूसरा समूह आंकड़ों की सहायता से यह साबित करना चाहता है कि आबादी के विकास के साथ–साथ पूंजी निर्माण दर में भी इजाफा होता है। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हालांकि जनसंख्या वृद्धि ने बचत या पूंजी निर्माण की बढ़ती दर को अवरूद्ध नहीं किया है। जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखने के प्रयासों से देश के लोगों के सामाजिक आर्थिक कल्याण को बढ़ावा मिलेगा जो कि आज के समय की तुलना में कहीं ज्यादा गतिशील है।

भारत में आबादी के बढ़ते दबाव ने खेती योग्य इलाके में कई तरह से गिरावट दर्ज की है। चूंकि प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्र स्वतः ही कम हो जाता है क्योंकि लोगों की संख्या बढ़ जाती है उपखंड और खातों के विभाजन के कारण भूमि मालिकों को खेती योग्य जमीन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा अपने नये बसे हुये खेत का उपयोग करने पर बल दिया, अधिशेष जनसंख्या को समायोजित करने के लिये घरों के निर्माण के लिये जमीन का उपयोग तेजी से किया जा रहा है और अंत में, सड़कों व्यावसायिक परिसरों, कार्यालयों और बाजारों के निर्माण के लिये बड़े पैमाने पर बढ़ता शहरीकरण खेती योग्य जमीन को निगल रहा है।

वनों की कटाई के कारण बारिश में कमी आयी, मिट्टी का कटाव बढ़ गया, बारबार बाढ़ आने लगी और कहीं कहीं सूखे की स्थिति भी बनने लगी और परिस्थितिकी असंतुलन गलेबल वार्मिंग के रूप में सामने आया। अर्थात व्यवसाय की योजना का अंतिम उद्देश्य मानव विकास है। लंबे समय तक टिके रहने के लिये यह पूर्व अपेक्षित है जो आर्थिक विकास का रूप लेता है। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि मानव विकास नीतियों को सरकार द्वारा सहायता प्राप्त होती है, तो उन्नति का एक बहुत शानदार चक्र पूरा किया जा सकता है। इन नीतियों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य में उच्च निवेश दर को बढ़ावा देने, तकनीक परिवर्तन एवं आय का सुधारात्मक वितरण जैसे मामले सम्मिलित हैं। जिससे लंबे समय तक टिके रहने वाली आर्थिक वृद्धि में मानव विकास में सफलता मिल सकती है। अतः मानव विकास की निर्धारित लागतों को पूरा करने के लिये लक्षित सरकारी निवेश, जिसमें निवेश नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये, विधालय, अस्पताल एवं आवश्यक प्रशासन सम्मिलित हो सकते है, इन नीतियों का परिणाम उच्चतर स्तर की आर्थिक वृद्धि एवं विकास होगा। सामान्यतया, स्वास्थ्य को सामाजिक सूचक के रूप में देखा जाता है जिमें सुधार के बाद देश सम्पन्न हो जाते हैं, किन्तु नये दृष्टिकोण के अनुसार अकेले स्वास्थ्य को ही आर्थिक विकास के उपकरण के रूप में देखा जाता है, न कि इसके परिणामों को । स्वास्थ्य के द्वारा आर्थिक विकास में तीन मार्गों द्वारा उन्नति

लायी जा सकती है– पहली, स्वस्थ श्रमबल हमेशा शारीरिक तीव्रता वाले श्रमबल से अधिक उत्पादक होगा, दूसरे, स्वस्थ मनुष्य लंबा जीवन जीते है, और पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलता है एवं तीसरे स्वस्थ बच्चों की विद्यालय में पूर्ण उपस्थिति रहती है, और इस वजह से वह बेहतर शिक्षा और अधिक ज्ञानवान मानवीय संसाधनों को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

8.9 शब्दावली

आर्थिक वृद्धि :– वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के संदर्भ में व्यक्त किये गये आकार में वृद्धि।

मानव संसाधन :– ऐसे व्यक्तियों का समूह जो एक संगठन या एक अर्थव्यवस्था के कर्मचारियों की संख्या का गठन करते है।

8.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1 ———————— ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो किसी संगठन या अर्थव्यवस्था के कर्मचारियों के लिये श्रमबल का गठन करते हैं।

2 ——————— वह प्रक्रिया है जिसमें उपयोगिता वाद के स्तर में वृद्धि होती है एवं देश में उपलब्ध संसाधनों की उत्पादकता भी उन्नत होती है।

3 —————— शब्द के अन्तर्गत योग्यात, ज्ञान, सामाजिक एवं व्यक्तित्व विकास की क्षमताएं सम्मिलित है जिनके रहते हुये एक कामगार आर्थिक मात्रा के उत्पादन हेतु अच्छा प्रदर्शन करने योग्य बनता है।

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मानव संसाधन 2. आर्थिक विकास 3. मानव पूंजी

8.12 स्वपरख प्रश्न

1 वह भूमि क्षेत्र जिसका उपयोग कृषि कार्यों के लिये किया जा रहा, उस पर जनसंख्या वृद्धि कैसे प्रभाव डालती है ?

2 जनसंख्या में तीव्र वृद्धि की पर्यावरण असंतुलन में क्या भूमिका है ? विश्व स्तर पर इस समस्या को नियंत्रित करने के लिये क्या उपाय अपनाये गये है ?

3 भारत में आबादी के आकार में वृद्धि के लिये भोजन की उपलब्धता को बनाये रखने की समस्या पर चर्चा करें।

4 'शहरीकरण सामाजिक बुराईयों का एक बहुत बड़ा कारण है। टिप्पणी कीजिए ।

5 वनों की कटाई के प्रभाव के विशेष संदर्भ में, भारत में कृषि योग्य भूमि की कमी का कारण बढ़ती जनसंख्या कैसे बनती है। स्पष्ट कीजिए।

6 आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में अन्तर स्थापित कीजिए।

7 मानव संसाधन को परिभाषित कीजिए एवं जनसांख्यिकीय परिदृश्य के सिद्वान्त की व्याख्या कीजिए।

8 मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य संबंधों का परीक्षण कीजिए।

8.13 संदर्भ पुस्तकें

1 कोल, ए.जे. एंड हूवर, ई.एम. पौपुलेशन ग्रोथ एंड इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट इन लो इनकम कंट्रीज (प्रिन्सटन, 1958)

2 योजना आयोग – सातवी से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना।

3 विश्व बैंक– विश्व विकास प्रतिवेदन।

4 भारत में जनगणना (2011) जनसंख्या का राष्ट्रीय आयोग द्वारा स्थापित जनसंख्या का तकनीकी समूह का प्रतिवेदन (2006)

5 संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम – मानव विकास सूची 2007 से 3009

6 आर.एच. सेसन, भारत– पोपुलेशन, इकोनॉमी एंड सोसायटी, (दिल्ली, 1929)

7 भारत सरकार – आर्थिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट।

8 जीन ड्रेज एंड अर्मत्य सेन इंडिया – इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट एंड सोशल आपुरचुनिटी (दिल्ली, 1996)

9 टी.एन. कृष्णन, "पोपुलेशन, पवर्टी एंड एम्प्लॉयमेन्ट इन इंडिया", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, नवंबर, 14, 1992, पृष्ठ 2480

10 प्रवीण विसारिया, "डेमोग्राफिक डायमेंन्शन्स ऑफ इंडियन इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट्स इन पी.आर. ब्रम्हानन्द एंड वी.आर. पंचमुखी, द डेवलपमेंन्ट प्रोसेस ऑफ द इंडियन इकोनॉमी (बम्बई, 1987)

11 इज इंडियाज पौपुलेशन ग्रोथ हैज ए पौजिटिव इफैक्ट ऑन इकोनॉमिक ग्रोथ । रोहन कोठारी, सोशल साइंस 410, नवंबर 1999

12 पौपुलेशन एंड इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट इन इंडिया, एन.आर. नारायनन मूर्ति, जुलाई, 2005

13 इंडिया डेवलपमेन्ट रिपोर्ट, 2010

14 महेन्द्र के. प्रेमी– पौपुलेशन ऑफ इडिया इन न्यू मिलेनियम, सैन्सस–2001, न्यु दिल्ली, एमबीटी 2006)।

15 राकेश मोहन एंड चंद्रशेखर पंत, – 'मॉरफोलॉजी ऑफ अरबनाइजेशन इन इंडिया, इकोनॉमिक एंड पॉथ्लटिकल वीकली, सितम्बर, 18, 1982, पृष्ठ 1537

16 फ्रेडरिक हर्बिसन एंड चार्ल्स ए. मेयर्स– एजुकेशन , मैनपावर, एंड इकोनॉमिक ग्रोथ नयी दिल्ली, 1970

17 इंडियन इकोनामीः रूद्रदत्त, के पी.एम. सुन्दरम, एस चाँद, नयी दिल्ली।

18 द इंडियन इकोनॉमी, एन वायरनमेंट एंड पॉलिसीः ईश्वर सी. धींगरा सुल्तान चाँद एंड संस नयी दिल्ली।

19 इंडियन इकोनॉमीः एस.के. मिश्र, वी.के. पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

इकाई 9 राष्ट्रीय आय

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएँ
9.3 राष्ट्रीय आय का मापन
9.4 राष्ट्रीय आय के माप में आने वाली बाधाएं
9.5 राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 बोध प्रश्न
9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.10 स्वपरख प्रश्न
9.11 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं की व्याख्या कर सकें।
- राष्ट्रीय आय को मापने में आने वाली कठिनाईयों की विवेचना कर सकें।
- राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण के मध्य संबंधों की व्याख्या कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र में एक वर्ष में अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन का कुल मौद्रिक मूल्य ही उस देश की राष्ट्रीय आय कहलाती है। जब मानवीय संसाधनों जैसे प्राकृतिक संसाधनों की सहायता से श्रम द्वारा, एवं अन्य साधनों जैसे मशीनों, यंत्रों एवं अन्य उपकरणों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है एवं ये वस्तुएं आवश्यक रूप से चलायमान स्थिति में होती हैं, व्यक्तिगत या संगठनात्मक प्रयासों के लिये दी गयी सेवाएं जो अदृश्यमान रूप में होती है। सेवाओं में सम्मिलित हैं एक वकील, एक चिकित्सक, एक साफ्टवेयर इंजीनियर, एक अध्यापक या एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट के रूप में दी जानेवाली सेवाएं । यातायात संचालकों, बैंक संगठनों या ऊर्जा एवं सूचना के प्रदायकों द्वारा दी जाने वाली सेवाएं भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। इन सबके अतिरिक्त वह सभी कार्य जो वस्तु विक्रय एवं वितरण की सुविधाएं देती हैं इन्हीं सेवाओं के अन्तर्गत आते हैं। इन सभी गतिविधियों के परिणाम वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह के रूप में सामने आते हैं जो लोगों को उपभोक्ता के रूप में उपलब्ध रहती हैं। वस्तुओं एवं सेवाओं के शुद्ध योग को जो मौद्रिक मूल्य के रूप में रहती है उसे राष्ट्रीय आय कहते हैं।

अन्त में जो वस्तुएं एवं सेवाएं इस तरह देश में उत्पन्न की जाती हैं, वह उन्हीं लोगों के हाथों में जिन्होंने इन्हें बनाया था, आय के रूप में पहुच जाती है। इसे एक कारखाने में उत्पादन के उदाहरण के रूप में समझा जा सकता है। उत्पादन इन पाँच कारकों का मिला जुला सहयोग है– भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन और उद्यमिता । इन कारकों का व्यक्तिगत योगदान धन के रूप में प्राप्त होता है। भूमि से किराया, श्रम से वेतन, पूंजीसे ब्याज, संगठन से वेतन एवं लाभ के रूप में उद्यमिता

किसी संस्थान को चलाने के लिये विद्यमान रहते हैं। उत्पादन के परिणाम सवरूप व्यवसाय से प्राप्त होने वाले लाभ को आवश्यक रूप से चार भागों में बांटा जाना चाहिए – किराया, मजदूरी एवं वेतन, ब्याज एवं लाभ । इन सभी आय का कुल योगदान एक देश के लोगों के सभी क्षेत्रों की कुल आय में योगदान करता है, जैसे कि भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन, उद्यमियों के मालिक।

देश में लोगों के द्वारा जो आय प्राप्त की जाती है उसे आधा उपयोग में ले लिया जाता है और आधा बचत के रूप में रखा जाता है। अतः कुल राशि उपभोग की हुई एवं बचत की राशि राष्ट्रीय आय के बराबर होनी चाहिय। अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय को तीन तरीकों से देखा जा सकता है– (1) इसे राष्ट्रीय उत्पाद की कुल राशि के रूप में माना जा सकता है। (2) इसे प्राप्त कुल आय के रूप में माना जा सकता है। (3) यह उपभोग और बचत पर राष्ट्रीय परिव्यिय का समग्र माना जा सकता है।

अनुमानित राष्ट्रीय आय का मुख्य उद्देश्य है कि यह अर्थव्यवस्था की संरचना का विश्लेषण करती है एवं इसकी उपत्ति एवं वितरण की कुल आय की संरचना करती है। राष्ट्रीय आय के आंकड़ों को प्रतिवर्ष नियमित रूप से संगणित नहीं किया जाता है, देश के आर्थिक विकास की छवि दिखायी देती है एवं एक विशिष्ट प्रवृत्ति के उत्तरदायी कारकों का विश्लेषण किया जाता है। इन्हीं आंकड़ों के आधार पर सरकार देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये नीतियाँ बनाती है, सरकार द्वारा बनायी गयी यह नीतियाँ अनुमान पर आधारित होती है। राष्ट्रीय आय का अध्ययन उत्पादन एवं जीवन जीने के स्तर के मध्य तुलना करने में सहायक होता है, यह तुलना केवल विभिन्न देशों के मध्य नहीं होता बल्कि उसी देश में बिन्दुओं पर केन्द्रित का होता है। राष्ट्रीय आय का अनुमान हमें यह सूचना प्रदान करता है कि क्रय शक्ति या धन की उपयोगिता में वृद्धि हो रही है या गिर रही है। अतः हम विभिन्न क्षेत्रों पर होने वाले व्यय, आय एवं उत्पादन में संबंधित परिवर्तन का विश्लेषण कर सकते है।

9.2 राष्ट्रीय आय की विभिन्न आवधारणाएं

शब्द राष्ट्रीय आय के भिन्न रूपों में अर्थ भी भिन्न है। राष्ट्रीय आय की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने के लिये इसकी मुख्य भिन्नताएं इस प्रकार हैः–

सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.)

कुल राष्ट्रीय उत्पाद किसी देश में उत्पादित की जाने वाली सभी वस्तुओं एवं सेवाओं का कुल वार्षिक उत्पादन है जिसका मूल्यांकन बाजार कीमतों के आधार पर किया जाता है। जीडीपी की यह परिभाषा बताती है कि –

(i) जीडीपी में वस्तुओं एवं सेवाओं की मौद्रिक मूल्य को देखा जाता है न कि उनकी वृद्धि मूल्य को।

(ii) यह देश में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं से संबंधित होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुएँ एवं सेवाएं जो देश की सीमा के बाहर उत्पादित की जाती हैं वह जीडीपी का हिस्सा नहीं हो सकती है।

(iii) जीडीपी एक निश्चित समय 1 वर्ष के संदर्भ में बतायी जाती है। व्यावसायिक लेखांकन के समान, राष्ट्रीय आय का लेखांकन के लिये एक साल की समय सीमा निर्धारित है जिसके लिये बहुत सारे आंकड़े एकत्रित किये जाते है एवं उन आंकड़ों का परिमापन किया जाता है, और जीडीपी के अनतर्गत विदेशों से प्राप्त होने वाली शुद्धकारक आय सम्मिलित नहीं है। विदेशों से प्राप्त शुद्ध कारक आय, विदेशी से घरेलू सेवाओं के द्वारा प्राप्त आय में अन्तर है

एवं विदेशियों द्वारा मुख्य सेवाओं का भुगतान देश में ही किया जाता है। इन सेवाओं में वेतन और वेतन के लिये भुगतान फीस रायल्टी, ब्याज, लाभांश, लाभ एवं पर्यटकों के द्वारा किया जाने वाला खर्च शामिल हैं।

घरेलू क्षेत्र का अर्थः–घरेलू क्षेत्र शब्द का अर्थ देश की राजनीतिक सीमा की अवधारणा से कहीं अधिक विस्तृत है। देश के घरेलू क्षेत्र में निम्नलिखित सम्मिलित हैः–

1 राजनीतिक सीमा के अन्दर आने वाले क्षेत्र, जिसमें देश की जलीय सीमा भी सम्मिलित है।

2 देशवासियों द्वारा चलाये जाने वाले जलयान एवं वायुयान,

3 मत्स्य पालन जहाज, तेल एवं प्राकृतिक गैस रिसाव, अन्तर्राष्ट्रीय जल सीमा में देशवासियों द्वारा चलाये जाने वाले तैरते हुये प्लेटफार्म या उन क्षेत्रों में प्रत्यर्पण में व्यस्त (लगे) लोग, जिन क्षेत्रों में देश को शोषण के अनन्य अधिकार है।

4 विदेशों में स्थित देश के दूतावास, वाणिज्य दूतावास और सैन्य प्रतिष्ठान ।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एम.पी.) में सकल घरेलू उत्पाद एवं विदेशों से प्राप्त शुद्ध कारक आय दोनों ही सम्मिलित है।

अतः कुल राष्ट्रीय उत्पाद = कुल घरेलु उत्पादन + विदेशों से प्राप्त शुद्ध कारक आय। यह भी इंगित करता है कि :–

1 कुल राष्ट्रीय उत्पाद > कुल घरेलु उत्पाद यदि विदेशी – शुद्धकारक आय सकारात्मक है , और

2 कुल राष्ट्रीय उत्पाद < कुल घरेलू उत्पाद यदि शुद्ध कारक आय नकारात्मक है।

3 कुल घरेलू उत्पाद एवं कुल राष्ट्रीय उत्पाद बाजार भाव पर जब सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य शुद्ध अप्रत्यक्ष करों के साथ होता है, तो कुल योग को बाजार में प्राथमिक बाजार के रूप में जाना जाता है।

अतः , (1) सकल घरेलू उत्पाद बाजार मूल्य = घरेलू क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का कुल मूल्य + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर।

(2) सकल राष्ट्रीय उत्पाद बाजार मूल्य = सकल राष्ट्रीय उत्पाद + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

4. सकल घरेलू उत्पाद एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद कारक कीमत पर – (जीडीपी कारक एवं जीएनपी कारक) जब जीडीपी/जीएनपी में अप्रत्यक्ष कर सम्मिलित नहीं होते हैं, जीडीपी/जीएनपी के प्रतिनिधित्व मूल्य को कारक की कीमत के आधार पर मापा जाता है।

5 **सकल घरेलू उत्पाद एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद वर्तमान कीमतों के आधार पर–**

जब कुल घरेलू उत्पाद /कुल राष्ट्रीय उत्पाद को वर्तमान बाजार मूल्य से मापा जाता है। जीडीपी / जी.एन.पी. की कीमत को बाजार मूल्य पर दिखाया जाता है।

6 **स्थिर मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद / सकल राष्ट्रीय उत्पाद :**

जब एक एतिहासिक आधार वर्ष के मूल्य सूचकांक के संदर्भ में जीडीपी /जीएनपी के प्रतिनिधि मूल्य को मापा जाता है, तो उसे स्थिर कीमतों पर जीडीपी/ जीएनपी के रूप में जाना जाता है। बाजार मूल्य पर जीडीपी / जीएनपी से अर्थव्यवस्था में वास्तविक वृद्धि का पता नहीं चलता है क्योंकि जीडीपी / जीएनपी के आंकड़े मूल्य वृद्धि के कारण हवा में तैरते हैं। इसलिये वास्तविक आय में वृद्धि दर को प्रकट करने के लिये निरंतर मूल्य पर जीडीपी / जीएनपी का माप किया जाता है।

7 **कारक लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद /शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादः–**

यदि सकल घरेलू उत्पाद या सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास को हटा दिया जाए जो शेष बचता है उसे शुद्ध घरेलू उत्पाद / शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (कारक लागत पर) कहा जाता है जब कारक लागत पर जीडीपी / जीएनपी के प्रतिनिधित्व मूल्य में शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को जोड़ दिया जाता है, तो शुद्ध घरेलू उत्पाद/ शुद्ध घरेलू उत्पाद को बाजार मूल्य पर मापा जाता है। बाजार कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय के नाम से भी जाना जाता है।

8 **व्यक्तिगत आय एवं व्यय योग्य आयः–**

व्यक्तिगत आय से अभिप्राय उस आय से है जो एक वर्ष में किसी देश के लोगों अथवा परिवारों को वास्तविक रूप में प्राप्त होती है। कपंनियों की आय पर कर की मात्रा, सामाजिक सुरक्षा अंशदान तथा कंपनियों का अवितरित लाभ वैयक्तिक आय में शामिल नहीं की जाती है और इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है, किन्तु उनके द्वारा प्राप्त अन्तरित भुगतान को व्यक्तिगत आय में जोड़ दिया जाता है। अतः व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय – (सामाजिक सुरक्षा अंशदान + कंपनी का आय कर + कंपनियों का अवितरित लाभ) + व्यक्तियों को अंतरित भुगतान।

9 **व्यक्तिगत प्रयोज्य आय :–**

यह वह आय होती है जो व्यक्तिगत व्यय योग्य आय उस आय का प्रतिनिधित्व करती है जो उस व्यक्ति की इच्छा पर उपलब्ध कराया जाता है जिस तरह से वह ऐसा करने का चुनाव करता है। अतः व्यक्तिगत प्रयोग्य आय–व्यक्तिगत आय के समान है। यह वह आय होती है जो प्रत्यक्ष कर का भुगतान करने के बाद शेष बचती है।

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय = व्यक्तिगत आय – व्यक्तिगत प्रत्यक्षकर

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय की या तो खपत की जा सकती है या बचत । अतः उपभोग (खपत) एवं बचत दोनों में समान है।

10 **नाममात्र प्रति व्यक्ति आय एवं वास्तविक प्रतिवयक्ति आय–**

किसी विशेष वर्ष में देश की कुल आबादी से वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय आय को विभाजित करके नाममात्र प्रति व्यक्ति आय प्राप्त की जाती है।

$$\text{अतः नाममात्र प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{वर्ष के वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय आय}}{\text{वर्ष की कुल जनसंख्या}}$$

दूसरी ओर, वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय स्थिर मूल्य पर आधारित होती है और यह प्रतिव्यक्ति आय की क्रय शक्ति पर असर डालती है। इस प्रकार इसकी गणना की जाती है–

$$\text{वास्तविक प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{वर्ष राष्ट्रीय आय वास्तविक मूल्य पर} \times 100}{\text{वर्तमान वर्ष का मूल्य सूचकांक}}$$

चूंकि वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में आधार वर्ष के संदर्भ में चालू वर्ष की मामूली आय के अपस्फीति मूल्य का पता चलता है, इसे अपस्फीति कारक प्रति व्यक्ति आय के नाम से भी जाना जाता है । अपस्फीतिकारक की सहायता से, वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय की निम्नानुसार गणना की जाती हैः–

$$\text{वास्तविक प्रति व्यक्ति आय} = \text{मामूली प्रति व्यक्ति आय} \times \frac{1}{\text{अपस्फीतिकारक}}$$

अपस्फीतिकारक = $\frac{\text{वर्तमान वर्ष की मूल्य सूची}}{\text{आधार वर्ष की मूल्य सूची}}$

उदाहरण माना कि वर्तमान वर्ष के लिये मूल्य सूची 300 है जबकि आधार वर्ष में 100 थी। अपस्फीति कारक 3 होगा एवं वर्तमान वर्ष की प्रति व्यक्ति आय, वर्तमान मामूली प्रति व्यक्ति आय की एक तिहाई होगी।

9.3 राष्ट्रीय आय का मापन

राष्ट्रीय आय में आर्थिक गतिविधियों का एक परिपत्र प्रवाह सम्मिलित है, जिसमें उत्पादन, वितरण एवं व्यय शामिल हैं। आर्थिक गतिविधियों के उन लगातार तीन चरणों के अनुरूप, राष्ट्रीय आय को मापने के तीन तरीके हैं, 1 उत्पादन पद्धति 2 आय पद्धति और 3 व्यय पद्धति।

(1) **उत्पादन प्रक्रिया :–** इस प्रक्रिया के अनुसार, अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों जैसे प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र, तृतीयक सेवा क्षेत्रों में बांटा जाता है। प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियां, जंगल, मत्स्य एवं खदानों से संबंधित गतिविधियां आती हैं। द्वितीयक क्षेत्र विनिर्माण क्षेत्र से संबंधित होता है जहां कच्चा माल का प्रयोग करके या अधबनी हुई वस्तुओं को पूर्ण निर्मित वस्तु में बदलने का काम करके उत्पादन किया जाता है। तृतीयक क्षेत्र में सेवाओं जैसे बैंकिग, बीमा, यातायात, संप्रेषण, व्यापार और वाणिज्य के माध्यम से आय अर्जित की जाती है। इस क्षेत्र में विभिन्न उत्पादक इकाईयों की पहचान कर ली जाती है और वस्तुओं और सेवाओं के रूप में उनका योगदान लिया जाता है। उत्पादन प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना के लिये निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी गयी है।

(1) प्रत्येक क्षेत्र मे ंप्रत्येक उत्पादन इकाई का कुल मिलाकर गणना की जाती है, जो औद्योगिक उत्पत्ति द्वारा लगाये गये सकल मूल्य देता है।

(2) उपर्युक्त 1 में बतायी गये उत्पादन के सकल मूल्य से अर्थव्यवस्था की प्रत्येक क्षेत्र की उत्पादन इकाई द्वारा जोड़े गये शुद्ध मूल्य को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित चीजों को हटा दिया जाता है–

- (अ) मध्यवर्ती खपत का मूल्य जैसे आगे उत्पादन की प्रक्रिया में काम करने वाली वस्तुंए एवं सेवाएं।
- (ब) निश्चित पूंजी की खपत जैसे– मूल्य का ह्रास या अवमूल्यन एवं प्रत्याशित अप्रचलित नुकसान, और
- (स) सरकार द्वारा दी गयी विशेष छूट के आधार पर कुल अप्रत्यक्ष करके बराबर शुद्ध अप्रत्यक्ष कर –

3 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों द्वारा जोड़े गये कुल शुद्ध मूल्य को शुद्ध घरेलू उत्पाद कहते हैं, और

4 विदेशों से प्राप्त शुद्ध कारक आय को शुद्ध मूल्य में जोड़कर जैसा (3) में ऊपर बताया गया है, कारक कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है। संक्षेप में, उत्पादन प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रीय आय के विभिन्न अवयवों को निम्नानुसार मापा जाता है–

1 सकल बाजार मूल्य (जीडीपी बाजार मूल्य)= घरेलू अर्थव्यवस्था के
पर सकल घरेलू उत्पाद समस्त क्षेत्रों के द्वारा शुद्ध
मूल्य जोड़ना+ निश्चित

पूंजी का उपभोग +शुद्ध अप्रत्यक्ष कर।

2 शुद्ध घरेलू उत्पाद बाजार मूल्य पर (एनडीपी बाजारमूल्य) = सकल घरेलू उत्पाद (बाजार मूल्य)– निश्चित पूंजी का उपभोग (खपत)

3 शुद्ध घरेलू उत्पाद कारक मूल्य (एनडीपी कारक मूल्य) = शुद्ध घरेलू उत्पाद बाजार मूल्य – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + रियायतें

4 शुद्ध राष्ट्रीय आय कारक कीमत पर (एनएनपी आय = शुद्ध घरेलू उत्पाद कीमत कारक + विदेशी शुद्ध कारक कारक कीमत)

विदेशों से प्राप्त आय कारक सेवाओं से एवं विदेश से प्राप्त आय के बीच के अंतर के बराबर है और किसी विशेष देश में विदेशी–नागरिकों /गैर निवासियों द्वारा प्रदान की जाने वाली आय की भुगतानकारक सेवाओं के बराबर है। उत्पादन प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कुछ विशिष्ट बिन्दुओं पर ध्यान देना जरूरी है–

1 उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग में आने वाली मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को बाहर रखना चाहिये अन्यथा दोहरी गणना होगी या समान वस्तुओं की गणना बहुत बार होने की संभावना होगी, और

2 राष्ट्रीय आय की गणना के लिये पूंजीगत सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि और गैर कानूनी गतिविधियों से आय से होने वाली पूंजीगत लाभों की कीमत पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए ।

3 ऐसे भुगतानों के प्राप्तकर्ताओं द्वारा की गयी आर्थिक गति विधियों से बेरोजगारी भत्ते और वृद्धावस्था राहत या किसी भी अन्य सामाजिक सुरक्षा का भुगतान का नहीं किया जा सकता है, इसलिये उन्हें भी अनदेखा करना चाहिए। तथापि निम्नलिखित मदों के मूल्य को शामिल करने के लिये इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहियेः–

(i) स्व उपभोग के लिये उपयोग किये जाने वाले सामान और सेवाओं का ।

(ii) मालिकों द्वारा स्वयं कब्जे वाले घरो के इन सम्पत्तियों का किराया।

(iii) सरकार द्वारा निश्चित परिसम्पत्तियों के स्व–उत्पादन का मूल्य एवं अन्य उत्पादक इकाईयों के संबंध में था।

2 **आय गणना विधि** :– इस विधि के अन्तर्गत एक वर्ष में उत्पादन के विभिन्न साधनों को प्राप्त होने वाली आय के योग द्वारा राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है।

कारक मजदूरी एवं वेतन का वर्गीकरण इस प्रकार हैः– 1 मजदूरों को मिलने वाला मुआवजा, 2 किराया, 3 ब्याज, 4 लाभ तथा 5 स्वरोजगारों की मिश्रित आय। आय गणना विधि के अन्तर्गत बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पादन की गणना इस प्रकार की जाती है–

सकल घरेलू उत्पाद बाजार मूल्य = वेतन के रूप में समस्त भुगतान + ब्याज+ लाभ + स्वरोजगारों की मिश्रित आय + निश्चित पूंजी की खपत + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर।

राष्ट्रीय आय के अन्य रूपों को तय पूंजी, शुद्ध अप्रत्यक्ष करों और विदेशों से शुद्ध कारक आय के उपयोग के लिये समायोजन करने के बाद गणना की जा सकती है, जैसा कि पहले किया गया है जब उत्पादन प्रणाली से की गयी गणना की व्याख्या की जा रही थी।

इस पद्धति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करते समय निम्नलिखित भुगतानों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहियेः–

(1) सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा किये गये हस्तांतरण भुगतान

(2) अवैधानिक कमाई और

(3) लॉटरी एवं पूंजीगत लाभ से प्राप्तियाँ जैसे पवनचक्र का लाभ।

पूंजी कर जैसे धन कर, मृत्युकर एवं दान कर का भुगतान वर्तमान आय में सम्मिलित नहीं होते हैं। एवं जब उत्पादन के कारकों की आय की गणना की जा रही हो तब इन करों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। फिर भी आयकर और निगम कर की हिस्सेदारी, व्यक्तियों की, निगमित निकायों की हिस्सेदारी के द्वारा घरेलू उत्पाद के ही हिस्से होते हैं।

पुरानी वस्तुओं को बेचकर प्राप्त होने वाले भुगतान घरेलू उत्पाद के हिस्से नहीं होते हैं क्योंकि इन भुगतानों से केवल सामान के मौलिक परिवर्तित हो जाते हैं, यह विक्रेता द्वारा किसी प्रकार की उत्पादन प्रक्रिया से नहीं गुजरते हैं।

3 **व्यय गणना विधि** :– इस पद्धति द्वारा राष्ट्रीय आय को निजी और सरकारी संगठनों के द्वारा किये गये वययों के आधार पर मापा जाता है। राष्ट्रीय आय की संगणना में किये गये आखिरी व्यय को सम्मिलित किया जाता है जो इस प्रकार हैः–

(i) निजी अंतिम खपत व्यय।

(ii) सरकारी अंतिम खपत व्यय।

(iii) सकल निश्चित पूंजी निर्माण ।

(iv) संग्रहण (स्टॉक) के मूल्य में परिवर्तन जिसमें बन्द संग्रहणों के मूल्य (क्लोजिंग स्टाकस) को खुले संग्रहण के मूल्य (ओपनिंग स्टॉक्स) में से घटाना सम्मिलित है।

(v) सामानों एवं सेवाओं का शुद्ध निर्यात।

साधारणतया, राष्ट्रीय आय की गणना निम्नलिखित सूत्रों की सहायता से की जा सकती हैः–

राष्ट्रीय आय = C+1+G+ (सामानों एवं सेवाओं का पूर्ण निर्यात – सामानों एवं सेवाओं का पूर्ण आयात)

यहाँ C = कुल निजी उपभोग व्यय

I = निजी उद्यमों द्वारा पूंजीगत वस्तुओं पर कुल निवेश

G = कुल सरकारी व्यय जिसमें पूंजीगत वस्तुओं पर किया गया व्यय भी सम्मिलित हैं।

9.4 राष्ट्रीय आय के माप में आने वाली बाधाएं

राष्ट्रीय आय को मापने में बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है–

1 आर्थिक गतिविधियों एवं गैर आर्थिक गतिविधियों के बीच द्विविभाजन राष्ट्रीय आय की गणना को अवास्तविक बनाता है। उदाहरण के लिये नौकरानी को उसकी सेवाओं के लिये दी गयी मजदूरी राष्ट्रीय आय का हिस्सा है, किन्तु जब मालिक उससे विवाह कर लेता है, तो उन्हीं सेवाओं की कीमत एक पत्नि के रूप में आंकी जाती है। और इसे राष्ट्रीय आय के क्षेत्र से बाहर रखा जाता है।

2 अर्थव्यवस्था के गैर मुद्रीकृत खंड भी राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य करते हैं, जो बहुत कठिन कार्य है। सुदूर समाज के कोने में बहुत से लेनदेन के कार्य पैसे के उपयोग के बिना वस्तु विनिमय के आधार पर किये जाते हैं, अतः वस्तुओं और सेवाओं का आंकलन एक दुरूह कार्य है।

3 स्वयं के कब्जे वाले घरों के किराये मूल्य का अभिप्राय एवं स्वरोजगार व्यक्तियों की मिश्रित आय की गणना भी बहुत कठिन कार्य है, राष्ट्रीय आय के मूल्य के आकलन में इस प्रकार की गणना करना दुरूह कार्य है।

4 धन अर्जित करने वालों की अशिक्षा एवं अनिच्छा दोनों ही सही आंकड़े प्रस्तुत करने में समस्या उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार राष्ट्रीय आय का सही मापन नहीं हो पाता है। कराधान के डर के कारण लोग अपनी आय कम बताते है जिससे अर्थव्यवस्था में पैसा एक जगह इकट्ठा (ब्लॉक) होकर रह जाता है।

5 कृषि क्षेत्र में उपयोग में आने वाले साधनों की सही जानकारी न होने के कारण, इसमें क्षेत्र के द्वारा जोड़ी गयी शुद्ध मूल्य का सही तरीके से मापन नहीं हो पाता है जिसके परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन का सही मूल्य की जानकारी नहीं हो पाती है।

6 उत्पादन में प्रयोग में आने वाली कच्चा सामग्री एवं अन्य मध्यवर्ती उत्पाद के संदर्भ में दोहरी गणना या बहुगणना की संभावना से राष्ट्रीय आय के समुचित आकलन में समस्या उत्पन्न होती है। प्रत्येक स्तर पर शुद्ध मूल्य की गणना के माध्यम से इस समस्या से उबरा जा सकता है।

7 पूंजीगत परिसम्पत्तियों की संगणना का आकलन, जैसे मूल्य ह्रास कोई आसान कार्य नहीं है। मूल्यह्रास लेखांकन की एक अवधारणा है जो परिसम्पत्तियों के अनुमानित कामकाजी जीवन में पूंजीगत सम्पत्ति की लागत को आवंटित करता है। चूंकि परिसम्पत्ति का कामकाजी जीवन अवमानित अवशिष्ट मूल्य के साथ सटीक मापन के लिये अनुकूल नहीं है, मूल्यह्रास की मात्रा भी शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का सही आकलन करने के लिये न केवल आवस्तविक हो जाता है बल्कि यह कठिन भी है।

9.5 राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण

देशवासियों की आय में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है, लोगों की आय में वृद्धि होने से वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके अधिक संतुष्ट महसूस करते हैं। जैसा कि देखने में आता है कि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि के परिणाम स्वरूप आर्थिक कल्याण में भी बराबरी से वृद्धि होती है। अन्ततः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय आय के आकार और आर्थिक कल्याण के स्तर के बीच सकारात्मक संबंध हैं। किन्तु इस निष्कर्ष के निम्नलिखित अपवाद हैः–

1 राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि राष्ट्रीय आय की संरचना को प्रकट नहीं करती जिसका लोगों के कल्याण पर महत्वपूर्ण असर पड़ता है। यदि उच्च मूल्यों वाले मूल सामानों का योगदान अपेक्षाकृत होता है तो उच्च विनिमय मूल्य वाले विलासिता के सामान की तुलना में, राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि के बावजूद, समुदाय का समग्र कल्याण नहीं हो सकता है।

2 यदि कार्य करने की स्थितियां अनुकूल और सवस्थ नहीं हैं तो राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होने के बावजूद समाज कल्याण का स्तर गिरता जायेगा। कार्यस्थल का वातावरण, स्थितियाँ एवं कामगार केन्द्रित नेतृत्व इत्यादि कर्मचारियों के कल्याण पर बहुत असर डालते हैं।

3 राष्ट्रीय आय में वृद्धि के कारण पर्यावरणीय प्रदूषण हो सकता है जिससे रहवासियों के जीवन पर नुकसान दायक असर पड़ने की संभावना रहती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत , राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि से आर्थिक कल्याण नहीं हो सकेगा। पर्यावरण की समस्याओं से भविष्य में होने वाले नुकसान जैसे समाज कल्याण को नुकसान की समस्या होगी।

4 यदि राष्ट्रीय आय का वितरण समाज के उच्च उत्कृष्ट वर्गों में बंटवारे के पक्ष में है तो जनसंख्या के बड़े पैमाने पर जीवन स्तर पर ही कामयाब हो सकता है। राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि के बावजूद समाज कल्याण में वृद्धि होना मुश्किल है। धनी वर्ग से गरीब को पैसे का अन्तरण निश्चय ही समाज का कल्याण करेगा क्योंकि ऐसे स्थानांतरण खाली खेल नहीं है जिसमें परिणामी लाभ गरीबों के पक्ष में आय के हस्तांतरण के माध्यम से अमीर होने के कारण परिणामी नुकसान से पूरी तरह बंद हो जायेगा। बल्कि यह एक सकारात्मक दृष्टि का खेल है जिसमें ग्रामीणों को होने वाले नुकसान की अपेक्षा गरीबों की उपयोगिता में वृद्धि होती है, और यह वृद्धि गरीब के पक्षा में आय के हस्तांतरण से होती है। हालांकि, गरीब वर्ग अपनी आय का अधिकांश हिस्सा शराब एवं अन्य अनावश्यक चीजों में खर्च करता है, समाज के कल्याण में शुद्ध लाभ भ्रामक साबित हो सकता है।

5 आर्थिक कल्याण राष्ट्रीय आय में पूरे विकास की अपेक्षा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि पर आश्रित होता है। यदि जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ेगी तो राष्ट्रीय आय भी बेहतर होगी। अगर राष्ट्रीय आय का आकार बढ़ जाता है तो भी आर्थिक कल्याण में गिरावट आ जायेगी।

6 आर्थिक कल्याण धन की आय के बजाय वास्तविक आय में वृद्धि की शर्त पर आधारित होता है। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर की अपेक्षा मुद्रास्फीति दर अधिक है, यह वास्तविक आय को कम कर देगा एवं आर्थिक कल्याण भी कम हो जायेगा।

7 समाज कल्याण पर प्रभाव डालने वाले सकल घरेलू उत्पाद की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये, कुछ विशेषज्ञों ने सकल घरेलू संतुष्टि(जी.डी.सी.) की अवधारणा को प्रतिपादित किया । इस अवधारणा को संतुष्टि के स्तर को मापने एवं देशवासियों के द्वारा उ पभोग की जा रहे कल्याण के लिये जीडीपी की अवधारणा को प्रतिपादित किया इस अवधारणा को संतुष्टि के स्तर को मापने एवं देश वासियों के द्वारा उपभोग किये जा रहे कल्याण के लिये जीडीपी के विकल्प के रूप में लाया गया। अतः, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय आय के आकार समाज कल्याण में सुधार हेतु एक अविवेकी सूचकांक नहीं है।

9.6 सारांश

विशिष्ट वर्ष के दौरान देश द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की धन की उपयोगिता का योग राष्ट्रीय आय है। जब वस्तुओं का उत्पादन मानव संसाधन द्वारा होता है जैसे– प्राकृतिक संसाधनों की सहायता से श्रम एवं अन्य यंत्र जैसे मशीनें, यंत्र एवं उपकरण एवं जो आवश्यक रूप से भौतिक रूप में उपस्थित है व्यक्तिगत या संगठनों के द्वारा दी जाने वाली सेवाएं अभौतिक रूप में उपलब्ध होती है, सभी मानव संसाधन के अन्तर्गत आते है। राष्ट्रीय आय में उत्पादन, वितरण और व्यय से उत्पन्न आर्थिक गतिविधियों का चक्रीय प्रवाह, सम्मिलित हैं। आर्थिक गतिविधियों के लगातार तीन चरणों के आधार पर राष्ट्रीय आय को मापने की तीन पद्धतियाँ है :–

1 उत्पादन पद्धति 2 आय पद्धति, और 3 व्यय पद्धति । राष्ट्रीय आय के कारण देश के निवासियों की आय में बढ़ोत्तरी होती है जिससे वे अपनी बड़ी जरूरतों को पूरा करके अधिक संतुष्टि प्राप्त कर सकते है। ऐसा स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में भी समान रूप से वृद्धि होती है । अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय आय के आकार एवं आर्थिक कल्याण के स्तर में सकारात्मक संबंध उत्पन्न होता है।

9.7 शब्दावली

आर्थिक कल्याणः– से तात्पर्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के जीवन की समृद्धि के स्तर या जीवन स्तर से है।

प्रयोज्य आयः– कर में कटौती और सामाजिक सुरक्षा प्रभारों के बाद शेष आय का उल्लेख करती है, जो एक इच्छा के रूप में खर्च या सहेजने के लिये उपलब्ध है।

9.8 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(1) ––––––––––––– एक विशेष वर्ष की अवधि के दौरान किसी देश द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के धन मूल्य का योग है।

(2) एक वर्ष के दौरान देश के घरेलू क्षेत्र में उत्पादित अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं का धन मूल्य ––––––––– के रूप में जाना जाता है।

(3) ––––––––––– वर्ष के दौरान सभी व्यक्तियों या परिवारों द्वारा प्राप्त आय की कुल राशि है।

(4) राष्ट्रीय आय की अर्थव्यवस्था के माप के –––––––––– को प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीय क्षेत्र जैसे विभिन्न क्षेत्रों में वगीकृत किया गया है

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 राष्ट्रीय आय 2 सकल घरेलू उत्पाद 3 व्यक्तिगत आय 4 उत्पादन

9.10 स्वपरख प्रश्न

1. जीएनपी क्या है और यह एनएनपी से किस तरह भिन्न है?
2. 'हस्तांतरण भुगतान' से आप क्या समझते हैं ? क्या यह राष्ट्रीय आय में सम्मिलित हैं ?
3. जीडीपी क्या है एवं यह जीएनपी से किस तरह अलग है?
4. स्थिर मूल्यों पर राष्ट्रीय आय के महत्व को समझाइये ।
5. जी.एन.पी. की गणना करने में दोहरी गणना क्या है ? इससे कैसे बचा जा सकता है ?
6. राष्ट्रीय आय क्या है ? राष्ट्रीय आय को मापने की विभिन्न पद्धतियाँ क्या है ?
7. हम राष्ट्रीय आय से प्रयोज्य आय एवं व्यक्तिगत आय की गणना किस प्रकार कर सकते हैं। इसमें क्या जोड़ा जाना चाहिये और क्या घटाया जाना चाहिये।
8. देश की राष्ट्रीय आय की गणना में आने वाली कठिनाईयाँ क्या है ? पूर्णतः स्पष्ट कीजिए।

9.11 संदर्भ पुस्तकें

1 राष्ट्रीय आय समिति, अप्रैल 1951 की पहली प्रतिवेदन

2 केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन, राष्ट्रीय लेखांकन सांखयिकीय 2007

3 आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार 2010–11

4 आर्थिक एवं राजनीति साप्ताहिक, रिसर्च फाउण्डेशन (2002)

5 बिमल जालान, इंडियाज इकोनॉमिक पालिसी (नयी दिल्ली 1996)

6 आ नागराज, इंडियाज रिसेन्ट इकोनॉमिक ग्रोथ ए क्लोजर लुक, इकोनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, अप्रैल 12, 2008

7 सुरजीत एस. भल्ला, 'गैटिंग बैक टू हिन्दू ग्रोथ, विजनेस स्टैण्डर्ड, मार्च 2, 2009

8 इंडियन इकोनॉमी – व्ही.के. पुरी, एल.के. मिश्रा, हिमालय पब्लिशिंग हाउस ।

––––

इकाई 10 गरीबी, गरीबी रेखा एवं गरीबी उन्मूलन के उपाय

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 गरीबी का मापन
10.3 भारत में गरीबी
10.4 भारत में गरीबी मापने की क्रियाविधि
10.5 गरीबी की प्रकृति
10.6 गरीबी के कारण
10.7 गरीबी कम करने के उपाय
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्न
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- गरीबी की अवधारणा की व्याख्या करने कर सकें।
- गरीबी रेखा का आकलन करने के तरीको की व्याख्या कर सकें।
- गरीबी के कारणों को स्पष्ट कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

गरीबी वह स्थिति है जो देश के लोगों या समाज या किसी व्यक्ति द्वारा उनकी मौलिक आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान आदि की पूर्ति करने में अक्षमता इंगित करती है। विश्व में गरीबी की कोई सार्वभौमिक स्वीकृत परिभाषा नहीं है। हालांकि, बहुत सारे विशेषज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि वह लोग जो न्यूनतम उपभोग स्तर को छू पाने में असफल हैं उन्हें गरीब कहा जा सकता है। भारत में योजना आयोग ने ''न्यूनतम जरूरतों एवं प्रभावी उपभोग की मांग के प्रक्षेपण पर कार्यबल'' के द्वारा गरीबी की दी गयी परिभाषा को अंगीकृत किया है। आय बिन्दु पद्धति का उपयोग करते हुये कार्यबल ने गरीबी रेखा को मासिक प्रति व्यक्ति व्यय वर्ग के मध्य बिंदु के रूप में परिभाषित किया था, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2435 (2400) दैनिक कैलोरी एवं शहरी क्षेत्रों में 2095 (2100) कैलोरी का सेवन करना सम्मिलित था। यह परिभाषा जीवन के न्यूनतम स्तर पर जोर देती है न कि युक्तियुक्त जीवन स्तर पर। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक देश की मूल आवश्यकताओं की अवधारणा भिन्न–भिनन है। अमेरिका में गरीबी, भारत से इस स्तर पर अलग है कि वहाँ औसत व्यक्ति का न्यूनतम जीवन स्तर भारत में रहने वाले व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक है। संयुक्त राष्ट्र संघ गरीबी की परिभाषा विकल्पों एवं अवसरों से इन्कार, मानव गरिमा का एक अंकन जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति की बुनियादी क्षमता का अभाव समाज में प्रभावी रूप से होने के रूप में करता है। इसका अर्थ यह भी है कि परिवार के लिये भोजन और कपड़ों की न्यूनतम

आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त साधन का नहीं होना, बच्चों की शिक्षा का अभाव एवं उनके स्वास्थ्य की देखरेख का अभाव होना है। किसी भी व्यक्ति को जीने हेतु धनार्जन करने के लिये नौकरी प्राप्त करना एवं भोजन आदि प्राप्त करने के लिये एक स्तर तक न पहुंच पाना भी गरीबी के अन्तर्गत आता है। असुरक्षा, शक्तिहीनता एवं व्यक्ति, घर एवं समुदाय का बहिष्कार से भी इसका तात्पर्य है। इसका अर्थ है कि स्वच्छ पानी या स्वच्छता के बिना हिंसा की संभावना और सीमांत या नाजुक वातावरण में रहना है।

विश्व बैंक के अनुसार, गरीबी अच्छी एवं उचित चीजों का अभाव है एवं इसमें कम आय, एवं आवश्यक बुनियादी सामान और सेवाओं को प्राप्त करने के अयोग्य होना आता है जो कि गरिमामय जीवन जीने के लिये आवश्यक है। इसमें शिक्षा और स्वास्थ्य का निम्न सतर, स्वच्छ पानी एवं स्वच्छता का अभाव, अपर्याप्त शारीरिक सुरक्षा, उच्चतर जीवन के लिये अपर्याप्त क्षमता एवं अवसरों का अभाव भी सम्मिलित है।

उपर्युक्त चर्चा से हम यह देख सकते हैं कि गरीबी के चार आयाम है :-

(1) **संपत्ति का अभाव** :- इसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति का घर या घर के सामान जैसे भूमि, सम्पत्ति एवं मूलयवान वस्तुओं पर कब्जा आता है।

(2) **संसाधनों का अभाव** :- इसमें साख की क्षमता, विस्तृतीकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पीने का पानी इत्यादि सम्मिलित हैं।

(3) **ज्ञान का अभाव :-** समस्त पर्यावरण, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, विधिक एवं तकनीकी सूचनाएं एवं जानकारियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं एवं इन जानकारियों के माध्यम से उनमें होने वाले परिवर्तन भी सम्मिलित हैं।

(4) **अधिकारों का अभाव** :- इसके अन्तर्गत देश के नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार आते है।

10.2 गरीबी का मापन

गरीबी मापने की दृष्टि से, इसे दो प्रकारों में रखा जा सकता है– पूर्ण गरीबी एवं सापेक्ष गरीबी ।

1 **पूर्ण गरीबी** :- निरपेक्ष गरीबी को लोगों के जीवन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सामग्री और सांस्कृतिक वस्तुओं की कमी के कारण होती है, जो उनकी व्यक्तिगत अखंडता से समझौता करने के मुद्दे पर अपने सामान्य विकास को बाधित करती है। इस प्रकार, गरीब वह व्यक्ति है जो किसी की जैविक जरूरतों को पूरा करने के लिये किसी के संसाधनों या क्रियाकलापों को उपलबध कराने में असमर्थ है या वह एक परिवार के अलगाव और असुरक्षा के स्थायी राज्य में रहने वाले लोगों के लिये वंशानुगत हो सकता है। व्यक्ति को भूखा होना जरूरी है, वह न ही शिक्षित हो और ना ही उसकी परवाह करता हो, अपर्याप्त जगह में रहता हो और अमानवीय परिस्थितियों में काम करता हो। इस प्रकार, निरपेक्ष गरीबी से तात्पर्य है पूर्वनिर्धारित स्तर जो देश एवं काल में लंबे समय से स्थिर है । विश्व बैंक उसे अत्यन्त गरीबी की संज्ञा देती है जो 1.25 अमेरिकी डालर (क्रयशक्ति समानता अवधारणा) प्रतिदिन से भी कम पर अपना जीवनयापन करता है। किन्तु, उन राष्ट्रों में जहाँ मुद्रा के रूप में डालर चलन में नहीं है, वहाँ 1.25 अमेरिकी डालर के बराबर की मुद्रा देखनी होगी जिससे समान वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदने की आवश्यकता होगी।

2 **भारत में निरपेक्ष गरीबी का मापन :-** 1970 एवं 1980 के अन्त में अर्थशास्त्री योगिन्दर अलघ एवं डी.टी. लकड़ावाला ने गरीबी रेखा को भोजन पर होने वाले व्यय के संदर्भ में परिभाषित

किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2433 केलोरी प्राप्त करने के लिये किये गये व्यय एवं शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2100 केलोरी प्राप्त करने के लिये किये गये व्यय के रूप में गरीबी को मापा गया। यहाँ तक कि मूलभूत आवश्यकताओं जैसे कपड़े एवं मकान पर किये गये व्यय गरीबी रेखा की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते हैं। 2009 में सुरेश तेंदुलकर समिति के गरीबी की अधिक वास्तविक परिभाषा दी है। सुरेश तेंदुलकर समिति के द्वारा दी गयी परिभाषा, विभाजित पद्धति के द्वारा दी गयी जिसके अन्तर्गत नयी परिभाषा के आधार पर गरीबी के आंकड़ों की गणना की गयी। तेंदुलकर ने, भोजन के आलवा स्वास्थ्य, ईंधन, बिजली, मनोरंजन आदि पर होने वाले व्यय को भी सम्मिलित किया। गरीबी की इस व्यापक परिभाषा को अपनाने एवं एनएस.एस.ओ. सर्वेक्षण व्यय का उपयोग करते हुये, योजना आयोग ने मार्च 2012 में ग्रामीण क्षेत्र में 22.40 पैसे एवं शहरी क्षेत्रों में 28.65 पैसे प्रतिदिन व्यय को गरीबी रेखा के रूप में निर्धारित किया, ठीक इसी समय (विश्व बैंक गरीबी बिन्दु) के अन्तर्गत 1.25 डालर निर्धारित था और यह 1.25 डालर 23.75 पैसे प्रतिदिन के बराबर था जो पीपीपी डालर पर आधारित था (जहां एक डालर 19 रूपये के बराबर था)

3 **सापेक्ष (तुलनात्मक) गरीबी** :– सापेक्ष गरीबी असमानता का एक उपाय है । इस मामले में गरीबी उन व्यक्तियों और परिवारों पर लागू होती है जिनकी आय एवं अन्य संसाधन जिसमें जीवन जीने की स्थितियाँ एवं गरीबी, रोजगार एवं श्रम से संबंधित नियम निम्नलिखित हैं, समाज के औसत स्तर से नीचे हैं। सामान्यतः सापेक्ष गरीबी को कम आय वाली जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में मापा जाता है जो कि मध्यमवर्गीय आय के निश्चित हिस्से से कम होता है। गरीबी मापने की यह तकनीक विश्व के अधिकांश विकसित देशों में अपनायी जाती है। इस प्रकार, वह गरीबी के आंकड़े, असमानता का मूल्यांकन करते हैं न कि भौतिक सामग्री का।

4 **अत्यधिक गरीबीः–** शब्द अत्यधिक गरीबी के अन्तर्गत वह लोग आते हैं जो कम आय वाले देशों में गरीबों में से भी गरीब हैं। लिप्टन के अनुसार यह लोग 8 प्रतिशत से भी कम कैलोरी लेते हैं। जबकि 8 प्रतिशत से अधिक आय भोजन पर व्यय करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान केन्द्र ने 2007 में अपनी रिपोर्ट में अत्यधिक गरीबी की परिभाषा इस प्रकार दी है– प्रतिदिन स्वीकृत मानदंडों के 54 प्रतिशत से भी कम पर जीवनयापन करना अत्यधिक गरीबी कहलाता है।

हालांकि, गरीबी को मापने के लिये, यह निरपेक्ष गरीबी है जो आम तौर पर स्वीकृत मानक के रूप में बनी हुयी है। जब गरीबी के आकार में होने वाले परिवर्तनों को दो अलग–अलग वर्षों के दौरान अनुमानित किया जाता है, तो एक प्रकार के या किसी अन्य का उपयोग करके मूल्य स्तर में बदलाव किये जाते हैं। अधिकांश प्रक्रियायें उपभोग पर व्यय के प्रतिशत तक अवमूल्यन को प्राप्त करने के लिये एनएसएस आंकड़े का प्रयोग करती हैं।

10.3 भारत में गरीबी

भारत उन देशों में से एक देश है जो बहुत ज्यादा गरीबी के नाम से जाना जाता है। यह सिद्ध करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य है कि सरकार के गरीबी हटाने के ईमानदार प्रयासों के बावजूद, यह आंकलन लगाया गया कि भारत में विश्व के एक तिहाई गरीब रहते हैं। आक्सफोर्ड गरीबी एवं मानव विकास की ताजा रिपोर्ट बताती है कि 26 सबसे गरीब अफ्रीकी राष्ट्रों की अपेक्षा भारत के 8 राज्यों में ज्यादा गरीब हैं, जो संयुक्त राज्य के सबसे गरीब अफ्रीकी देशों में 410 मिलियन से अधिक गरीब है। यूनिसेफ के आंकड़े बताते हैं कि विश्व में 3 में से 1 कुपोषित बच्चा भारत में पाया जाता है। वैश्विक भूख सूचक रिपोर्ट 2011 ने भूख से ग्रसित देशों के स्थान में भारत को 45 वे स्थान पर रखा है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि 1996 से 2011 की भूख सूचक रिपोर्ट (वैश्विक) के अनुसार भारत 3 में

से। ऐसा देश है जहां यह आंकड़ा बड़ा है (22.9 से बढ़कर 23.7 हो गया) जबकि पाकिस्तान, नेपाल और बांग्लादेश, युगाण्डा, जिम्बाबे और वियतनाम जैसे देशों में इस संदर्भ में कुछ सुधार दिखायी दिया। नयी सयुक्त राष्ट्र मिलेनियम लक्ष्य विकास रिपोर्ट के अध्ययन के अनुसार दक्षिण एशिया में, केवल भारत ही एक ऐसा देश है जहां 1990 में गरीबी दर 51 प्रतिशत से गिरकर 2015 में लगभग 22 प्रतिशत हो गयी जिससे बेहतर भविष्य की संभावनाएं नजर आती है।

10.4 भारत में गरीबी मापने की क्रियाविधि

भारत में गरीबी की सीमा गरीबी रेखा के संदर्भ में तैयार की जाती है। भुखमरी रेखा की धारणा बॉयड उर द्वारा प्रस्तावित की गयी थी, जो 1945 में एफ.ए.ओ. के महानिदेशक थे, उन्होंने निर्धारित किया कि जो व्यक्ति 2300 कैलोरी से कम प्रतिदिन लेता है वह गरीबी रेखा के अन्तर्गत आता है। इस विचार से गरीबी रेखा की अवधारणा आयी । पी.डी. ओझा एक ऐसे प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के वयय के आधार पर गरीबी का आंकलन किया। बी.एस. मिन्हास, एल.आर.जैन. एवं एस.डी. तेंदुलकर ने 1970–71 से लेकर 1987–88 तक गरीबी की घटनाओं का अध्ययन किया, इस अध्ययन में एनएसएस के आंकड़ों की सहायता के मूल्य सूचकांक सेवाओं का उपयोग करते हुये, ग्रमीण क्षेत्रों में कृषि मजदूरों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूची एवं औद्योगिक कामगारों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूची एवं मूल्य संबंधित आंकड़े और शहरी क्षेत्रों के गैर मैनुअल कर्मचारियों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूची के आधार पर किया। 20 राज्यों के लिये एवं उस आधार पर आंकड़े तैयार किये गये, गरीबों के अखिल भारतीय प्रधान गणना का आकलन किया गया और इसमें अन्तर्राष्ट्रीय उतार चढ़ाव निकल कर सामने आये।

भारत में गरीबी की स्थिति के आकलन के उपयोग में आने वाली तीन स्वीकृत पद्धतियाँ है। वे इस प्रकार है :–

1 योजना आयोग पद्धति।

2 विशेषज्ञ समूह (ई.जी.) पद्धति।

3 संशोधित विशेषज्ञ समूह (एम.ई.जी.) पद्धति।

योजना आयोग के अनुमान भौतिक अस्तित्व पर आधारित हैं। गरीबी रेखा की अवधारणा न्यूनतम पोषण संबंधी आवश्यकताओं पर आधारित है। कैलोरी सेवन 49.1 पैसे ग्रामीण जनसंख्या के लिये मासिक प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय में परिवर्तित हो जाती है एवं 56.6 पैसे शहरी जनसंख्या के प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय में परिवर्तित हो जाती है। व्यय का यह अनुपात 973–74 की अखिल भारतीय कीमतों पर आधारित है। गरीबी को मापने के लिये मानक के रूप में कैलोरी के तर्क इस बात पर निर्भर करता है कि गरीब की लगभग 70 से 80 प्रतिशत आय भोजन पर खर्च होती है। औसत कैलारी की आवश्यकता का अनुमान है कि उम्र, लिग और व्यवसाय प्राणियों द्वारा जनसंख्या की खपत को ध्यान में रखते हुये भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा अनुशंसित कैलोरी मानदंडों के साथ मिलकर अनुमान लगाया गया है। रूपयों में, गरीबी रेखा व्यय श्रेणी का मध्य बिंदु है जिसमें आवश्यक कैलारी से संतुष्टि प्राप्त होती है। आधार वर्ष के विकल्प के संदर्भ में, योजना आयोग के विशेषज्ञ समूह का मत था कि आधार वर्ष 1973 – 74 में बहुत व्यवस्थित कार्य किये गये, इस आधार वर्ष को गरीबी रेखा के आकलन हेतु निरंतर जारी रखा जा सकता है। अखिल भारतीय स्तर पर कुल निजी उपभोग वयय के आंकड़े एन.एस.एस. के सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित किये गये । कुल निजी उपभोक्ता व्यय आंकड़ों का मापन राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (सी.एस.ओ.) के द्वारा किया गया। एन.

एस.एस. के अनुमानों को तब से कुल उपभोग स्तरों के राशन के बराबर स्केलिंग कारक द्वारा समायोजित किया जाता है।

योजना आयोग ने एक विशेषज्ञ समूह (डी.टी. लकड़ावाला समिति) बनाया जिसका कार्य था पद्धति की समीक्षा करना एवं उन पर बताये गये गरीबी के अनुमानों की समीक्षा करना, विशेषज्ञ समूह ने निम्नलिखित पद्धति का सुझाव दिया–

(अ) 1973–74 की कीमतों पर सभी भारत स्तर पर क्रमशः ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिये 49.1 और 54.6 के मासिक कुल व्यय में स्तर की गणना करने के लिये राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कुल निजी उपभोग व्यय आंकड़े का सतत् उपयोग।

(ब) निजी उपभोग व्यय से संबंधित सी.एस.ओ. के राष्ट्रीय खातों के आंकड़ों के साथ राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण आंकड़ों के समायोजन विधि को बंद करने के लिये, और

(स) ग्रामीण लोगों के मामलों में कृषि श्रम के लिये उपभोक्ता मूल्य सूची का उपयोग करने में और औद्योगिक श्रमिकों के लिये औसत उपभोक्ता मूल्य सूची एवं शहरी नान मैनयुअल कर्मचारियों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूची का उपभोग किया जाता है ताकि गरीबी रेखा से नीचे जीने वाले लोगों का आंकलन किया जा सके। जुलाई, 1993 में विशेष समूह की रिपोर्ट प्रस्तुत हुयी थी।

योजना आयोग ने वर्ष 1993–94 के लिये अपनी पव्द्धति पर आधारित गरीबी रेखा से नीचे वाले लोगों का अनुमान जारी किया। इसके अनुसार गरीबी रेखा से नीचे वाले लोग 16.8 प्रतिशत तथा (पहले यह 19 प्रतिशत था) और जो विशेष समूह पद्धति पर आधारित था वह 36.3 प्रतिशत था। मार्च 1997 में योजना आयोग ने 1987–88, 1993–94 के लिये संशोधित विशेष समूह के गरीबी रेखा के अनुमान पुनः जारी किये, यह अनुमान विशेष समूह पद्धति के 'मामूली सरलीकरण के उपक्रम के द्वारा जारी किये गये। योजना आयोग ने संशोधित विशेष समूह फार्मूला का उपयोग शहरी औद्योगिक कामगारों की गरीबी रेखा के अनुमान एवं आधुतन आंकड़े प्राप्त करने के लिये केवल उपभोक्ता मूल्य सूची का प्रयोग किया। अतः यह स्पष्ट है कि 1993–94 में गरीबी रेखा के नीचे वाले लोगों का प्रतिशत योजना आयोग द्वारा लगाये गये अनुमान से कहीं दोगुना था । 55 वें दौर में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने उपभोक्ता व्यय आंकड़े को उसी दिन से 30 दिन और 7 दिन की पुरानी वाद के आधार पर प्रयोग किया जिसमें संदर्भ अवधि 365 दिन थी। इस सूत्र से गरीबी के अनुपात की संगणना की पुराने अनुमानों से तुलना नहीं है क्योंकि आंकड़ों के एकत्रीकरण की पद्धति में परिवर्तन के कारण सही अनुपात तुलनात्मक नहीं है।

तेंदुलकर समिति का अवलोकन :– प्रो. एस.डी. तेंदुलकर जिन्होंने विशेष समूह की रिपोर्ट प्रस्तुत की जो नवंबर 2009 में गरीबी के आंकलन की पद्धति की समीक्षा करने के लिये बनायी गयी थी, इस समिति ने गरीबी रेखाओं की तीन सीमाएं उजागर की– पहली, ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखा टोकरी के नीचे आने वाले खपत के नमूने 1973–74 में तीन दशक से अधिक समय पहले बनाये गये लोगों के साथ बनी हुयी हैं और इसलिये पुरानी हो चुकी हैं। गरीबों के उपभोग (खपत) नमूने में आधुनिक परिवर्तनों का गरीबी रेखा में बदलाव नहीं दिखाई देता है। दूसरे, कृषि श्रम के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक ग्रामीण आबादी के लिये इस्तेमाल किया गया था, जिससे ग्रामीण आबादी के मूल्य वृद्धि को महत्व दिया गया और इस प्रकार ग्रामीण गरीबी की सीमा को महत्व दिया गया और तीसरे, इससे पहले गरीबी रेखाओं ने माना कि शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सामाजिक सेवाओं को राज्य द्वारा समर्थित किया जायेगा । और इस तरह 1973–74 के आधार वर्ष में शिक्षा और

स्वास्थ्य के निजी व्यय को सम्मिलित कर लिया गया। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि वृद्धि में कुल व्यय का अनुपात समय सीमा के बाहर हो गया उपलब्ध कीमत में यथोचित प्रतिनिधित्व है। इन अध्ययनों की रोशनी में प्रो. तेंदुलकर ने एक नयी पद्धति का सुझाव दिया जिसके द्वारा न केवल मूल्य सूचकांक का प्रयोग अधिक वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है, बल्कि गरीब की उपभोग की टोकरी में भी विस्तार लिया। गरीब भी शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर व्यय करने लगे थे। अतः प्रो. तेंदुलकर की प्रति व्यक्ति गिनती (गरीबी रेखा के नीचे आने वाले लोगों की संख्या) इस कारण बहुत अधिक थी। उन्होंने पुराने अनुमान प्रति 28.3 प्रतिशत के विरूद्ध अखिल भारतीय गरीबी संख्या 41.8 प्रतिशत रखी।

10.5 गरीबी की प्रकृति

सुविधा की दृष्टि से गरीबी की दो विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से व्याख्या की जा सकती है:–

(अ) **गरीबी का उपशमन एवं गरीबी का ह्रास –** साधारण आदमी के द्वारा गरीबी उपशमन एवं गरीबी ह्रास दो शब्दों का बारीबारी से प्रयोग किया जाता है, किन्तु वास्तविकता में दोनों में बहुत अन्तर है। जबकि गरीबी उन्मूलन, गरीबों की पूंजीगत व्यय में सुधार को दर्शाता है, जो आन्तरिक अधिकारियों और बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिये आय प्राप्त करने के अवसरों को शामिल करता है, गरीबों में कमी गरीबों की सामाजिक संबंधों पर निर्भरता और परिवर्तनों के संबधं में असुरक्षा और उनके वातावरण को इंगित करता है। अतः गरीबी को कम करने के लिये गरीबी उपशमन की एक आवश्यक पूर्ववर्ती शर्त है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि गरीबी में कमी लाने हेतु पूर्ववर्ती शर्तों को लागू रखने का उत्तरदायित्व सरकार पर होता है। पूर्ववर्ती शर्तों में सम्मिलित हैः– भूमि का रूप व्यवस्था जैसे, सिंचाई, विस्तृत सेवाओं, विपणन, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवेश के लिये सूक्ष्म वित्त या स्वरोजगार, साख का उपभोग (साहूकारों पर निर्भरता में कमी) एवं गरीब के साख उत्पादन हेतु आय के अवसर उत्पन्न करना जैसी सुविधाएं सम्मिलित हैं।

(ब) ग्रामीण एवं शहरी गरीबी :– यह सिद्ध करने के बहुत सारे साक्ष्य हैं कि गरीबी और भूमि का स्वामित्व दोनों ही सकारात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े हुये है। यद्यपि भूमि का स्वामित्व आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने की प्रत्याभूति नहीं देता है, भूमि के कब्जे में कमी निश्चय ही ग्रामीण गरीबी का एक बहुत बड़ा कारण है। यह पाया गया कि भूमिहीन परिणामों में 1 प्रतिशत की वृद्धि, गरीबी की दर में 0.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में जातिगत भेदभाव गरीबी को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, इस भेदभाव के कारण नीची जाति या जनजाति के लोग बहुत सारे सामाजिक अवसरों तक नहीं पहुंच पाते हैं और इस प्रकार गरीबी को बढ़ावा मिलता है।

शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी एक बहुत बड़ा रूप ले रही है। शहरी जनसंख्या के महत्वपूर्ण लोग छोटे –छोटे कार्यों जैसे रिक्शा चलाना, सामान ढोने और अन्य तरह के स्वरोजगार कार्यों में लगे हुये हैं। नकदी के रूप में कमाई के माध्यम से सभी जरूरतों को उपलब्ध कराने हेतु वास्तविक, मजदूरी बहुत कम है। काम के प्रति व्यापक असुरक्षा है। हालांकि, ग्रामीण गरीबी का विस्तार जो प्रवास को आगे बढ़ाता है, जो लोग कृषि में अवशोषित नहीं हैं वे शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को और बढ़ाते हैं। इसके अलावा, यह ग्रामीण लोग शहरों में अन्न का उत्पादन नहीं करते हैं, उन्हें खाद्यान्न वस्तुओं पर बढ़ती कीमत का एवं आवश्यक वस्तुओं पर बढ़ती कीमतों का सामना करना पड़ता है जो उन्हें आर्थिक रूप से और अधिक कमजोर बनाता है।

10.6 गरीबी के कारण

पिछले 60 वर्षों के दौरान, अर्थव्यवस्था लगभग 4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी जबकि जनसंख्या 2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही थी, फिर भी भारत में लोगों के जीवन स्तर में किसी भी प्रकार के सुधार का भारत साक्षी नहीं हैं रोजगार के अवसर विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में, संतोषजनक रूप से नहीं बढ़े जो लगभग रोजगार वृद्धि के अवसर शून्य ही दिखाता है। परिणाम स्वरूप, एक महत्वपूर्ण मानव शक्ति बेरोजगार रह गयी, कारण प्रति व्यक्ति आय का स्तर नीचा होना है।

भारत में गरीबी के लिये जिम्मेदार कारकों की व्याख्या नीचे की गयी हैः–

(1) **विकासशीलताः–** आजादी के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था उपभोग के निचले स्तर के रूप में जानी जाती है और उपभोक्ता का यह निचला स्तर प्रति व्यक्ति आय का स्तर कम होना एवं कम बचत, कम निवेश एवं कम उत्पादन के कारण होता है और इन सब कारणों से रोजगार की रफ्तार की भी धीमी गति हो जाती है। कृषि क्षेत्र में रोजगार संबंधी मामले में प्रगति के किसी भी प्रकार के कोई चिन्ह नहीं दिखायी दिये। भूमि का पुनर्वितरण जो 1974–79 के दौरान लागू किया गया था, ने भारत में पूंजीवादी खेती के उदय और समेकन के लिये नेतृत्व किया जिसमें छोटे किसान हारे हुये थे और बड़े और मझोले किसान भूमि स्वामी बन गये जिन्होंने श्रम की अपेक्षा को वरीयता दी। इससे बेरोजगारी की समस्या भयावह हो गयी। इस स्थिति में, बेरोजगार श्रम बल के पास दो विकल्प थे– पहला या तो नौकरी (काम) की तलाश में शहर को प्रस्थान करें और दूसरे – बहुत कम राशि पर काम करने के लिये तैयार हो जाएं, यह राशि बड़े पैमाने पर बड़े किसानों द्वारा मनमाने ढंग से निर्धारित की जाती है।

(2) **असमानताः–** भारत में गरीबी का अन्य महत्वपूर्ण कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के मध्य आय एवं संपत्ति के असमान वितरण का विद्यमान होना है। यह असमानताएं संपत्तियों के स्वामित्व मे विभिन्नताओं के कारण होती है जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि एवं शहरी क्षेत्रों में भौतिक संपदा में असमानता ।

(3) **स्वास्थ्य देखभाल की लागत** :– भारत में अधिकांश लोगों की आय उनकी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है और इस कारण खराब स्वास्थ्य की स्थिति से गुजरते हैं क्योंकि वे इस पर कम ध्यान देते हैं। यह गंभीर बीमारी का रूप ले लेती है और इस पर आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यय हो जाता है, और इस कारण अन्य आवश्यकताओं पर खर्च करने हेतु पैसा ही नहीं बचता है।

(4) **जनसंख्या वृद्धि की उच्च दरः–** भारत में जनसंख्या वृद्धि दर सचेत रहने की हद तक ऊँची है एवं कई वर्षों से प्रति व्यक्ति आय का जनसंख्या वृद्धि से तालमेल नहीं हैं योजना के पहले दशक (1956–61) के दौरान जनसंख्या 21.5 प्रतिशत, 1961–71 के दौरान 24.8 प्रतिशत, 1971–81 के दौरान 24.66 प्रतिशत, 1981–81 के दौरान 23.87 प्रतिशत, 1991 से 2001 के दौरान 21.54 प्रतिशत और 2001–2011 के दौरान लगभग 18 प्रतिशत वृद्धि हुई। जनसंख्या का इतना ऊंचा विकास दर और अर्थव्यवस्था के धीमें विकास दर के कारण प्रति व्यक्ति आय नीची हो गयी और प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय भी कम हो गया और इस कारण गरीबी के स्तर में वृद्धि हो गयी।

(5) **पारिस्थितिक गिरावटः–** परिस्थितिक गिरावट के कारण पर्यावरणीय प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अकुशल प्रबंधन और वनों की कटाई के कारण गरीबों की आय में विभिन्न मार्गों द्वारा धक्का लगा । ग्लोबल वार्मिंग की वजह से प्राकृतिक आपदाएं लगातार आने लगी जिससे गरीब लोगों

को ज्यादा आघात लगा। वनों की कटाई में गरीब लोगों के स्व रोजगार के दरवाजे बंद कर दिये। क्योंकि इन लोगों का धन अर्जित करने का प्राथमिक स्त्रोत जंगल है।

(6) **कमजोर विकास रणनीति :–** गरीबी जैसी बुराई की रोकथाम के लिये हमारी विकास रणनीति को गंभीरता से तैयार नहीं किया गया। कुल मिलाकर यह अमीरों के लिये जानकारी सिद्ध हुई। अपनी आगे बढ़ने के न्यायसंगत वितरण के लिये पूछे बिना सकल घरेलू उत्पाद के विकास पर जोर देना यह एक रणनीति है जो गरीबों को अभाव के चंगुल से बाहर निकालने में बहुत विफल रहता है।

(7) **क्षेत्रीय असमानता :–** विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के मध्य आर्थिक विषमता है जो यह इंगित करती है कि कुछ क्षेत्र बहुत अमीर हैं जबकि अन्य बहुत सारे क्षेत्र भयानक गरीबी की चपेट में है। उदाहरण के लिये, पंजाब और हरियाणा राज्य कृषि उत्पादकता के ऊंचे स्तर के कारण धनी हैं, महाराष्ट्र और गुजरात राज्य औद्योगिक क्षेत्र में मजबूत निवेश के कारण धनी हैं, जबकि कर्नाटक एवं आन्ध्रप्रदेश की समृद्धि सेवा क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों के कारण है। ठीक इसके विपरीत, ऐसे बहुत से क्षेत्र/राज्य हैं जो आज भी गरीब है क्योंकि इनमें से किसी भी क्षेत्र में प्रवेश (पहुंच) पाने में असफल रहे।

(8) **मुद्रास्फीति** :– निरंतर मूल्य वृद्धि के कारण पैसे से क्रय शक्ति में निरन्तर गिरावट होती है जो कि समाज के निम्न मध्य गरीब क्षेत्रों की दिक्कत का कारण है। भारत में मुद्रास्फीति के कारण गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई।

(9) **अनुचित तकनीक :–** तकनीक के प्रकार के बीच विरोधाभास है, कि किस तकनीक की आवश्कयता है और कौन सी तकनीक इस्तेमाल की जा रही है। विनिर्माण क्षेत्र में, विशेष रूप से सार्वजनिक संगठनों में, कृषि क्षेत्र में अभी घटिया या अप्रचलित तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, बड़े किसान पूंजीगत और श्रमिक बचत तकनीको का उपयोग कर रहे हैं जो गरीबों के समर्थक नहीं है। इन दोनों मामलों में यह तकनीकें, रोजगार या गरीब की आय बढ़ाने में मदद नहीं करती है।

(10) **आम संपत्ति साधनों का व्यवसायीकरण (सी पी.आर.सी.)** :– सामुदायिक सदस्यों की पहुँच के अधिकार के साथ आम संपत्ति संसाधन सामूहिक रूप से एक समुदाय के स्वामित्व में हैं। ग्राम पंचायत, चारागाह, गांव के जंगल, टैंक, तालाब, लकड़ी के जंगल, जंगल की जमीन, पानी का संग्रह आदि इन साधनों के कुछ उदाहरण हैं जिनका उपयोग धनी किसान के द्वारा किया जाता है जो आर्थिक गतिविधियों का व्यवसायीकरण करते हैं, उन कमजोर वर्गों को सीमान्त बनाना जो पूर्व के मुकाबले भौतिक या आर्थिक शक्ति से युक्त नहीं है।

(11) **कम कृषि मजदूरी** :– प्रतिस्पर्धात्मक श्रम बाजार की परिस्थितियों के अन्तर्गत वास्तविक मजदूरी आरक्षित मजदूरी को मापता है, जैसे सबसे कम मजदूरी जिस पर श्रमिक काम करने को तैयार हुआ। हाल ही के अनुमानों के आधार पर जो भारत में कृषि मजदूरी (ए.डब्ल्यू आई) पर आधारित हैं, (1980 के दौरान उदारीकरण संपूर्ण के समय के दौरान) कृषि मजदूरी का विकास तीव्र गति से हो रहा था, इतनी तीव्र वृद्धि दर सुधार काल में नहीं थी।

(12) **गरीबी अपशमन के लिये सामाजिक क्षेत्र पर सरकारी व्यय में गिरावटः–** सामाजिक क्षेत्रों पर खर्च की जाने वाली सार्वजनिक व्यय राशि निश्चित थी जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं, पर्याप्त नहीं है। इससे अशिक्षा, खराब, स्वास्थ्य, कुपोषण और अस्वच्छ वातावरण में विकास जैसी बुराई को बढ़ावा मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय तुलना से यह सिद्ध होता है कि भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य पर होने वाला सार्वजनिक व्यय बहुत ही निराश करता है। उदाहरण के लिये, जबकि

अमेरिका एवं इंग्लैंड जैसे विकसित देशों में स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 12 प्रतिशत व्यय किया जाता है एवं मलेशिया, श्री लंका जैसे विकासशील राष्ट्रों में सवास्थ्य और शिक्षा पर लगभग 5–7 प्रतिशत सार्वजनिक व्यय किया जाता है और हमारे भारत में हम केवल 4 प्रतिशत ही खर्च करते हैं।

(13) **गरीबी उपशमन कार्यक्रमों की असफलता :–** सरकार द्वारा गरीबी उपशमन के बहुत सारे कार्यक्रम प्रारंभ किये गये लेकिन सौ प्रतिशत सफलता नहीं प्राप्त हुई। अध्ययन बताते हैं कि ये कार्यक्रम खराब कार्यान्वियन और पारदर्शिता की कमी से ग्रस्त थे। यह पाया गया कि इस हेतु प्राप्त राशि का पूर्ण उपयोग करने में राज्य असफलत रहे। कुछ मामलों में निर्धारित राशि समय पर उपलब्ध नहीं हो सकी, और कभी कभी सरकार इस राशि का उपयोग करने में असफल रही। अतः जिस मुख्य उद्देश्य के लिये इस योजना को प्रारंभ किया गया, उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में पराजित रहे।

(14) **सरकारी रियायत में कमी :–** सरकार बहुत सारी वस्तुओं पर मिलने वाली छूट में लगातार कमी करती जा रही थी और यह बाजार पर छोड़ रही थी कि वे मूल्य निर्धारित करें। भारत में अब भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें उनकी उपयोगिता के आधार पर रियायत मिलने की आवश्यकता है।

(15) **श्रम बाजार औपचारिक रूप में :–** श्रम बाजार औपचारिक रूप में जैसे श्रम का अनिर्बाधित बाजार सामाजिक लागतों को जोड़ता है, जैसे छिपी हुयी कीमतें जिसमें सम्मिलित है –

(अ) लंबे काम के घंटे (ब) असुरक्षित नौकरी (स) निम्न प्रास्थिति (द) बिगड़ती काम की स्थिति ।

10.7 गरीबी कम करने के उपाय

भारत में सरकार द्वारा गरीबी उपशमन हेतु उठाये गये कदमों ने अब सकारात्मक असर दिखाना प्रारंभ किया, फिर भी, गरीबी को कम करने की सीमा के विस्तार अभी और वांछनीय है। यदि हम गरीबी की वृहद अवधारणा को देखते हैं, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, अपराध और बुनियादी ढाँचे तक पहुँच सहित गैर–आर्थिक तत्वों को शामिल करता है स्थिति प्रदर्शित की जाने वाली तुलना में कम प्रभावशाली दिखायी देती है। संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक, भारत के अनुसार, जिसे 1992 में 122 वीं श्रेणी प्राप्त थी, 2007–08 में 132 वीं पायदान पर गिर गया । स्थितियां बताती है कि इस पुरानी गरीबी से घिरे हुये भारत को बाहर निकालने के लिये अधिक प्रयासों की आवश्यकता है। गरीबी कम करने के दो रास्ते है :– पहला, उन क्षेत्रों की पहचान करना जिनके पास रोजगार की क्षमता नहीं है और उन्हें विस्तारित करने के लिये अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा किये जा सकते हैं, और दूसरा लोगों की क्षमता के स्तर को बढ़ाना और उन्हें नये रोजगार की आवश्यकताओं हेतु तैयार करना । इसके लिये, सरकार को एक व्यवस्था बनानी होगी जो लोगों को उनके द्वारा इच्छित ज्ञान और कौशल उपलब्ध करा सके। हम निम्न उपायों को अपनाकर गरीबी की समस्या को सुलझा सकते हैं :–

(1) **कृषि क्षेत्र के विकास पर ध्यान केन्द्रित करना:–** पिछले कुछ दशकों में भारत में कृषि लगभग 2.05 प्रतिशत के औसत से बढ़ रही है। कृषि क्षेत्र के निराशाजनक प्रदर्शन के कारणों को जानने के लिये, सरकार ने डॉ. एम.एस. स्वामी नाथन की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय आयोग का गठन किया, डॉ. स्वामी नाथन अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त कृषि वैज्ञानिक हैं। इस आयोग को किसानों के राष्ट्रीय अयोग के नाम से भी जाना गया। आयोग ने पांच सूत्रीय कार्य योजना का सुझाव दिया:–

1. कार्वनिक पदार्थ और समष्टि और सूक्ष्म पोषक तत्वों में सुधार के लिये एकीकृत उपायों के माध्यम से मिट्टी की स्वास्थ्य वृद्धि को शामिल करना,
2. वर्षा बहुल क्षेत्रों में स्थायी जल संचयन प्रणाली की स्थापना करना।

3. सरकार को फसल हेतु लिये गये कर्जों पर ब्याज दर 4 प्रतिशत कम कर देना चाहिये ताकि किसान परेशानी एवं संकट की स्थिति से बाहर निकल सकें।
4. कृषक विज्ञान केन्द्र ऐजेन्सी के माध्यम से किसानों को फसल उत्पादन और फसल कटाई दोनों ही तकनीकों में प्रशिक्षित करना।
5. ग्रामीण उत्पादक जो प्राप्त करता है एवं शहरी उपभोक्ता जो देता करता है जैसे– बिचौलियों को प्राप्त होने वाली राशि कम होनी चाहिये। ग्रामीण उत्पादक और शहरी उपभोक्ता के मध्य अन्तर है वह कम किया जाना चाहिए। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिपत्र में भूमि सुधार के मुद्दों की आवश्यकता पर विशेष रूप से किरायेदारी से संबंधित विधि, अतिरिक्त भूमि के वितरण, बेकार पड़ी भूमि साधनों एवं खातों की चकबन्दी से संबंधित विधि पर अधिक ध्यान दिया गया।

(2) **गरीब को समृद्धशाली बनाने हेतु विशेष ध्यान देनाः–** आर्थिक गतिविधि के प्रत्येक नज़रिये के अनियंत्रण पर और सार्वजनिक व्यय के कम होने पर विशेष ध्यान दिया गया। विशेष रूप से सामाजिक क्षेत्रों पर किया जाने वाले सार्वजनिक व्यय की रणनीति गरीब विरोधी थी । निर्धन की आर्थिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिये दो रणनीतियों को लागू किया गया–

1. पहले निर्धन की पहचान करना बाद में गरीब के लिये लक्ष्य निर्धारित करना, और
2. एक प्रतिभूति न्यूनतम आय नीति का निर्माण करना। सही मायने में गरीब की पहचान करना सर्वप्रथम महत्पूर्ण कार्य है। यह उन लोगों को सहायता पहुंचाने का लक्ष्य रखेगा जिन्हें वास्तविकता में सरकारी सहायता की आवश्यकता है। न्यूनतम आम नीति इस संदर्भ में बहुत उपयोगी होगी क्योंकि यह गरीब के जीवनयापन के पर्याप्त साधनों के आधार पर गरीब शब्द को निर्धारित करेगी। यह हमारे संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारियों पर भी पूर्णतः खरा उतरता है। गरीबों को सार्वजनिक सहायता देने के अतिरिक्त असंगठित क्षेत्र में गरीब विरोधी खर्चा, भी उन लोगों के लिये सहायता हो सकती है जो आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतों के कारण परेशान है।

(3) **अर्थव्यवस्था के विकास में मजदूरी के स्तर और हिस्से को बढ़ाना–** यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि भारत में यहाँ तक कि संगठनात्मक क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी कम ही थी एवं प्रबंधकीय एवं तकनीकी लोग सुरक्षित थे और उनका वेतन भी अधिक मात्रा में बढ़ा था। हमारे संगठनात्मक औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी का हिस्सा 1980 के बाद आधा था और अब विश्व में सबसे कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव की 2006 की रिपोर्ट ने बहुत सही तरीके से टिकाऊ विकास और गरीबी कम करने के लिये रोजगार की केन्द्रीकरण पर प्रकाश डाला तथा यह भी बताया कि श्रमिक आय गरीबों की आय का मुख्य स्त्रोत है।

(4) **गरीबों में शिक्षा एवं कौशल निर्माण को बढ़ावा देनाः–** भारत में शिक्षा विशेष रूप से समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के संदर्भ में सबसे ज्यादा उपेक्षित क्षेत्रों में से एक है। हालांकि, सुधार के बाद शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधारों को अंगीकृत किया गया था और शिक्षा का निजीकरण सरकार के विकास के एजेण्डा में सर्वोपरि था। देश में शिक्षा के सार्वभौमीकरण करने में विकास की अब भी बहुत संभावनाएं हैं। सरकार को जेबों को लक्षित करना होगा, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में जहां शिक्षा के सभी स्तरों के बिलकुल अविकसित नेटवर्क है। आज के बदलते परिवेश को रोजगार में कौशलपूर्ण लोगों की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये, आज रोजगार के लिये कम्प्यूटर में

साक्षरता प्राथमिक शर्त है और यह वांछनीय भी है कि इस प्रकार का कौशल सूदूर ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका विस्तार हो।

(5) **व्यावसायिक विविधीकरणः–** पिछले कुछ दशकों ने कृषि कार्यकलापों में लगे अपने कार्यबल में गिरावट और अनौपचारिक ग्रामीण गैरकृषि सांस्कृतिक क्षेत्र में रोजगार में इसी वृद्धि को देखा है, जो घरेलू और छोटे पैमाने पर औद्योगिक गतिविधियों को शामिल करता है। शहरों के बढ़ते हुये आकार में वृद्धि से वस्तुओं और सेवाओं की मांग भी विस्तृत और विविध हो रही है, यह वस्तुएं और सेवाएं ग्रामीण उद्यमियों द्वारा उत्पादित की जाती है। इन उभरते हुये उद्यमों की पहचान करना वांछनीय होगा और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना कौशल और ज्ञान के माध्यम से, वित्त और विपणन संरचना इत्यादि के माध्यम से इन उद्यमों की पहचान आवश्यक है।

(6) **लक्ष्य समावेशी विकासः–** गरीबी से लड़ने के लिये सरकार को दो विकल्पों में से एक को चुनना होगा, पहला, आय के पुन वितरण से वित्तपोषित एक प्रतिकूल सामाजिक नीति का निर्माण करना और उसका पालन करना। इसमें बेरोजगार लोगों के लिये धन के एक बड़े पूल का निर्माण शामिल है। इस प्रकार की सामाजिक नीति के तहत उत्पादकता में किसी भी वृद्धि के बिना साल दर साल आवर्ती व्यय वर्ष की आवश्यकता है। दूसरे, शालीन कार्य के अवसरों की उत्पत्ति के प्रयास किये जाने चाहिये जिसमें आय के अवसर उत्पन्न हों और सामाजिक समस्याओं का एक स्थायी हल मिल सके। प्रतिपूर्ति सामाजिक नीतियाँ कभी कभी नियमित रोजगार की एक प्रणाली से प्राप्त होने वाली गरिमा प्रदान नहीं कर सकती हैं। प्रतिपूरक सामाजिक नीतियों के संचार हेतु रोजगार सृजन को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

(7) **गरीबी कम करने के लिये पूर्व शर्त प्रदान करनाः–** सिंचाई, विस्तार सेवाओं, विपणन सुविधाओं, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को कवर करने के लिये आवश्यक बुनियादी ढाँचा तैयार करने की सुविधाओं के साथ गरीबी में कमी जैसी सुविधाओं की आवश्यकता होगी–

1. गरीबों के लिये विशेष रूप से महिलाओं की बचत और ऋण सुविधाओं के लिये व्यापार स्थापित करने या विस्तार करने के लिये, स्व–रोजगार में निवेश करना और घर की सुरक्षा में वृद्धि करना।
2. उपभोग ऋण सुविधाओं तक पहुँच, जिससे धन ऋणदाताओं पर कम निर्भरता हुई, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिये पहुँच बढ़ी और
3. उत्पादन ऋण जो कि गरीबों को आय पैदा करने वाली गतिविधियों को संचालित करने में सक्षम बनाता है जिसके माध्यम से गरीबी को कम किया जा सकता है।

(8) **न्यूनतम मजदूरी और गरीबी रेखा के ढाँचे के बीच विसंगति को दूर करना :–** आधिकारिक गरीबी रेखा को समाज के निर्वाह के आदर्श को परिभाषित करने के रूप में समझा जा सकता है, और न्यूनतम मदजूरी के निर्धारण के समय लोगों की आवश्यकताओं एवं न्यूनतम आवश्यक चीजों को ध्यान में रखना चाहिये।

(9) **सरकार द्वारा चलायी जा रही गरीबी उपशमन योजनाएँः–** विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी यह सिद्ध किया है कि उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के द्वारा प्राप्त आर्थिक विकास के लाभों का लोगों के बीच समान रूप से वितरण नहीं हुआ और तथाकथित ट्रिकल डाऊन प्रभाव के जादू ने काम नहीं किया। वास्तव में, भारत में बड़ी संख्या में लोग, आर्थिक सुधारों का हिस्सा बनने के अयोग्य हैं, वास्तविकता यह है कि आर्थिक विकास की तत्कालीन प्रक्रिया में भाग लेने का सामर्थ्य नहीं है। यह इस पृष्ठभूमि के खिलाफ है कि सरकार को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के रूप में कुछ

कल्याणकारी उपायों का सहारा ले ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि समाज के आर्थिक रूप से वंचित वर्ग आगे हाशिये पर नहीं आते हैं और जो समृद्धि आर्थिक सुधार के द्वारा लायी जा रही है, वे निकल कर सामने आ सकें।

इन कार्यक्रमों को स्वरोजगार कार्यक्रम, मजदूरी रोजगार कार्यक्रम, खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम में वर्गीकृत किया जा सकता है। केन्द्र सरकार द्वारा संचालित कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित है, राज्य सरकार पर मात्र एक ही दायित्व है कि वह इसे लागू करें। इन कार्यक्रमों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया गया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (NREGS)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना फरवरी 2006 में लागू की गयी थी जिसमें 100 दिनों का रोजगार प्रदान करने की योजना थी इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक घर से एक गरीब योग्य व्यक्ति को–न्यूनतम मजदूरी पर प्रत्येक वर्ष कार्य उपलब्ध कराना ताकि इन सार्वजनिक कार्यों के माध्यम से संपदा बन सके। पहले चरण में 200 सबसे ज्यादा पिछड़े जिलों में यह योजना क्रियान्वित हुई और 2007 –08 तक 330 जिलों तक इसका विस्तार हुआ। 2008–09 में यह देश के समस्त ग्रामीण जिलों में फैल गयी। वर्तमान में एन.आर.ई.सी.एफ. के अन्तर्गत 619 जिले आते है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) :–

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना अप्रैल 1999 में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का पुनर्गठन करने के बाद प्रारंभ की गयी। यह ग्रामीण निर्धन लोागों के लिये एक स्वरोजगार कार्यक्रम है। इस योजना का उद्‌देश्य जो व्यक्ति स्व–रोजगार में लगे हुये हैं उन्हें गरीबी रेखा के ऊपर लाना है और यह बैंक द्वारा ऋण की सुविधा एवं सरकार द्वारा दी जा रही रियायतों के माध्यम से आय अर्जित कराकर किया जा सकता है। यह योजना केन्द्र और राज्य के मध्य कीमत की हिस्सेदारी के आधार पर क्रियान्वित की गयी, इसके अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्यों के मध्य हिस्सेदारी का अनुपात उत्तरपूर्व राज्यों के लिये 90:10 तथा उत्तरपूर्व राज्यों के अन्तर्गत न आने वाले राज्यों के लिये 75:25 रखा गया।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (STSRJ)

सरकार ने हाल ही में स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना को पुनः सुधार के साथ अप्रैल 2009 में प्रभावशील बनाया । यह योजना शहरी बेरोजगार और शहरी बेरोजगार गरीब व्यक्तियों को लाभपूर्ण रोजगार मुहैया कराती है, यह रोजगार शहरी गरीब व्यक्तियों को नये स्वरोजगार उपक्रम स्थापित करने के लये प्रोत्साहित करके और मजदूरी रोजगार प्रदान करके एवं सामाजिक एवं आर्थिक रूप से संबल प्रदान करने के लिये उनके श्रम का उपयोग करके प्रदान किया जा सकता है। इस योजना के अन्तर्गतः–

1. शहरी गरीब व्यक्तियों को शहरी स्व–रोजगार योजना के अन्तर्गत छोटे उद्यम स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित करना।
2. शहरी महिला स्व–सहायता कार्यक्रम – इस कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरी गरीब महिला स्व–सहायता समूह के लिये सामूहिक उद्यम स्थापित करने एवं उन्हें ऋण लेने की सुविधा प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित करना ताकि उनकी राशि चक्र में चलती रहे।
3. शहरी गरीबों को रोजगार उन्नति के लिये कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरी गरीबों को गुणवत्ता पूर्ण प्रशिक्षण देना ताकि स्व–रोजगार के लिये या रोजगार में अच्छे वेतनमान प्राप्त हो, रोजगार परकता में वृद्धि हो।

4. शहरी मजदूरी वेतन कार्यक्रम **(UWEP)** – इस कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरी गरीबों के श्रम का उपयोग करके शहरों में सामाजिक एवं आर्थिक उपयोगी सार्वजनिक संपदा तैयार करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है। यह सहायता उन शहरों के लिये उपलब्ध है जिनकी 1991 की जनगणना के अनुसार 0.5 मिलियन से कम जनसंख्या है।
5. शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क **(UCDN)** – संगठन तैयार करने के लिये शहरी गरीबों को सहायता पहुँचाना इस कार्यक्रम का उद्देश्य है। इस प्रकार की सहायता का उद्देश्य गरीबी का सामना करने के दौरान सामूहिक ताकत का लाभ मिल सके एवं शहरी गरीबी उपशमन कार्यक्रमों का प्रभावकारी क्रियान्वयन हो सके।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्व–रोजगार और मजदूरी रोजगार के समानान्तर शहरी क्षेत्रों में नेहरू रोजगार योजना कार्यान्वित है जिसके तीन अंग हैः– पहला है शहरी सूक्ष्म उद्यमों की योजना या **SUME** के अन्तर्गत शहरी गरीबों को (जिनकी वार्षिक आय 11850/– रूपये से कम है) नये सूक्ष्म उद्योग प्रारंभ करने के लिये नये कौशल सीखने हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। दूसरी योजना है शहरी मजदूरी रोजगार योजना या **SUWE** । इसके अन्तर्गत शहरी गरीबों के श्रम का उपयोग सामाजिक एवं आर्थिक संपदा को तैयार करने में किया जाता है। यह योजना छोटे शहर जिनकी जनसंख्या एक लाख से कम है, उन पर भी लागू होती है।

तीसरी आवास और आश्रय उन्नयन की योजना है इसे **SHASHU** के नाम से भी जाना जाता है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबों को 9950 रूपये तक का ऋण, 1000/– रूपये की रियायत के साथ दिया जाता है। हितग्रही 19500 रूपये का अतिरिक्त ऋण हुडकों से प्राप्त करने का विकल्प रख सकता है।

हालांकि, सबसे बड़े गरीबी उपशमन कार्यक्रम जिसका लक्ष्य शहरी गरीब को शहरी मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराना है यह सेवाएं **UBSP** के अन्तर्गत दी जाती है। इस समुदाय में मुख्यतः महिलाएं सम्मिलित हैं। महिलाएं को उनके समुदाय और वातावरण` विकास के कार्यक्रम इस शहरी मूलभूत सुविधाओं के अन्तर्गत आते हैं। यूएसबी. पीके शहर, राज्य और केन्द्र सरकार के साथ–साथ एन.जी.यू.एस. और यूनिसेफ के साथ साझेदारी है।

10.8 सारांश

अध्ययन बताते हैं कि आर्थिक सुधारों को अपनाने के बाद से भारत में गरीबी कम हो गयी है, किन्तु इसका ऊंचा रहना जारी है, लेकिन 1980 में यह बहुत अधिक थी जो कम हो गयी है। (उदारणीकरण आने से पहले की स्थिति) । इसके अलावा, इस गरीबी में कमी के साथ कई आयामों से संबंधित असमानताओं में वृद्धि हुई है जो कि इस तथ्य का संकेत है कि निरंतर विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप से असमान रही है।

सरकार के विभिन्न गरीबी उपशमन कार्यक्रम जो आज लागू किये गये उनसे गरीबों को वह लाभ नहीं मिल पाया जितना अपेक्षित था। उदाहरण के लिये, छोटे उधारों की योजना जैसे स्व–रोजगार कार्यक्रम उन लोगों की सहायता करती है जो गरीबी रेखा से ऊपर है, मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में देरी लाल फीताशाही के कारण हुई और इसका परिणाम गरीबों को मिलने वाली राशि पर पड़ा, वह भी तब जबकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रतिस्पर्धी एवं प्रशासनिक कीमतों की शिकार हो गयी। इसके अलावा, गरीबी की परिभाषा को पुनः प्रारूपण की आवश्यकता है, क्योंकि कैलोरी (ऊष्मांक) ग्रहण के मापदंण्ड जो कि इसके आकलन के लिये मुख्य आधार है, अच्छी तरह से प्राप्त नहीं हो सके हैं। तथ्य यह है कि गरीबी रेखा पर्याप्त रूप से कठिन और विस्तारित श्रम की

ऊर्जा अवश्यकताओं के कारण समूचित नहीं है, जो कि अबादी के एक महत्वपूर्ण खंड, मुख्य रूप से गरीबों द्वारा प्राप्त होती है। उदाहरण के लिये, एक जीवन निर्वाह करने वाला पुरूष किसान जो मध्यम गतिविधि में लगा रहता है। (खेत पर सात घंटों तक काम करने में) को 2780 कैलोरी प्रतिदिन लेने की आवश्कयता है, जबकि प्रतिनिधि महिला किसान (खेत पर चार घंटे काम करने वाली मानी जाती है) और अन्य तीन घंटे घर के कामों को देती है) को 2235 कैलोरी प्रतिदिन लेने की आवश्यकता होती है (विश्व स्वास्थ्य संगठन 1985, दास गुप्ता, 1993 में उदघृत किया। यह बताना भी तर्क संगत होगा कि गरीबी रेखा की आंकलन प्रक्रिया सामान्यतः यह इंगित करती है कि निर्धारित कैलोरी की आवश्यकता कम कीमत पर कैलोरी खरीदने से पूरी होगी। इस प्रक्रिया का परिणाम यह है कि जिनकी आय गरीबी रेखा पर है वह कैलोरी पर निर्धारित खर्च से कम व्यय कर रहे हैं। किन्तु , इन कार्यक्रमों की उपयोगिता को मात्र इस आधार पर कि गरीबों के आय के स्तर की बढ़ोत्तरी में निराशाजनक भूमिका अदा कर रहे है, आसानी से नज़र अन्दाज नहीं किया जा सकता। वास्तव में, इन कार्यक्रमों ने समाज को अप्रत्यक्ष रूप से असाधारण योगदान दिया है, यह योगदान ग्राम स्तर पर संपदा तैयार करने में विद्यालय का ढांचा तैयार करने, स्वास्थ्य केन्द्र, सड़कें और तालाब इत्यादि बनाने के रूप में दिया है। इसी तरह स्व–सहायता समूह साक्षरता और प्रतिरक्षा से संबंधित सामुदायिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहायता पहुंचा रहे हैं। अतः लोागें के सामाजिक उत्थान हेतु इनका योगदान निश्चय ही एक उपलब्धि है क्योंकि लोागें का सामाजिक उत्थान गरीबी उपशमन के लिये उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि आर्थिक उत्थान ।

10.9 शब्दावली

गरीबी घटाना :– गरीबी कम करने के दोनों आर्थिक एवं स्वच्छता के उपाय हैं, जिनके द्वारा लोगों को गरीबी से बाहर निकाल कर स्थायी रूप से उत्थान करना है।

10.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1 देश के लोग, समाज का एक वर्ग या किसी व्यक्ति की अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थता की स्थिति का तात्पर्य ––––––––– है।

2 ––––––––––––– कम आय वाले देशों में गरीबों के सबसे गरीब लोगों के बीच में है।

3 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना –––––––––– में लागू की गयी।

4 पहले चरण में देश के ––––––––––– सबसे पिछड़े जिलों म ेंएन.आर.ई.जी.एस. योजना प्रभाव में आयी।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 गरीबी 2 अल्ट्रागरीबी 3 2006 4 200

10.12 स्वपरख प्रश्न

1 गरीबी, सापेक्ष गरीबी, अल्ट्रा गरीबी को परिभाषित कीजिए।

2 भारत में गरीबी के माप की पद्धति समझाइये।

3 क्षेत्रीय असन्तुलन क्या है ? भारत में गरीबी कम करने के उपायों की चर्चा कीजिए।

4 गरीबी उपशमन एवं गरीबी घटाने में क्या अन्तर है।

5 भारत में गरीबी के कारणों को समझाइये।

6 एक रणनीति का सुझाव दें जिसे भारत में गरीबों को समृद्ध करने के लिये अपनाया जाना चाहिये।

7 भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे गरीबी उपशमन के कार्यक्रमों पर एक परिचयात्मक निबंध लिखें।

8 भारत के आर्थिक विकास पर गरीबी का क्या प्रभाव पड़ता है।

10.13 संदर्भ पुस्तकें

1. Economic Survey, Ministry of Finance, Govt. of India.
2. Planning Commission- 9th 10th and 11th Plan, Govt. of India
3. India Development Report 2011.
4. World Development Report 2009 and 2010.
5. Chakravorty, Sukhmoy (1987), "Development Planning-the Indian Experience", New Delhi, Oxford University Press.
6. India Economy; Mishra and Puri, 2009, Himalaya Publications, Mumbai.
7. Indian Economy: Ruddar Dutt and KPM Sundaram, S. Chand and Co.Ltd. New Delhi.
8. The Indian Economy- environment and policy, Ishwar C. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
9. The Economics of Development and Planning, M.L. Jhingan, Vrinda Publications, New Delhi.
10. United Nations Development Program, Human Development Report 2009.
11. Dandekar, V.M. and N. Rath, Poverty in India, Dimensions and trends, Economic and Political Weekly, Jan. 2, 1971.
12. Gaurav Dutta & Martin Ravallion, Regional Disparities, Targeting and Poverty in India (1990).
13. Planning Commission, Report of the Expert Group on Estimation of Proportion and Number of Poor, July, 1993.
14. Planning Commission (2009) Report of the Expert Group to Review the Methodology for Estimation of Poverty, Nov. 2009.
15. Gaurav Dutt, Valeric Kozel and Martin Ravallion, A model based approach to projection of Poverty in India.
16. Dreze, Jean and Amartya K. Sen (2002) India: Development and Participation, New Delhi, Oxford University Press.
17. Himanshu (2007) 'Recent Times in Poverty and Inequality: Some Preliminary Results, Economic and Political Weekly, 42(6).
18. Sen Abhijit and Himanshu (2004) 'Poverty and inequality in India. Economic and Political Weekly, 29 (38).
19. Sheriff, Abusaleh (1999) India Human Development Report A Profile of Indian States in 1990s, Oxford University Press, New Delhi.
20. Virmani Arvind (2006), 'Poverty and Hunger : What is Needed to Eliminate them?' Planning Commission Working Paper No. 1/2006 P.C.

21. Poverty and Economic Development, “Amartya Sen, in Charan D. Wadhwa (ed.)”. Some Problems of India’s Economic Policy (New Delhi, 1977).
22. B.S. Mishra, L.R. Jain and S.D. Tendulkar ‘Declining Incidence of Poverty in the 1980s – Evidence versus Artifacts” Economic and Political Weekly July 6-13, 1991.
23. First Report of the National Income Committee, April, 1951.
24. Central Statistical Organization, National Accounts Statistics (2007).
25. Economic Survey, Government of India, 2010-11.
26. Economic and Political Weekly, Research Foundation (2002). National Accounts Statistics of India, 1950-51 to 2000-01.
27. Bimal Jalan, India’s Economic Policy (New Delhi, 1996).
28. R. Nagraj ‘India’s Recent Economic Growth: A Closer Look”, Economic and Political Weekly, April 12, 2008.

इकाई–11 लघु , सूक्ष्म, एवं मध्यम उद्योग

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 लघु उद्योग का तर्क
11.3 लघु उद्योगों का योगदान एंव भूमिका
11.4 लघु उद्योगों की समस्याएं
11.5 लघु उद्योग की वर्तमान सहायता प्रणाली
11.6 लघु उद्योग क्षेत्र में बीमारी
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 बोध प्रश्न
11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.11 स्वपरख प्रश्न
11.12 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- लघु, सूक्ष्म और मध्यम व्यवसाय के अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- लघु उद्योग के महत्व की व्याख्या कर सकें।
- लघु उद्योगों की समस्याओं और चुनौतियों का वर्णन कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

लघु व्यवसाय या छोटे क्षेत्र जैसा नाम से इंगित होता है लघु उद्योग होते हैं। लघु उद्योग देश की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण खंड है। यह क्षेत्र बड़ी संख्या में उपभोक्ता और औद्योगिक वस्तुंए एवं सामान के उत्पादन में योगदायी है। लघु व्यवसाय का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपंजीबद्ध है और असंगठित क्षेत्र में स्थित है। मोटे तौर पर लघु उद्योगों को तीन बड़ी श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं– (अ) कुटीर उद्योग (ब) कृषि आधारित उद्योग, एवं (स) लघु उद्योग । इसके अलावा इसमें सहायक औद्योगिक उपक्रम, निर्यात उन्मुख इकाइयाँ, छोटे उपक्रम, लघु सेवा इकाई, लघु व्यवसाय उद्यम और ग्राम कारीगर भी शामिल हैं।

1977 में दस लाख से कम निवेश वाली इकाईयाँ लघु उद्यम की श्रेणी में आती थीं एक लाख से कम निवेश वाली इकाईयाँ छोटी इकाईयों की श्रेणी में आती थीं। 1991 के आर्थिक सुधारों के दौरान लघु उद्योगों के लिये निवेश सीमा 60 लाख रूपये, सहायक इकाईयों के लिये 75 लाख रूपये और छोटी इकाईयों के लिये 5 लाख रूपये निश्चित की हैं वर्ष 2000 में निवेश की सीमा बढ़ाकर लघु उद्यमों के लिये 100 लाख रूपये, सहायक इकाईयों के लिये भी 100 लाख रूपये और छोटी इकाईयों के लिये 25 लाख रूपये निश्चित की गयी। इसी दौरान भारत सरकार ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 अधिनियमत किया । इस अधिनियम में उद्यमों की तीन श्रेणियों को परिभाषित किया गया जो इस प्रकार हैं सूक्ष्म उद्यम, लघु उद्यम और पहली बार मध्यम उद्यम, इन तीनों की निवेश सीमा भी निर्धारित कर दी गयी। संयंत्र और मशीनरी जैसे सूक्ष्म उद्योगों

की निवेश सीमा 25 लाख या उससे कम रूपये, लघु उद्यमों के रूप में संयत्र और मशीनरी की निवेश सीमा 25 लाख से अधिक और 5 करोड़ रूपये से कम और संयंत्र और मशीनरी जैसे मध्यम उद्यमों की सीमा 5 करोड़ से अधिक लेकिन 10 करोड़ से कम निश्चित की गयी। सेवा इकाईयों में सूक्ष्म उद्यमों के लिये 10 लाख रूपये सूक्ष्म, उद्यमों के लिये, 10 लाख से 2 करोड़ रूपये और मध्यम उद्यमों के लिये 2 करोड़ से 5 करोड़ रूपये तक की निवेश सीमा निश्चित करदी गयी। इन उद्यमों या इकाईयों का पांजीयन जिला उद्योग केन्द्र में पहले अस्थायी तौर पर किया जाता है और प्रक्रियात्मक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद पंजीयन स्थायी रूप से हो जाता है। इन उद्यमों की प्रकृति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः–

(अ) **कुटीर उद्योग** :– यह वह उद्योग है जो सामान्यतः कृषि और ग्रामीण एवं शहरी सदृश क्षेत्रों में अंशकालीन/पूर्णकालीन पेशों से जुड़े हैं।

(ब) **कृषि आधारित उद्योग** – यह उद्योग कृषि उत्पादन पर आधारित हैं। कृषि आधारित उद्योग कुटीर स्तर, लघु स्तर या दीर्घ स्तर पर स्थापित होते हैं।

(स) **लघु उद्योगः–** मोटे तौर पर लघु उद्योगों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

(1) आधुनिक लघु विनिर्माण उद्यम ।

(2) छोटे उद्यमों का मध्यवर्ती समूह ।

(1) **आधुनिक लघु विनिर्माण उद्यम** वह लघु विनिर्माण उद्यम हैं जो उत्पादन में आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करते हैं। सामान्यतः यह उद्योग बड़े शहरों या बड़े शहरों के आसपास स्थित होते हैं ताकि ग्रामीण क्षेत्र को सहायता मिल सके। इन उत्पादों के लिये बाजार के रूप में पूरा देश उपलब्ध है और कभी कभी यह उत्पादों को बाहर के देशों में निर्यात भी करते हैं। आधुनिक लघु उद्योगों की प्रतिलिपि सूची इस प्रकार हैः–

1. ऑटोमाबाइल के सामान और कलपुर्जे।
2. धातु की ढलाई ।
3. घरेलू बिजली उपकरण जैसे प्रेस, मिक्सर आदि।
4. होजरी और उससे बने कपड़े।
5. साइकिल के कलपुर्जे और हाथ उपकरण (हैंड टूल्स)।
6. वैज्ञानिक उपकरण, भंडारण बैटरी ।
7. स्टील, कृषि उपकरण।
8. रेडीमेड (तैयार) कपड़े।

(2) लघु उद्यमों का मध्यमवर्ती समूह :– यह फर्म सामान्यतः उनके उत्पादों के निर्माण के लिये पुरानी तकनीकों का इस्तेमाल करती हैं। सामान्यतः यह समूह बिजली और मशीनों का उपयोग नहीं करते हैं एवं श्रम गहन तकनीक पर आधारित होते हैं।

11.2 लघु उद्योगों का तर्क

भूतकाल में लघु उद्योगों में विरोधाभास आज की तारीख तक भी विद्यमान है। कुछ लोग लघु उद्यमों के प्रबल समर्थक हैं जबकि कुछ इसके विरोधी है। लघु उद्यमों की सुरक्षा एवं अस्तित्व के पक्ष में आने वाले तर्कों का परीक्षण करना दिलचस्प होगा। पंचवर्षीय योजनाएं, औद्योगिक नीति, केन्द्रीय बजट और अन्य सरकारी नीतियाँ लघु उद्योगों के विकास पर जोर देती है। औद्योगिक नीति संकल्प 1956 के अनुसार, ''वे तत्काल बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान करते हैं। ये राष्ट्रीय आय का अधिक न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करने की एक विधि प्रदान करते हैं और वे पूंजी और कौशल के

संसाधनों को प्रभावी रूप से जुटाने की सुविधा प्रदान करते हैं जो अन्यथा अनुपयुक्त हो सकते हैं। देश भर में औद्योगिक उत्पादन हो सकते हैं। देश भर में औद्योगिक उत्पादन के छोटे केन्द्रों की स्थापना के कारण अनियोजित शहरीकरण की कुछ समस्याएं उत्पन्न होने की संभावना है।'' लघु उद्योगों के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस प्रकार हैः–

(1) **रोजगार मूलक तर्कः–** लघु उद्योगों के पक्ष में किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण तर्क हैं कि कम पूंजी की तुलना में रोजगार के अवसर बड़ी संख्या में प्रदान करते हैं। कर्वे समिति 1955 के अनुसार ''सफल प्रजातंत्र के लिये स्व–सरकार का सिद्धान्त उतना ही महत्वूर्ण है जितना कि स्व–रोजगार का सिद्धान्त है। छोटे उद्यमों के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस अवधारणा पर आधारित हैं कि छोटे उद्यम श्रम गहन हैं और इस तरह प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी के साथ रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करते हैं। इस तथ्य ने भारत में लघु उद्योगों का महत्व बढ़ा दिया क्योंकि भारत कम पूंजी वाला देश है। इस तरह छोटे उद्यम कम पूंजी होने के बाद भी रोजगार की संख्या बढ़ा सकते हैं।

लघु उद्योग के अस्तित्व एवं सुरक्षा के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों का धर और लायडैल ने विरोध किया जो यह विचार रखते हें कि रोजगार की खातिर रोजगार उत्पन्न नहीं किया जा सकता। धर और लायडैल तर्क देते हैं, ''उत्पादन प्रक्रिया में किसी भी बिन्दु पर जाकर अतिरिक्त कामगारों को जोड़ने के द्वारा रोजगार की उत्पत्ति की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, महत्वपूर्ण समस्या यह नहीं है कि अतिरिक्त संसाधनों का समायोजन कैसे किया जाए, बल्कि यह है कि बचे हुये संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जाए।'' किन्तु आर. वेंकटरमण ने धर और लायडैल द्वारा दिये गये तर्क को चुनौती दी और यह दावा किया कि छोटे क्षेत्रों में रोजगार उत्पन्न करने की क्षमता वृहद उद्योग क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत जैसे कम पूंजी और श्रम अधिशेष अर्थव्यवस्था में, बड़े पैमाने पर उद्योगों को बड़े श्रमिक बल के लिये रोजगार मुहैया कराने हेतु आवश्यक है।

(2) **समानता का तर्कः–** लघु उद्योगों के द्वारा उत्पन्न आय बड़े उद्योगों द्वारा उत्पन्न आय की अपेक्षा समाज में अधिक व्यापक रूप से फैलती है। सामान्यतः बड़े पैमाने के उद्योगों के कुछ पूंजीपतियों में आय और धन पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। किन्तु दूसरी ओर लघु उद्योग में छोटे मालिकों और कामगारों को बड़ी संख्या में आय वितरित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है । किन्तु धर और लायडैल इस समानता के तर्क को गलत करार देते हैं। सांख्यिकीय साक्ष्य सुझाव देते हैं कि, ''समस्त देशों की यह सामान्य प्रवृत्ति है, बड़े कारखानों की अपेक्षा छोटे कारखानों में औसत मजदूरी कम होगी।'' दूसरे, छोटे कारखानों में व्यवसाय संघ के अस्तितव में न होने के कारण नियोजक कामगारों का शोषण करने में सक्षम हो जाते हैं।

किन्तु इसके विपरीत, यह भी सत्य है कि विकासशील अर्थव्यवस्था में कामगारों के पास कम वेतन की नौकरी और कोई नौकरी न होने के बीच एक विकल्प है। परिस्थितियों के दबाव में आकर कामगारों द्वारा कम वेतन वाली नौकरी स्वीकार कर ली जाती है। श्रमिक विधियों को और अधिक प्रभावशाली बनाकर कम वेतन वाली नौकरी की समस्या को कम किया जा सकता है।

(3) **विकेन्द्रीकरण का तर्कः–** बड़े उद्यम अपना ध्यान अधिकतर महानगर या बड़े शहरों पर केन्द्रित करते हैं। बड़े उद्यमों के महानगर या बड़े शहरों पर ध्यान केन्द्रित करने से शहरों में अधिक भीड़ होने की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि होती है, झुग्गी झोपड़ी बढ़ जाती है और स्वास्थ्य को भी खतरा भी उत्पन्न हो जाता है।

बड़े पैमाने के उद्योगों को बड़ी धनराशि और भूमि की आवश्यकता होती है लेकिन दूसरी ओर छोटे उद्योगों को थोड़ी पूंजी, कम भूमि और मशीनरी की आवश्यता होती है। अतः शहर के सुदूर क्षेत्रों में छोटे डद्योगों की स्थापना की जा सकती हैं इस तरह औद्योगिक उद्यमों के विकेन्द्रीकरण से स्थानीय संसाधनों को स्थानांतरित करने में सहायता मिलती है और पिछड़े और सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में भी सहायता मिलती है। लघु उद्योगों की सहायता से उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के द्वारा शहरों भीड़–भाड़ की समस्या, स्वास्थ्य के खतरे और झुग्गियों में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को बहुत हद तक समाप्त किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों के पलायन से बेहतर होगा कि उद्योगों को ही ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरित कर दिया जाये।

(4) **अव्यक्त संसाधनों का तर्कः–** लघु उद्योग एकत्रित प्रतिभा और ग्रामीण एवं शहरी सदृश क्षेत्रों में बेकार पड़े अन्य संसाधनों को खोजने में मदद करते हैं क्योंकि छोटे उद्यमियों के पास अधिक मात्रा में पूंजी नहीं होती है, बड़ी संख्या में औद्योगिक इकाईयों को ऐसी जगह स्थापित किया जा सकता है, जहां कच्चामाल आसानी से उपलब्ध हो सके। लेकिन धर और लायडैल का मानना है कि संग्रहीत धन का एकत्रीकरण केवल एक बार मिलने वाले सभी लाभ हैं। किन्तु यदि ये बेकार संग्रहीत धन चल स्थिति में आ जाता है तो आय लंबे समय तक चलायमान रहती है। अतः, विस्तृत लघु उद्यम धन संग्रहण न करने को बढ़ावा देते हैं, समाज को इससे निश्चित लाभ होता है। भारत में लघु उद्योगों की बढ़ती हुई संख्या केवल इस बात पर प्रकाश डालती है कि उद्यमिता के अव्यक्त संसाधनों को छोटे उद्यमों के विकास के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

(5) **अन्य तर्कः**–लघु उद्योगों को बहुत सारे अन्य कारक भी शक्ति प्रदान करते हैं उनमें से कुछ इस प्रकार है :–

(अ) **कम पूंजी :–** बड़े उद्योग पूंजी सघन हैं किन्तु दूसरी ओर लघु उद्योग इकाईयों को स्थापित करने में कम पूंजी लगती है। इन इकाईयों में कम स्तर को व्यक्तिगत स्तर पर वहन किया जा सकता है। लघु उद्योगों के लिये व्यावसायिक संगठनों का गठन अकेला मालिकाना हक, साझेदारी फर्म या सहाकरी संस्थाओं के रूप में हो सकते हैं।

(ब) **कम कौशल :–** लघु उद्योग चलाने के लये कौशल या अधिक दक्षता की आवश्कयता नहीं है। लघु उद्योगों के लिये कौशल पूर्ण श्रम बल और मशीनरी की आसान उपलब्धता लघु उद्योग के विकास के लिये आधार बनाती है।

(स) **कम परिपक्वता अवधिः–** बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योग कम परिपक्वता अवधि का लाभ ले रहे है । बड़े उद्योगों के मामले में परिपक्वता अवधि बहुत लंबी है। जब उद्योग स्थापित वर्ष का निर्णय लिया जाता है और समय जब उत्पादन प्रारंभ होता है दोनों में बाजार की स्थिति बिल्कुल परिवर्तित होती है। कम परिपवक्ता अवधि का लाभ है कि यह लागत और समय की संभवना को कम करता है।

(द) **अग्रेषित कड़ीः**– लघु ओग इकाईयों के पास पिछड़ी कड़ियों के साथ साथ अग्रेषित कडियाँ (लिंक) भी है। अच्छी संख्या में लघु उद्योग, बड़े उद्योगों की सहायक इकाईयों के रूप में अस्तित्व में आती है। यह सहायक इकाईयां एक समय के बाद चुने हुये क्षेत्रों में महारत हासिल कर लेती हैं तथा बड़े उद्योगों को सहायता पहुंचाती हैं।

(य) **बेहतर औद्योगिक संबंध** :– लघु उद्योग इकाईयाँ कम लोगों को रोजगार देती है और इस कारण नियोजक और कर्मचारी के मध्य घनिष्ठ संबधं स्थापित हो जाते हैं। नियोजक और कर्मचारी के

मध्य घनिष्ठता औद्योगिक शान्ति को बढ़ावा देती है और हड़ताल एवं तालाबन्दी के दौरान व्यक्तियों द्वारा होने वाले नुकसान में कमी करती है।

11.3 लघु उद्योगों का योगदान एंव भूमिका

छोटे पैमाने के क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं और उत्पादन, रोजगार और निर्यात की शर्तों में भी अपना योगदान देते हैं। लघु उद्योग क्षेत्र विकास और प्रदर्शन की व्याख्या नीचे दी गयी है:–

(अ) **विकास और प्रसार:–** लघु उद्योग इकाईयाँ 1996–97 में 28 लाख से बढ़कर 2001–02 में 34.6 लाख हो गयी। इन 34.6 लाख इकाईयों में से 27.5 लाख इकाईयाँ पंजीबद्ध थीं और बाकी अपंजीबद्ध थीं। भारत में लघु उद्योग इकाईयाँ पंजीकृत और अपंजीकृत दोनों ही हैं, लघु उद्योगों का पंजीयन जिस स्थान पर इकाई स्थित होती है उस राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश के महानिदेशक उद्योग के द्वारा किया जाता है । पंजीबद्ध इकाईयों का अनुपात 76.8 प्रतिशत से बढ़कर 79.5 प्रतिशत हो गया। 1996 से 2002 तक के समय मे वार्षिक वृद्धि दर अलग –अलग थी, यह दर 44.5 प्रतिशत तक घट बढ़ रही थी। लघु उद्योग इकाईयों का भौगोलिक वितरण बहुत विषम है। उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश में कुल लघु उद्योग इकाईयों के 10 प्रतिशत से अधिक सदस्यों का पंजीयन महानिदेशक उद्योग द्वारा कराया गया है। सूक्ष्म, छोटे और मझोले उद्यमों के मामले में भारत में 2001–02 में 1,46,845 करोड़ रूपयों के निवेश के साथ 101 लाख से अधिक सूक्ष्म, छोटें और मंझोले उपक्रम थे, जो 2,61,297 करोड़ रूपयों की वस्तुओं सेवाओं का उत्पादन कर रहे थे और 240. 9 लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया हुआ था। 2009–10 के दौरान 298 लाख सूक्ष्म, छोटे और मंझोले उद्यम, 6,93,835 करोड़ का सामान और सेवाओं के उत्पादन की निश्चित निवेश के साथ उपलब्ध थे इन उद्यमों में 9,82,919 करोड़ रूपये का उत्पादन हो रहा था और लगभग 695 लाख व्यक्ति नियोजित थे।

(ब) **उत्पादन :–** देश में उत्पादन के क्षेत्र में लघु उद्योग एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। 1996–97 में लघु उद्योगों का उत्पादन देश सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 34.4 प्रतिशत था जो 2000–01 में धीरे धीरे बढ़कर 38.1 प्रतिशत हो गया। 1996–2002 के दौरान साल–दर–साल विकास दर मौजूदा कीमतों से 11 प्रतिशत अधिक था और स्थिर कीमतों से 8 प्रतिशत अधिक था। लघु उद्योग इकाईयों के आंकड़ों को सामान्यतः कम तर आंका जाता है, क्योंकि बड़ीं संख्या में गांव और छोटे उद्योग स्वयं को पंजीकृत नहीं करते इसलिये पर्याप्त या विश्वसनीय रिकार्ड उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। सूक्ष्म, छोटे और मंझोले क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद को 8 प्रतिशत योगदान देते हैं और विनिर्माण उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत योगदान देते हैं इस तरह 2010–11 में कुल उत्पादन 10,95,758 करोड़ रूपये का हुआ।

(स) **रोजगार सृजन :–** लघु उद्योग क्षेत्र देश में रोजगार का एक बहुत बड़ा सृजनकर्ता है। 1996–2002 के दौरान लघु उद्योग क्षेत्र ने समग्र अर्थव्यवस्था में सिर्फ 0.98 फीसदी की तुलना में 4 फीसदी की वार्षिक वृद्धि दर पर रोजगार उत्पन्न किया। सामान्यतः लघु उद्योग इकाईयों द्वारा रोजगार सृजन स्थानीय रूप से होता है जो रोजगार के लाभों को अधिक सामान रूप से वितरित करता है। रोजगार सृजन की वास्तविक संख्या बड़ी हो सकती है क्योंकि बहुत सी लघु उद्योग इकाईयाँ पंजीबद्ध नहीं होती हैं और अपनी सूचना देने में हिचकिचाती हैं। अनौपचारिक क्षेत्रों में इकाईयों की वजह से रोजगार के अनुमानित आंकड़े इसका दूसरा कारण हो सकते हैं। जहां कोई

औपचारिक रोजगार रिकार्ड नहीं रखे जाते हैं। हालांकि, 2010–11 के एक अनुमान के अनुसार लगभग 732 लाख लोग सूक्ष्म, छोटे और मंझोले उद्यमों में भारत में नियोजित थे।

(द) **निर्यात योगदानः–** लघु उद्योग इकाईयाँ निर्यात में भी महती भूमिका अदा करती हैं । आम तौर पर लघु उद्योग इकाईयो के निर्यात के सामान, हाथ से बने सामान, खाद्य उत्पाद, चमड़ा उत्पाद, मसाले, गर्म कपड़े, सूती वस्त्र, उत्पाद, हीरे जवाहरात, खेल सामग्री, धातु सामग्री, आदि होते हैं। उत्पादन का लगभग 9 से 10 प्रतिशत लघु उद्योग इकाईयों द्वारा 1996–2001 में निर्यात के रूप में उपयोग में लाया गया। लघु उद्योग निर्यात का वार्षिक वृद्धि दर रूपयों के संदर्भ में और मौजुदा कीमतों के संदर्भ में 1997–2001 के दौरान 10 प्रतिशत से अधिक थी। 2007–08 के दौरान निर्यात से होने वाली कमाई में एम.एम.एस.ई. का योगदान 2,02,017 करोड़ रूपये था।

11.4 लघु उद्योगों की समस्याएं

व्यवसाय संचालित करने में लघु इकाईयों को बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा। समस्त बड़ी समस्याओं को आन्तरिक समस्या और बाह्य समस्या में वर्गीकृत किया जा सकता है। आन्तरिक समस्याओं में उद्यम की योजना, क्रियान्वयन और प्रबंधन सम्मिलित हैं। बाह्य समस्याएं व्यावसायिक माहौल से संबंधित हैं। जिनका किसी भी इकाई को सामना करना पड़ता है। लघु उद्योग इकाईयों की कुछ सामान्य समस्याओं की चर्चा इस प्रकार हैः–

(1) **नियोजन स्तर पर समस्याएँ :–** किसी भी योजना को प्रारंभ करने से पहले उनकी तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक विश्लेषण और बाजार सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है। लघु उद्योगों के मामले में, अधिकांश प्रवर्तकों /उद्यमियों के पास तकनीकी ज्ञान का अभाव है और कमजोर वित्तीय अवस्था होने के कारण तकनीकी परामर्श केन्द्रों से संपर्क भी नहीं कर पाते। ऊपर वर्णित स्थिति के कारण गलत योजना का चुनाव हो जाता है। जिससे बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न होती है। संसाधनों की कमी भी उद्यमियों को निम्न स्तरीय पूंजी उपकरण है प्रयोग को बाध्य करते हैं जिसका उद्यम की प्रतिद्वन्द्विता पर खराब प्रभाव पड़ता है। ठीक इसी प्रकार, बाजार सर्वेक्षण में अयोग्यता के कारण मांग का कम अनुमान या अधिक अनुमान होने की समस्या हो सकती है । इस स्तर पर हुई गलतियों के कारण कार्यान्वयन स्तर पर भी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

(2) **कार्यान्वयन स्तर पर समस्याएं :–** दोषपूर्ण कार्यान्वयन से परियोजना की लागत और बढ़ जाती है । अधिकांश समय, परियोजना कार्यान्वयन मालिकों के हाथ में होता है और इन मालिकों को विशेष ज्ञान न होने के कारण, परियोजना समय पर पूरी नहीं हो पाती है। दूसरी समस्या दोषपूर्ण योजना के कारण उत्पन्न होती है जिसकी वजह से कार्यान्वयन स्तर पर समस्याएं उत्पन्न होती हैं। राशि जुटाने में कमी और देरी से इकाई अनाधिक हो जाती है। इससे तकनीकी जनशक्ति की अनुपलब्धता की समस्या हो सकती है जिससे कार्यान्वयन स्तर लंबा खिंच सकता है।

(3) **परिचालन स्तर (चरण) के दौरान समस्याएं :–** परिचालन चरण के दौरान, लघु उद्योग इकाईयाँ विभिन्न तरह की समस्याओं का सामना करती हैं। यह समसयाएं प्रबधंन, वित्त, विपणन, जनशक्ति, तकनीक और इससे संबंधित क्षेत्रों से संबंधित है। समस्याओं की व्यवस्था जमाने में उद्यमियों की योग्यता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। एक सफल और प्रभावशील उद्यमी वही होता है जो समस्याओं को रोकता है या कम करता है। ऊपरवर्णित समस्याएं लघु उद्योग क्षेत्रों में बीमारी का कारण बनती हैं और परिणाम स्वरूप बीमार इकाई के बाद बंद होने की स्थिति आ जाती है। लघु उद्योगों की बड़ी समस्याएं इस प्रकार है :–

(अ) **वित्तीय समस्याएँ :–** अधिकांश लघु उद्योग इकाईयों का पूंजी का आधार कमजोर है जिससे तकनीक विसतार की समस्या, अभिनव उत्पादों के परिचय या नयी उत्पाद श्रृंखला के परिचय की समस्या उत्पन्न होती हैं छोटी इकाईयाँ कार्यशील पूंजी की समस्या का भी सामना करती है, जैसे जैसे कार्यशील पूंजी चक्र लंबा होता जाता है, अधिक गंभीर रूप ले लेता है। कार्यशील पूंजी बाद में होने वाले उत्पादन को बाधित करती है या फर्म को अतिरिक्त कार्यशील पूंजी बढ़ाने के लिये बाध्य करती है। अतिरिक्त कार्यशील पूंजी से कीमत बढ़ती है, प्रतिद्वन्द्विता कम होती है और पूरी तरह से लाभ निचोड़ लेता है। लघु उद्योग इकाईयों की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति राज्य वित्त निम, राज्य औद्योगिक विकास बैंक, एस.आई.डी.बी.आई. और अनुसूचित व्यवसायिक बैंकों द्वारा होती है। किन्तु ऊपरवर्णित वित्तीय संस्थाओं की प्रक्रियाएं तानाशाह है, स्वीकृति का समय लंबा है, स्वीकृत ऋण राशि आवश्यकता से कम है और ब्याज दर बहुत ज्यादा हैं। बैंकों में लघु उद्योग इकाईयों की एक अन्य गंभीर समस्या है लघु उद्योग की व्यापक बीमारी के कारण और एन.पी.ए. की समस्या को उधार देने का इच्छुक नहीं हैं

लघु उद्योग इकाईयों की वित्तीय समस्याएँ केवल उधार देने की उपलब्धता तक सीमित नहीं है। यहाँ तक कि क्रडिट (ऋण) की कीमत बहुत ऊंची है। अधिकांश समय, लघु उद्योग इकाईयों की प्रभावशील ब्याज दर 16–17 प्रतिशत है। अक्सर लघु उद्योग इकाईयों को असंगठित वित्तीय बाजार से बहुत उच्च दर पर क्रेडिट का लाभ मिलता है जब वे संगठित क्षेत्र के आधार देने वाले मानदंडों को पूरा करने में असमर्थ होते हैं।

(ब) **विपणन (बाजार) की समस्याएं :–** लघु उद्योग इकाईयों की एक अन्य गंभीर समस्या विपणन की कमी और हस्तक्षेप है। अधिकांश लघु उद्योग इकाईयों के विपणन विभाग नहीं हैं जिसकी वजह से उनके विपणन के लिये किये जा रहे प्रयास कमजोर पड़ जाते हैं। लघु उद्योग इकाईयाँ आधुनिक विज्ञापन, विपणन अनुसन्धान, विपणन सर्वेक्षण, उत्पाद अनुकूलन और चैनल विकास के उपायों को सहन करने की स्थिति में नहीं है। बाजार की कुछ समस्याओं का वर्णन इस प्रकार हैः–

1 उपभोक्ताओं को उत्पादन की कम जानकारी होना ।

2. लघु उद्योग इकाईयों का वितरकों के साथ सौदेबाजी की कमजोर स्थिति होना।

3. आवर्ती स्टॉक– आउट स्थिति या अतिरिक्त आपूर्ति स्थिति का होना।

(स) **उत्पादन से संबंधित समस्याएं :–** लघु उद्योग इकाईयों को बहुत सारी उत्पादन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैः–

1 **कच्चामाल की अनुपलब्धता** :– आमतौर पर लघु उद्योग इकाईयाँ कच्चा माल के स्थानीय स्त्रोतों पर अधारित है। लघु उद्योग इकाईयों की सौदेबाजी की शक्तियाँ कच्चेमाल के अपूर्तिकर्ताओं के साथ निर्वाध आपूर्ति अनुबंधों के संबंध में अक्सर बातचीत करने में असमर्थ हैं। नयी सामग्री की समस्या गंभीर हो जाती है जब कच्चा माल की आपूर्ति सरकार द्वारा की जाती है। वित्तीय समस्याओं के चलते लघु उद्योग इकाईयां सामग्री का उपयुक्त स्टॉक रख पाने की स्थिति में नहीं हैं।

2 **श्रम बल की अनुपलब्धता :–** भारत में अकुशल श्रम आसानी से उपलब्ध है किन्तु कुशल श्रमिकों की बहुत कमी है।

3 **तकनीकी समस्या :–** लघु उद्योग इकाईयाँ आधुनिक तकनीक खरीद पाने में समर्थ नहीं हैं। अधिकांश लघु उद्योग इकाईयाँ पारंपरिक एवं अप्रचलित तकनीक का इस्तेमाल करती हैं। बारबार रूकने से उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है।

4 **बिजली की कमी** :– भारत में बिजली की कमी लघु उद्योग इकाईयों पर विपरीत प्रभाव डालता है और वे इस स्थिति में भी नहीं है कि अपना बिजली संयंत्र स्थापित कर सकें।

श्रम समस्याएँ :– लघु उद्योग इकाईयों को बहुत सारी श्रम समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है जिसकी वजह से कार्य करने का वातावरण समाप्त हो जाता है, उत्पादकता पर असर पड़ता है और उत्पादन में कमी आ जाती है। इन कारणों से श्रम समस्याएँ उत्पन्न होती हैः–

1. श्रमिकों का ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी पलायन।
2. कम वेतन और कल्याणकारी सुविधाओं में कमी।
3. शिक्षा का निम्नस्तर और प्रशिक्षण की कमी।

प्रबंधात्मक समस्याएं :– आमतौर पर लघु उद्योग इकाईयाँ स्वयं मालिकाना हक या साझेदारी लिये होती हैं और उनके पास पेशेवर प्रबंधकीय कौशल का अभाव होता है। उद्योग इकाई के बीमार होने या अकेले मालिकाना हक से उत्पन्न समस्याओं के कारण व्यवसाय में बाधा उत्पन्न होती है। साझेदारी फर्म के मामलों में साझेदारों के मध्य अविश्वास की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और इससे प्रबंधकीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

बाह्य कारकः– बहुत बड़ी संख्या में बाह्य कारक है। जो लघु उद्योग इकाईयों की पहुँच से बाहर हैं। लघु उद्योग इकाईयों की पहुंच से बाहर कारक इस प्रकार हैः–

1. संरचनात्मक समस्याएँ।
2. बैंकों की ऋण संबंधी सुविधाओं के लिये कठोर नीतियाँ।
3. सरकारी नियंत्रण।
4. लघु उद्योग इकाईयों से संबंधित नीतियों में लगातार बदलाव ।
5. बड़े उद्यमों से कठिन प्रतियोगिता ।
6. एम.एम. एस. ई. इकाईयों के लिये खुली चुनौती।

(1) बैंक ऋण की गिरावट भरी नीति (योजना) :– इस सीमा विहीन विश्व में लघु उद्योग इकाईयों, बड़ी इकाईयों और आयातित वस्तुओं के बीच कठिन प्रतियोगिता है। अतः बड़ी इकाईयों और आयातित वस्तुओं के साथ मुकाबला करने के लिये लघु उद्योग इकाईयों की नयी तकनीक में निवेश करना होगा, और इस हेतु अतिरिक्त राशि की आवश्यकता होगी। किन्तु 1999–2000 में संपूर्ण क्षेत्र में लघु उद्योग इकाईयों की हिस्सेदारी 15.6 प्रतिशत हो गयी और बैंक उनकी एन.पी.ए. स्थिति से पूरी तरह सतर्क हो गयीं।

(2) बड़े उद्योगों के साथ बढ़ती प्रतिद्वन्दिता :– लघु उद्योग इकाईयों को बड़ी इकाईयों से प्रतियोगिता करनी पड़ रही है। जिन विशिष्ट चीजों का उत्पादन लघु उद्योग इकाइयाँ विशेष रूप से कर रही थी, अन्त में उच्च प्रतिस्पर्धा हो रही थी। 1996 तक लघु उद्योग इकाईयां 836.24 वस्तुओं का उत्पादन कर रही थीं, ये वस्तुएं आबिद हुसैन समिति द्वारा अनुमोदित थीं और 2001–02 के केन्द्रीय बजट में 14 वस्तुएं अनुमोदित थीं। किन्तु कोई भी बड़ा उद्योग इन वस्तुओं का उत्पादन कर सकता था और इस तरह इन उद्योगों से 3 वर्ष के अन्दर उत्पादन का 50 प्रतिशत निर्यात किया।

(3) विश्व संधि संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) का भय :– वर्तमान में लघु उद्योग इकाईयों के लिये 550 से अधिक आरक्षित वस्तुओं का स्वतंत्र आयात हो रहा है। अधिकांश लघु उद्योग इकाईयाँ धीरे–धीरे ऊंचे दाम, बाजार में उत्पन्न समस्याओं और उच्च दर कर भार के कारण उसकी निर्यात में प्रतिस्पर्धात्मकता खो रही थीं ।

(4) **भुगतान में देरी :–** यह सर्वविदत है कि सहायक इकाईयों के लिये बड़ी इकाईयों के साथ यह अनुबंध और वापिस सामान खरीदने पर पैसे का भुगतान समय पर नहीं होता है। लघु उद्योग इकाईयाँ सौदेबाजी के कमजोर होने के कारण देरी से भुगतान की समस्या से जूझ रही है। जब बड़ी इकाईयों के लिये प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है तो वे लघु उद्योग इकाईयों से हाशिये पर आ जाते हैं।

(5) **गुणवत्ता संबंधी और अन्य समस्याएं :–** गुणवत्ता मानकों के अनुरूप नहीं होने के कारण लघु उद्योग इकाईयाँ अपने बाजार को बड़ी इकाईयें तक खो रही हैं। स्तरीय गुणवत्ता के लिये बड़े निवेश की आवश्कयता होती है जिसे लघु उद्योग वहन नहीं कर सकते । लघु उद्योग इकाईयों की अन्य समस्याएं जैसे अधिक कर भार का होना एवं नौकरशाही की समस्याएं भी हैं।

11.5 लघु उद्योग की वर्तमान सहायता प्रणाली

लघु उद्योग इकाईयों की सहायता प्रणाली के दो भाग है। संस्थागत सहायता प्रणाली एवं नीतिगत सहायता प्रणाली । संस्थागत समर्थन प्रणाली में संस्थानों के नेटवर्क शामिल हैं, जो लघु उद्योग इकाईयों को सहायता प्रदान करते हैं और नीति सहायता प्रणाली जिसमें लघु उद्योग इकाइयों के लिये कई प्रोत्साहन शामिल है। सहायता प्रणाली का विवरण इस प्रकार हैः–

संस्थागत सहायता नेटवर्कः– संस्थाओं का एक बहुत बड़ा नेटवर्क है जो लघु उद्योग इाकईयों के विकास मे सहायक है। लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) नीतियां बनाता है और संस्थागत गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करता है। सीडो बहुत सारी सुविधाएं और सेवाएं प्रदान करता है।

छोटे उद्योगों के विकास के लिये सीडो सर्वोच्च संस्था है, बहुत सारी योजनाएं चलाती है जिसमें किसी भी उद्यम में उनकी गतिविधियों के विभिन्न आयामों का विकास होता हैं इस संगठन द्वारा निम्नलिखित योजनाएं चलायी जाती हैं – क्रेडिट गारंटी योजना, तकनीकी विकास के लिये क्रेडिट लिक्ड रियायत योजना, प्रधानमंत्री की रोजगार योजना (कृषि ग्रामीण उद्योग मंत्रालय के अन्तर्गत) समेकित संरचना विकास योजना, आईएस.ओ. 9000 प्रमाण–पत्र प्राप्ति के लिये प्रतिपूर्ति योजना, लघु उद्योग सूचना और संसाधन केन्द्र नेटवर्क (SENET) उन्नत तकनीक और आधुनिकी करण के कार्यक्रम (UPTECH) विपणन विकास योजना (SSI-MDA), उद्यमिता विकास संस्थानों के लिये उद्योग संघों की सहायता के द्वारा परीक्षण केन्द्र, आदि ।

समान रूप से विस्तृत संस्थाओं का नेटवर्क लघु उद्योग वित्त क्षेत्र में विद्यमान हैं। व्यावसायिक बैंकें लघु उद्योगों को प्राथमिक क्षेत्र के रूप में कार्यशील पूंजी उपलब्ध कराती हैं और राज्य वित्त निगम द्वारा शर्तों के अधीन ऋण उपलब्ध कराया जाता है। यह संस्थान छोटी इकाईयों को समग्र वित्त (सशर्त ऋण और श्रमशील पूंजी दोनों सम्मिलत हैं) मुहैया कराते हैं। वित्तीय मामलों में सर्वोच्च संस्थान के रूप में भारत का लघु उद्योग विकास बैंक (एस.आई.डी.बी.) इन संस्थाओं को पुनर्वित्त भी मुहैया कराता है। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक के द्वारा विभिन्न प्रकार की सहायता दी जाती हैं जो इस प्रकार हैं। लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना संसदीय अधिनियम के अन्तर्गत अप्रैल 1990 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की सहायक के रुप में हुई, जो कि देश की प्रीमियर विकास बैंक है। वर्तमान में, लघु उद्योग वित्त के लिये स्वतंत्र रूप से सर्वोच्च संसथान के रूप में यह कार्य कर रही है। भारतीय रिजर्ब बैंक से उधार सरकार और अन्य स्त्रोतों से अतिरिक्त पैसा लेना इसके संसाधन है। यह लघु उद्योगों को निम्नलिखित तरीको से विकास करने में योगदान देता हैः–

लघु द्योग इकाईयों, को साथ ही सहायक और उप–अनुबंध इकाईयों को सशर्त ऋण देना ताकि आई.एस.ओ. 9000 के प्रामण–पत्र के प्राप्त किया जा सके साथ ही विस्तार, विविधता, आधुनिकता भी प्रापत की जा सके।

विशिष्ट विपणन एजेन्सियों को जो लघु उद्योग उत्पादों के लिये विपणन स्थानों के विकास में लिप्त हैं, सशर्त ऋण उपलब्ध कराना। औद्योगिक क्षेत्रों के विकास में लगी हुई ऐजेन्सी के संरचनात्मक विकास के लिये सशर्त ऋण उपलब्ध कराना ।

निर्यातोन्मुख लघु उद्योग इकाईयों द्वारा पूंजीगत उपकरणों के आयात के लिये उनको विदेशी मुद्रा ऋण उपलब्ध कराना और सुनिश्चित निर्यात निष्पादित करने के लिये उन्हें लदान पूर्व साख की सुविधा देना।

राज्य लघु उद्योग विकास निगम के लिये (SIDCAS) (लघु उद्योग इकाईयों को कच्चामाल वितरित करने के लिये और बाजार की सहायता देने के लिये) कंपनियों को कारक बनाने के लिये (लघु उद्योग ऋण के कारक) व्यावसायिक बैंको की सहायता के लिये (लघु उद्योग निर्यात को विदेशी मुद्रा में लदान पूर्व साख उपलब्ध कराना) और भारत के काउन्टर विनिमय पर लघु उद्योगों के साम्या मामलों में सहायता पहुंचाने के लिये व्यापारिक बैंकों के लिये साख की रेखाएं (सीमा) निर्धारित करना।

विस्तार आधुनिकीकरण और विविधीकरण के लिये और नये निर्यातोन्मुख या उच्च तकनीकी इकाईयों के लिये अच्छी तरह से लघु उद्योग इकाईयों को चलाने के लिये साम्या (इक्विटी) सहायता पहुँचाना । महिला उद्यमियों और पूर्व सैनिकों को छोटी इकाई स्थापित करने के लिये और नयी परियोजनाओं और संभावित रूप से व्यावहारिक बीमार इकाई स्थापित करने के लिये इक्विटी की तरह आसान ऋण उपलब्ध करवाना। लघु उद्योग की नयी परियोजनाओं के वित्त पोषण के लिये बैंकों एवं राज्य स्तरीय संस्थानों को पुनर्वित्त सहायता करने एवं लघु उद्योग इकाईयों के विस्तार, आधुनिकरण उन्नत गुणवत्ता हेतु, विविधीकरण और पुनर्वास हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना।

लघु उद्योग उत्पादों के वितरण के लिये अल्पावधि बिलों और उपकरणों की बिक्री पर स्थगित साख के अल्पावधि बिलों पर सीधी छूट देना। लघु उद्योग इकाईयों के द्वारा उपकरणों की बिक्री के दीर्घावधि बिलों पर और बैंकों द्वारा अल्पावधि बिलों पर छूट देना। अभिनव स्वदेशी प्रौद्योगिकी और विशेषता का उपयोग करके लघु उद्यमियों को उद्यम पूंजी प्रदान करना।

तकनीकी विकास, तकनीक का अन्तरण, उद्यमिता विकास, पर्यावरण प्रबंधन और कौशल विकास के लिये सहायता प्रणाली विकसित करना और विस्तृत विकास करना। साख कच्चे माल, प्रशिक्षण, विपणन और अन्य सहायता, की सुवधि के लिये लघु उद्योग इकाईयों को एक एकल खिड़की प्रदान करने के लिये 1977 में जिला उद्योग केन्द्र ;क्ष्ब्ब्द्ध की औद्योगिक नीति का प्रारंभ किया।

तत्कालीन प्रोत्साहन और सुवधाएं :– लघु उद्योगों की विभिन्न सुविधाएं एवं प्रोतसाहनों की संरचना दशकों से विकसित हुई है और इस क्षेत्र की समस्याओं के प्रकार और परिणाम के आधार पर समय समय पर अलग–अलग किया गया हैं क्षेत्र की विशिष्ट समस्याओं को देखने के लिये समय–समय पर विभिन्न समितियाँ बनायी गयीं और उन्हें सुलझाने के लिये सुझाव भी दिये गये। हाल ही में, आबिद हुसैन समिति और कपूर समिति (1998) ने क्षेत्र के विकास के लिये विस्तृत अनुशंसाएं दी है। वर्तमान नीति के अन्तर्गत लघु उद्योगों को निम्नलिखित छूट मिल रही है।

1. उत्पाद शुल्क के अधिग्रहण में अधिमान्य व्यवहार,

2. वाणिज्यिक बैंको द्वारा और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा ब्याज की रियायती दरों पर साख (उधार) का प्रावधान ।
3. लघु उद्योग इकाईयों को विभिन्न रियायतों और सुविधाओं योग्य बनाने के लिये उच्च निवेश सीमाएं निर्धारित करना।
4. विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों से तकनीकी विकास, विपणन, प्रशिक्षण और सूचना प्रदान करना।
5. विभिन्न सरकारी विभागों एवं सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों द्वारा क्रय में वरीयता दिया जाना।
6 गुणवत्ता प्रमाणन के अधिग्रहण में सहायता प्राप्त होना।
7 दस प्रतिशत की हद तक मूल्य वीरयता प्राप्त होना।
8. बड़े पैमाने पर उद्योग और विदेशी कंपनियों द्वारा लघु उद्योग इकाईयों में 24 प्रतिशत की सीमा तक इक्विटी के अधिग्रहण का प्रावधान ।
9 लघु उद्योग इकाईयों द्वारा अनन्य उत्पादन के लिये बड़ी संख्या में वस्तुओं का आरक्षण ।
10 महत्वपूर्ण कच्चे माल की आपूर्ति और पूंजी उपकरणों के आयात के लिये वरीयता उपचार।
11 राज्य लघु उद्योग विकास निगम के माध्यम से बुनियादी ढाँचे का समर्थन ।

इन सबके अतिरिक्त वर्ष 2000 में, कुछ अन्य अतिरिक्त उपाय 2001–02 के दौरान अपनाये गये ं उत्पाद में रियायत सीमा 50 लाख रूपये से बढ़ाकर 1 करोड़ रूपये हो गयी जो 1 सितंबर 2000 से प्रभाव में आयी।

विशिष्ट उद्योगों में तकनीकी उन्नयन के लिये ऋण के विरूद्ध 12 प्रतिशत तक की पूंजीगत साख से जुड़ी रियायत के प्रावधान भी सम्मिलित है। उद्योग से संबंधित सेवाओं एवं व्यवसाय उद्यमों में निवेश की राशि 5 लाख से बढ़कर 10 लाख रूपये का प्रावधान। परीक्षण प्रयोगशालाओं के विकास और सचांलन के लिए लघु उद्योग संघों के लिये 50प्रतिशत का पूंजी अनुदान समग्र ऋण की सीमा 10 लाख में बढ़कर 25 लाख तक बढ़ गयी । ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 50 प्रतिशत आरक्षण और छोटे क्षेत्रों के लिये आरक्षित 50 प्रतिशत भूखंडों के साथ देश के सभी क्षेत्रों को उत्तरोत्तर रूप से कवर करने के लिये चालू एकीकृत बुनियादी ढाँचे विकास योजना के कवरेज में वृद्धि।

साख प्रत्याभूमि योजना, 25 लाख तक के ऋण की गारंटी प्रदान करने के लिये वाणिज्यिक बैंकों और अन्य चयनित वित्तीय संस्थानों को बिना किसी संपाश्विक के तीसरे पक्ष की गारंटी के साथ प्रदान की गयी है। तैयार किये वस्त्रों का पुनः आरक्षण । 2001–02 के दौरान उपाय किये गये।

हौजरी एवं हाथ–यंत्र इकाईयों की निवेश सीमा 1 करोड़ रूपये से बढ़कर 5 करोड़ कर दी गयी। साख प्रत्याभूमि राशि योजना की वास्तविक राशि 125 करोड़ रूपये से बढ़कर 150 करोड़ यपये हो गयी। चौदह अन्य उत्पाद जैसे चमड़े के सामान, जूते और खिलौनों का पुनः आरक्षण किया गया। लघु उद्योगों के लिये विशेष रूप से नयी बाजार विकास सहायता योजना चलायी गयी।

11.6 लघु उद्योग क्षेत्र में बीमारी

लघु उद्योग क्षेत्र बहुत सारी समस्याओं से गुजर रहा था और इस क्षेत्र को सुरक्षा का जो स्तर चाहिये वह धीरे–धीरे गिरता गया, परिणामस्वरूप बीमरी की स्थिति आ गयी। बीमार औद्योगिक कंपनी (विशिष्ट प्रावधान)संशोधन अधिनियम, 1993 के अनुसार, एक औद्योगिक कंपनी (कंपनी के रूप में पांच वर्ष से कम न हुई हों) जिसके किसी भी वित्तीय वर्ष में उस संपूर्ण संपत्ति के बराबर या उससे अधिक संचित ऋण है, बीमार कंपनी कहलाती है। एक कंपनी को संभावित बीमार के रूप में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है अगर किसी कंपनी को वित्तीय वर्ष के अन्त में संचित राशि

की हानि होती है और उसके परिणामस्वरूप उससे पहले के चार वित्तीय वर्षों के दौरान 50 प्रतिशत या इससे अधिक सम्पत्ति का क्षरण होता है तो उसे बीमार कंपनी की संज्ञा दी जा सकती है। लघु उद्योग इकाईयों के बीमारी के कारण हैः– प्रबंधकीय विशेषता की कमी होना, क्षमता का उपयोग कम करना, उधार की सुविधाओं में कमी होना, बिजली की कमी, बड़े और आयातित सामानों से प्रतिस्पर्धा इत्यादि ।

11.7 सारांश

व्यवसाय में निवेश के आधार पर लघु उद्योग को परिभाषित किया जा सकता है। लघु उद्योगों के अस्तित्व की चेतना रोजगार सृजन, समानता, विकेन्द्रीकरण, गुप्त संसाधनों का उपयोग, कम पूंजी कम परिपक्वता अवधि और पिछड़े के साथ–साथ आगे के संबंध भी है। सामान्यतः लघु उद्योग इकाईयाँ बहुत सारी समस्याओं का जैसे निधि में कमी, बाजार में आने वाली बाधांए, श्रम समस्या, प्रबधंकीय समस्याएं, गुणवत्ता और उनकी नौकरशाही की समस्याएं हैं। लघु उद्योग इकाईयों को राज्य द्वारा प्रायोजित बहुत सारी प्रोत्साहन राशि मिल रही है। लघु उद्योग इकाईयों द्वारा प्राप्त की जाने वाली प्रोत्साहन राशि को संस्थागत प्रोत्साहन राशि और नीतिगत प्रोत्साहन राशि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

11.8 शब्दावली

कुटीर उद्योग :– व्यक्तियों द्वारा उनके ही घर पर व्यवसाय करने या विनिर्माण गतिविधि करने से संबंधित है।

11.9 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. वर्ष 1977 में 10 लाख से कम के निवेश वाली इकाईयों को –––––– उद्यम की श्रेणी में रखा गया।
2. –––––– उद्योग कृषि उत्पादन की प्रक्रिया पर आधारित होते हैं।
3 ––––––– लघु उद्योगों के विकास के लिये सर्वोच्च संस्थान है।
4 लघु उद्योगों के पुनर्वित्त के मामले में ––––– वित्त मामले में सर्वोच्च संसथान है।

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 लघु उद्योग 2. कृषि आधारित 3. लघु औद्योगिक विकास संगठन 4. SIDBI

11.11 स्वपरख प्रश्न

1. छोटे पैमाने के उद्यमों को परिभाषित करें। अर्थव्यवस्था के लिये लघु उद्योग इकाईयों के महत्व की व्याख्या करें।
2. लघु, उद्योग की समसयाओं की व्याख्या कीजिए और इन्हें समाप्त कैसे किया जा सकता है ?
3 बीमारी से आप क्या समझते हैं ? लघु उद्योग क्षेत्र में बीमारी के लिये जिम्मेदार किसी एक कारक की व्याख्या कीजिए।
4 लघु उद्योग इकाईयों को उन्नत करने के लिये सरकार द्वारा किये जा रहे उपायों की व्याख्या कीजिए।
5 भारत में लघु उद्योगों पर विश्व संधि संगठन का क्या प्रभाव पड़ा है?

6 क्रमशः सूक्ष्म, मध्यम और लघु उद्योग के अलग–अलग निवेश के मानदंडों को समझाइये ।

7. सूक्ष्म, मध्यम और लघु उद्योग की तुलना बड़े उद्यमों से किस प्रकार की जा सकती है ?

8 ग्रामीण एवं कुटीर उद्वोगों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

11.12 संदर्भ पुस्तकें

1. Government of India (2002-03), *Economic Survey 2002-03*, (New Delhi: Government of India).
2. Government of India, Planning Commission (1999), *Ninth Five-Year Plan* (Delhi: Planning Commission).
3. Gulati, Mukesh (1998), 'SME Cluster Development Programme,' in Juneja, JS (ed.), *Small and Medium Enterprises: Challenges and Opportunities* (New Delhi: Excel Books).
4. Nanjudan, S (1994), 'Changing Role of Small Scale Industries: International Influences, Country Experiences and Lesson for India,' *Economic and Political Weekly*, Vol. 29, No. 22, (M46-M63).
5. National Council for Applied Economic Research (NCAER) (1993), Structure and Promotion of Small Scale Industry in India: Lesson for Future Development (New Delhi: NCAER).
6. Ruddat Datt and KPM Sundharam, "Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
7. Suresh Bedi (2008), "Business Environment," Excel Books, New Delhi.
8. Justin Paul (2008), "Business Environment," Tata McGraw Hill.

———

इकाई 12 वृहद (बड़े) उद्योग

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 बड़े पैमाने के उद्योगों का महत्व
12.3 बड़े पैमाने के उद्योगों के नुकसान
12.4 बीमार बड़े उद्योग
12.5 लोहा एवं इस्पात उद्योग
12.6 कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग
12.7 जूट उद्योग
12.8 चीनी उद्योग
12.9 सीमेन्ट उद्योग
12.10 कागज उद्योग
12.11 सारांश
12.12 शब्दावली
12.13 बोध प्रश्न
12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.15 स्वपरख प्रश्न
12.16 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- बड़े पैमाने के उद्योगों के अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने के उद्योगों के महत्व की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न बड़े उद्योगों के मुद्दे एवं समस्याएँ जान सकें।

12.1 प्रस्तावना

सामान्यतः बड़े उद्योगों से तात्पर्य उन उद्योगों से है जिन्हें बड़े आधारभूत ढाँचे, मानव शक्ति और बड़ी मात्रा में राशि की आवश्यकता होती है। शब्द बड़े उद्योग एक सामान्य शब्द है जिसके अन्तर्गत बहुत सारे उद्योग आते हैं। प्रत्येक देश के विकास के लिये लोहा एवं इस्पात, कच्चा तेल और उसका शोधन, भारी बिजली के उपकरण, भारी रसायन, जहाज और हबाई जहाज, भारी उद्योग, बुनियादी उद्योगों आदि के अन्वेषण की आवश्यकता होती है। किसी देश के विकास के लिये बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास होना अत्यनत आवश्यक है। जब स्वतंत्रता के बाद पहली पंचवर्षीय योजना 1951–56 के अवसर पर योजना साकार रूप ले रही थी, तब उपभोक्ता सामान बाजार पर ध्यान केन्द्रित किया गया और सूती वस्त्र उद्योग, कागज, चमड़े के सामान, साबुन, नमक, शक्कर आदि उद्योगों को महत्व दिया गया। समयान्तराल पर सीमेन्ट, बिजली, उत्पादन, कोयला, इस्पात, रसायन आदि उद्योगों को भी वरीयता क्रम में रखा गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना वास्तविक अर्थों में औद्योगकीकरण पर केन्द्रित थी। इसके अन्तर्गत उन उद्योगों को वरीयता क्रम में रखा गया जो भारत में उद्योगों के विकास के लिये आधारभूत ढाँचा तैयार करने में सहायक हो सकते थे। तदनुसार,

सीमेन्ट उद्योग, लोहा एवं इस्पात कारखाने, अलौह धातु, भारी रसायन, कोयला निष्कर्षण मुख्य बिन्दु थे। तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान उपभोक्ता वस्तु उद्योग और बुनियादी उद्योग स्थापित करने के लिये समान रणनीति अपनायी गयी। अधिकांश उद्योगों की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में हुई जिसके परिणाम सवरूप सार्वजनिक क्षेत्र का विकास भी बहुत तीव्र गति से हुआ। भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना का विकास विभिन्न चरणों पर आधारित था और पहली अवस्था 1951 से 1965 के दौरान की थी। इस दौरान लोहा और इस्पात, भारी मशीनों, भारी इंजीनियरिंग उद्योगों, भारी रसायनों के विनिर्माण पर बड़ी मात्रा में निवेश किया गया। 1965 में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 5.7 प्रतिशत से बढ़कर 9 प्रतिशत तक पहुँच गयी, जो कि पहली योजना में 5.7 थी। दूसरा चरण 1965 से 1980 तक का था जब औद्योगिक वृद्धि दर लगातार गिर रही थी, और यह गिरकर 1976 में 4.1 पर पहुंच गयी। हालांकि 1976–77 के दौरा यह पुनः 10.6 प्रतिशत पर पहुंच गयी, किन्तु इस अवस्था (चरण) में यह वृद्धि दर, आकर्षक नहीं थी और यह संरचनात्मक कमी और तेल संकट पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रारूप की स्थिति के लिये जिम्मेदार था। औद्योगिक विकास का तीसरा चरण 1981 से 1991 का समय था। इस अवस्था के दौरान औद्योगिक विकास अपने रास्ते पर पुनः वापिस आ गया और 1981–1985 के दौरान जो वृद्धि दर 6.4 प्रतिशत वार्षिक थी वह 1990–1991 में 8.3 प्रतिशत हो गयी। अन्य ऐसे बहुत से कारक है जैसे निवेश में मंदी, संरचनात्मक बाधाएँ, विदेशों से प्रतिस्पर्धा, विस्तार के लिये धन की कमी, निर्यात में कमी, अनुचित संरचना, उत्पाद संचालित पर्यावरण और उपभोक्ता चालित पर्यावरण आदि के कारण औद्योगिक विकास को गति नहीं दी जा सकी।

12.2 बड़े पैमाने के उद्योगों का महत्व

कोई भी देश विदेशी मुद्रा प्राप्ति के लिये और लाखों लोगों को नौकरी के अवसर प्रदान करने के लिये बड़े पैमाने के उद्योगों पर आश्रित होता है। बड़े उद्योगों के महत्व के बिन्दुओं पर निम्नलिखित चर्चा की गयीः–

(1) **उन्नत उत्पादकता :–** बड़े उद्योग कामगारों को उनके कौशल और दक्षता के अनुरूप कार्य का विभाजन करते हैं जिससे बड़े उद्योग बड़ी मात्रा मे राशि और नयी तकनीक का इस्तेमाल करते हैं जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है और प्रतिव्यक्ति कीमत में कमी आती है। उत्पादकता की सुविधा में वृद्धि से उपभोक्ता कम कीमत पर उत्पाद प्राप्त कर पाता है।

(2) **आयात प्रतिस्थापनः–** बड़े उद्योग देश को उन पूंजीगत वस्तुओं और उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पाद करने योग्य हो गया है जिनका पहले कभी अन्य देशों से आयात किया जाता था। इस तरह, बड़े उद्योगों ने विदेशी मुद्रा को बचाने में मदद की।

(3) **उत्पादन में अर्थव्यवस्थाः–** उत्पादन में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के चलते बड़े उद्योग कम कीमत पर वस्तुएं एवं सेवाओं के उत्पादन में सक्षम हो सके। कुछ अर्थव्यवस्थाएं इस प्रकार हैं :–

(अ) **कच्चा माल की थोक खरीदी :–** बड़े उद्योगों को ज्यादा मात्रा में कच्चा माल की आवश्यकता होती है। कच्चा माल की बड़ी मात्रा में आवश्यकता बड़े उद्यमियों को कम कीमत पर कच्चामाल खरीदने के योग्य बनाता है ।

(ब) **उन्नत तकनीक** :– बड़े उद्योगों की बहुत मजबूत संपत्ति और पूंजी आधार है। इसलिये बड़े उद्योग उक्त तकनीक/विश्व स्तरीय तकनीक का इस्तेमाल करते हैं जिससे कच्चामाल, श्रम और मशीनों के क्षय में कमी आती है। क्षय में इन समस्त कमियों से कम कीमत पर उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

(स) श्रम का विभाजन :– बड़े उद्योगों ने काम को छोटे भागों में बांट दिया। श्रमिकों को उनकी योग्यता और विशेषज्ञता के आधार पर थोड़ा काम दिया जाता है। श्रम के विभाजन से कार्य के क्रियान्वयन को प्रभावकारी बनाने में और दक्ष बनाने में सहायता मिलती है।

(द) विकास और अनुसन्धान की विशेषताएँ:– बड़े उद्योग अनुसन्धान और विकास की गतिविधियों पर बड.ी राशि निवेश करते हैं जिससे सामान कम कीमतों पर मिलने में सहायता मिलती है।

(त) उप–उत्पाद का उपयोग :– बड़े उद्योग उप–उत्पादों की बिक्री के द्वारा अच्छा धन अर्जित कर सकते हैं।

(4) प्रबंधन में अर्थव्यवस्था :– बड़े उद्योग विशेषज्ञों को नियोजित कर सकते है।, प्रबंधन की नयी तकनीकों/ तरीकों के इस्तेमाल से पैसे की बचत होती है। विशेषज्ञ जटिल और कठिन से कठिन समस्याओं का समाधान खोजने में सक्षम होते हैं। दूसरे, बड़े उद्योग श्रम बचत युक्तियाँ/ तकनीक का उपयोग कर सकते हैं जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है और उत्पादन की कीमत की कटौती में सहायक होती है।

(5) वित्त में अर्थव्यवस्था :– बड़े उद्योगों के पास बहुत सारी वित्तय में अर्थव्यवस्थाएं हैं। उनकी साख के कारण निम्न दर पर राशि एकत्रित करने में वे सक्षम हैं, जोखिमों का सामना करने में सक्षम हैं और. ऋण कम करने में सक्षम हैं।

(6) विपणन में अर्थव्यवस्था :– बड़े पैमाने के उद्यम बड़ी मात्रा में सामान का विक्रय करते हैं जिससे माल ढुलाई, पैकिंग और परिवहन में बचत करने की सुविधा प्राप्त होती है । दूसरे, बड़े उद्योगों के पास उनके प्रभावकारी विज्ञापन और त्वरित सेवाओं के कारण बहुत सी अर्थव्यवस्थाएं हैं।

12.3 बड़े पैमाने के उद्योगों के नुकसान

बड़े उद्योगों के लाभ एवं हानियाँ दोनों ही हैं। नियंत्रण, सामंजस्य, अधिक राशि की आवश्यकता आदि बड़े उद्योगों से होने वाली नुकसान हैं। बड़े उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक शक्ति की एकाग्रता है। आर्थिक एकाग्रता देशानुसार और उत्पादानुसार हो सकती है। अन्तर–कंपनी निवेश, सरकारी नीतियाँ, व्यावसायिक अस्थिरता और बड़े घरानों के द्वारा औद्योगिक अवसर देना, बैंकिंग कंपनियों के ऊपर नियंत्रण आदि आर्थिक एकाग्रता के कारण हैं ।

12.4 बीमार बड़े उद्योग

सभी प्रकार के उद्योगों की एक सामान्य समस्या उसका बीमार होना है और बड़े उद्योग भी इसका अपवाद नहीं है। आर्थिक सर्वेक्षण (1989–90) प्रचलित स्थिति का जायजा लेते हुये उल्लेख करता, "देश के औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उद्योगों के बीमार होने की बढ़ती हुई घटना का सामना करना एक अनवरत् समस्या है। "वित्तीय संस्थानों की ऋण योग्य एक बहुत बड़ी राशि औद्योगिक इकाईयों में उलझी हुई है जिससे न केवल संसाधनों को हानि हो रही है बल्कि औद्योगिक अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ रहा है।" 2003 में मार्च के अन्त में ऐसे उद्योग जो लघु उद्योगों की श्रेणी में नहीं आते हैं, उन इकाईयों की संख्या 3396 थी और बैंक की कुल साख 29109 करोड रूपये थी। मार्च, 1997 के अन्त तक कुल बची हुई बैंक साख का 58 प्रतिशत सूती वस्त्र, इंजीनियरिंग, बिजली, लोहा और इस्पात और रसायन उद्योग में लगा हुआ है। बीमार उद्योगों की संख्या निरंतर बढ़ रही है, बैंक की बकाया राशि भी बढ़ रही है।

(1) बड़े उद्योगों में औद्योगिक बीमारी के कारक :–

औद्योगिक बीमारी के लिये जिम्मेदार कारकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– बहिर्जात कारक और अन्तर्जात कारक। बहिर्जात कारक वह कारक होते हैं जो औद्योगिक इकाई के नियंत्रण के बाहर हैं। इन कारकों में सम्मिलित हैं– सरकारी नीतियाँ, कीमतें, मुद्रास्फीति, बिजली की कमी, यातायात, कच्चामाल की कमी, श्रम विवाद इत्यादि। यह कारक उद्योग की समस्त इकाईयों पर प्रभाव डालते हैं। अन्तर्जात कारक वह कारक है जो व्यक्तिगत इकाई से संबंधित होते हैं। जैसे कुप्रबन्ध, गलत वित्त पोषण और लाभांश निर्णय, अत्यधिक ऊपरी खर्च, गलत आकलन आदि।

(2) बड़े उद्योगों में बीमारी को रोकने के उपायः–

बड़े उद्योगों की बीमारी किसी अन्य उद्योग में राशि लगने के कारण हो सकती है। इस स्थिति में केन्द्रीय व्यापार संघ का कार्यशील समूह (1978) की रिपोर्ट ने सुझाव दिया कि ''जब कभी किसी कंपनी का कब्जा लिया जाता है, उस परिवार से संबंधित समस्त लेन देन भी लिया जाना चाहिए या उस राशि को पुनर्प्राप्त करना चाहिये जो प्रबंधन द्वारा उनकी अन्य कंपनियों में गलत तरीके से लग गया है या निदेशक मंडल के सदस्यों की व्यक्तिगत संपत्ति का भी गलत उपयोग किया गया है तो उसे भी पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये।'' किन्तु प्रोफेसर राजकृष्ण बीमार इकाईयों की देख करने के पक्ष में नहीं थे। जार्ज फर्नाडीस का भी यही मत था और उन्होंने आक्रामकता के साथ तर्क भी दिया कि, ''कंपनियों द्वारा जो भी लाभ प्राप्त किया जाता है वह सब निजी क्षेत्रों को उनके पांच सितारा संस्कृति को बनाये रखने के लिये मिलना चाहिये। हानि राज्यों द्वारा वहन की जानी चाहिये जिसका तात्पर्य है देश के गरीब लोगों को हानि वहन करनी चाहिये।'' जार्ज फर्नाडीज द्वारा दिया गया दूसरा सुझाव है बीमार इकाईयों का प्रबंधन कामगारों को सौंप देना।

12.5 लोहा एवं इस्पात उद्योग

देश में लोहा और इस्पताल उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भारत जैसे देश में तेजी से बढ़ते औद्योगिकरण के किसी भी कार्यक्रम के लिये इस्पताल उद्योग की तीव्र वृद्धि को एक तर्क संगत परिणाम की आवश्यकता है। बहुत से उत्पादों में लोहे का उपयोग किया जाता है । जवाहर लाल नेहरू के अनुसार, लोहा अर्थव्यवस्था की ताकत का प्रतीक है एवं भविष्य में भारत की महिमा का प्रतीक है। लोहे के उत्पादन से भारतीयों को बहुत लाभ है क्योंकि भारत लौह अयस्क की खदानों में बहुत धनी है। दूसरी बड़ी उपलब्धता कोयले की है जो एक दूसरे के करीब हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से, 1875 में आधुनिक तरीके से लोहे का विनिर्माण करने का प्रयास किया गया। जिसका प्रारंभ 1989 में बंगाल लोहा कंपनी के नाम से व्यावसायिक रूप से अपना काम प्रारंभ किया। हालांकि, 1907 में जमशेद जी टाटा द्वारा टाटा लोहा एवं इस्पात कंपनी (TISCO) स्थापित की गयी जिसने विभिन्न उपयोगों के काम आने वाले लोहे का बड़ी मात्रा में व्यावसायिक उत्पादन प्रारंभ किया। इसके बाद, 1919 में दूसरी कंपनी भारतीय लोहा एवं इस्पात कंपनी (IISCO) के नाम से स्थापित हुई। किन्तु 1947 के बाद, भारत में आर्थिक स्वतंत्रता के विषय में सोचना प्रारंभ किया और आजादी के समय पूरी क्षमता 1.3 मिलियन टन थी। जिसमें से एक मिलियन टन का उत्पादन टाटा लोहा और इस्पात कंपनी (TISCO) कर रही थी और बाकी बचा हुआ भारतीय लोहा और इस्पात कंपनी (IISCO) के द्वारा किया गया। औद्योगिक नीति 1956 ने लोहा और इस्पात को अनुसूची –ए के अन्तर्गत रखा। राउरकेला में स्थापित एक एकीकृत संयंत्र के लिये जर्मनी कृप–दिमाग के सहयोग से 1954 में सार्वजनिक स्वामित्व वाली इस्पात संयंत्र की दिशा में पहला कदम उठाया गया। वर्ष 1955 में, भिलाई में दूसरा इस्पात संयंत्र स्थापित करने के लिये भारत और रूस सरकारों के मध्य समझौते पर हस्ताक्षर हुये। 1956 में ब्रिटेन के साथ समझौता करके दुर्गापुर में तीसरा संयंत्र स्थापित किया गया।

प्रारंभिक दौर में इस्पात उद्योग की स्थिति विकास पूर्ण थी। किन्तु तीसरी योजना से वृद्धि दर गिर गयी एवं बिजली की कमी, कायेले की कमी और गड़बड़ औद्योगिक संबंधों के कारण लक्ष्य की पूर्ति संभव नहीं हो पा रही थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिये ठोस आधार बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया, इस योजना में भारत में लोहा एवं इस्पताल उद्योग को विकास की सर्वोच्च वरीयता क्रम में रखा गया। भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में सार्वजनिक क्षेत्र के स्थापित तीन बड़े संयंत्रों के साथ हिन्दुस्थान स्टील लिमिटेड की स्थापना की गयी, जिससे (TISCO) और (ISSCO) की क्षमता को विस्तार मिला। यह तीन बड़े संयंत्र 1959 और 1962 के दौरान क्रियान्वयन में आयें । एक अन्य सार्वजनिक क्षेत्र का इस्तपात संयंत्र बोकारो स्टील इंडिया लिमिटेड द्वारा बोकारों में स्थापित किया गया। 1978 में यह संयंत्र इस उद्देश्य के साथ चालू किया गया था कि 1974 में इसकी वृद्धि दर कुल क्षमता 8.9 मिलियन टन रहेगी, 1980 में यह 11.6 मिलियन टन हो गयी। इसके बाद, एक इस्पात संयंत्र तमिलनाडु के सेलम में, दूसरा कर्नाटक के विजयनगर में, तीसरा आंधप्रदेश के विशाखापत्तम में भी स्थापित किये गये। 1973 में भारत सरकार ने स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (SAIL) तथा हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड (HSL) की स्थापना की और भारत स्टील लिमिटेड (BSL) इसकी सहयोगी कंपनी के रूप में स्थापित हुई। 1989 में SAIL द्वारा विश्वेश्वरैया लोहा एवं इस्पात संयंत्र तथा (IISCO)को ले लिया गया। 1992 में विशाखापत्तनम इस्पात संयंत्र राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड की भी स्थापना की गयी। यह निगम 3 मिलियन टन की क्षमता के साथ आधुनिक सुविधाओं से युक्त था। निजी क्षेत्रों में भी औद्योगिक समूहों जैसे एस्सार, जिंदल, निप्पन, महिन्द्रा, मद्रास स्टील और FACOR द्वारा नये इस्पात संयंत्रों की स्थापना की गयी, जिसमें कुल 90 करोड़ रूपये लगाये गये और लगभग पांच लाख लोग इसमें काम करने हेतु नियुक्त हुये। जिससे भारत 2011 में चौथा सबसे बड़ा कच्चा इस्पात उत्पादन वाले देश की श्रेणी में आ गया। लोहा और इस्पात उद्योग को इतना महत्व दिये जाने के बावजूद, यह ध्यान देने योग्य है कि देश अब भी अपनी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लोहा आयात करता है।

स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (SAIL) की स्थापना 1974 में की गयी और इसे इस्पाम उद्योग के विकास हेतु पूर्णता जिम्मेदार बताया गया। लोहा एवं इस्पात उद्योग ने महत्वपूर्ण उन्नति की है, 1950–51 में परिष्कृत लोहे की क्षमता 1 मिलियन टन थी वह 2003 –04 में बढ़कर 37 मिनियन टन हो गयी। और आज भी निम्नलिखित कारणों से दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैः–

1. देश में ही अनुसंधान डिजाइन और विकास में वृद्धि।
2. स्टील के उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व।
3. छोटे इस्पात संयंत्रों को स्थापित करने के लिये अनुज्ञप्ति।

लोहे एवं इस्पात उद्योग की समस्याएं :– भारत की अर्थव्यवस्था में स्टील उद्योग की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु लोहा और इस्पात उद्योग बहुत समस्याओं का सामना कर रहा है, उन समस्याओं में से कुछ इस प्रकार हैः–

उत्पादन में लगने वाली कीमत में वृद्धि और कोयला एवं बिजली की कमीः– लोहा और कोयले की खदानें स्टील उद्योग की मौलिक आवश्यकताएं है। और इन दोनों ही तत्वों की कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिसके कारण लोहा विनिर्माण कंपनियों को बजट के ऊपर दबाव बना हुआ है। इस्पात विनिर्माण में अधिक मात्रा में बिजली की भी आवश्यकता पड़ती है और बिजली निर्माण में कोयले की जरूरत होती है, और अच्छी गुणवत्ता के कोयले की आपूर्ति में कमी होने के कारण

बिजली निर्माण क्षमता पर असर पड़ता है, और इसका प्रभाव स्टील कंपनियों की उत्पादन दक्षता पर भी पड़ता है।

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों की अक्षमताः– सरकारी आर्थिक सहायता लाल फीताशाही आदि के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयाँ अक्षमता की समस्या से जूझ रही हैं। यह इकाईयाँ सरकारी मदों पर भारी निवेश राशि का दुरूपयोग, बाधित औद्योगिक संबंधों आदि समस्याओं का सामना कर रही है।

कीमत नियंत्रण की समस्या :– सरकार एक प्रशासित कीमतों की प्रणाली का पालन कर रही थी। मुख्य उत्पादकों को उपभोक्ताओं द्वारा प्रदत्त उच्च कीमतों के लाभ से वंचित किया गया था। संयुक्त संयत्र समिति ने समय–समय पर स्टील के विभिन्न मदों के लिये लागत कारकों के जरिये कीमत बढ़ने से बचने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये कीमतों का एक सेट तय किया, जिससे मुख्य उत्पादकों को पर्याप्त लाभ सुनिश्चित हो सके और उपभोक्ताओं पर बोझ कम पड़े।

क्षमताओं का कम दोहनः–कच्चेमाल की अनुपलब्धता, व्यावसायिक चक्रों और अन्य समस्याओं के कारण स्टील उद्योग अपनी क्षमताओं का सही दोहन नहीं कर पा रहा है और इस प्रकार क्षमताओं के कम दोहन की समस्या का सामना कर रहा है। 1970–71 में क्षमता के कम दोहन की स्थिति केवल 67प्रतिशत थी । 1977–78 में यह स्थिति 84 प्रतिशत तक पहुंच गयी।

छोटे इस्पात संयत्रों की बीमारी छोटे इस्पात संयंत्रों की बीमारी एक बहुत बड़ी समस्या है। उद्योग में लगने वाले तत्वों की कम आपूर्ति, लागतों में वृद्धि, बिजली की कमी, खराब वित्तीय स्थिति आदि उद्योग की बीमारी के कुछ कारण हैं।

इस्पात संयंत्रों का तकनीकी अप्रचलन :– पुराने इस्पात संयंत्रों की पुरानी हो गये और इसे उन्नयन की आवश्यकता थी। इस कारण इस्पात संयंत्रों में बिजली की खपत बहुत अधिक थी।

12.6 कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग

प्रारंभ से ही कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग भारत में सबसे बड़े उद्योग हैं और यह सबसे पुराने और बड़े उद्योगों में शामिल है। देश में लगभग 1100 मिले हैं जिनमें 900 कताई मिलें और 200 मिश्रित मिले हैं। कपास उद्योग की उत्पादन क्षमता 28 मिलियन स्पिंडल (धुरी) है और 2 लाख करघों के माध्यम से 350 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। उद्योग बहुत से उतार–चढ़ाव का साक्षी है। यहाँ यह बताना उचित है कि भारत में प्रथम कपास मिल कोलकता (तब कलकत्ता) में वर्ष 1818 में स्थापित की गयी थी और इसने अपने पंख 1854 में मुंबई तक फैला दिये अर्थात् मुंबई में बहुत से कपास उद्योग स्थापित किये गये और उसके बाद अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा, शोलापुर, कानपुर, इन्दौर और कोयंबटूर में भी कपास मिल की स्थापना की गयी। उन्नति इतनी तीव्र थी कि 1911 में कपास मिल एक रोजगार देने वाले उद्योग के रूप में जाना जाने लगा, जहाँ कि कुल कामगारों के 45 प्रतिशत लोग मुंबई में कपास उद्योग में लिप्त थे। आधुनिक समय में इस उद्योग के चार मुख्य क्षेत्र हैं, जैसे सूती वस्त्र मिल का क्षेत्र, विद्युत से चलने वाले करघे का क्षेत्र, हथकरघा और होजरी क्षेत्र।

सूती वस्त्र उद्योग की संरचना बहुत जटिल, परिष्कृत और अत्यधिक यंत्रीकृत है। भारत में कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग औद्योगिक उत्पादन का 20 प्रतिशत सहयोग प्रदान करता है, 20 मिलियन लोगों को रोजगार प्रदान करता है और कुल निर्यात आय का 33 प्रतिशत सहयोग प्रदान करता है । भारत का सूती वस्त्र उद्योग मुख्य रूप से कपास पर आधारित है। कच्चे कपास का उत्पादन साल दर साल अलग अलग रहता है जो बारिश और मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिसकी वजह से कपास की कीमतों में उतार–चढ़ाव होता है। ऊपर बताये गये चार क्षेत्रों

के अलावा, सूत्री वस्त्र मिल के क्षेत्र का योगदान 1950–51 में कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत था। इसका योगदान श्धीरे–धीरे घटता गया और 1980–81 में कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत ही रह गया और अब 2011–12 में यह 38 प्रतिशत पर स्थिर है। समय के साथ अन्य तीनों क्षेत्रों की हिस्सेदारी 1950–51 में 20 प्रतिशत थी उससे बढ़कर 2011–12 में 96.2 प्रतिशत हो गयी। एक आकलन के अनुसार मिलो ने 2,313 मिलियन स्क्वेयर मीटर सूतीवस्त्र का उत्पादन किया एवं अन्य तीन क्षेत्रों में 58,140 मिलियन स्क्वेयर मीटर सूतीवस्त्र का उत्पादन भारत में किया है। धागे का उत्पादन धीमी वृद्धि दर्शाता है, 1950–51 में 550 मिलियन किलोग्राम धागे का उत्पादन था, वह 2003–04 में 4170 मिलियन किलोग्राम से अधिक पहुंच गया। 1950–51 में कपड़ा उत्पादन 4740 मिलियन मीटर था जो 2000–01 में बढ़कर 39670 मिलियन मीटर हो गया। संगठित कपड़ा उद्योग में तीन अलग–अलग श्रेणियाँ हैं – कताई मिले , बड़ी और मध्यम मिश्रित मिलें, और ठीक और अत्यधिक ठीक (सुपर फाइन) मिश्रित मिलें । बिजली से चलने वाला करधा क्षेत्र में 2011–12 में तीव्रतम गति से वृद्धि हुई, भारत में सूती वस्त्र उत्पादन में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी 60.6 प्रतिशत है और होजरी क्षेत्र में 23.49 प्रतिशत का योगदान दिया तथा हथकरधा ने 11.1 प्रतिशत का योगदान दिया। इस वृद्धि के लिये जिम्मेदार कारक सरकारी नीतियाँ हैं। जिन्होंने सिन्थेटिक कपड़ों को प्रोत्साहन दिया, लचीलापन रखा, और बिजली संचालित करधों के द्वारा उत्पाद मिश्रण को समाविष्ट करना, श्रम के रूप में उत्पादन लागत आसान और अधिक मंहगी न होना, सहकारी क्षेत्रों सहित विभिन्न क्षेत्रों द्वारा बाजार संबंधी सुविधाएं प्रदान की । भारत सरकार ने वर्ष 2000 में सूती वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने के लिये राष्ट्रीय वस्त नीति का ऐलान किया । इस नीति के तहत इस उद्योग की राशि दी गयी और तकनीकी सहायता भी दी गयी ताकि इस उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुएं, निर्यात योग्य बन सकें और वस्त्रों के निर्यात के लक्ष्य में बढ़ोत्तरी हो सके । 2010 में वस्त्रों ओर सिले वस्त्रों के निर्यात में 11 बिलियन डालर से बढ़कर 50 बिलियन डालर तक की वृद्धि हुई। इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मानक सुविधाओं के साथ 40 एकीकृत वस्त्र उद्योगों की स्थापना की गयी जिसमें वस्त्र और परिधानों के विनिर्माण से संबंधित गतिविधियां भी सम्मिलित थीं, इसके अन्तर्गत एकीकृत कौशल विकास योजना का शुभारंभ किया गया, ताकि भारतीय वस्त्र उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना कर सके।

कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग की समस्याएं :– भारत में कपास एवं सूती वस्त्र उद्योग बहुत सारी समस्याओं से जूझ रहा है। उनमें से कुछ की चर्चा इस प्रकार है:–

(1) **अप्रचलित मशीनरी और आधुनिकता की आवश्यकता :–**' सूती वस्त्र उद्योग की सबसे बड़ी समस्या अप्रचलित मशीनों का होना है, इनकी जगह नयी मशीनरी लगायी जानी चाहिए। आधुनिकीकरण के लिये राशि की आवश्यकता होती है। यह राशि आंतरिक अधिशेष के माध्यम से एकत्रित की जा सकती है या राशि उधार भी ली जा सकती है। समस्या का दूसरा पहलू यह है कि आधुनिकीकरण की कमी के कारण उत्पादन की उच्च्च कीमत के रूप में लागत होती है। इस समस्या का तीसरा पहलू आधुनिक मशीनरी की अनुपलब्धता है।

(2) **सरकारी नियंत्रण और भारी शुल्क :–** सूती वस्त्र उद्योग की गंभीर समस्या है सरकारी नियंत्रण/सरकार का मूल्य पर नियंत्रण रहता है, धागों के वितरण पर नियंत्रण रहता है, उत्पादन के तरीकों इत्यादि पर भी नियंत्रण रहता है । विभिन्न सूती वस्त्रों पर विभिन्न प्रकार के अन्य कर और उत्पाद शुल्क बहुत ऊंचे तथा भेदभावपूर्ण हैं।

(3) **कच्चामाल की समस्या :–** उद्योग कच्चामाल की समसया का भी सामना कर रही थी। कच्चामाल की स्थिति आज भी अस्थिर बनी हुई है। कच्चामाल की उपलब्धता में अनिश्चितता और कच्चे माल की कीमतों में उतार–चढ़ाव वस्त्र उद्योग में बीमारी के मुख्य कारण है। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग कपास आधारित है और जब बारिश की वजह से कच्चामाल की प्राप्ति पर्याप्त रूप से नहीं हो पाती है, तब कपड़ा मिलों को कच्चामाल आयात करना पड़ता है जिससे उत्पादन की कीमत बढ़ जाती हैं

(4) **उच्च लागत और प्रतिस्पर्धी बाजार:–** भारतीय वस्त्र उद्योग विदेशी बाजार से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहा है। ऐसा कम उत्पादन और उच्च लागत की वजह से होता है फलस्वरूप भारतीय वस्त्रों की कीमतें बढ़ जाती है।

(5) **पुरानी मशीनरी और संयंत्र :–** चूंकि वस्त्र उद्योग बहुत पुराना उद्योग है, पुराना होने के कारण आज भी संयंत्र पुराना है और उत्पादन के लिये उपयोग में लायी जा रही मशीनें भी पुरानी हैं, परिणाम स्वरूप उत्पादन में लागत बढ़ जाती है और उत्पादन (परिणाम) निम्न गुणवत्ता वाला प्राप्त होता है। आधुनिकीकरण के लिये भारी निवेश की आवश्कयता है, क्योंकि बहुत सी पुरानी मिलें आज भी क्रियाशील है। इन मिलों को आधुनिक करने के लिये ऋण लेने पर ब्याज देने का भार इन मिलों पर आ जाता है।

(6) **डबल्यू टी.ओ. शासन में चुनौतियाँ :–** भारतीय वस्त्र उद्योग डब्लयू.टी. शासन में बहुत सी समस्याओं का सामना कर रहा है। जनवरी 2005 से आरक्षण के चरण बद्ध होने और कपड़ा उद्योग के पूर्व एकीकरण से बहुत समस्याओं का प्रार्दुभाव होता है। भारतीय वस्त्र उद्योग को चीन, श्रीलंका, बांग्लादेश और पाकिस्तान के साथ कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

(8) **श्रमिक अशांति :–** वस्त्र उद्योग में श्रमिक संघ बहुत मजबूत और एक साथ रहते हें तथा इसी कारण लगातार श्रमिकों की हड़ताल होती रहती है और ताला बन्दी होती रहती है परिणाम स्वरूप उत्पादन में कमी आती है और सही तरीके से काम करने में व्यवधान उत्पन्न होता है। मुंबई कपड़ा मिल में सर्वाधिक लंबे समय के लिये की गयी हड़ताल भारत में एतिहासिक हड़ताल है।

12.7 जूट उद्योग

जूट उद्योग भी भारत में बहुत पुराना उद्योग है, सबसे पहली जूट मिल 1859 में कोलकाता के पास रिश्रा में खोली गयी। इस उद्योग का भी तीव्रतम वृद्धि का रिकार्ड है और अधिकांश जूट मिले भारत के पश्चिम बंगाल में ही खोली गयीं। हालांकि भारत विभाजन के कारण इस उद्योग को झटका लगा, अधिकांश जूट वाले क्षेत्र बांग्लादेश में चले गये और केवल 25 प्रतिशत ही भारत में रह गये। सरकार ने जूट उद्योग के विकास पर ध्यान देना आरंभ किया और इस दिशा में जूट की खेती के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र 1947–48 में 6.5 लाख एकड़ तक फैला था । वह 1950–51 में 1.4 मिलियन एकड़ तक फैल गया। इसी तरह जूट की गाठों का उत्पादन भी 1.6 मिलियन से बढ़कर 3.3 मिलियन हो गया।

वर्तमान में जूट की खेती का क्षेत्र लगभग 0.9 मिलियन हेक्टेयर (2011–12) है, इस क्षेत्र में उत्पादन 11.6 मिलियन गांठे प्रति वर्ष तक पहुंचा जिसका अंतिम उत्पादन 1,111 हजार टन रहा। इस उपलब्धि के साथ भारत अब जूट का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया और इसमें चार लाख कामगार (श्रमिक) काम कर रहे है। अतः रोजगार की दृष्टि से और विदेशी विनियम से प्राप्त होने वाली आय की दृष्टि से भी उद्योग बहुत महत्वपूर्ण है। उद्योग 2.5 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देता है और लगभग 40 लाख परिवार जूट क्षेत्र से जीविकोपाज्रन कर रहे है। लेकिन तथ्य

यह है कि 1951 में कच्चा जूट का उत्पादन 3.3 मिलियन गाँठ था जबकि 7.2 मिलियन गाँठों की आवश्कयता थी। यह कमी आज भी स्थिर है जबकि आवश्यकता सालदर साल बढ़ रही है। जूट उद्योग अब कताई के बाद के उपकरणों का आधुनिकीकरण कर रहा है। इस उद्योग ने अमेरिकी बाजार में कालीन समर्थन कपड़े की माँग के अभूतपूर्व विकास का भी लाभ उठाया है। नयी विशेषताएं जैसे सूती बैग जूट के तिरपाल, कागजी हैसिन कपड़ा, जूट के कालीन और जूट बद्धी (Webbing) अब निर्मित होती हैं । एक आंकड़े के अनुसार भारत में 83 जूट मिले हैं जिसमें 64 मिलें पश्चिम बंगाल में स्थित है क्योंकि यह राज्य जूट की खेती के लिये सर्वोत्तम है।

जूट उद्योग की समस्याए :– जूट उद्योग निम्नलिखित समस्याओं का सामना कर रहा हैः–

(1) **कच्चे माल की समस्याएँ** :– जूट उद्योग के लिये कच्चे माल की समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी बंटवारे के समय 1947 में थी। कच्चे जूट की अनिश्चित अनुपलब्धता को इस तथ्य से मापा जा सकता है कि जूट के घरेलू उत्पाद में उतार–चढ़ाव बहुत ज्यादा होता है। 1960–61 में जूट की गाँठों का उत्पादन 41.4 लाख गांठे था जो 1970–71 में बढ़कर 62 लाख गाँठे हो गया। 1975–76 में यह पुनः 44.4 लाख गांठे हो गया । कच्चे जूट की निश्चित उपलब्धता का मुख्य परिणाम कच्चे जूट की कीमतों में अस्थिरता और जूट के सामानों की कीमतों में परिणामस्वरूप उतार चढ़ाव है।

(2) **संयंत्र और मशीनों का आधुनिकीकरण** :– जूट उद्योग के संयंत्र और मशीनें अप्रचलित हो गयी हैं। आधुनिकीकरण और संयंत्र एवं मशीनों के प्रतिस्थापन के लिये बड़े निवेश की आवश्यकता है किन्तु उद्योग ने संयंत्र और मशीनरी के आधुनिकीरण के लिये आन्तरिक संसाधन जमा नहीं किये हैं। राष्ट्रीय औद्योगिक निगम (NIDC) की स्थापना जूट उद्योग की देखरेख करने के लिये की गयी।

(3) **विकल्प से प्रति स्पर्धाः–** भारत विभाजन और भारत की स्वतंत्रता से पहले, भारतीययों ने एकाधिकार का फायदा उठाया और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में कीमतें ऊंची बढ़ाकर इस स्थिति का फायदा उठाया । अधिक दाम वसूलने की स्थिति ने जूट के कृत्रिम विकल्प की खोज को जन्म दिया। अब, भारतीय जूट उद्योग की कठिन प्रतिस्पर्धा बांग्लादेश, जापान, और ब्राजील के साथ है। जूट बैग तेजी से अपना अस्तित्व खो रहे हैं और उनके स्थान पर उद्योगों द्वारा कृत्रिम बैग को वरीयता दी जा रही है।

(4) **ऊंची कीमतें :–** अप्रचलित मशीनों के उपयोग, कच्चेमाल की बढ़ती कीमतें और कच्चे जूट की आपूर्ति की अविश्सनीय स्थिति के कारण भारतीय जूट उत्पाद के दाम अधिक हैं।

(5) **अनियमित बिजली आूपर्तिः–** पश्चिम बंगाल भयानक बिजली की कमी की समस्या का सामना कर रहा है जिसका असर जूट मिलों और उनके सुनिश्चित उत्पादन पर पड़ रहा है।

12.8 चीनी उद्योग

चीनी उद्योग देश का दूसरा सबसे बड़ा कृषि आधारित उद्योग है। भारत विश्व में चीनी का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है। आधुनिक तकनीक से चीनी का उत्पादन भारत में 1903 से प्रारंभ हुआ, आधुनिक तकनीक से चीनी उत्पादन हेतु मिलें उत्तरप्रदेश और बिहार में स्थापित की गयी। बाद में देश के विभिन्न भागों में लगभग 1933 चीनी मिले स्थापित की गयीं। अब आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में भी चीनी मिले है। यह उद्योग कुल मात्रा के योगदान की शर्तों के परिप्रेक्ष्य में तीसरा बड़ा उद्योग है और लगभग 3.25 लाख लोगों को रोजगार भी दे रहा है। चीनी उद्योग केन्द्र सरकार के लिये उत्पाद शुल्क का मुख्य स्त्रोत रहा है। स्वतंत्रता के पूर्व यहां केवल 32 कारखाने थे जिनमें 1.6 लाख टन चीनी का उत्पादन हो रहा था। इस उद्योग को प्रशुल्क सुरक्षा

1932 में मिल गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि कारखानों की संख्या बढ़कर 137 हो गयी और उत्पादन बढ़कर 10 लाख टन हो गया। चीनी का उत्पादन 2001–02 में बढ़कर 16.1 मिलियन टन तक बढ़ गया। इस उद्योग को सरकार द्वारा नियंत्रण, निर्णायक नियंत्रण और पुनः नियंत्रण के अधीन होना है। प्रशासनिक खामियों के चलते चीनी के दाम 8 रू. किलो से बढ़कर 16 रूपये प्रति किलो हो गयी। अतः सरकार को आंशिक नियंत्रण के साथ दोहरी मूल्य पद्धति को पुनः लाना पड़ा। सरकार ने उगाही का अनुपात और मुफ्त बिक्री चीनी का कोटा निश्चित कर दिया। उपभोक्ताओं को उचित दर की दुकान के द्वारा कम कीमतों पर चीनी बेची जा रही थी और चीनी का मुफ्त बिक्री कोटा चीनी कारखानों द्वारा खुले बाजार में ऊंचे दामों पर बेचा जा रहा था। 2013 से सरकार ने चीनी की उगाही का तरीका हटा दिया और चीनी को नियंत्रण मुक्त कर दिया। एक अनुमान के अनुसार भारत में 2011 तक 677 चीनी मिले हैं जिनमें लगभग 274 लाख टन शक्कर का उत्पादन हो रहा है, इस तरह भारत ब्राजील और क्यूबा से चीनी उत्पादन में आगे है।

चीनी उद्योग की समस्याएं :– चीनी के उत्पादन में अनियंत्रित प्रवृत्ति इस तथ्य से जुड़ी हुई है कि यह कृषि आधारित उद्योग है और इसका उत्पादन मानसून की अनियमितताओं के उतार–चढ़ाव पर निर्भर करता है। चीनी के उत्पादन पर गन्ने और गुड़ की कीमतों का भी प्रभाव पड़ता है। शक्कर या गुड़ बनाने के लिये गन्ने की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, गुड़ की जगह शक्कर की खपत तब ज्यादा बढ़ गयी जब शक्कर की कीमतें गुड़ की कीमतों की तुलना में कम हो गयीं। उद्योग बहुत सी समस्याओं का सामना कर रहा है, उनमें से कुछ समस्याओं का विवरण इस प्रकार हैः–

(1) **उद्योग की स्थापना के स्थान की प्रकृति में परिवर्तनः–** प्रारंभ में उत्तर प्रदेश और बिहार में उद्योग की स्थापना की गयी थी जिसने 1960 में शक्कर का लगभग 60 प्रतिशत का योगदान दिया। अध्ययन बताते हैं उत्पादन का क्षेत्रीय पैटर्न तर्कहीन प्रकृति का है। चीनी की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये, यह आवश्यक है कि मिलों की स्थापना वहीं होनी चाहिये जहाँ आसपास आसानी से गन्ना उपलब्ध हो । किन्तु अब यह उद्योग भारत के अन्य भागों में भी अपने पंख फैला रहा है।

(2) **चीनी के बढ़ते दामों की समस्या** :– भारत में चीनी के उत्पादन की उच्च लागत के लिये अकार्य क्षमता और अनौपचारिकता, कम उपज केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित गन्ने की ऊंची कीमतें जिम्मेदार हैं।

(3) **दोषपूर्ण सरकारी नीति** :– चीनी उद्योग अत्यधिक नियंत्रित उद्योग है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा गन्ने का निर्धारित न्यूनतम मूल्य है। दूसरी समस्या हैचीनी मिलों से उगाही करना, जो कि सामान्यतः उत्पादन की 40 प्रतिशत है, जो कि कीमतों पर लगाये गये कोटा को बाजार मूल्य की तुलना में कम रखना पड़ता है। निःशुल्क चीनी की बिक्री का कोई मूल्य नियंत्रण नहीं है। लेकिन निःशुल्क चीनी बिक्री की मात्रा को सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाता है ताकि कीमतों की स्थिरता को बनाया रखा जा सके। गन्ने की कीमतों को भी सरकार द्वारा तय किया जाता है जो कभी कभी किसानों के लिये उपयुक्त नहीं होता और यह एक राजनीतिक मुद्दा बन जाता है। अन्य समस्या गन्ने की खराब किस्म से कम चीनी प्राप्त होना है।

12.9 सीमेन्ट उद्योग

भारत में सर्वप्रथम सीमेन्ट का उत्पादन 1904 में मद्रास में प्रारंभ हुआ। व्यावसायिक रूप से सीमेन्ट उद्योग की शुरूआत वर्ष 1914 में हुयी जब भारतीय सीमेन्ट कंपनी लिमिटेड ने गुजरात के पोरबंदर में सीमेन्ट का निर्माण किया। भारत सीमेन्ट का सातवां सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत में आधारभूत ढाँचों की परियोजना की वृद्धि के चलते सरकार ने 1982 में एक नीति का एलान किया

जिसके अन्तर्गत समस्त सीमेन्ट निर्माण कंपनियों को नियंत्रित कीमत पर लेवी के रूप में सरकार को अपनी क्षमता का 66.6 प्रतिशत देना था किन्तु बीमार और नयी इकाईयों के लिये यह 50 प्रतिशत था। बचा हुआ भाग कंपनियां खुले बाजार में स्वयं बेच सकती थी। विचार था सीमेन्ट पर कालाबाजारी रोकने की क्योंकि आपूर्ति से अधिक मांग थी। हालांकि जब आपूर्ति की स्थिति सुधरी तब 1989 में इस पद से नियंत्रण हटा लिया गया और 1991 में इस उद्योग से लाइसेंस भी समाप्त कर दिया गया । सरकारी प्रोत्साहन के कारण भारत में सीमेन्ट उत्पादन की क्षमता 294 मिलियन टन तक पहुँच गयी और वर्ष 2012 तक बड़ी सीमेन्ट मिलों की संख्या 173 हो गयी। इसके अलावा, सीमेन्ट के लगभग 350 छोटे संयंत्र हैं जिनकी कुल उत्पान क्षमता 11.10 मिलियन टन है। इस आधार पर भारत चीन के बाद सबसे बड़ा सीमेन्ट निर्माता देश बन गया। इस उद्योग में दो लाख से ज्यादा लोग कार्यरत हैं। संसार में प्रति व्यक्ति सीमेन्ट की खपत सबसे कम है।

सीमेन्ट उद्योग में आने वली मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैः–

(1) **अपर्याप्त उत्पादन :–** बिजली की कमी, कोयले की कमी, तेल की कमी इत्यादि के कारण सीमेन्ट उत्पादन में कमी आ गयी। सीमेन्ट की मांग 10 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। मांग की आपूर्ति के लिये सरकार ने छोटे संयंत्र स्थापित की अनुमति दी। छोटे संयंत्र का लाभ यह है कि कम पूंजी लागत पर ही इन संयंत्रों की स्थापना की जा सकती है और इन संयंत्रों को सुदूर क्षेत्रों में स्थापित किया जा सकता है।

(2) **ऊँचे दाम और अधिक (कठोर) कीमतें :–** उद्योग में लगने वाली सामग्री के ऊँचे दाम एवं सरकारी नीतियों के कारण सीमेन्ट उद्योग बढ़ती कीमतों की समस्या का सामना कर रहा है। अच्छे गुणवत्ता वाले कच्चेमाल की आपूर्ति में कमी है, कच्चेमाल की ढुलाई के लिये वैगन की भी कमी है।

(3) **मूल्य नियंत्रण और दोहरा मूल्य निर्धारण :–**

सीमेन्ट के नियंत्रित मूल्य से कंपनी हानि में चली गयी। सीमेन्ट उद्योग क्षमता के कम दोहन और पुरानी तकनीक जो सीमेन्ट उत्पादन में प्रयोग में ली जा रही है, उसकी समस्या से गुजर रहा है।

(4) **अवास्तविक वितरण नीतियाँ** :– सीमेन्ट उद्योग में परमिट वितरण की सरकारी नीतियाँ है। बाद में भारत सरकार ने आंशिक विनियंत्रण की योजना का एवं सीमेन्ट की दोहरी मूल्य नियंत्रण की नीति का प्रादुर्भाव किया। लेवी सीमेंट सरकार और छोटे मकान निर्माताओं के लिये था और निःशुल्क खुला बाजार सीमेन्ट सामान्य उपभोक्ताओं के लिये था। उच्च मुक्त बिक्री कीमतें, लागत में वृद्धि कवर करने के लिये होती थी।

(5) **बिजली की कमी और कायेले की खराब गुणवत्ता होना** :– सीमेन्ट के लिये कोयला एक बहुत महत्वपूर्ण तत्व है और इसके लिये आवश्यक है कि कायेलो अच्छी गुणवत्ता वाला हो । यदि अच्छी गुणवत्ता का कोयला प्रयोग में लाया जायेगा तो सीमेन्ट निर्माण की लागत कम होगी और बिजली की खपत भी कम होगी। यह भी अनियंत्रित समस्याएं सीमेंट मिल को चलाने में बाधक है और समयानुसार और स्थिति अनुसार सीमेन्ट निर्माण में रोक लग जाती है।

12.10 कागज उद्योग

कागज उद्योग 1925 से संरक्षित नियमों के अन्तर्गत चलाया जा रहा है। कागज उद्योग को भलीभांति चलाने के लिये कच्चामाल भारत के जंगलों से प्राप्त हो रहा है। 1960–61 में कागज उद्योग का उत्पादन 35 लाख टन का जो 2001–02 में बढ़कर 29 लाख टन हो गया और 1961 से 2001–02 के बीच समाचार पत्रों का उत्पादन 0.4 लाख टन से बढ़कर 6.5 लाख टन हो गया।

1970 के शुरूआती दौर में सरकार के कम परिपक्वता अवधि के कारण सस्ती पुरानी मशीनों के उपयोग के कारण कागज के छोटे–छोटे उद्योग मिलों की भूमिका को प्रोत्साहित करना प्रारंभ किया, और इस तरह कागज की छोटी इकाईयों, कागज संकट से उबर गयी। किन्तु कुछ हद तक, छोटी इकाईयाँ अलाभकर थीं, कीमतें बहुत अधिक थीं और बहुत खरबा गुणवत्ता लिये थीं। इन छोटी इकाईयों को सुरक्षित रखने के लिये सरकार ने, समय–समय पर बहुत सी उत्पाद संबंधी रियायतें दीं।
कागज उद्योग की समस्याएं :– 1973–74 के दौरान कीमतों में वृद्धि ने देश में कागज संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी । उद्योग की कार्यशैली असंतोषजनक थी और उद्योग निम्नलिखित समस्याओं का सामना कर रहा था–

1. उत्पादन की ऊँची कीमत।
2. कच्चा माल की समस्या ।
3. अधिक क्षमता और कम क्षमता का दोहन
4. कागज की छोटी इकाईयों में बीमारी
5. कम हाशिया (मार्जिन)
6. बाजार में ऊँची प्रतिस्पर्धा
7. भारी कीमत पर निवेश और वापिसी की कम दर
8. बिजली की कमी

12.11 सारांश

बड़े पैमाने के उद्योग वह आधारभूत ढाँचा हैं और बड़ी मात्रा में पूंजी लगी है। प्रत्येक देश को देश के विकास के लिये बड़े–बड़े उद्योगों की आवश्कयता होती है। बड़े–बड़े उद्योग अर्थव्यवस्था में सुविधाओं, उत्पादकता में सुधार करते हैं, उच्च तकनीक का इस्तेमाल करते हैं और गुणवत्ता वाले उत्पाद का उत्पादन करते हैं। बड़े उद्योगों की मुख्य समस्या है आर्थिक शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना। कुछ बड़े–बड़े उद्योग सरकारी नीति के कारण, बिजली की कमी के कारण, यातायात श्रमिक झगड़े, और कच्चा माल की कमी के कारण बीमार होते जा रहे है। इस इकाई में, छः बड़े औद्योगिक इकाईयों को देखा गया–लोहा और इस्पात उद्योग, कपास और सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, सीमेन्ट उद्योग और कागज उद्योग ।

.12.12 शब्दावली

बीमारी :– औद्योगिक इकाइयों की अलाभ कर कार्य शैली बीमारी कहलाती है।

12.13 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. ––––––––––––– से तात्पर्य उन उद्योगों से है जिन्हें बड़े आधारभूत ढाँचे, मानवशक्ति और बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है।
2. टाटा लोहा एवं इस्पात कंपनी की स्थापना ––––––– में हुई थी।

3 ––––––– उद्योग देश में दूसरा सबसे बड़ा कृषि आधारित उद्योग है।

4 भारत में जूट उद्योग का प्रारंभ वर्ष ––––––– में हुआ ।

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 बड़े उद्योग 2. 1907 3. चीनी उद्योग 4. 1859

12.15 स्वपरख प्रश्न

1. बड़े पैमाने के उद्योगों से आप क्या समझते हैं ? बड़े उद्योगों की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. बड़े उद्योगों के लाभों की व्याख्या कीजिए।
3 बड़े उद्योग देश के विकास में किस प्राकर सहयोग करते हैं ?
4 बड़े उद्योगों में बीमारी पर विस्तृत लेख लिखिए।
5 लोहा एवं इस्पताल उद्योग पर विचार वयक्त कीजिए।
6 भारत में सीमेन्ट उद्योग किन समस्याओं का सामना कर रहा है।
7. भारत में चीनी उद्योग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
8 भारतीय अर्थव्यवस्था में बड़े उद्योगों से होने वाले लाभों की व्याख्या कीजिए।

12.16 संदर्भ पुस्तकें

1. Report of the working group of Central Trade Unions, (1978), p. 25.
2. Ruddat Datt and KPM Sundharam, "Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
3. Suresh Bedi (2008), "Business Environment," Excel Books, New Delhi.
4. Justin Paul (2008), "Business Environment," Tata McGraw Hill.

——

इकाई 13 व्यापार के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 एकल स्वामित्व
13.3 संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार
13.4 साझेदारी
13.5 संयुक्त उपक्रम
13.6 सहकारी समिति
13.7 व्यापारिक संगठन के प्रकार का विकल्प
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 बोध प्रश्न
13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.12 स्वपरख प्रश्न
13.13 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- एकल स्वामित्व के अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठनों के प्रकारों की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न व्यापारों से होने वाले लाभ एवं हानियों की व्याख्या कर सकें।
- उपयुक्त व्यापारिक संगठन के चुनाव करने के सुनिश्चित कारकों की व्याख्या कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

यदि कोई व्यक्ति नया व्यापार प्रारंभ करने का इच्छुक है या पहले से ही प्रारंभ हो चुके व्यापार का विस्तार करने की योजना में है तब एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार का व्यापारिक संगठन होना चाहिये। व्यापारिक संगठन के प्रकार का विकल्प बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिये, उपयुक्त व्यापार की आवश्यकता है। कोई व्यापार उपयुक्त है या नहीं यह व्यापार के प्रकार से होने वाले लाभ और हानि का आकलन करने के बाद विनिश्चत हो जाता है । विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठन है, जैसे, एकल स्वामित्व, संयुक्त हिन्दू परिवार व्यापार, साझेदारी, सहकारी समितियाँ और संयुक्त उपक्रम । किस तरह का व्यावसायिक संगठन उपयुक्त रहेगा, विभिन्न कारकों जैसे खतरा वहन करने की क्षमता, वित्तीय स्थिति, शैक्षणिक स्तर, निर्णय लेने की काबिलियत, ज्ञान, अनुभव इत्यादि पर निर्भर करता है। यह इकाई विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के प्रकारों की व्याख्या करती है, उससे होने वाले लाभ और हानियों के बारे में बताएगी, और विशिष्ट व्यापार के लिये उनकी उपयुक्तता के बारे में भी बताएगी।

13.2 एकल स्वामित्व

एकल स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का सबसे पुराना प्रकार है। जब वस्तु और सेवाओं का विनिमय प्रारंभ हुआ तब यह अस्तित्व में आया। सामान्यतः जब आप पैन, चार्ट, रजिस्टर, सब्जियां,

फल और रोजमर्रा की अन्य वस्तुऐं खरीदने जाते हैं तो आप एकल स्वामित्व के साथ बातचीत करते हैं। इस तरह के व्यावसायिक संगठन को व्यक्तिगत स्वामित्व या एकल स्वामित्व के नाम से जाना जाता है। छोटे व्यापारों में एकल स्वामित्व ही ऐसा व्यापार है जो सबसे उपयुक्त है और आज के युग में इसकी उपयोगिता भी है। एकल स्वामित्व एक ऐसा व्यापारिक संगठन है जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वामित्व, प्रबंधित और नियंत्रित किया जाता है, सारे खतरे अकेले ही वहन करता है और इस व्यापार से होने वाले समस्त लाभ भी स्वयं रखता है। वह व्यक्ति जो यह व्यापार चलाता है उसे एकल स्वामी या एकल व्यवसायी कहते है। एकल व्यापारी को अपना व्यपार चलाने की असीमित स्वतंत्रता प्राप्त होती है। एकल व्यापारी – अकेले ही व्यापार चलाता है और यह व्यावसायिक संगठनों का सबसे सरल और सबसे पुराना व्यापारिक संगठन है। एल.एच. देने के अनुसार ''एकल स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का एक प्रकार है जिसके सर्वोच्च पर एक व्यक्ति ही रहता है, वही उत्तरदायी होता है, वही कार्यों को निर्देशित करता है और वही अकेले असफलता के खतरे को झेलता है।

एकल स्वामित्व की विशेषताएं :– एकल स्वामित्व केवल एक व्यक्ति को प्राप्त होता है । पूरा व्यापार उसकी जोखिम पर ही चलता है:–

1 **विक्रय स्वामित्व** :–एकल स्वामित्व पर केवल एक ही व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होता है। पूरा व्यापार उसी के जोखिम पर चलता है।

2. **अलग व्यावसायिक अस्तित्व नहीं:–** कानूनी दृष्टि से व्यापार के स्वामी और उसके व्यापार में कोई अन्तर नहीं है। दूसरे शब्दों में व्यापार का स्वामी से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता है।

3 **असीमित दायित्वः–** एकल स्वामित्व का दायित्व असीमित है । असीमित दायित्व से तात्पर्य है ऋण देने वालों के पास एकल स्वामी की सम्पत्ति से बकाया प्राप्त करने का अधिकार होता है। यदि व्यापारिक संपदा अपर्याप्त है ।

4 **रचना (बनाना) और समाप्ति (बंद करना)** :– एकल स्वामित्व व्यापार को चलाना या बंद करना बहुत आसान है, क्योंकि इस तरह के व्यापार को प्रारंभ करने या बंद करने के लिये कोई कानूनी औपचारिकता नहीं है।

5 **एक व्यक्ति का नियंत्रण :–** व्यापार चलाने का और उस संबंध में सारे निर्णय लेने का अधिकार इसी एकल स्वामी के हाथ में होते हैं। वह अकेले ही व्यापार के समस्त निर्णयों को लागू कर सकता है।

6 **व्यापारिक निरंतरता की कमी :–** शारीरिक समस्याएं मृत्यु, पारिवारिक समसयाएं, दिवालियापन आदि व्यापार पर विपरीत प्रभाव डालता है और यहाँ तक कि व्यापार बंद करने तक की नौबत आ जाती है।

एकल स्वामित्व के लाभ :– एकल स्वामित्व के बहुत सारे लाभ हैं । उनमें से कुछ लाभ इस प्रकार है:–

(1) **व्यापारिक संगठन का सरल रूप** :– एकल स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का सबसे सरलतम रूप है। इस व्यवसाय को प्रारंभ करने एवं बंद करने हेतु कोई विधिक औपचारिकता नहीं है। यहां तक कि एकल स्वामित्व व्यापार के लिये औपचारिक संगठन की सांविधिकता की भी आवश्यकता नहीं है।

(2) **त्वरित निर्णयः–** एकल स्वामित्व सारे निर्णय लेने के लिये स्वतंत्र है, और उसके द्वारा लिये गये निर्णयों में कोई हस्तक्षेप, नहीं कर सकता। वह तुंरत निर्णय लेकर बिना देरी किये उनको लागू कर सकता है।

(3) **लचीलापन :–** एकल स्वामित्व वाले बाजार की मांग के अनुरूप अपना व्यवसाय बदलने के लिये स्वतंत्र हैं।

(4) **गोपनीयता** :– एकल स्वामित्व वाली फर्म में गोपनीयता सर्वोच्च होती है क्योंकि लेखा या अन्य किसी भौतिक तथ्यों को बताने की आवयकता नहीं होती है।

(5) **कर लाभ** :– अन्य व्यापारों की तुलना में, एकल स्वामित्व वाली फर्मों को करों से लाभ मिलता है। उदाहरण के लिये, किसी भी एकल स्वामित्व वाली फर्म पर केवल एक बार कर लगता है जबकि निगमित आय पर दो बार कर लगाया जाता है।

(6) **प्रत्यक्ष प्रेरणा :–** इस प्रकार के व्यापारिक संगठन में स्वामी ही सारे लाभ और हानि वहन करता है। अतः प्रयास और परिणाम के बीच सीधा संबंध है, जो स्वामी को कठिन परिश्रम करने की प्रेरणा देता है।

एकल स्वामित्व से होने वाली हानियाँः– इस प्रकार के स्वामित्व वाली कंपनियाँ निम्नलिखित हानियों से गुजरती है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण हानियाँ इस प्रकार हैः–

(1) **सीमित संसाधन** :– एकल स्वामी केवल अपनी राशि, अपने रिश्तेदारों और मित्रों से लिये हुये उधार पर ही विश्वास करता है। इस तरह निधि जुटाने का क्षेत्र बहुत सीमित होता है और जिसके परिणाम स्वरूप व्यापार के विस्तार करने में परेशानी होती है।

(2) **सीमित प्रबंधकीय कौशल**ः– एकल स्वामित्व एक व्यक्ति के शो के रूप में होता है। एक व्यक्ति किसी एक या क्षेत्र का ही विशेषज्ञ हो सकता है किन्तु प्रबंधन के सभी क्षेत्रों का विशेषज्ञ नहीं हो सकता । पर्याप्त ज्ञान के अभाव मे, उसके द्वारा लिये गये निर्णय असंतुलित हो सकते हैं।

(3) **असीमित दायित्व**ः– एकल स्वामित्व के पास असीमित दायित्व हैं जिसका तात्पर्य है, हानि होने की स्थिति में, व्यापार के उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये स्वामी की निजी संपत्ति का भी उपयोग किया जा सकता है।

(4) **व्यवसाय से संबंधित सीमित जीवन** :– कानून की दृष्टि में स्वामित्व और स्ववामी दोनों एक ही हैं। मृत्यु, दिवालियापन, बीमारी का असर व्यापार पर पड़ता है और व्यापार बंद तक हो सकता है।

(5) **सीमित अवसरः–** क्रियान्वयन का पैमाना सामान्य होता है, एकल स्वामी व्यापार के समस्त अवसरों का लाभ नहीं ले सकता। क्रियान्वयन के छोटे पैमाने के कारण स्वामी अर्थव्यवस्था के बड़े पैमाने के उत्पादनों का लाभ नहीं पा सकते ।

एकमात्र स्वामित्व की उपयुक्तता :– एकल स्वामित्व के बहुत सारे लाभ एवं हानियाँ है। इस प्रकार के व्यापार निम्नलिखित मामलों के लिये उपयुक्त हो सकते हैं :–

(1) छोटे व्यापार जिन्हें कम पूंजी और कम प्रबंधकीय कौशल की आवश्यकता होती है।

(2) उन व्यापारों में, उपभोक्ताओं के ऊपर व्यक्तिगत ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

(3) अमानवीकृत सामानों जैसे कढ़ाई या कलात्मक चीजों के उत्पादन के मामलों में।

(4) स्थानीय बाजारों की माँगों को पूरा करने में ।

13.3 संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार

संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार एक विशिष्ट प्रकार का व्यापारिक संगठन है जो केवल भारत में ही पाया जाता है। संयुक्त हिन्दू परिवार का व्यापार परिवार के सदस्यों द्वारा ही चलाया

जाता है और उनहें ही स्वामित्व प्राप्त होता है। हिन्दू विधि के प्रभाव में आने से यह अस्तित्व में आया और परिवार का मुखिया जिसे 'कर्ता' कहा जाता है, इस व्यापार को चलाता है। परिवार के सभी सदस्यों को अपने पूर्वजों की सम्पत्ति पर स्वामित्व के समान अधिकार प्राप्त होते हैं और उन्हें सह उत्तराधिकारी के नाम से जाना जाता है। पारिवारिक व्यापार में सदस्यता को रखने के लिये दो व्यवस्थाएं है– दयाभाग शाखा और मिताक्षरा शाखा । दयाभाग शाखा के प्रावधान पश्चिम बंगाल में लागू होते है, और यह पुरूष और स्त्री दोंनो सदस्यों को सह–उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता देती हैं मिताक्षरा शाखा पश्चिम बंगाल को छोड़कर पूरे भारत में प्रभावी है जिसके अन्तर्गत व्यापार में केवल पुरूष सदस्य ही सह–उत्तरदायी हो सकते है। परिवार में नये सदस्य के जन्म होने पर नवजात अपने आप ही व्यापार का अधिकारिक स्वामी बन जाता है।

संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार की मुख्य विशेषताएं :–

(1) **संरचना (निर्माण)** :– संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार के गठन के लिये कम से कम दो सदस्यों का होना अनिवार्य है और पैतृक संपत्ति उन्हें विरासत में मिली हो। परिवार के व्यापार की सदस्यता समस्या जन्म द्वारा प्राप्त होती है और आयु के आधार पर किसी सदस्य की सदस्यता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(2) **उत्तरदायित्व :–** सभी सदस्यों का उत्तरदायित्व उनको व्यापार में सह–उत्तराधिकारी के रूप में मिलने वाली सम्पत्ति के हिस्से तक सीमित होता है किन्तु कर्ता के असीमित दायित्व हैं।

(3) **नियंत्रण** :– व्यापार पर नियंत्रण कर्ता के हाथ में होता है। कर्ता सारे निर्णय लेता है और उसके द्वारा लिये गये निर्णय अन्य सदस्यों पर बाध्यकारी होते हैं।

(4) **निरन्तरता** :– कर्ता की मृत्यु के बाद भी व्यापार निरंतर चलता रहता है क्योंकि अगला सबसे बड़ा सदस्यकर्ता की स्थिति में आ जाता है।

(5) **अस्थिरर हिस्सा**:– किसी सदस्य की मृत्यु के कारण या किसी नये सदस्य के जन्म के कारण परिवार की संपत्ति और व्यवसाय में प्रत्येक सदस्य के हित का हिस्सा बदलता रहता है।

संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार से होने वाले लाभ :– संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार के निम्नलिखित लाभ है :–

(1) **प्रभावशील नियंत्रण :–** परिवार का मुखिया 'कर्ता' को निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार है जिससे सदस्यों के आपसी संघर्ष से बचा जाता है । परिवार के अन्य सदस्यों को कर्ता के निर्णय में दखल देने का कोई अधिकार नहीं होता है जिससे कर्ता शीघ्र निर्णय कर पाता है।`

(2) **व्यापार में निरन्तरता :–** कर्ता की मृत्यु का व्यापार पर कोई असर नहीं पड़ता है क्योंकि अगला सबसे बड़ा सदस्य कर्ता की स्थिति में आ जाता है।

(3) **सदस्यों का सीमित दायित्वः–** समस्त सह उत्तराधिकारियों का दायित्व उनके व्यापार में मिलने वाले हिस्से तक सीमित होता है अतः उनकी जोखिम भी सुनिश्चित होता है। किन्तु कर्ता का उत्तरदायित्व असीमित होता है।

(4) **सहयोग और निष्ठा (वफादारी) :–** व्यापार की समृद्धि परिवार की उपलब्धियायों से संबंधित है जिससे सदस्यों के मध्य सहयोग बढ़ता है और सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति निष्ठावान होते हैं।

संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार से होने वाली हानियाँ :–

निम्नलिखित हैः–

(1) **सीमित संसाधन :–** संयुक्त हिन्दु परिवार का व्यापार सीमित संसाधनों की समस्या का सामना करता है क्योंकि यह मुख्य रूप से पैतृक संपत्ति पर आधारित होता है। संसाधनों की कमी व्यापार के विस्तार में रोक लगा सकती है।

(2) **कर्ता का असीमित दायित्व :–** परिवार के कर्ता का असीमित दायित्व होना सबसे बड़ी हानि है। व्यापार हेतु प्राप्त ऋणों की पूर्ति के लिये उसकी व्यक्तिगत संपदा का भी उपयोग किया जा सकता है अतः वह जोखिम लेने से बचता है।

(3) **कर्ता का प्रभुत्व :–** कर्ता व्यापार का प्रबंधन करता है जो कि परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा कभी कभी स्वीकार्य नहीं होता है। इस कारण से कभी परिवारों का विघटन भी हो जाता है।

(4) **सीमित प्रबंधकीय कौशल** :– आवश्यक नहीं है कि कर्ता प्रबंधन के समस्त क्षेत्रों में विशेषज्ञ हो। कुछ क्षेत्रों में उसका सीमित ज्ञान के कारण लाभ में कमी आ सकती है या यहां तक कि हानि भी हो सकती है

13.4 साझेदारी

एकल स्वामित्व की सीमाओं जैसी सीमित वित्तीय संसाधन, सीमित प्रबंधकीय कौशल और असीमित दायित्वों ने नये प्रकार के व्यावसायिक संगठन साझेदारी को जन्म दिया। जब दो या दो से अधिक लोग मिलकर एक करार के अन्तर्गत मिलकर व्यवसाय करने के इच्छुक होते हैं और व्यापार में हुये लाभ को आपस में बांटने के लिये तैयार होते हैं, उसे साझेदारी कहा जाता है। साझेदारी की बहुत सी परिभाषाएं दी गयी हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैः–

भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 4 के अनुसार – ''भागीदारी' उन सभी को या किसी के लिये अभिनय द्वारा किये गये व्यापार के लाभ को सांझा करने के लिये सहमत हो गये हैं, जो व्यक्तियों के बीच संबंध है, ने एक दूसरे के साथ साझेदारी में प्रवेश किया है जो व्यक्ति को व्यक्त्गित रूप से ''भागीदारों और सामूहिक रूप से एक फर्म और उनके व्यापार 'फर्म का नाम' कहा जाता है पर किया जाता है।'' भारतीय संवदि अधिनियम के अनुसार, भागीदारी उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है, जो अपनी संपत्ति, श्रम या कौशल व्यापार में लगाने के लिये सहमत हो जाते हैं ओर उससे प्राप्त होने वाले लाभ की हिस्सेदारी में भी सहमत हो जाते है।

सी.एच.हावे के अनुसार– ''भागीदारी वह संबंध है जो व्यक्तियों को संविदा करने हेतु सक्षम बनाती है, जो युक्तियुक्त तरीके से व्यापार करने के इच्छुक हैं और निजी लाभ के लिये भी सामान्य विचार रखते हैं। विभिन्न प्रकार के भागीदार है जैसे सक्रिय भागीदार, सोता हुआ या निष्क्रिय भागीदा और जबर्दस्ती का भागीदार या विबन्धन द्वारा भागीदारी।

भागीदारी की विशेषताएँ :– ऊपर दी गयी परिभाषाओं के आधार पर यह बिन्दु निकल कर आया कि साझेदारी व्यावसायिक संगठन की निम्नलिखित विशेषताएं हैः–

(1) **दो या दो से अधिक व्यक्ति** :– साझेदारी के लिये दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है । बैकिंग के मामले में अधिकतम भागीदारों की संख्या 10 है और किसी अन्य व्यवसाय के मामले में भागीदारों की संख्या 20 है।

(2) **करार** :– भागीदारों के संबंध संविदा से उत्पन्न होते हैं। अतः नाबालिग, दिवालिये और अन्य व्यक्ति एक वैध संविदा निर्मित करने के लिये असमर्थ हैं और इस तरह साझेदारी करार करने में भी असमर्थ होते हैं।

(3) **विधिपूर्ण व्यापार** :– विधिपूर्ण व्यापार होना चाहिये, संयुक्त स्वामित्व में संपत्ति का होना ही साझेदारी का निर्माण नहीं कर सकता।

(4) **लाभ में हिस्सेदारी :–** भागीदारों के मध्य लाभ के हिस्से का समझौता होना चाहिये। यह भी महत्वपूर्ण है कि लाभ की हिस्सेदारी भागीदारी का अंतिम साक्ष्य नहीं है।

(5) **असीमित दायित्व** :– सभी भागीदारों का असीमित दायित्व होता है। जिसका तात्पर्य है कि फर्म दायित्वों के लिये फर्म की संपदा उपयुक्त नहीं है, भागीदारी की निजी संपत्ति का भी उपयोग किया जा सकता है।

(6) **जोखिम उठाना:–** व्यापार में लगे हुये भागीदार जोखिम उठाते हैं। जोखिम का परिणाम लाभ के रूप में प्राप्त होता है।

(7) **निर्णय लेना और नियंत्रण** :– दिन प्रतिदिन की गतिविधियों पर भागीदार निर्णय लेते हैं और नियंत्रण रखते हैं।

(8) **निरन्तरता :–** मृत्यु, सेवानिवृत्ति, किसी भी भागीदार के दिवालिया होने पर इस प्रकार के व्यावसायिक संगठन की निरंतरता में कमी आती है, यहाँ तक कि व्यापार का अंत तक हो जाता है।

साझेदारी फर्म के लाभ:– साझेदारी फर्म के निम्नलिखित लाभ है:–

1. **आसान गठन और बंद होना:–** साझेदारी फर्म बहुत आसानी से निर्मित की जा सकती है, बस भागीदारों के मध्य समझौतों के द्वारा ही साझेदारी फर्म बन जाती है, इस तरह की फर्म का पंजीकरण आवश्यक नहीं है। इसी तरह फर्म आसानी से बंद भी की जा सकती है।
2. **अधिक पूंजी की उपलब्धता** :– साझेदारी के मामले में भागीदारों द्वारा राशि का सहयोग प्राप्त होता है जिसके कारण एकल स्वामित्व की तुलना में साझेदारी फर्म को अधिक मात्रा में राशि प्राप्त हो जाती है।
3. **नमनीयता** :– फर्म सभी भागीदारों की सहमति से किसी भी प्रकार का व्यवसाय कर सकती है। राशि, लाभ अनुपात और अन्य शर्तें आसानी से बदली जा सकती है।
4. **गोपनीयता** :– साझेदारी फर्म में गोपनीयता ऊंचे दर्जे की रहती है क्योंकि इसके लेखा जोखा का प्रकाशन किया जाए यह आवश्यक नहीं है।
5. **अधिक प्रबंधकीय कौशल** :– साझेदारी फर्म में एक से अधिक मालिक होते है। अतः सभी भागीदारों का कौशल मिल कर बहुत हो जाता है।

(6) **जोखिम उठाना:–** सभी भागीदारों द्वारा बराबरी से हानि वहन की जाती है। अतः प्रत्येक भागीदारी के मामले में हानि का हिस्सा एकल व्यवसायी की तुलना में कम होगा।

साझेदारी फर्म से होने वाले लाभ:– साझेदारी फर्म से निम्नलिखित हानियाँ होती है :–

1 **असीमित दायित्व** :– भागीदारों का असीमित दायित्व होता है जो कि साझेदारी फर्म के गठन को हतोत्साहित करता है।

2. **सीमित संसाधन** :– भागीदारों की संख्या पर प्रतिबंध है जिसकी वज़ह से उतनी राशि नहीं जुटा पाते है जितनी कि एक कम्पनी जुटा सकती है।

3 **भागीदारों के मध्य संघर्ष:–** व्यापार के प्रबंधन में सारे भागीदार भाग लेते हैं । किन्तु उनके कौशल में विभिन्नता होने के कारण उनमें टकराव की स्थिति बनती है।

4. **निरंतरता की कमीः–** मृत्य सेवा–निवृत्ति और किसी भागीदार के दिवालिया होने पर साझेदारी फर्म का अन्त हो जाता है।

5. **निर्णय लेने में विलंब** :– समस्त नीतिगत निर्णय लेने में सभी भागीदारों की सहमति आवश्यक होती है जिससे निर्णय लेने में विलंब होता है।

6 **हित का अहस्तांतरणीय होनाः–** एक भागीदार अपना हित फर्म में अंतरित नहीं कर सकता है जब तक कि सभी भागीदारों की सहमति प्राप्त न हो जाए। जिसकी वजह से लोग भागीदारी फर्म में निवेश करने हेतु हतोत्साहित होते हैं।

7 **सार्वजनिक विश्वास में कमीः–** साझेदारी फर्म को विधिक रूप से वित्तीय रिपोर्ट का प्रकाशन करना अनिवार्य नहीं है जिससे साझेदारी फर्म में सार्वजनिक विश्वास का स्तर कम हो जाता है।

13.5 संयुक्त उपक्रम

एकल स्वामित्व वाली फर्म और साझेदारी फर्म दोनों में ही संसाधन और संगठन का अस्तित्व सीमित थे और दायित्व असीमित थे। विकासशील विश्व को एक विधिक स्वामित्व की आवश्यकता है जिसमें स्वामियों के सीमित दायित्व हों और व्यापार शाश्वत रूप से चलता रहे। यह उसी प्रकार का संगठन है जो दोनों ही चीजें प्रदान करता है। संयुक्त उपक्रम उन व्यक्तियों का निगमित समूह है जो समान स्टॉक के लिये पैसे का योगदान करता है, कंपनी की पूंजी के रूप में जाना जाता है। कंपनी की पूंजी अंशों या स्टॉक की निश्चित राशि में विभाजित होती है और प्रत्येक व्यक्ति कुछ अंश खरीदता है। अतः कंपनी की पूंजी अंशधारकों के बीच संयुक्त रूप से विद्यमान रहती है, इसीलिये इसे संयुक्त स्टॉक कंपनी कहा जाता है। इसके अंश हस्तांतरणीय हैं और इस कम्पनी के अस्तित्व पर लोगों के आने या छोड़कर जाने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 ने संयुक्त स्टाक कंपनी की परिभाषा ऐसी मर्यादित कंपनी के रूप में दी है कंपनी के रूप में संयुक्त स्टॉक कंपनी, स्थायी रूप से भुगतान की गयी या निश्चित राशि का नाममात्र का अंश निश्चित राशि के अंशों में भी विभाजित है, स्टॉक के रूप में स्थित और हस्तांतरणीय तथा इसके सदस्यों के सिद्धान्तों पर गठित एवं अधिक अंश या स्टॉक धारक को, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं, कंपनी कहते है।''

एच.एल. होने के अनुसार ''संयुक्त स्टॉक कंपनी, लाभ लेने के लिये वयक्तियों का सवैच्छिक संघ है, जिसकी पूंजी हस्तांतरणीय अंशों में विभाजित है, जिसकी शर्त स्वामित्व है।''

संयुक्त स्टॉक कंपनी की विशेषताएँः– संयुक्त स्टॉक कंपनी की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

(1) **कृत्रिम विधिक व्यक्ति** :– कंपनी विधि द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होती है । यद्यपि कंपनी का कोई शरीर नहीं होता, आत्मा नहीं होती। किन्तु व्यक्ति की तरह, यह अपने नाम से संविदा कर सकती है। यह वाद ला सककती है और इसके नाम से भी वाद लाया जा सकता है।

(2) **कानूनी अस्तित्व** :–कंपनी का एक अलग विधिक अस्तित्व होता है जिसका तात्पर्य है कंपनी के अंशधारी कंपनी के साथ संविदा कर सकते हैं।

(3) **कंपनी का गठनः–** एक कंपनी का गठन, समय लेने वाला, मंहगा और जटिल है। भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 के तहत कंपनी का पंजीकरण आवश्यक होता है।

(4) **समान मुहर** :– जैसा कि कंपनी एक कृत्रिम व्यक्ति है और दस्तावेजों पर हस्ताक्षर नहीं कर सकती है। अतः यह अपने नाम की एक समान मुहर (सील) का उपयोग करती है।

(5) **शाश्वत अस्तित्व** :– कंपनी के निदेशकों की मृत्यु, दिवालियापन या सेवानिवृत्ति का कंपनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह कहा जाता है कि, ''सदस्य तो आते है और जाते हैं, किन्तु कंपनी चलती रहती है।''

(6) **सीमित दायित्व** :– कंपनी के सदस्यों का दायित्व उनकी अंश राशि तक सीमित है।

(7) **अंशों का हस्तान्तरणीयता :–** सर्वजनिक कंपनी के सदस्य अन्य अंशधारकों की सहमति के बिना भी अपने अशं बेच सकते है।

(8) **प्रबंधन से स्वामित्व का विभाजन** :– अंशधारक पूरे देश में बिखरे रहते हैं अतः निदेशकों को अधिकार देते हैं कि वे कंपनी के मामलों की देखरेख करें। अतः स्वामित्व प्रबधंन से अलग रहता है।

(9) सदस्यों की संख्या :– सार्वजनिक मर्यादित कंपनी के मामले में, न्यूनतम सदस्य संख्या 7 है और अधितम सीमा नहीं है। किन्तु निजी मर्यादित कंपनी के मामले में न्यूनतम सदसय संख्या दो और अधिकतम सदस्य संख्या पचास है।

निजी और सार्वजनिक कंपनी :–

निजी कंपनी :– कंपनी अधिनियम की धारा 3 (i) (ii) के अन्तर्गत, एक निजी कंपनी को कंपनी के रूप में परिभाषित किया गया है जो अपने संघ के अनुच्छेदों के द्वाराः– –

(अ) अंशों को हस्तांतरित करने का अधिकार प्रतिबंधित रखती है, यदि कोई हो,

(ब) अपने सदस्यों की संख्या को पचास तक सीमित करना, और

(स) अंशों या कंपनी के डिबेंचरों की सदस्यता लेने के लिये जनता के किसी भी आमंत्रण पर निषेध ।

सार्वजनिक कंपनी:– कंपनी अधिनियम की धारा 3 (i) (ii) के अन्तर्गत, जो कंपनी निजी कंपनी नहीं है सार्वजनिक कंपनी कहलाता है। सार्वजनिक कंपनी वह है जो संघ के अनुच्छेदों द्वारा अंशों के अन्तरण पर सदस्यों की अधिकतम संख्या पर प्रतिबंध नहीं लगाती है और यह अपने अशं डिबेंचर और सार्वजनिक जमा पूंजी की सदस्यता लेने हेतु आमंत्रण दे सकती है। निजी और सार्वजनिक कंपनी के मध्य मुख्य अन्तर इस प्रकार हैः–

निजी कंपनी और सार्वजनिक कंपनी के मध्य अन्तर

अन्तर का आधार	निजी कम्पनी	सार्वजनिक कम्पनी
सदस्य	न्यूनतम सदस्य संख्या 2 और अधिकतम पचास है।	न्यूनतम सदस्य संख्या सात और अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है।
निदेशक	न्यूनतम निदेशकों की आवश्यकता दो है	न्यूनतम निदेशकों की संख्या की आवश्यकता तीन है।
विवरण पत्रिका	'विवरण पत्रिका के बदले में कथन या विवरण पत्रिका भरना, रजिस्ट्रार या कंपनी के साथ भरना आवश्यक नहीं है।	कंपनी के रजिस्ट्रार के साथ विवरण पत्रिका के बदले में कथन या विवरण पत्रिका भरना।
अंशों का आबंटन	जितना अंशदान देने के लिये आवेदन दिया है वह देने से पहले भी अंशो का आवंटन कर सकती है	न्यूनतम अंशदान के बिना अंशों का आवबंटन नहीं कर सकती ।
व्यापार एवं आरंभ	अनिगमन के तुरनत बाद व्यापार	रजिस्ट्रार के द्वारा प्रमाण पत्र प्राप्त

	प्रारंभ कर सकती है।	किये बिना व्यापार प्रारंभ नही कर सकती।
अंशों का अन्तरण	अनुच्छेदों द्वारा अंशों का अन्तरण प्रतिबंधित है।	स्वतंत्र रूप से अंश अन्तरण योग्य है।
तुलन पत्र (बैलेंसशीट) प्रस्तुत करना	रजिस्ट्रार के साथ निदेशकों की सहमति आवश्यकता नहीं है।	रजिस्ट्रार के साथ निदेशकों की सहमति आवश्यक है।
साविधिक मीटिंग	न ही किसी सांविधिक मीटिंग की आवश्यकता है और न ही रजिस्ट्रार को कोई रिपोर्ट भेजने की आवश्यकता है।	सांविधिक मीटिंग करना अनिवार्य है और फिर रजिस्ट्रार को रिपोर्ट भेजना भी अनिवार्य है।

निजी कंपनी के विशेषाधिकार :– निजी कंपनी पर प्रतिबंध लगाने के बावजूद इसने कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ विशेषाधिकारों का लाभ उठाया। इसलिये बहुत से धनी उद्यमियों ने निजी कंपनी खोलने को वरीयता दी। निजी कंपनियों को निम्नलिखित विशेषाधिकार दिये :– निजी कंपनी के गठन के लिये केवल दो सदस्य आवश्यक हैं।

(1) निजी कंपनी में दो निदेशक होने आवश्यक है।

(2) इन कंपनियों को कंपनी रजिस्ट्रार के साथ विवरण पत्रिका के स्थान पर विवरण पत्रिका या बयान दर्ज करने की आवश्कयता नहीं होती है।

(3) यह निगमन के तुरन्त बाद अपना व्यवसाय शुरू कर सकती है।

(4) कार्य करने के लिये अपनी सहमति देना निजी कंपनियों के निदेशकों के लिये अनिवार्य नहीं है और इसी तरह उनकी नियुक्ति के पहले उनके योग्य अंशों को लेना भी आवश्यक नहीं हैं

(5) निजी कंपनी के लाभ–हानि का लेखा जोखा सार्वजनिक निरीक्षण के लिये खुला नहीं है।

(6) सांविधिक मीटिंग करना आवश्यक नहीं है और न ही सांविधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

संयुक्त स्टॉक कंपनी के लाभ :– संयुक्त स्टॉक कंपनी के निम्नलिखित लाभ हैः–

(1) सीमित दायित्वः– अंशधारकों का दायित्व उनके द्वारा अंकित अंशों के मूल्य या उनके द्वारा दी गयी प्रत्याभूति तक सीमित है। इसका आशय कंपनी की संपदा ऋण अदा करने के लिये उपयोग में लायी जा सकती है और कंपनी के मालिक या सवामी की व्यक्तिगत संपत्ति किसी भी भार से मुक्त रहती है जिससे अंशधारक /सदस्य का जोखिम कम हो जाता है।

(2) हित/अंश का अन्तरण :– सार्वजनिक मर्यादित कंपनी के अंश बाजार में बेचे जा सकते हैं जिससे निवेश की रूकावट से बचा जा सकता है।

(3) शाश्वत अस्तितव :– कंपनी के किसी भी सदस्य की मृत्यु, सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र या दिवालिया होने पर कंपनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि कंपनी का सदस्यों से अलग अलग एक अस्तित्व होता है।

(4) व्यावसायिक प्रबंधन :– कंपनी में प्रबंधन, उन निदेशकों के हाथों में होता है जो अनुभवी और योग्य होते हैं। अतः कंपनी की देख रेख और संचालन पेशेवर प्रबंधन के द्वारा होता है।

(5) **धन के बड़े स्त्रोत** :– जैसा कि कंपनी में अंशधारकों की कोई सीमा निश्चित नहीं होती है और कंपनी विश्व में कहीं से भी राशि एकत्र कर सकती है। अतः व्यापार के विस्तार में राशि (धन) की कमी नहीं होती है।

(6) **जोखिम का वितरण** :–अंशधारकों की संख्या अधिक होने से, पूरे व्यापार का जोखिम कंपनी के सारे सदस्यों में विभाजित हो जाती है।

संयुक्त स्टॉक कंपनी से होने वली हानियाँ :– कंपनी को होने वाली हानियाँ निम्नलिखित हैं :–

(1) **निर्माण में जटिलता** :– कंपनी का निर्माण एक जटिल कार्य है जिसमें लंबा प्रयास और पैसे की आवश्यकता होती है।

(2) **गोपनीयता की कमी** :– कम्पनी अधिनियम के विधिक प्रावधानों के तहत कम्पनी को उसके वित्तीय कथन प्रकाशित करने होते हैं, इस कारण यह आंकड़े गोपनीय नहीं रह जाते हैं।

(3) **विधिक प्रतिबंध** :– एकल स्वामित्व और साझेदारी की तुलना में कम्पनी को विधिक प्रक्रियाओं से गुजरना होता है जिसमें बहुत समय, प्रयास और पैसे की आवश्यकता होती है।

(4) **निर्णय लेने में देरी** :– लोकतांत्रिक प्रबंधात्मक तरीके के कारण निर्णय लेकर उन्हें लागू करने में देरी होती है।

(5) **प्रबंधन रिष्टि** :– कभी कभी कंपनी के प्रबंधक और निदेशक कंपनी के संसाधनों का व्यक्तिगत फायदे के लिये उपयोग करते हैं।

(6) **अल्पसंख्यकों की उपेक्षाः–** कंपनी के सभी बड़े–बड़े मुद्दों के उन अंशधारकों द्वारा निपटा लिया जाता है जिनके अंशों की संख्या अधिक है, इस तरह कभी–कभी अल्पसंख्यक अंशधारकों के हितों को नज़र अन्दाज किया जाता है।

(7) **कंपनी बंद करने में कठिनाईः–** कंपनी को बंद करना आसान नहीं है। इसे बंद करने के लिये बहुत सारी विधिक प्रक्रिया और औपचारिकताएँ लगती हैं।

13.6 सहकारी समितियाँ

सहकारी समिति लोगों का स्वैच्छिक संघ है, जो सदस्यों के कल्याण के उद्देश्य से एक साथ जुटते हैं। साधारण शब्दों में सहकारी समिति से तात्पर्य सामान्य कारण के लिये एक दूसरे के साथ मिलकर काम करना है। सदस्यों को उनके आर्थिक हितों की रक्षा के लिये प्रेरित किया जाता है। सहकारी समिति को आवश्यक रूप से सहकारी समिति अधिनियम 1912 के अन्तर्गत पंजीबद्ध होना आवश्यक होता है। न्यूनतम सदस्य संख्या 10 है और समिति की राशि उसके सदस्यों के अनुपात में बढ़ायी जाती है। भारतीय सहकारी समिति अधिनियम 1912 सहकारी शब्द को इस प्रकार परिभाषित करता है "यह एक ऐसी समिति है जिसका उद्देश्य सहकारी सिद्धान्तों के सहयोग से उसके सदस्यों के आर्थिक हितों का विकास करना है।"

सहकारी समिति की विशेषताएँः– सहकारी समितियों की विशेषताएँ इस प्रकार हैः–

(1) **स्वैच्छिक संगठनः–** सहकारी संगठन लोगों का स्वैच्छिक संघ है और इसकी सदस्यता ऐच्छिक है। सदस्य समिति में आ सकते हैं या अपने आप छोड़ सकते हैं।

(2) **विधिक प्रास्थितिः–** सहकारी समिति का पंजीकरण आवश्यक है जिसके बाद समिति संविदा कर सकती है और अपने नाम से जमीन या संपत्ति ले सकती है। विधिक व्यक्तित्व होने के कारण, इस पर सदस्यों के प्रवेश या निकासी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(3) **प्रजातांत्रिक प्रबंधन** :– सहकारी समितियों का प्रबंधन प्रबंधकीय समिति के हाथों में होता है जिनका चुनाव सदस्यों द्वारा किया जाता है।

(4) **सेवा के उद्देश्य** :– सेवा का उद्द्देश्य सहकारी समिति के कामकाज पर हावी है। यदि क्रियान्वयन के द्वारा कुछ अतिरिक्त राशि निर्मित हो जाती है तो यह इसके सदस्यों में बांट दी जाती है।

(5) सीमित दायित्व :– सहकारी समिति के सदस्यों का दायित्व उस सीमा तक सीमित हैं जितनी राशि का वह योगदान देते हैं।

सहकारी समितियों के लाभः– सहकारी समितियों के निम्नलिखित लाभ हैः–

(1) **आसान निर्माणः–** सहकारी समितियाँ कम से कम 10 सदस्यों की संख्या के साथ प्रारंभ की जा सकती है और पंजीकरण प्रक्रिया में कम औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है अतः इसको बनाना आसान है।

(2) **सीमित दायित्वः–** सहकारी समितियों के सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा राशि के योगदान के विस्तार तक सीमित होता है।

(3) **शाश्वत अस्तित्व :–** सदस्य की मृत्यु, दिवालिया या पागलपन का सहकारी समितियों की निरंतरता पर कोई असर नहीं पड़ता है। सदस्यता के किसी भी प्रकार के बदलाव से सहकारी समिति अप्रभावित रहती है।

(4) **संचालन में मितव्ययिता** :– सदस्यगण सामान्यतः समिति को बिना लाभ की कामना किये सेवाएं देते हैं जिससे संचालन मितव्यय हो जाता है

(5) **सरकार से सहायता** :– सरकार सहकारी समितियों को बहुत से अनुदान, ऋण और वित्तीय सहायता प्रदान करती है ताकि उनके कार्य सुचारू रूप से चल सकें।

(6) **मुक्त सदस्यता** :– सहकारी समितियों की सदस्यता किसी भी जाति, वर्ण रंग, और आर्थिक प्रास्थिति के लोगों के लिये खुली है और सदस्यों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है।

(7) **कर लाभः**– सहकारी समिति को अन्य व्यावसायिक संगठनों की तुलना में कर लाभ की प्राप्त होती है।

सहकारी समितियों से होने वाली हानियाँः– सहकारी समिति के प्रकार का व्यावसायिक संगठन निम्नलिखित हानियों से गुजरता हैः–

(1) **सीमित संसाधन :–** सहकारी समिति के पास सीमित संसाधन होते हैं क्योंकि केवल समिति के सदस्य ही धन का योगदान कर सकते हैं। सदस्यों के पास भी सीमित साधन होते हैं।

(2) **गोपनीयता की कमीः–** इस प्रकार के व्यावसायिक संगठन गोपनीयता की समस्या का सामना करते हैं क्योंकि समिति को अपनी वार्षिक रिपोर्ट और लेखा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को भेजना होता है।

(3) **व्यापारिक कौशल का अभाव :–** सामान्यतः सहकारी समितियों के सदस्यों में व्यापारिक कौशल का अभाव रहता है। सीमित संसाधनों के कारण पेशेवर प्रबंधकों की नियुक्ति भी इन समितियों के द्वारा नहीं की जा सकती है।

(4) **सरकारी नियंत्रण** :– सरकार ने सहकारी समितियों को बहुत सारे विशेषाधिकार दिये हैं, इन सुविधाओं के बदले, समितियों को कुछ सरकारी नियमों का पालन करना पड़ता है।

(5) **भ्रष्टाचार** :– सहकारी समितियों में लाभ की कमी के कारण प्रबंधन में कपट और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

(6) **मतों में भिन्नता :–** विरोधी विचारों के कारण आन्तरिक विवाद उत्पन्न होता है जिससे निर्णय लेने में कठिनायी होती है।

13.7 व्यापारिक संगठन के प्रकार का विकल्प

विभिन्न व्यापारिक संगठनों के विषय में जानने के बाद यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार के व्यापारिक संगठन के अपने लाभ और हानियाँ है। कोई भी व्यापारिक संगठन ऐसा नहीं है जिसमें हानि न हों या जिसकी सीमाएं न हों। अतः जब समुचित व्यापारिक संगठन का चुनाव किया जा रहा हो तो कुछ मुख्य कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिये। व्यापारिक संगठन की सुनिश्चितता हेतु कुछ कारक इस प्रकार हैः–

(1) **व्यापार की प्रकृति** :– व्यापार की प्रकृति का प्रभाव व्यापार के स्वामित्व पर पड़ता है। उदाहरण के लिये वह व्यापार जिनमें कम पूंजी की आवश्यकता होती है वह एकल स्वामित्व के रूप में स्थापित हो जाते हैं और जिन व्यापारों में बड़ी मात्रा में उत्पादन सम्मिलित रहता है, कंपनी के प्रकार का व्यावसायिक संगठन अधिक उपयुक्त रहता है।

(2) **संचालन का क्षेत्रः–** व्यावसायिक संगठन के चुनाव में संचालन के क्षेत्र का भी प्रभाव पड़ता है। यदि व्यापार स्थानीय क्षेत्र में संचालित हो रहा है तो उसके लिये एकल स्वामित्व वाला व्यापार उपयुक्त होगा, दूसरी ओर, यदि संचालन का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय बाजार है तब कंपनी संगठन अधिक उपयुक्त होगा ।

(3) **पूंजी की आवश्यकता** – यदि व्यापार में थोड़ी मात्रा में राशि की आवश्यकता होती है तो सबसे अच्छा व्यापार एकल स्वामित्व या साझेदारी होगा। जहां ज्यादा मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है वहां कंपनी के तरह का संगठन ही अधिक उपयुक्त होगी।

(4) **व्यावसायिक संगठन का निर्माणः–** साझेदारी फर्म बनाना आसान होता है क्योंकि फर्म का पंजीकरण आवश्यक नहीं होता है। किन्तु कंपनी के निगमन के लिये बहुत सारी औपचारिकताओं को ध्यान में रखा जाता है।

(5) **दायित्वः–** एकल स्वामित्व उन उपक्रमों के लिये उपयुक्त होता है जहां व्यापार स्थिर प्रकृति का होता है और जोखिम बहुत ज्यादा नहीं होता है क्योंकि साझेदारी और एकल स्वामित्व में स्वामियों का असीमित दायित्व होता है।

(6) **गोपनीयता** :– एकल स्वामित्व और साझेदारी गोपनीयता बनाये रख सकते हैं। क्योंकि इनके लेखा–जोखा का निरीक्षण – परीक्षण होना आवश्यक नहीं है।

(7) **सरकारी नियमः–** एकल स्वामित्व और साझेदारी फर्म में सरकारी नियम कम होते हैं किन्तु सार्वजनिक दायित्व कंपनी को बहुत सारे सरकारी नियमों का पालन करना पड़ता है।

(8) **व्यापार की उपयुक्तताः–** एकल स्वामित्व और साझेदारी फर्म थोड़ी कम स्थिर हैं क्योंकि स्वामी की मृत्यु, दिवालिया या पागल होने की स्थिति में व्यापार निरन्तर न होने का कारण बनता है । किन्तु कंपनी संगठन अधिक स्थिर होता है।

13.8 सारांश

व्यापारिक संगठन के प्रकार से तात्पर्य संगठन के प्रकार से है जो स्वावमित्व और प्रबंधन की शर्तों में अलग है। मुख्य व्यापारिक संगठन हैं– एकल स्वामित्व, साझेदारी, संयुक्त हिन्दू परिवार का व्यापार, सहकारी समिति और संयुक्त स्टाक कंपनी । एकल स्वाविमत्व वाले व्यावसायिक संगठन से तात्पर्य ऐसे संगठन से है जिसमें व्यापार पर अकेले व्यक्ति का स्वामित्व होता है और उसी का नियंत्रण होता है, वहीं व्यक्ति व्यापार के सारे जोखिम उठाता है और उसी को सारे लाभ मिलते हैं। साझेदारी उन व्यक्तियों का संघ होता है जो एक साथ व्यापार करने के लिये सहमत होते हैं, जोखिम

भी साथ ही उठाते हैं और लाभ भी साथ ही उठाते है। संयुक्त हिन्दु परिवार का व्यापार का प्रसार ऐसा व्यापार है जिस पर स्वामित्व एवं नियंत्रण हिन्दू परिवार के सदस्यों का होता है। सहकारी समिति व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है जो, अपने हितों की रक्षा के लिये एक साथ संगठित होते हैं। संयुक्त स्टॉक कंपनी को एक ऐसे कृत्रिम व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो केवल विधि की दृष्टि में अस्तित्व में है। जिसका शाश्वत उत्तराधिकार है, अलग विधिक व्यक्तित्व होता है, और एक समान स्तर होता है।

13.9 शब्दावली

साझेदारी :– व्यक्तियों के बीच का वह संबंध जिसके आधार पर सभी व्यक्तियों द्वारा या एक व्यक्ति द्वारा सभी के लिये चलाये जा रहे व्यापार से होने वाले लाभ को बांटने के लिये सहमत होते हैं।

संयुक्त स्टाक कम्पनी:– लाभ के लिये व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ, जिसकी राशि अन्तरण योग्य अंशों में विभाजित होती है।

13.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. ————————— से तात्पर्य ऐसे व्यावसायिक संगठन से है जिसे एक व्यक्ति द्वारा नियंत्रित, प्रबंधित और स्वामित्व किया जाता है, अकेले ही जोखिम उठाता है और अकेले ही व्यापार के समस्त लाभों को रखता है।
2. संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यापार की दयाभाग व्यवस्था ————————— में विद्यमान है।
3 भागीदारों के संबंध ——————— से उत्पन्न होते हैं।
4 कंपनी —————— द्वारा निर्मित एक काल्पनिक व्यक्ति है।

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 एकल स्वामित्व 2. बंगाल और महाराष्ट्र 3. संविदा 4. विधि

13.12 स्वपरख प्रश्न

1. एकल स्वामित्व क्या है ? स्वामित्व के लाभ और हानि की व्याख्या कीजिए।
2. भागीदारी (साझेदारी) से आप क्या समझते हैं ? साझेदारी की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3 सहकारी संगठन क्या है ? सहकारी संगठन के लाभों की व्याख्या कीजिए।
4 जब आप एक प्रकार के व्यापारिक संगठन का चुनाव कर रहे होते हैं तो किन कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिये।
5 "निजी कंपनी संगठन साझेदारी और निजी कंपनी के मध्य एक समझौता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
6 साझेदारी और निजी कंपनी के मध्य अन्तर स्थापित कीजिए। इनमें से किस प्रकार के संगठन को आप वरीयता देंगे।
7. व्यापारिक संगठन के प्रकार उन व्यक्तियों की वित्तीय क्षमता पर आधारित होते हैं जो व्यापारिक संगठन स्थापित करना चाहते हैं– इस कथन पर तर्क दीजिए।
8. बड़ा सीमेन्ट कारखाना स्थापित करने के लिये, किस प्रकार के व्यापारिक संगठन की आप सलाह देंगे। कारण सहित अपना उत्तर दीजिए।

13.13 संदर्भ पुस्तकें

1. Dr. Justin Paul, *Business Environment*; Tata McGraw Hill, Publishing Co. Ltd., New Delhi.
2. Ian Books, Jamie Weatherston, *The Business Environment*; Pearson Education Ltd., New Delhi.
3. Sundram and Black, *The International Business Environment*; Prentice Hall of India, New Delhi.
4. Ian Books and Jamie Weatherston, *The Business environment*: *Challenges and Charges*; Pearson Higher Education, 1999.

———

इकाई 14 उद्यमिता

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्यमिता की अवधारणा एवं इसकी उत्पत्ति

14.3 उद्यमी की विशेषताएँ

14.4 प्रबंधक और उद्यमी के मध्य अन्तर

14.5 उद्यमियों के प्रकार

14.6 उद्यमी की अवधारणा

14.7 भारत में उद्यमिता का विकास

14.8 आर्थिक विकास में उद्यमिता की भूमिका

14.9 उद्यमिता विकास पर प्रभाव डालने वाले कारक

14.10 उद्यमिता विकास कार्यक्रम (EDPS)

14.11 सारांश

14.12 शब्दावली

14.13 बोध प्रश्न

14.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.15 स्वपरख प्रश्न

14.16 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उद्यमिता की आवधारणा की व्याख्या कर सकें।
- उद्यमी की विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।
- आर्थिक विकास में उद्यमिता की भूमिका को समझ सकें।
- उद्यमिता विकास कार्यक्रमों को समझ सकें।

14.1 प्रस्तावना

उद्यमिता चर्चा एवं वाद–प्रतिवाद का विषय है। विभिन्न लेखकों द्वारा उद्यमिता शब्द की परिभाषा अलग–अलग तरीकों से दी गयी है। कुछ लेखक उद्यमिता को 'जोखिम उठाने वाला' कुछ इसे 'अभिनव' और अन्य इसे 'रोमांचक' की संज्ञा देते हैं। उद्यमिता की विभिन्न परिभाषाओं पर जो विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा दी गयी हैं, चर्चा करनी होगी। ए.एच. कोल के अनुसार, "उद्यमिता किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की उद्देश्यपूर्ण गतिविधि है, जिसमें आर्थिक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण द्वारा शुरूआत करके, रखरखाव रखने और लाभ को बढ़ाने के लिये की जाती है।" शुम्पीटर उद्यमिता को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, "उद्यमिता उद्देश्यपूर्ण और व्यवस्थित नवोन्मेष पर आधारित है। इसके न केवल स्वतंत्र व्यापारी शामिल हैं बल्कि कंपनी के वह निदेशक और प्रबंधक भी शामिल हैं जो वासतविक रूप से अभिनव गतिविधियाँ चलाते हैं।"

ऊपर वर्णित परिभाषाओं के आधार पर, उद्यमिता से तात्पर्य, किसी उपक्रम की स्थापना के लिये उद्यमी द्वारा किये गये कार्यों से है। साधारण शब्दों में, उद्यमी की हैसियत से कार्य करना

उद्यमिता कहलाता है। अतः उद्यमिता के विषय में निष्कर्ष निकाला जा सकता है, ''किसी उपक्रम की स्थापना के लिये किये जाने वाले कार्यों की प्रक्रिया उद्यमिता है। यह भी माना गया कि उद्यमिता के दो आवश्यक तत्व है नवोन्मेष एवं जोखिम उठाने वाला।

14.2 उद्यमिता की अवधारणा एवं इसकी उत्पत्ति

आक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश उद्यमिता की परिभाषा इस प्रकार करता है, ''किसी सार्वजनिक संगीत संस्थान का निदेशक या प्रबंधक जो शुरूआती मनोरंजन के रूप में विशेष रूप से संगीतमय प्रस्तुति देता है, उसे उद्यमी कहते हैं।'' 16 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में, यह उन व्यक्तियों पर लागू होता था जो सैन्य अभियान में लगे होते थे। 17 वीं शताब्दी में इसका विस्तार सिविल अभियंता तक हो गया और 18 वीं शताब्दी में इसका उपयोग आर्थिक परिप्रेक्ष्य में किया जाता था। तब से लेकर अब तक, उद्यमी का विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता हैं जैसे उद्यमी को जोखिम उठाने वाला व्यवस्थापक, अन्वेषक आदि के रूप में भी जाना जाता है।

उद्यमी एक जोखिम उठाने वाले के रूप में :–

रिचर्ड कैनिल्टन पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने शब्द उद्यमी और अर्थशास्त्र में जोखिम उठाने वाले के रूप में पहली बार प्रयोग किया । रिचर्ड कैनिल्टन उद्यमी को ऐसे अभिकर्ता के रूप में परिभाषित करते हैं जो एक निश्चित कीमत पर भविष्य में सामान बेचने के लिये खरीदता है। इस तरह उद्यमी जोखिम उठाने वाला होता है जो उद्यम में किसी भी प्रकार की जोखिम उठाता है। जोखिम उठाने के परिणाम स्वरूप उसे उपक्रम में लाभ प्राप्त होता है।

उद्यमी एक व्यवस्थापक के रूप में :–

जीन बैपटिस्ट के अनुसार, '' उद्यमी वह व्यक्ति होता है जो किसी भी भूमि, किसी अन्य का श्रम और किसी अन्य की पूंजी को एक साथ मिलाता है और एक उत्पाद का निर्माण करता है। बाजार में उत्पाद बेचकर वह पूंजी पर ब्याज चुकाता है, भूमि का किराया देता है और श्रमिकों को वेतन देता है और बाद में जो कुछ बचता है वह उसको/उसकी लाभ होता है।'' अतः उन्होंने पूंजीवादी और उद्यमी के मध्य स्पष्ट अन्तर किया है। उनके अनुसार, पूंजीवादी धन लगाने वाला होता है एवं उद्यमी एक व्यवस्थापक होता है।

14.3 उद्यमी की विशेषताएँ

उद्यमिता की अवधारणा एवं अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका के बाद, उद्यमी की का परीक्षण करना बड़ा ही दिलचस्प है ताकि वह लोग जो भविष्य में उद्यमी बनने की सोच रहे हैं वह इन विशेषताओं के साथ सामंजस्य बिठा सके और एक सफल उद्यमी बन सकें। एक उद्यमी की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:–

(1) **कठोर परिश्रमी :–** कठोर श्रम वह विशेषता है जो एक सफल और असफल उद्यमी में अन्तर स्थापित करता है। उद्यमी वह वयक्ति है जो अन्त तक कठोर परिश्रम करने के लिये तैयार रहता है।

(2) **जोखिम उठाना :–** जोखिम उठाने की क्षमता एक उद्यमी की मुख्य विशेषता है और वह निश्चित जोखिम लेता है। वह उत्पाद के विभिन्न कारक जैसे भूमि, श्रम और पूंजी को एकत्रित करता है। वह भूमि का किराया देता है, श्रमिकों को वेतन देता है और पूंजी पर ब्याज देता है और बाकी जो बचता है वह उसका लाभ या हानि होती है। अतः जब एक उद्यमी इन सभी संसाधनों को एकत्रित करता है, और इस बात की कोई निश्चितता नहीं होती है कि उसे कोई लाभ मिलेगा।

(3) **स्वयं शुरू करने वाला :–** उद्यमी स्वय प्रारंभ करने वाला व्यक्ति होता है क्योंकि वह अपने प्राधिकार के अन्तर्गत अपने विचारों का उपयोग करते हुये उपक्रम की शुरूआत करता है । वह व्यक्ति जो स्वयं शुरू करने वाला है और स्वप्रेरित होता है वही एक अच्छा उद्यमी होता है।

(4) **उच्च उपलब्धि की इच्छा :–** उद्यमी वह व्यक्ति है जिसके जीवन में ऊंचे लक्ष्य हैं, अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये नये उपक्रम प्रारंभ करता है। ऊंचे ध्येय उसे कठोर श्रम करने हेतु शक्ति प्रदान करता है और इसी वजह से नयी चुनौतियों का भी सामना करने हेतु मजबूत बनाता है।

(5) **अति आशावादी :'–** उद्यमी बहुत ही आशावादी व्यक्ति होता है वह हमेशा यह सोचता है कि स्थितियाँ उसके पक्ष में होंगी।

(6) **दूरदर्शिता :–** उद्यमी दूरदर्शी होता है और बाजार में होने वाले परिवर्तनों, उपभोक्ता का व्यवहार, तकनीकी परिवर्तन को देख पाने में समर्थ होता है और समयानुसार निर्णय लेता है।

(7) **जानकारी की मांग रखने वाला:–** उद्यमी हमेशा स्वयं को अद्यतन रखता है। अपने को अद्यतन रखने के लिये, वह विभिन्न स्त्रोतों से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। अतः उद्यमी उन वित्तीय संस्थाओं के बारे में जानना चाहता है जो वित्तीय सहायता देते हैं, सूक्ष्म नीतियाँ बनाते हैं, प्रतिस्पर्धियों की जानकारी और सामाजिक परिवर्तनों आदि के बारे में जानना चाहता है।

(8) **अच्छा व्यवस्थापक :–** उद्यमी के पास व्यवस्थित रहने का गुण होता है। वह व्यापार चलाने के लिये उत्पादन के विभिन्न कारकों को व्यवस्थित करता है । और यह तभी संभव है जब वह अच्छा व्यवस्थापक होगा।

(9) **अभिनवः–** उद्यमी के पास अभिनव विशेषताएं होनी चाहिये। उसे नये उत्पाद प्रारंभ करने चाहिये, नये बाजार और बिक्री की नयी पद्धति की शुरूआत करनी चाहिए।

(10) **समस्या निवारकः–** उद्यम में बहुत सारी समस्याएं होती है। विशेष रूप से प्रारंभिक दौर में औसत से ज्यादा चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और औसत से कम सुविधाएं प्राप्त होती हैं। ऐसी स्थिति में, उद्यमी समस्या का समाधान करते हैं।

14.4 प्रबंधक और उद्यमी के मध्य अन्तर

सामान्यतः उद्यमी और प्रबंधक एक दूसरे के समानार्थी हैं। वास्तव में, दो शब्द, दो अवधारणाएं हैं। दोनों के मध्य अन्तर के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है :–

उद्यमी और प्रबंधक के मध्य अन्तर

अन्तर	उद्यमी	प्रबंधक
उद्देश्य	उद्यमी का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत संतुष्टि के लिये नया उपक्रम स्थापित करना होता है।	इसका मुख्य उद्देश्य उपक्रम को अपनी सेवाएं देना है।
जोखिम उठाना	व्यापार का मालिक होने की वजह से व्यवसाय में होने वाले जोखिम उठाता है।	नौकर होने के कारण वह जोखिम नहीं उठाता है।
इनाम	व्यवसाय का जोखिम उठाने का इनाम उद्यम में लाभ के रूप में प्राप्त होता है।	उद्यम में सेवाएं देने के लिये इसे वेतन दिया जाता है।
अभिनव (नयापन)	उद्यमी होने के नाते, वह बहुत अभिनव होता है, और हमेशा नये उत्पाद और	प्रबंधक होने के नाते, वह केवल उद्यमी की योजनाओं को निष्पादित करता है।

	नये बाजार के बारे में सोचता रहता है।	
गुण / विशेषता	उद्यमी होने के नाते, उसके पास उच्च लक्ष्य प्राप्त करने का गुण होता है, दूरदर्शी होता है और उसमें जोखिम उठाने की योग्यता होती है।	प्रबंधक होने के नाते, उसके पास प्रबंधन का सटीक ज्ञान होता है।

14.5 उद्यमियों के प्रकार

क्लैरेन्स डेनहॉफ ने अपने अध्ययन के आधार पर उद्यमियों को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया है जो इस प्रकार हैः–

(1) **अभिनव उद्यमी** :– यह वह उद्यमी है जो नया उत्पाद पेश करते हैं, उत्पादन का नया तरीका पेश करते हैं और उत्पाद के लिये नया बाजार पेश करते हैं यह उद्यम स्थापित करने में प्रारंभकर्ता होते हैं।

(2) **पहल करने वाले उद्यमी :–** यह वह उद्यमी हैं जो पहल करने वाले उद्यमियों के द्वारा शुरू किये गये सफल नवाचार को अंगीकृत करते हैं इस तरह के उद्यमी दूसरों के द्वारा खोजे गये विकास की नकल करते हैं । इस प्रकार के उद्यमी तभी काम करते हैं जब एक स्तरीय विकास पहले ही कर लिया गया होता है।

(3) **अवसर की प्रतीक्षा करने वाला उद्यमी** :– इस प्रकार के उद्यमी उनके व्यापार में किसी प्रकार का परिवर्तन लागू करने के लिये बहुत सतर्क रहते हैं। वे तभी परिवर्तन करते हैं जब यह स्पष्ट हो जाता है कि बिना परिवर्तन किये उद्यम का चलना संभव नहीं होगा।

(4) **मुफ्तकोर उद्यमी** :– यह वह उद्यमी हैं जो व्यवसाय समाप्त होने की कीमत पर भी परिवर्तन लागू नहीं करते है।

व्यवहार वैज्ञानिकों ने उद्यमियों के कुछ और प्रकार बताए हैं जो इस प्रकार हैः–

(1) **एकल प्रचालक** :– यह वह उद्यमी हैं जो आवश्यक रूप से अकेले ही काम करना शुरू करते हैं । अधिकांश उद्यमी इसी तरह काम करना पसंद करते हैं।

(2) **सक्रिय भागीदारी** :– यह वह उद्यमी हैं जो संयुक्त उपक्रम के रूप में व्यापार प्रारंभ करते हैं और व्यापार के प्रबंधन के सभी कार्य सक्रिय रूप से कार्य करते हैं।

(3) **आविष्कारक** :– यह वह उद्यमी है जो उनकी आविष्कारक क्षमता के कारण प्रतिस्पर्धा करते हैं।

(4) चुनौतियाँ :– यह वह उद्यमी होते हैं जो वहीं उद्यम प्रारंभ करते हैं जहां चुनौतियाँ होती हैं, जैसे ही चुनौतियाँ समाप्त होती हैं वे नयी चुनौतियों की खोज में लग जाते हैं।

14.6 उद्यमी की अवधारणा

उद्यमियों की एक नयी प्रजाति बड़े औद्योगिक घरानों में देखी जा रही है जिसे इन्ट्राप्रिन्यूर कहा जाता है। बड़े संगठनों में, आला अधिकारियों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे संगठन में विकास और अनुसंधान के माध्यम से कुछ अभिनव करें। इन अधिकारियों को इन्टरप्रन्यिूर के नाम से जाना जाता है। बड़ी संख्या में इन्टरप्रिन्यूर अपनी नौकरी छोड़ रहे हैं और अपना उद्यम प्रारंभ कर रहे हैं। ऐन्ट्राप्रिन्यूर और इन्ट्रप्रिन्यूर में मामूली सा अन्तर है, उद्यमी स्वतंत्र होता है किन्तु इन्ट्राप्रिन्यूर नियोजक के ऊपर आश्रित होता है, उद्यमी राशि इकट्ठी करता है, इन्ट्राप्रिन्यूर को निधि की

आवश्यकता नहीं होती है और उद्यमी उद्यम में व्याप्त सारी जोखिम उठाता है, जबकि इन्ट्राप्रिन्यूर पूरी तरह से जोखिम नहीं उठाते हैं।

14.7 भारत में उद्यमिता का विकास

भारत में उद्यमिता का विकास दो भागों में बँटा हुआ है – स्वतंत्रता पूर्व के दौरान उद्यमिता और स्वतंत्रता– पश्चात् के दौरान उद्यमिता ।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के समय उद्यमिताः– भारतीय उद्यमिता की उत्पत्ति ऋग्वेद काल से देखी जा सकती है जब भारत में धातु हस्तशिल्प मौजूद था। इसका मतलब भारत में हस्तशिल्प उद्यमिता मानव सभ्यता के जितनी ही पुरानी है। उस समय, लोग गाँव के सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के एक विशिष्ट प्रकार में संगठित थे और भारतीय कस्बों में ज्यादातर धर्म थे और सामान्य जीवन से अलग थे। अधिकांश कारीगरों को ग्रामीण समुदाय की गुंथी व्यवस्था में गावं सेवा प्रदाताओं के रूप में माने जाते हैं – जिनका कार्य बाहरी प्रतियोगिता से ग्रामीण कारीगरों की प्रभावी रूप से रक्षा करना है। बनारस, इलाहाबाद, गया, पूरी और मिर्जापुर , शहरों में कुछ पहचानने योग्य उत्पादों में कुछ संगठित औद्योगिक गतिविधियाँ अवलोकनार्थ थीं, यह उद्योग नदी किनारे स्थित शहरों में स्थापित थे, इनकी स्थापना इन शहरों में इसलिये हुयी थी ताकि नदी का उपयोग यातायात के साधन के रूप में किया जा सके । समय के साथ–साथ इन कारीगरों के उद्योगों का विकास हुआ क्योंकि राजसी संरक्षण उनके समर्थन में था। उस समय बंगाल ने कोरा, लखनऊ ने चिकन के लिये, अहमदाबाद ने धोती दुपट्टा के लिये, नागपुर के रेशमी बार्डर के कपड़ों के लिये और कश्मीर ने विश्व व्यापी प्रसिद्धि का आनंद लिया। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की रानी की प्रतिष्ठापूर्ण स्थिति का आनंद उठाया, यह स्थिति अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में हस्तशिल्प के सहयोग से आयी।

दुर्भाग्यवश, अनेकों कारणों से अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक भारत के प्रतिष्ठित, हस्तकला उद्योग में गिरावट आयी। जो इस प्रकार हैः–

(1) उन भारतीय रायल अदालतों का विलुप्त होना जिन्होंने पहले कभी शिल्प को संरक्षित किया था।

(2) भारतीय शिल्प के लिये ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार का ढुलमुल रवैया।

(3) भारतीय सामानों के आयात पर इंग्लैंड में भारी कर लगाना।

(4) बड़े पैमाने पर कम कीमत पर निर्मित ब्रिटिश सामानों ने भारतीय हस्तशिल्प के उत्पादों की प्रतिस्पर्धा क्षमता को कम कर दिया।

(5) भारत में परिवहन के विकास ने देश के दूर दराज के हिस्सों तक ब्रिटिश उत्पादों की आसानी से पहुंच की सुविधा ने हस्तशिल्प में गिरावट महसूस की ।

(6) भारतीय आदतों एवं सुरूचि में परिवर्तन, भारतीयों की विदेशी सामानों के प्रति पागलपन की हद तक पसंद ने हस्तशिल्प में गिरावट की स्थिति उत्पन्न की।

(7) लोगों की बदलती हुई रूचि एवं जरूरतों के अनुकूल होने के लिये भारतीयों की अनिच्छा ।

विनिर्माण उद्यमशीलता का वास्तविक उदय उन्नीसवीं शताब्दी की दूसरी पारी में देखा जा सकता है। 1850 से पहले भारत में कारखाने स्थापित करने के लिये यूरोपियनों ने कुछ असफल प्रयास किये। प्रारंभ में, भारत में विनिर्माण उद्यमशीलता का प्रणेता पेरिस था।

एक नागर ब्राह्मण रणछोड़ लाल छोटालाल, पहला भारतीय था जिसने 1847 में वस्त्र निर्माण की आधुनिक फैक्ट्री स्थापित करने के बारे में सोचा, किन्तु असफल रहा। उसके दूसरे प्रयास में, वह अहमदाबाद में 1861 में कपड़ा मिल स्थापित करने में कामयाब रहा। किन्तु इससे पहले एक

पारसी, कावसजी नानाभाई डावर ने बम्बई में 1854 में सूती कपड़ा विनिर्माण इकाई स्थापित कर दी थी। इसके बाद 1880 में बॉम्बे में नरसजी वाडिया ने कपड़ा मिल खोली । 1915 तक कपड़ा मिलों के विस्तार को श्रेय पारसियों को जाता है। 1915 में स्थापित 96 मिलों में से 13 प्रतिशत (41) पारसियों द्वारा स्थापित थीं, 24 प्रतिशत (23) हिन्दुओं द्वारा, 10 प्रतिशत (10) मुसलमानों द्वारा, और 23 प्रतिशत (22) ब्रिटिश नागरिकों द्वारा स्थापित थीं। जमशेद जी टाटा पहले पारसी उद्यमी थे जिन्होंने पहला इस्पात उद्योग 1911 में जमशेदपुर में स्थापित किया ।

पेरिस को छोड़कर, विनिर्माण उद्यमशीलता की पहली लहर में, अन्य सभी गैर वाणिज्यिक समुदायों ने इसका स्वागत किया । प्रसिद्ध व्यावसायिक समुदाय, अहमदाबाद और बड़ौदा के जैन और वैश्य, उन्नीसवीं शताब्दी में उद्यम शीलता की पहल में पीछे क्यों रहे, दो कारकों द्वारा समझा जा सकता है। पहला इस अवधि के दौरान ग्रामीण इलाकों में कारोबारी माहौल में सुधार ने व्यापार की मात्रा में वृद्धि की जिसने निवेश पर तुरंत रिटर्न का आश्वासन दिया। इस अवधि के दौरान वाणिज्यिक गतिविधियाँ और अधिक आकर्षक साबित हुयीं। दूसरे, वाणिज्यिक उद्यमशीलता से औद्योगिक उद्यमशीलता में परिवर्तन के रूढ़िवादी रवैये को जिम्मेदार ठहराया जा सकता हैं

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उद्यमशीलता के विकास की दूसरी लहर की शुरूआत हुई। बहुत से कारणों से, भारत सरकार कुछ उद्योगों की सुरक्षा में भेदभाव करने के लिये सहमत हो गयी। यहाँ तक कि उनसे लाभ प्राप्त करने वाली कंपनियों का भारत में रूपये की पूंजी के साथ पंजीकृत होना आवश्यक था और भारतीयों के रूप में उनके निदेशकों का अनुपात भी होना आवश्यक था। इन उपायों द्वारा मिलने वाले लाभों का सबसे ज्यादा आनंद भारतीयों ने उठाया यूरोपीय लोग संरक्षणकारी नीतियों का उनके हितों तक दोहन करने में असफल रहे। इन उपायों ने बीसवीं सदी के पहले चार दशकों के दौरान भारत में कारखाना निर्माण की स्थापना और विस्तार करने में मदद की।

1813 में ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार खोने के बाद, यूरोपीय प्रबंध एजेंसी ने व्यवसाय, व्यापार और बैंकिंग में प्रवेश किया। और ये बड़े औद्योगिक घराने ईस्ट इंडिया के औद्योगिक दृश्य से प्रभावित थे। यह कहा गया कि प्रबंध एजेंसी उस काल के वास्तविक उद्यमी थे।

स्वतंत्रता बाद के काल की उद्यमिता :– 1947 के बाद भारत सरकार ने आर्थिक विकास की योजना को वरीयता में लाने का चिंतन किया। इस उद्देश्य के लिये, भारत सरकार ने 1948 में, पहली औद्योगिक नीति जारी की। सरकार ने अपनी विभिन्न औद्योगिक नीतियों में राज्य के उत्तरदायित्व को पहचान उद्योगों को बढ़ावा देने, सहायता पहुंचाने और विकास के रूप में की। निजी क्षेत्र की विशेष भूमिका को भी स्पष्ट रूप से पहचान कर ली गयी ताकि औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिल सके। सरकार ने अपने औद्योगिक नियमों में तीन मुख्य उपाय कियेः–

(1) निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में आर्थिक शक्ति के सही वितरण को बनाये रखना।

(2) विद्यमान केन्द्रों से अन्य शहरों, कस्बों और गांवों में उद्यमिता के फैलाव द्वारा औद्योगिकरण को प्रोत्साहन देना।

(3) उद्यमशीला दक्षता का प्रसार करने के लिये कुछ प्रमुख समुदायों में बड़ी संख्या में औद्योगिक रूप से संभावित लोगों पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये, सरकार ने देश में लघु उद्योगों के विकास पर विशेष जोर दिया। विशेष रूप से तीसरी पंचवर्षीय योजना से, सरकार ने उद्योगों की स्थापना के लिये संभावित उद्यमियों को पूंजी, तकनीकी ज्ञान, बाजार और भूमि के रूप में विभिन्न प्रोत्साहनों और रियायतें प्रदान करना शुरू किया था।

1850 से पहले, कारीगरों में विनिर्माण उद्यमशीलता नगण्य थी। उद्यमशीलता के कार्यों के औपनिवेशिक राजनीतिक ढाँचे के ढुलमुल रवैये और अपर्याप्त आधारभूत ढाँचे के कारण कारीगरों की उद्यमशीलता के उद्भव के लिये बीजारोपण हेतु भी स्वदेशी अभियान चलाया गया। उद्यमशीलता की वृद्धि की लहर को दूसरे विश्व युद्ध के बाद पर्याप्त गति प्राप्त हुई। तबसे देश में उद्यमियों की संख्या निरंतर बढती जा रही है।

14.8 आर्थिक विकास में उद्यमिता की भूमिका

आर्थिक विकास से तात्पर्य ऊपर की ओर बदलाव की प्रक्रिया से है जब देश की प्रति पूंजीगत आय लंबी अवधि तक बढ़ती जाती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास में उद्यमिता के विकास से संबंधित विभिन्न विचार वयक्त किये। उदाहरण के लिये, एडम स्मिथ ने अपनी कृति ''एन इनक्वायरी इन टू द नेचर एंड काजेज ऑफ वेल्थ ऑफ नेशंस'' में आर्थिक विकास में उद्यमशीलता की भूमिका को कोई महत्व नहीं दिया, इस कृति में उन्होंने कहा कि पूंजी निर्माण की दर आर्थिक विकास का मुख्य कारक है। डेविड रिकार्डों ने उत्पादन के मात्र तीन कारक बताये हैं– भूमि, पूंजी और श्रम। उत्पादन के कारकों को उत्पादन में उनके योगदान के लिये किराया, ब्याज और वेतन मिल रहा है। रिकार्डों के अनुसार, लाभ से धन की बचत बढ़ती है जिससे अंततः पूंजी निर्माण होता है। अतः आर्थिक विकास का दोनों दृष्टिकोणों में उद्यमिता के लिये कोई स्थान नहीं है और आर्थिक विकास स्वचलित और स्व–नियंत्रित होता है।

किन्तु वर्तमान में विकसित राष्ट्रों का इतिहास इस बात को सहमति प्रदान करता है कि पश्चिमी देशों के विकास में उद्यमियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अब यह माना जा रहा है कि आर्थिक विकास के लक्ष्य को पूरा करने के लिये, उद्यमिता को बढ़ावा दिया जाना अत्यनत आवश्यक है, आर्थिक विकास में उद्यमिता की भूमिका प्रत्येक अर्थव्यवस्था में अलग–अलग होती है, प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। उद्यमी अवसर की अनुकूल स्थिति में अधिक योगदान देते हैं। इस दृष्टि से, अविकसित देशों को निधि की कमी के कारण नये उद्यमी तैयार करने में थोड़े कम अवसर प्राप्त होते है। अविकसित क्षेत्रों में अव्यवस्थित बाजार का अस्तित्व और राशि (धन) की कमी की स्थितियों के अन्तर्गत उद्यमी लघु उद्योग स्थापित करने के लिये मजबूर हो जाते है। अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में उद्यमशीलता की भूमिका का विवरण इस प्रकार है:–

(1) लोगों के उचित बचत द्वारा एकत्रीकरण करने से पूंजी निर्माण को उद्यमशीलता द्वारा बढ़ावा मिलता है।

(2) यह बड़े पैमाने पर तुरन्त रोजगार के अवसर प्रदान करती है। अतः इससे देश में बेरोजगारी की समस्या में कमी आती है।

(3) इससे संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा मिलता है।

(4) इससे संपदा, आय और यहाँ तक कि देश हित में राजनीतिक शक्ति के पुनर्वितरण को बढ़ावा मिलता है।

(5) इससे पूंजी और श्रम के प्रभावशील संसाधन के एकत्रीकरण को बढ़ावा मिलता है जो कि शायद अनुपयोगी या सुस्त पड़ा रह जाता, यदि उद्यमशीलता के द्वारा इसे एकत्रित नहीं किया जाता।

(6) यह अगली और पिछड़ी कड़ियों को जोड़ने का काम करता है जिससे देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है।

(7) आखिरी लेकिन कम नहीं, इससे देश के निर्यात व्यापार को भी बढ़ावा मिलता है– आर्थिक विकास का मुख्य तत्व है।

अतः यह स्पष्ट है कि उद्यमिता आर्थिक विकास के उत्प्रेरक के रूप में काम आता है।

14.9 उद्यमिता के विकास पर प्रभाव डालने वाले कारक

उद्यमिता का विकास आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य कारकों पर निर्भर करता है। यह सभी कारक जो उद्यमिता के विकास पर असर डालते हैं, वह विस्तृत रूप में दो भागों में विभाजित हैं:– आर्थिक कारक और अनार्थिक कारक।

- **आर्थिक कारक** :– वह कारक जो आर्थिक विकास के साथ–साथ उद्यमिता को भी बढ़ावा देते हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :–
- **पूंजी :–** उत्पादन के उपक्रम की स्थापना के लिये पूंजी प्रमुख कारक है। वस्तुओं के उत्पादन के अन्य कारकों को जुटाने में उद्यमी को पूंजी की उपलब्धता जरूरी होती है। अतः पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में ग्रीस (लुब्रिकेन्ट) का काम करती है। जैसे जैसे पूंजी की आपूर्ति बढ़ती है, उद्यमिता का भी विकास होता जाता है।
- **श्रम :–** एक अन्य कारक जिसका प्रभाव उद्यमिता पर पड़ता है वह है श्रम। श्रम की मात्रा की जगह गुणवत्ता भी एक अन्य कारक है जो उद्यमिता के विकास पर असर डालता है।
- **कच्चा माल :–** कच्चेमाल की उपलब्धता का असर भी उद्यमिता के विकास पर पड़ता है। कच्चे माल के अभाव में, न तो किसी उपक्रम की स्थापना की जा सकती है और न ही उद्यमी का विकास हो सकता है। अन्य अवसरों की स्थिति के आधार पर कच्चेमाल की आपूर्ति प्रभावशाली हो जाती है।
- **बाजारः–** बाजार की क्षमता एक कारक है जो उद्यमी गतिविधियों से लाभदायक पारितोषक निर्धारित करती है। आकार के साथ–साथ बाजार का संयोजन भी उद्यमिता पर प्रभाव डालता है। कभी–कभी जिस दर पर बाजार का विस्तार हो रहा है, उद्यमशीलता के विकास के लिये अधिक महत्व पूर्ण हो जाता है, बाजार का आकार उतना महत्पूर्ण नहीं रहता है।

अनार्थकि कारकः– उद्यमिता विकास के लिये आर्थिक कारक आवश्यक शर्त हो सकती है किन्तु विकास के लिये उपयुक्त स्थिति नहीं है। उद्यमिता विकास के लिये कुछ प्रमुख अनार्थिक कारक इस प्रकार हैः–

- **उद्यमिता की वैधता :–** उद्यमिता की स्थापना में उभरने की अधिक संभावना होगी जिसमें वैधता उच्च है। एक प्रणाली को ''उद्यशीलता की वैधता'' के रूप में संदर्भित किया जाता है जिसमें उद्यमी व्यवहार की स्वीकृति या अस्वीकृति का स्तर इसके उद्भव को प्रभावित करती है।
- **सामाजिक गतिशीलता :–** उद्यमिता विकास के लिये सामाजिक गतिशीलता अत्यन्त महत्पूर्ण है और इसका प्रभाव उद्यमिता की विभिन्न दिशाओं में पड़ता है। कुछ का मत है कि गतिशीलता का उच्च स्तर उद्यमिता के लिये प्रवाहकीय है, दूसरे समूह का मत है कि गतिशीलता की कमी से उद्यमिता को बढ़ावा मिलता है।

- **सुरक्षाः–** सुरक्षा उद्यमिता विकास का महत्वपूर्ण कारक है। यह तार्किक भी है क्योंकि यदि व्यक्ति इस बात से भयभीत रहेंगे कि उनकी आर्थिक संपदा की हानि हो जायेगी, तो वे उद्यमशीलता के व्यवहार से अपनी असुरक्षा बढ़ाने के इच्छुक नहीं होंगे।
- **उपलब्धि की आवश्यकता :–** उद्यमिता विकास का मुख्य अवयव है उपलब्धि की आवश्कयता । यदि समाज में उपलब्धि का औसत स्तर उद्यमिता की अपेक्षा ऊंचा होगा तो उद्यमिता का स्तर उच्च होगा।
- **सरकारी कारक :–** उद्यमिता के विकास में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका है। सरकार मौलिक सुविधाए, उपयोगिता और सेवाएं मुहैया करा सकती है ताकि भावी उद्यमी तैयार हो सकें और इस हेतु रियायतें और प्रोत्साहन राशि भी सरकार द्वारा दी जा सकें है।

14.10 उद्यमिता विकास कार्यक्रम

उद्यमियों के पास कुछ विशेष गुण या दक्षताएँ होती हैं। जिसका परिणाम बेहतर प्रदर्शन के रूप में आता है। अब मुख्य प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या इन गुणों का विकास किया जा सकता है या नहीं । व्यवहारवादी वैज्ञानिक डेविड मैक्क्लैनेन्ट ने एक दिलचस्प अन्वेषण किया कि कुछ समाजों के पास उनके ऐतिहासिक समय में क्रियात्मक शक्तियों का पालन क्यों किया। इस प्रश्न का उत्तर था ''उपलब्धि के लिये आवश्यकता'', जो लोगों को कठोर श्रम करने के लिये प्रोत्साहित करता है। उनके अनुसार, पैसा की कमाई होना आकस्मिक था और केवल उपलब्धि का एक उपाय मात्र था। उनके पाँच वर्षों के प्रयोगों के अध्ययन का निष्कर्ष निकला कि उपलब्धि की आवश्कयता को प्रेरित किया जा सकता है या नहीं। अध्ययन में उन्होंने पाया कि पारंपरिक विश्वास एक उद्यमी को नहीं रोक सकते और एक उपयुक्त प्रशिक्षण किसी उद्यमी के लिये आवश्यक प्रोत्साहन का काम कर सकता है। यह प्रयोग ''काकीनाड़ा प्रयोग'' के नाम से जाना जाता है। इस प्रयोग के बाद, लोगों ने उद्यमशीलता के प्रशिक्षण की आवश्यकता और महत्व को बढ़ावा दिया जिसे उद्यमिता विकास कार्यक्रम के नाम से जाना जाता हैः–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम के उद्देश्य

उद्यमिता विकास कार्यक्रम के उद्देश्य इस प्रकार हैः–

(1) उद्यमशीलता की गुणवत्ता को बढ़ाना या दूसरे शब्दों में उपलब्धता के लिये आवश्यकता का विकास करना।

(2) किसी व्यवसाय को स्थापित करने के लिये व्यावसायिक वातावरण का मूल्यांकन करने के लिये।

(3) विचारों के निष्पादन और परियोजना के विचारों की प्राप्ति के लिये।

(4) उपक्रम की स्थापना के लिये कार्यविधि और प्रक्रिया को समझना।

(5) उपक्रम के लिये उपलब्ध वित्तीय संसाधनों को जानने के लिये।

(6) व्यापार चलाने हेतु प्रबंधकीय कौशल को प्राप्त करने के लिये।

(7) अच्छे उद्यमी के गुणों को आत्मसात करना।

(8) अभिनव और कल्पना की योग्यता का विकास करना।

(9) उद्यमी की कीमत और विशेषाधिकारों के विषय में जानना।

(10) आवश्यक उद्यमशील अनुशासन को बढ़ावा देना।

(11) व्यापार में चल रही अनिश्चतता और जोखिम को जानना।

(12) निर्णय लेने की योग्यता का विकास करना।
(13) व्यापार के लक्ष्य और धैर्य का विकास करना।
(14) व्यापारिक कानून से अवगत होना।

उद्यमशील विकास कार्यक्रमों की पाठ्य सामग्रीः—

ई.डी.पी. की पाठ्यसामग्री इसके उद्देश्यों पर आधारित होती है। सामान्यतः ई डी पी. में निम्नलिखित बिन्दु समाहित होते हैंः—

(1) उद्यमिता का सामान्य परिचय,
(2) प्रेरणादायक प्रशिक्षण
(3) प्रबंधकीय कौशल
(4) समर्थन प्रणाली और प्रक्रिया
(5) परियोजना व्यवहार्यता अध्ययन के बुनियादी सिद्धान्त
(6) संयंत्र का मुआयना

उद्यमशीलता के विकास कार्यक्रमों के चरणः—

उद्यमशीलता के विकास के तीन चरण हैः—

पूर्व—प्रशिक्षण चरण, प्रशिक्षण चरण और प्रशिक्षण पश्चात् का चरण, जिनका विवरण इस प्रकार हैः—

(1) पूर्व प्रशिक्षण चरणः— इस चरण के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरूआत करने के लिये तैयारियों और गतिविधियों की आवश्यकता होती है जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैंः—

(1) प्रत्याशियों का चुनाव :
(2) स्थान और व्यवस्था का चुनाव
(3) प्रशिक्षकों की व्यवस्था करना।
(4) उपकरणों और तकनीक का चुनाव
(5) कार्यक्रम का प्रचार प्रसार
(6) प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और आवेदन पत्र का विकास ।

(2) प्रशिक्षण चरणः— उद्यमशीलता के विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य प्रशिक्षुओं के बीच 'उपलब्धि के लिये आवश्यकता का विकास करना है। प्रशिक्षकों में परिवर्तन देखने के लिये प्रशिक्षक को निम्नलिखित बातों को देखना चाहियेः—

1. क्या वह व्यापार के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति रखता है/ रखती है।
2. क्या वह व्यवसाय के प्रति विकसित दृष्टिकोण, कौशल रखता है/रख्ताी है।
3. क्या वह एक उद्यमी की तरह व्यवहार करता है/करती है।
4. किस तरह के उद्यमशीलता के गुणों का प्रशिक्षु में ज्यादा अभाव है।

(3) प्रशिक्षण — पश्चात् का चरणः— उद्यमशीलता के विकास कार्यक्रम का अंतिम उद्देश्य है प्रतिभागियों को उनका अपना व्यापार प्रारंभ करने के लिये तैयार करना। इस चरण में यह देखना होता है कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को किस हद तक प्राप्त कर लिया गया है जिसे ''अनुवर्ती' कहा जाता है।

14.11 सारांश

उद्यमी वह व्यक्ति होता है जो उपक्रम चलाने की जोखिम उठाता है, व्यवस्थाएं जमाता है, और आयोजन करता है। उपक्रम की स्थापना के लिये आवश्यक सभी चीजों को व्यवस्थित करता है।

उद्यमी द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य है, जोखिम उठाना, संगठन बनाना और अभिनव काम करना। जो कुछ भी उद्यमी के द्वारा किया जाता है उसे उद्यमिता कहते हैं। उद्यमिता एक प्रक्रिया है जिसमें वह सभी गतिविधियाँ शामिल हैं जो एक उद्यम प्रारंभ करने के लिये आवश्यक होती हैं। उद्यमिता कुछ कारकों की उपलब्धता पर आधारित होती है, वह कारक आर्थिक और अनार्थिक हैं।

14.12 शब्दावली

उद्यमी :– से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो व्यापार या बहुत सारे व्यापार स्थापित करता है, लाभ पाने की आशा में वित्तीय जोखिम उठाता है।

14.13 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:–

1. ––––––––––––– से तात्पर्य उपक्रम स्थापित करने के लिये उद्यमी द्वारा कार्यों का क्रियान्वयन है।
2. –––––––––– वह उद्यमी है, जो नया उत्पाद पेश करते हैं, उत्पादन का नया तरीका और उत्पाद के लिये नया बाजार पेश करते हैं।
3 –––––– अपने व्यवसाय में किसी भी प्रकार का परिवर्तन लागू करने में बहुत सतर्क रहते है।
4 –––––––– कंपनी का वह प्रबंधक है जो अभिनव उत्पाद विकास और विपणन को बढ़ावा देता है।

14.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 उद्यमिता 2. अभिनव उद्यमी 3. अवसर की प्रतीक्षा करने वाला 4. इन्ट्रप्रिन्यूर

14.15 स्वपरख प्रश्न

1. उद्यमी से आप क्या समझते हैं ? एक उद्यमी की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए ।
2. एक सफल उद्यमी के मुख्य गुणों की व्याख्या कीजिए।
3 उद्यमिता क्या है ? उद्यमी और उद्यमिता में अन्तर स्थापित कीजिए।
4 भारत में उद्यमिता के विकास और उत्पत्ति पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
5 उद्यमिता के विकास पर असर डालने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
6 उद्यमिता विकास कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं ? उद्यमिता विकास कार्यक्रम को समझाइये।
7. उद्यमिता विषय की जानकारी से एक विद्यार्थी को क्या लाभ हो सकते हैं?
8. भारत में समस्त छोटे उद्यमी किन समस्याओं का सामना करते हैं ?

14.16 संदर्भ पुस्तकें

1. Gupta, C.B. Entrepreneurial Development, Sultan Chand and Sons.
2. Jain, P.C. (Ed. II) Handbook or New Entrepreneurs. Oxford University.
3. Khanka, S.S. Entrepreneurial Development. S. Chand and Company.
4. Aknouri, Mishra, Sengupta R. Trainers Manual on Developing Entrepreneurial Motivation.

–

इकाई 15 औद्योगिक श्रम की समस्याएं , नीतियाँ एवं सुधार

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 औद्योगिक श्रम का अर्थ
15.3 औद्योगिक श्रम की विशेषताएं
15.4 औद्योगिक श्रम की समस्याएं
15.5 श्रम नीति का परिचय
15.6 भारत में श्रम विधायन
15.7 औद्योगिक श्रम नीतियों में सुधार
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 बोध प्रश्न
15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.12 स्वपरख प्रश्न
15.13 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- औद्योगिक श्रम का अर्थ और विशेषतांए जान सकें।
- औद्योगिक श्रम के सामने आने वाली समस्याओं का वर्णन कर सकें।
- औद्योगिक श्रम से संबंधित कार्यक्रमों और नीतियाँ का वर्णन कर सकें।

15.1 प्रस्तावना

भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यमी उत्पादन के कारक हैं। उत्पादन के इन चार कारकों में श्रम बहुत महत्वपूर्ण है और यह उत्पादन का सक्रिय कारक है। विश्व में मशीनीकरण और स्वचालन ने उत्पादन में मानव तत्व की भूमिका को कम नहीं किया है। यह एक मात्र मानव तत्व है जिसमें सीमित योग्यताएं और क्षमताएं हैं और जिनकी विकसित उत्पादकता, गुणवत्ता विकास चलते रहने के लिये आवश्यक है और वह प्रतिस्पर्धी बाजार में विकसित होते हैं। श्रमिक समय और शक्ति के माध्यम से संगठन को अपना योगदान देते हैं। योगदान स्वरूप उसे यथोचित वेतन और सुविधाएं दी जानी चाहिये। स्वचालन के इस आधुनिक युग में भी श्रमिक को उत्पादन का प्राथमिक कारक माना जाता है क्योंकि यह अन्य कारकों को क्रियान्वित करके उत्पादन योग्य बनाता है। जब हम श्रम की बात करते हैं, तब उस श्रम बल के रूप में समझा जाता है जो कि 15 वर्ष से 59 वर्ष तक की आयु वर्ग की उपलब्ध जनसंख्या के आयु वर्ग के आधार पर श्रम बल देने के लिये निर्धारित है। एक आकलन के अनुसार भारत में 2011 में कुल जनसंख्या का 39.49 प्रतिशत श्रम बल था। 1971 से 2011 के दौरान भारत में श्रमबल में वृद्धि हुई। 1971 में कुल श्रम 18.07 करोड़ था। जो 2001 में बढ़कर 40.22 करोड़ और 2011 में 47.79 करोड़ हो गया। भारत जैसे देश में जैसे ही ही श्रम बल बढ़ता है, रोजगार के बढ़ते अवसर भी देखने में आते हैं जिसके लिये रोजगार उत्सर्जन परियोजनाओं और कार्यक्रमों की गति के साथ आर्थिक विकास को भी गति मिलनी चाहिये। विकसित देशों के ठीक विपरीत श्रमिकों

की जनसंख्या का अनुपात कम है ऐसा जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण है। दूसरे, पुरूष श्रमिक और महिला श्रमिक अनुपात भी अलग है और श्रमिकों का एक अन्य वर्ग है। जिसे ग्रामीण मजदूर, और शहरी मजदूर कहते है जो प्रवासी श्रमिक शामिल होते है। श्रम बल बनाने में पूर्णकालीन मजदूर की भूमिका बहुत अहम होती है, और इस तरह श्रम बल की संख्या एक समय में 1971 के दौरान बहुत ऊंची थी, तब यह कुल श्रम बल की 96.8 प्रतिशत थी, जो समय के साथ कम होती गयी और 2001 के दौरान 77.8 पर स्थिर हो गयी। ग्रामीण मजदूरों की संख्या शहरी मजदूरों की अपेक्षा अधिक है क्योंकि ग्रामीण इलाकों में सभी योग्य पुरूष और महिला सदस्य खेती किसानी में व्यस्त रहते हैं।

15.2 औद्योगिक श्रम का अर्थ

औद्योगिक श्रम के अन्तर्गत वह सभी मजदूर आते है जो विनिर्माण इकाई में कार्यरत हैं। दूसरे शब्दों में, बड़े, मंझोले और लघु उद्योगों में कार्यरत मज़दूर औद्योगिक श्रम के नाम से जाने जाते है। औद्योगिक क्षेत्र को व्यापक रूप से संगठित या औपचारिक क्षेत्र एवं असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी प्रकार औद्योगिक श्रम भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– संगठित क्षेत्र में औद्यागिक श्रम और असंगठित क्षेत्र में औद्योगिक श्रम।

संगठित क्षेत्रः– वह औद्योगिक मजदूर जो औपचारिक क्षेत्र/संगठित क्षेत्र में कार्यरत है, उनके कुछ विशेषाधिकार हैं और जो उन्हें असंगठित क्षेत्र से अलग करता है। यह मजदूर संगठित क्षेत्र में स्थायी औद्योगिक मजदूर होते हैं और इनके कुछ सुरक्षा कानून है। इस संबंध में दो मुख्य कानून हैं– कारखाना अधिनियम, 1948 और औद्योगिक विवाद अधिनिमय, 1947 । कोई कारखाना/उपक्रम जो इस अधिनियम के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं उन्हें काम के घंटे, आराम, छुट्टियाँ, स्वास्थ्य और सुरक्षा आदि से संबंधित नियमों एवं विनियमों का पालन करना चाहिये। औद्योगिक विवाद अधिनियम मजदूरों को सुरक्षा प्रदान करता है। यदि उनके कार्य के दौरान कोई विवाद उत्पन्न होता है। इन दो अधिनियमों के अतिरिक्त कुछ और अधिनियम हैं जैसे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, बोनस भुगतान अधिनियम, भविष्य निधि अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम आदि, जो मजदूरों को सुरक्षा और सुविधाएं प्रदान करते हैं। सरकारी सुरक्षा के अतिरिक्त, संगठित क्षेत्र में मजदूर व्यवसाय संघ बनाने के योग्य होते हैं। व्यवसाय संघ मजदूरों को उन्हें अपने अधिकार के प्रति लड़ने के लिये एकजुट करते हैं।

असंगठित क्षेत्रः– बहुत सारे ऐसे मजदूर हैं जो उन सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं जो संगठित क्षेत्र के स्थायी मजदूरों को प्राप्त होता है। यह मजदूर अस्थायी श्रमिक या संविदा श्रमिक के रूप में कार्यरत होते हैं असंगठित क्षेत्र में बहुत सारी समस्याएं हैं जैसे रोजगार के प्रतिकूल नियम और शर्तें, कार्य सुरक्षा की कमी आदि।

15.3 औद्योगिक श्रमिक की विशेषताएं

औद्योगिक श्रमिक की निम्नलिखित विशेषताएं हैंः–

अशिक्षाः– अधिकांश औद्योगिक श्रमिक अशिक्षित हैं और वे उद्योग या अर्थव्यवस्था की समस्याओं को नहीं समझते हैं। यहाँ तक कि वे अपने अधिकारों से भी अनभिज्ञ रहते हैं।

अनुशासन का अभाव :– औद्योगिक श्रमिक में अनुशासन की समस्या बहुत भयानक समस्या है। अनुपस्थिति, अनअनुशासन और बिना किसी ठोस कारण से एक नौकरी से दूसरी तक घूमते रहना एक आम समस्या है।

कम उत्पादकता :– भारत में औद्योगिक श्रमिक की उत्पादकता बहुत धीमी है। कम उत्पादकता के कारण हैं अशिक्षा, प्रशिक्षण का अभाव और खराब स्वास्थ्य।

गरीबी :– भारत में औद्योगिक मजदूर बहुत गरीब है। गरीबी के कारण हैं कम उत्पादकता और उद्योगपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण।

अंधविश्वास :– अधिकांश भारतीय औद्योगिक श्रमिक अंधविश्वासी हैं। यह अतार्किक चीजों पर विश्वास करते हैं।

खराब आदतें :– भारत में औद्योगिक श्रमिक में बहुत बुरी आदतों की लत है। उनमें से अधिकांश अस्वास्थ्यकर व्यवहार में लिप्त है, जिनमें वह है अत्यधिक सिगरेट पीना, शराब पीना, और जुआ खेलना आदि।

15.4 औद्योगिक श्रमिक की समस्याएं

भारत में औद्योगिक श्रमिक बहुत सारी समस्याओं का सामना कर रहा है। उनमें से कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैः–

(1) **अशिक्षा की समस्या** :– औद्योगिक श्रमिक अशिक्षा की समस्या का सामना कर रहा है। परिवार के बड़े आकार एवं गरीबी के कारण भारत में औद्योगिक श्रमिक अशिक्षित है। अशिक्षा के कारण वे अपने अधिकारों और उत्तरदायित्वों को सही तरीके से समझने में असमर्थ हैं।

(2) **प्रवासी विशेषता** :– भारत में औद्योगिक श्रमिक की प्रकृति प्रवासी प्रवृत्ति की है। अधिकांश श्रमिक गाँवों से आते हैं। और व्यस्त खेती के मौसम में अपने घर जाने का प्रयास करते हैं। जिसका असर उद्योग पर पड़ता है।

(3) **कार्य करने की अच्छी परिस्थितियों का अभाव :–** भारत में उद्योगों में काम करने वाले मजदूर अस्वास्थ्यकर स्थितियों में काम करते हैं। बहुत से ऐसे नियम हैं जो नियोजकों को बाध्य करते हैं कि मजदूरों को स्वस्थ कार्य करने की स्थितियाँ दी जाए। किन्तु प्रतिस्पर्धा के चलते इन स्थितियों को भलीभांति लागू नहीं किया जाता है।

(4) **कम वेतनमान** :– विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र के औद्योगिक बहुत कम वेतन पा रहे हैं जिससे भविष्य में उनके स्वास्थ्य का ह्रास हो रहा है।

(5) **एकता का अभाव :–** भारत में औद्योगिक श्रमिक एकजुट नहीं है। वे भाषा, क्षेत्र, जाति इत्यादि के आधार पर विभाजित है। अशिक्षा, गरीबी के कारण वे स्वयं को एकत्रित या संगठित करने के अयोग्य है।

(6) **औद्यासेगिक विवादः–** भारत में औद्योगिक विवादों के बहुत से कारण है, सबसे मुख्य कारण अधिक वेतन की मांग है।

(7) **सामाजिक सुरक्षा का अभाव** :– भारत में औद्योगिक मजदूर सामाजिक सुरक्षा की समसया का सामना कर रहे है। असंगठित क्षेत्र में यह समस्या और भी गंभीर रूप में है।

(8) **खराब आदतें** :– औद्योगिक मजदूरों को गंदी आदतों की लत है वे शराब पीते हैं, सिगरेट पीते हैं जिससे उनकी दक्षता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(9) **सौदेबाजी की शक्ति का अभाव :–** भारत में औद्योगिक मजदूरों में सौदेबाजी का अभाव है उसका कारण है अकुशल मजदूरों का अधिक संख्या में प्राप्त होना। गरीबी और मजदूरों की अधिक आपूर्ति के कारण उनके सौदेबाजी का अभाव रहता है।

15.5 श्रम नीति का परिचय

श्रम नीति का अर्थ है श्रम मामलों को संचालित करने के लिये क्रियाओं, नियमों एवं विनयमों के कारण विकसित होने की प्रवृत्ति को स्थापित करना। अनेकों देशों में श्रम नीति और सरकार की भूमिका दोनों में अन्तर है। अधिक प्रजातांत्रिक देश में मानवीय स्वतंत्रताओं और मानव अधिकारों पर जोर दिया जायेगा। अर्थव्यवस्था और औद्योगीकरण के विकास के चरणों से श्रम नीतियां प्रभावित होती है। भारत में श्रम नीतियाँ निम्नलिखित प्रतिफलों से प्रभावित होती हैः–

1 सुनियोजित विकास और आर्थिक विकास से संबंधित होने पर।

2 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की आवश्यकता के लिये।

3 समाज में सामाजिक, आर्थिक असंतुलन ।

4 श्रमिक संघों एवं नियोक्ता की स्थिति में।

भारतीय श्रम नीति के दस्तावेजी स्त्रोत में निम्नलिखित सम्मिलित हैः–

(1) **राज्य के नीति निर्देशक तत्वः–** अनुच्छेद 39, 41, 42,43, 43(अ) श्रम से संबंधित सरकार की नीति बताते है। उदाहरण के लिये अनुच्छेद 39 इस बात पर जोर देता हैः–

(अ) पुरूषों और स्त्रियाँ दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो,

(ब) पुरूष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े, जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो। अनुच्छेद 42 निर्दिष्ट करता है– राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये और प्रसूति सहायता के लिये उपबंध करेगा।

अनुच्छेद 43 इस बात पर जोर देता है कि ''राज्य उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रापत कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।''

अनुच्छेद 43 (अ) यह स्पष्ट स्पष्ट करती है– ''राज्य किसी उद्योग में लगे हुये उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिये उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठायेगा।''

(2) **योजना के दस्तावेजः–** पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56) ने योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने में औद्योगिक श्रमिक के महत्व को मान्यता प्रदान की। योजना परिकल्पित की गयी, बुनियादी जरूरतों के लिये पर्याप्त प्रावधानः अच्छे स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा की सुनिश्चचता, अच्छी शैक्षणिक सुविधाएंः श्रम के स्वास्थ्य की रक्षाः श्रम के हित को बढ़ावा देने के लिये विधिक कार्यवाही, मशीनरी तक पहुंचने का निष्पक्ष अधिकार ।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–61) ने औद्योगिक शान्ति और औद्योगिक लोकतंत्र पर बल दिया। इस योजना में प्रंबधन द्वारा मजदूरों की सहभागिता और मजदूरों की शिक्षा पर जोर दिया गया था। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–66) ने औद्योगिक शान्ति के आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर जोर दिया और इसमें इस अवधारणा का विस्तार किया गया कि कामगार और प्रबंधन दोनों समान लक्ष्य प्राप्त करने के लिये भागीदार हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74) ने कामगारों के कल्याण और सुरक्षा, कामगारों की शिक्षा के कार्यक्रम, कौशल प्रशिक्षण की व्यवस्था और श्रम अनुसंधान आदि से संबंधित विधायन को सुधारने की आवश्यकता पर बल दिया । बोनस भुगतान अधिनियम 1965

दुकान एवं वाणिज्यिक प्रतिष्ठान अधिनियम, श्रमिक कल्याण राशि अधिनियम, कुछ मुख्य विघालयों पर इस दौरान ध्यान दिया गया।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–79) ने सार्वजनिक उद्यमों में पेशेवर प्रबंधन को मजबूत करने और श्रम उत्पादकता को बढ़ाने पर जोर दिया । इस काल ने आपातकालीन घोषणा देखी जिस दौरान कुछ अधिकार छीन लिये गये थे या समाप्त कर दिये गये थे।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) एवं सातवीं योजना (1985–90) में पिछले कार्यक्रमों की पुनरावृत्ति की। इन दो पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान बहुत महत्पूर्ण विधायन संशोधन किये गये तथा बीस सूत्री कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) ने यह सुनिश्चित करने पर जोर दिया कि असंगठित क्षत्रों में रोजगार की गुणवत्ता इकाईयों की कमाई, कार्य की स्थिति और सामाजिक सुरक्षा के मामले में सुधार हो। 1991 की औद्योगिक नीति ने दावों को दोहराया कि कामगारों के हितों को पूर्ण सुरक्षा दी जायेगी। इस नीति के दो मुख्य प्रस्ताव है– काम से निकाले गये कामगारों को पुनः प्रशिक्षित और तैनात किया जायेगा और यदि प्रशिक्षित नहीं हो सके तो उन्हें सुरक्षा प्रदान की जायेगी।

15.6 भारत में श्रम विधायन

श्रमिक विधि का विश्व स्तर पर औद्योगिक संबंधों के विनियमन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। औद्योगिक क्षेत्रों के लिये श्रम नीतियों का नियंत्रण विशिष्ट विधियों द्वारा होता है। निम्नलिखित विधि और नीतियाँ भारत में उद्योगों के लिये उपयुक्त हैः–

शिक्षु (एप्रेन्टिस) अधिनियम 196 :–

बीड़ी और सिगार कामगार (रोजगार की शर्तों) अधिनियम 1966, बँधुआ मजदूर व्यवस्था (समाप्ति) अधिनियम, 1976, बाल श्रमिक (निषेध और नियम) अधिनियम, 1986, बाल (श्रम का वचन) अधिनियम 1933, संविदा श्रम (नियमन और उन्मूलन) अधिनियम, 1970 कर्मचारी भविष्य निधि एवं विभिन्न प्रावधान अधिनियम, 1952, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948, नियोक्ता दायित्व अधिनियम, 1938 रोजगार विनियम (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976ः– कारखाना अधिनियम, 1948, औद्योगिक विवाद अधिनियम। औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946, अन्तरराज्यीय प्रवासी मजदूर (रोजगार और सेवा नियमन की शर्तें) अधिनियम–1979, श्रमिक विधियां (रिटर्न प्रस्तुत करने और कुछ प्रतिष्ठानों द्वारा रजिस्टरों को बनाये रखने से छूट) अधिनियम 1988, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, न्यूनतम मदजूरी अधिनियम, 1948, बोनस भुगतान अधिनियम 1965, ग्रेचुटी भुगतान अधिनियम, 1972, मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 बिक्री संवर्धन कर्मचारी (सेवा की शर्तें) अधिनियम 1976, दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम, 1953, व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926 कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, साप्ताहिक अवकाश अधिनियम, 1942 ।

कारखाना अधिनियम 1948 :

उद्देश्य :– पर्याप्त सुरक्षा उपायों को सुनिश्चित करने और श्रमिकों के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देना/कारखानों की बेतरतीव वृद्धि को रोकना।

क्षेत्र और कवरेज :'– कारखानों में काम कर रहे हालत को नियंत्रित करता है । सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताओं, कामगारों के स्वास्थ्य एवं कल्याण की देखरेख करता है। यह समस्त कामगारों पर लागू होता है। जिस कारखाने में 10 या उससे अधिक मजदूर काम

करते हैं और समस्त कारखाने बिजली का उपयोग करते हैं, और जो कारखाने बिजली का उपयोग नहीं करते हैं उनमें 20 या 20 से अधिक मजदूर काम करते हैं, उन सब पर लागू होता है।

मुख्य प्रावधानः— अनिवार्य अनुमोदन, कारखानों की लाइसेंसिंग और पंजीकरण, स्वास्थ्य उपाय, सुरक्षा उपाय और कल्याणकारी उपाय, इसके मुख्य प्रावधान है। स्त्रियों का रोजगार, दुर्घटना एवं पेशेगत बीमारी, खतरनाक क्रियाकलाप, दायित्व और कर्मचारियों के अधिकार आदि भी इसमें शामिल है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1048

उद्देश्य :— उद्योग और व्यापार में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना और यह सभी कर्मचारियें पर लागू होता है जो किसी भी प्रकार का कार्य करने के लिये कार्यरत हैं, कुशल या अकुशल, मैन्युल या लिपिकीय एक अनुसूचित बाजार में, न्यूनतम मदजूरी का निर्धारण भी इस अधिनियम का उद्देश्य ।

मुख्य प्रावधानः— कर्मचारियों के न्यूनतम मदजरी का निर्धारण, निर्धारण की प्रक्रिया और न्यूनतम मदजूरी का पुनरीक्षण, कर्मचारियें का उत्तरदायित्व ।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 :

उद्देश्य :— नियमित और उचित वेतन के भुगतान को सुनिश्चित कराना।

क्षेत्र एवं क्षेत्राधिकार :— किसी भी कारखाने में कार्यरत व्यक्तियों पर मजदूरी भुगतान अधिनियम लागू होना। वेतन के अन्तर्गत सम्मिलित है सभी पारिश्रमिक बोनस या सेवासमाप्ति पर मिलने वाली राशि किन्तु इसमें मकान का किराया, हल्के वाहन शुल्क, विकित्सकीय खर्चे आदि सम्मिलित नहीं है।

मुख्य प्रावधान :— वेतन भुगतान के लिये नियोक्ता का उत्तरदायित्व । वेतन भुगतान की प्रक्रिया और समय सीमा। वेतन में से अनुमेय कटौती। कर्मचारियें द्वारा की गयी कटौती । कर्मचारियों द्वारा किये जाने वाले नामांकन /अधिनियम के उल्लंघन के लिये दंड । पुरूष एवं स्त्री दोनों को समान वेतन । कर्मचारियों के दायित्व और अधिकार ।

कर्मचारी भविष्य निधि और विविध उपबन्ध अधिनियम, 1952 :—

उद्देश्य :— औद्योगिक कामगार की सेवानिवृत्ति के बाद उसके भविष्य के लिये या किसी कामगार की जल्दी मृत्यु होने पर उसके आश्रितों के लिये प्रावधान बनाना इस अधिनियम का उद्देश्य है। आवश्यक भविष्य निधि, पारिवारिक पेंशन भी इसके उद्देश्य है।

क्षेत्र एवं विस्तार क्षेत्र :— उन कारखानों एवं प्रतिष्ठानों पर लागू जिनमें 20 या उससे अधिक कामगार कार्यरत है। जिन कारखानों में 50 या उससे अधिक कामगार कार्यरत होते हैं वह इस अधिनियम के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। सभी व्यक्तियों पर लागू होता है जो कार्यरत है।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923:—

उद्देश्य :औद्योगिक दुर्घटना / रोजगार के अनुक्रम में व्यावसायिक बीमारी की स्थिति में अयोग्य या मृत्यु की दशा में कर्मकारों को क्षतिपूर्ति दिलाने का प्रावधान करना ।

लाभ : स्थायी आयोग्यता के लिये क्षतिपूर्ति । अस्थायी अयोग्यता, मृत्यु के लिये क्षतिपूर्ति।

संवदिा श्रमिक (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम 1970 :— इसके अन्तर्गत 9 घंटों से अधिक काम करना आवश्यक नहीं है। कार्य के घंटे सुबह 6 से शाम 7 बजे तक है।

अन्तर्राज्यीय प्रवासी कर्मकार (रोजगार का विनियमन और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1979 : इस अधिनियम के अन्तर्गत रोजगार में अलग शौचालय और धोने की सुविधा दी जानी चाहिये ।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961:—काम के 80 दिन पूरे होने पर मातृत्व लाभ दिया जाना चाहिये । प्रसव दिन के तुरन्त बाद छः सप्ताह के दौरान काम करने की आवश्कयता नहीं । गर्भावस्था के दौरान

अधिक देर तक खड़े रहना, कठिन प्रकृति का काम करने की आवश्यकता नहीं है। चिकित्सकीय सर्टिफिकेट के आधार पर, अग्रिम मातृत्व लाभ भी दिया जा सकता है।

समान पारिश्रमिक अधिनियम , 1976 :–

समान काम के लिये स्त्री और पुरूष दोनों को समान वेतन की व्यवस्था । सेवा शर्तों और नियुक्ति के मामलों में किसी तरह का भेदभाव की अनुमति नहीं है।

बाल (श्रम की वचनबद्धता) अधिनियम, 1933 : बच्चों के साथ किसी भी प्रकार की वचनबद्धता का अनुबंध शून्य होता है।

बीड़ी एवं सिगार कर्मकार (रोजगार की शर्ते) अधिनियम, 1966 :

14 वर्ष से कम आयु के बच्चों का रोजगार में लगना प्रतिबंधित है। परिवार द्वारा संचालित काम या मान्यता प्राप्त स्कूल आधारित गतिविधियों इस नियम के अपवाद हैं यात्रियों, सामान ले जाने वाले यातायात, बीड़ी बनाने, कालीन निर्माण, सीमेन्ट निर्माण, विस्फोटक, पटाखे, अभ्रक की कटाई, ऊन की सफाई आदि से संबंधित व्यवसायों में बच्चों को कार्य करने की अनुमति नहीं है। जो ठेकेदार बच्चों को रोजगार देता है, उसे स्थानीय इंस्पेक्टर को सूचना देना अनिवार्य होता है और उसे एक निर्धारित रजिस्टर भी रखना अनिवार्य होता है।

ग्रेच्युटी का भुगतान अधिनियम, 1972

उद्देश्य :– कार्यकाल के समाप्त होने पर, ग्रेच्युटी के भुगतान की व्यवस्था करना।

क्षेत्र :– कारखाने, खदाने, तेल क्षेत्र, वृक्षारोपण, बंदरगाह, रेल्वे कंपनियाँ, दुकानें और व्यावसायिक प्रतिष्ठान और अन्य प्रतिष्ठान इस अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं।

लाभ :– छः महीने से अधकि की सेवा या उसके हिस्से के पूरा होने पर 15 दिन के वेतन का प्रावधान है।

कर्मचारी राज्य बीमा, अधिनियम, 1948 :

उद्देश्य :–बीमारी, मातृत्व और रोजगार के दौरान क्षति के लिये स्वास्थ्य सुविधा, चिकित्सीय देखभाल और नकद लाभ प्रदान करना, इस अधिनियम का उद्देश्य ।

पात्रता :– इस अधिनियम का लाभ प्राप्त करने के लिये वही कर्मचारी पात्र होंगे जो 3000/– रूपये प्रतिमाह से अधिक वेतन न पा रहे हो।

लाभः– मृत्यु के लिये क्षतिपूर्ति, स्थायी अयोग्यता के लिये क्षतिपूर्ति और अस्थायी, अयोग्यता होने पर अधिक से अधिक पांच वर्षों तक वेतन की 50 प्रतिशत राशि देने का प्रावधान।

बोनस भुगतान अधिनियम, 1965

उद्देश्य :–कुछ प्रतिष्ठानों में बोनस भुगतान हेतु सांविधिक दायित्व ।

क्षेत्र एवं विस्तार :– कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत संपूर्ण भारत के कारखानों पर लागू और अन्य कारखानों पर भी जिसमें या उससे अधिक कर्मचारी कार्यरत है। सरकार 10 से 20 श्रमिकों के बीच नियोजित प्रतिष्ठानों तक अपनी कवरेज बढ़ा सकती है। पर्यवेक्षकों, प्रबंधकों और प्रशासकों, तकनीकी और लिपिकीय स्टाफ सहित सभी कर्मचारी इसमें सम्मिलित हैं।

मुख्य प्रावधान :– बोनस के लिये पात्रता, न्यूनतम और अधिकतम बोनस का भुगतान, बोनस भुगतान की समय सीमा । बोनस में कटौती, सकल लाभ की गणना और कर्मचारियों के अधिशेष अधिकारों का आवंटन इस अधिनियम के प्रावधान है।

दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम, 1953:

उद्देश्यः– रोजगार के असंगठित क्षेत्र में नियोक्ता और कर्मचारियों के अधिकार और सांविधिक दायित्व प्रदान करना इसका उद्देश्य है जैसे– दुकान और प्रतिष्ठान ।

क्षेत्र और कार्य क्षेत्रः–प्रत्येक राज्य अपने अधिनियम के लिये अपने नियम बनाये हुये हैं। प्रतिष्ठान में कार्यरत सभी व्यक्तियों पर यह अधिनियम लागू होता है। राज्य सरकार किसी भी प्रतिष्ठान को अधिनियम के सभी प्रावधानों या किसी प्रावधान से स्थायी या अस्थायी रूप से छूट प्रदान कर सकता है।

मुख्य प्रावधानः– इस अधिनियम का मुख्य प्रावधान है कि दुकान शुरू होने के 30 दिनों के अन्दर दुकान का पंजीकरण होना अनिवार्य है। प्रतिदिन और प्रति सप्ताह के काम के घंटो का प्रावधान भी इस अधिनियम में है। दुकान खोलने और बंद करने के घंटे, मध्य में आराम करने का समय और ओवर टाइम के दिशा–निर्देश यह अधिनियम तैयार करता है। वार्षिक छुट्टी के नियम, मातृत्व अवकाश, बीमारी और आकस्मिक अवकाश आदि के नियम, सेवा समाप्ति और रोजगार के नियमों के दिशा निर्देश इस अधिनियम में सम्मिलित हैं।

रजिस्टरों और अभिलेखों का रखरखाव तथा सूचना का प्रदर्शन के प्रावधान इस अधिनियम में दिये गये हैं।

व्यवसाय संघ अधिनियम 1926ः–

उद्देश्य ः– पंजीकृत व्यवसाय संघों को एक कानूनी और व्यावसायिक प्रास्थिति प्रदान करना।

क्षेत्र एवं विस्तार ः– कर्मचारियों के संघों पर, पूरे भारत पर लागू । यह एक केन्द्रीय विधायन है पर राज्य सरकार द्वारा अनुशासित होता है।

मुख्य प्रावधान ः– व्यवसाय संघ को परिभाषित करता है। यूनियन के नियमों, और पदधारकों के नाम व पते की प्रतिलिपि के साथ व्यवसाय संघ का पंजीकरण । व्यवसाय संघों का रद्द होना और व्यवसाय संघों का विघटन । पंजीकृत व्यवसाय संघों के दायित्व /व्यवसाय संघों के अधिकार ।

औद्योगिक विवाद अधिनियमः

उद्देश्य ः– विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिये एक मशीनरी प्रदान करना और सामंजस्यपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना।

क्षेत्र एवं विस्तार ः– सभी औद्योगिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर लागू प्रबंधकीय और प्रशासकीय क्षमताओं में कार्यरत व्यक्तिगतयों पर लागू नहीं होता है।

मुख्य प्रावधान ः– उद्योग औद्योगिक विवाद, छटनी, तालाबन्दी, व्यवसाय संघ, निकाला जाना, हड़ताल, वेतन, कर्मकार आदि की परिभाषाएँ। विवादों के निपटारे और अन्वेषण के लिये मशीनरी प्रदान करना। निर्णय के लिये विवादों का संदर्भ। श्रम नयायालय और न्यायाधिकरणों के पंचाट। कर्मकारों के वेतन भुगतान से संबंधित उच्च न्यायालयों में लंबित मामले । अपील का अधिकार। हड़ताल और तालाबंदी की प्रक्रिया। निकाले जाने पर क्षतिपूर्ति । छंटनी की स्थिति में क्षतिपूर्ति अनुचित श्रम व्यवहार। बंद करने की प्रक्रिया ।

15.7 औद्योगिक श्रम नीतियों में सुधार

भारत में उद्योग और मजदूरों की विशेष आवश्यकता के परिणामस्वरूप श्रम नीतियों का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिक श्रम से संबंधित कुछ विकास इस प्रकार हैः–

उद्योग में सामंजस्य बैठाने के उद्देश्य से औद्योगिक संबंधों का मसौदा तैयार किया गया । भारत सरकार ने हस्तक्षेप की शक्ति का आकलन किया जब पक्षकारों के प्रयासों से निपटने के लिये विवादों के समाधान सुलभ हो जाते हैं। समय पर कार्यवाही करके आशांति को रोकने पर जोर दिया

गया। अनुशासन संहिता सभी केन्द्रीय संगठनों द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार कर ली गयी। कर्मचारी और प्रबंधन मुकदमेबाजी, तालाबंदी और हड़ताल से बनाने के लिये सहमत हो गये। संहिता के उपबंध बनाया कि प्रत्येक मजदूर को उसके/उसकी पसंद की यूनियन में शामिल होने की स्वतंत्रता है। सरकार की सहायता से कर्मचारियों की शिक्षा के कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। विभिन्न कार्यक्रमों की सफल्ता के लिये कर्मचारियों की शिक्षा पूर्वशर्त थी। सरकार न्यूनतम वेतन लागू करने में बहुत कठोर है। बोनस से संबंधित समस्याओं के अध्ययन के लिये एक आयोग गठित किया गया।

औद्योगिक कर्मचारियों की सामाजिक सुरक्षा पर बहुत ज़ोर दिया गया। कर्मचारी भविष्य निधि योजना को आगे बढ़ाया जायेगा। संतोषजनक कार्य की परिस्थितियों की सुनिश्चितता के लिये विशिष्ट संहिता का विकास किया गया। इस संहिता में औद्योगिक कर्मचारियों की सुरक्षा और अन्य कल्याणकारी सुविधाओं की भी व्यवस्था इस संहिता में की गयी।

औद्योगिक श्रमिकों को छूट (सब्सिडी) के साथ घर प्रदान करना। औद्योगिक श्रमिकों के विभिन्न पहलुओं पर सर्वेक्षण और अनुसन्धान करना।

15.8 सारांश

औद्योगिक मजदूर के अन्तर्गत वह सब श्रमिक आते है जो विनिर्माण इकाई में कार्यरत है। औद्योगिक मजदूर की मुख्य विशेषता है अशिक्षा, अनुशासन का अभाव, उत्पादकता में कमी, गरीबी और खराब आदतें। श्रम नीति से तात्पर्य उन नियमों एवं विनियमों से है जो श्रम मामलों को नियंत्रित करते हैं। भारतीय श्रम नीति के मुख्य स्त्रोतों में पांचवर्षीय योजनाएँ और राज्य के नीति निर्देशक तत्व सम्मिलित है। श्रम नीतियाँ विशिष्ट कानूनों द्वारा नियंत्रित होती हैं। औद्योगिक श्रम नीतियों में बहुत सारे सुधार किये गये हैं।

15.9 शब्दावली

प्रशिक्षु (एप्रेन्टिस):– एप्रेंटिस एक ऐसे व्यक्ति को संदर्भित करता है जो एक कुशल नियोक्ता से कम व्यापार कर रहा है, कम कीमत पर एक निश्चित समय के लिये काम करने के लिये सहमत होता है।

15.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:–

1. ————————————— उन श्रमिकों को संदर्भित करता है जो विनिर्माण इकाई में कार्यरत है।
2. —————————— से तात्पर्य प्रवृत्ति स्थापित करना, कार्य का कारण उत्पन्न करना, श्रम मामलों के लिये नियम और विनियम बनाना है।

3 —————— पंजीकृत व्यवसाय संघों को विधिक और व्यावसायिक प्रास्थिति प्रदान करता है।

4 ———————— नियमित और शीघ्र वेतन के भुगतान को सुनिश्चित करता है।

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 औद्योगिक मजदूर   2 श्रमनीति   3 व्यवसाय संघ अधिनियम 1926 4. वेतन भुगतान अधिनियम।

15.12 स्वपरख प्रश्न

1. औद्योगिक श्रम से आप क्या समझते हैं ? भारत में औद्योगिक श्रम की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. भारत में औद्योगिक श्रम की समस्याओं पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

3. श्रम नीति को परिभाषित कीजिए। भारत में श्रम नीति के मसौदों के मुख्य स्त्रोतों की व्याख्या कीजिए।
4. कारखाना अधिनियम, 1948 के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या कीजिए और औद्योगिक विवाद अधिनियम के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।
5. भारत में औद्योगिक श्रम नीतियों में सुधारों की व्याख्या कीजिए।
6 औद्योगिक श्रमिकों के लिये भारत सरकार द्वारा बनायी गयी सामाजिक सुरक्षा उपाय क्या है ?
7 प्रवासी श्रम और ग्रामीण श्रम की शर्तों की व्याख्या कीजिए।
8 श्रमिकों के संबंध में भारतीय संविधान में क्या प्रावधान दिये गये है?

15.13 संदर्भ पुस्तकें

1. Manappa, Arun, “Industrial Relations,” by Tata McGraw Hill Publishing Company Ltd.
2. Ramaswamy, E.A. and U. Ramaswamy, “Industry and Labour,” Oxford University Press.
3. Ruddat Datt and KPM Sundharam, “Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
4. Suresh Bedi (2008), “Business Environment,” Excel Books, New Delhi.
5. Justin Paul (2008), “Business Environment,” Tata McGraw Hill.

———————

इकाई 16 कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 कृषि जन्य अर्थव्यवस्था और इसकी अद्वितीय विशेषताएं
16.3 गिरता हुआ प्रतिशत अंश एवं ह्रासमान प्रतिफल
16.4 कृषि एवं विकासशील अर्थव्यवस्था
16.5 जनसंख्या दबाब और बेरोजगारी
16.6 खेती में द्वैतवाद और छोटे खातों की दमनकारी भूमिका
16.7 गरीबी का गंभीर रूप और बलात् अवकाश
16.8 निर्यात आय
16.9 राजनीतिक और सामाजिक आयाम
16.10 भारत में कृषि की स्थिति
16.11 अन्तर क्षेत्रीय प्रभाव
16.12 कृषि निवेश की देखभाल
16.13 सारांश
16.14 शब्दावली
16.15 बोध प्रश्न
16.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.17 स्वपरख प्रश्न
16.18 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- कृषि अर्थव्यवस्था की अनूठी विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर कृषि के प्रभाव की व्याख्या कर सकें।
- विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रास्थिति की व्याख्या कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

शब्द 'कृषि' अक्सर विज्ञान एवं फसलों को बढ़ाने के लिये मिट्टी की खेती के अभ्यास के लिये इस्तेमाल किया जाता है। सामान्यतः इसमें मानव गतिविधियों के तीन समूह शामिल रहते हैं, पहला अनाज, चावल, गन्ना, चाय, कॉफी और विभिन्न खाद्य सामग्री, चारा फसलें से संबंधित है, दूसरा पशुधन की देखभाल से संबंधित है जिसमें दूध मांस के लिये पशु अंडों के लिये पोल्ट्री, मानव उपभोग के लिये मछली पकड़ना, शामिल है। इसमें शहद के लिये मधुमक्खी, पालन और अन्य व्यवसाय जो खेती किसानी से जुड़े हुये हैं, भी शामिल हैं और तीसरे घरेलू खपत और विपणन के लिये बढ़ते हुये पेड़ और जड़ी–बूटियाँ, फल और सब्जियाँ शामिल है। इसमें तम्बाकू, सोयाबीन और विभिन्न प्रकार की जड़ सम्मिलित है। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय कृषि पारंपरिक थी, अब विकास के युग तक पहुँच गयी है और दिन प्रतिदिन परिपवक्ता प्राप्त कर रहा है। जब ब्रिटिश लोगों ने भारत में शासन हेतु प्रवेश किया, तब यद्यपि कृषि पारंपरिक प्रकृति की थी, उसका ग्रामीण उद्योगों के साथ

उचित संतुलन था जिसे ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के नाम से जाना जाता है। हालांकि ब्रिटिश शासकों की नीति ने कृषि एवं ग्राम और कुटीर उद्योगों के मध्य संतुलन को नष्ट कर दिया । अपने निहित राजनीतिक हित के लिये उन्होंने जमीन के रूप में मध्यस्थों का एक वर्ग बनाकर एक प्रणाली विकसित की, जो भारत के ग्रामीण इलाकों में सत्ता को नियंत्रित करती थी। जमीदारों का यह वर्ग सामंतशाही के रूप में व्यवहार करता था और इन्हें ब्रिटिश शासकों का संरक्षण प्राप्त था, जिन्होंने किसानों को अपने विषयों के अनुरूप बनाने और उनकी लागत और कड़ी मेहनत पर धन की गणना करने में उनके गलत व्यवहारों को नज़रअंदाज किया। इन सामंती आदत के मालिकों द्वारा खेती करने वाले किसानों के बड़े हिस्से को ले लिया गया और असली कृषकों और किसानों ने अपने निर्वाह के हिस्से के साथ छोड़ दिया। गलत व्यवहार के कारण ब्रिटिशकाल में कृषि एक अनुदान व्यवसाय के रूप में हो गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब योजनाओं ने साकार रूप लेना प्रारंभ किया, कृषि सुधार पर ध्यान केन्द्रित होने लगा और जब 1966 में हरित क्रांति का शुभारंभ हुआ किसानों ने कृषि को व्यावसायिक आधार पर लेना स्वीकार कर दिया । 1950–51 की योजना में अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास के साथ कृषि पर बोझ और निर्भरता धीरे–धीरे कम हुयी।

16.2 कृषि जन्य अर्थव्यवस्था और इसकी अद्वितीय विशेषताएं

कृषि अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का गठन करती है। यदि आर्थिक गतिविधियों का प्रारंभिक प्रयास शुरू होता है और इस तरह की लहर पूरी अर्थव्यवस्था पर प्रति क्रियाओं की एक लंबी श्रृंखला में गतिविधियों की नई लहर पैदा करने तक व्याप्त है, प्रारंभ में, यह प्राथमिक क्षेत्र या तो खाद्य पदार्थों से या प्रकृति से लेकर बनाये गये पदार्थों से मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मनुष्य का जीवन साथ ही साथ अन्य लोगों का जीवन भी पेड़ पौधों के शोषण पर आधारित होता है।

कृषि अन्य वस्तुओं के निर्माण के लिये खाद्य पदार्थों को उगाने हेतु उत्पादकता की अक्षमशक्ति का इस्तेमाल कच्चा माल के रूप में करती है।

कृषि या उससे संबंधित अन्य व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय उद्भव काल से ही अर्थव्यवस्था की आय का मुख्य भाग कृषि अर्थव्यवस्था है। इसमें काम करने वाले बहुत से लोग अपनी आजीविका प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों से प्राप्त करते है। विनिर्माण क्षेत्र कृषि आपूर्ति पर आश्रित होता है जो समाप्त होने वाले है और औद्योगिक इकाई से बदल कर औद्योगिक उत्पाद में तब्दील होने जा रहे है। भारत में कृषि ऐसा उद्योग है जिसमें 1950–51 में स्वतंत्रता के बाद सबसे अधिक रोजगार प्रदान किये गये। इस क्षेत्र में 69.5 प्रतिशत जनसंख्या कार्यरत है। 2007–10 में अन्य क्षेत्रों के विकास के कारण यह प्रतिशत गिरकर 46 प्रतिशत हो गया जिसमें 65 प्रतिशत जनसंख्या पुरूष कामगार और 45 प्रतिशत स्त्री कामगार इस क्षेत्र में कार्यरत है।

कृषि अधिक गतिविधियों की एक शाखा है। अतः यहां अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त उसी तरह लागू होते हैं जैसे विनिर्माण क्षेत्र में लागू होते है। जाहिर है प्राकृतिक परिस्थितियों में कुछ महत्वपूर्ण उल्लेखनीय अंतर है जिसके अन्तर्गत कृषि पर आधारित उत्पादन किया जाता है। बड़ी संख्या में यह परिस्थितियां उपलब्ध रहती है, और विनिर्माण की स्थिति में यह परिस्थितियां नियंत्रित रहती हैं अतः कृषि उत्पादन में कुछ अनूठी और अजीब विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है, जो औद्योगिक उत्पादन में साधारणतया नहीं पायी जाती है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि दो कारकों तकनीकी उन्नति एवं जनसंख्या वृद्धि पर निर्भर करती है। तकनीकी उन्नति का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जबकि जनसंख्या वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कृषि में मजदूरों की कमी नहीं है।

श्रमिकों के माध्यमिक क्षेत्र में प्रवास के द्वारा कृषि बचत बढ़ती है, जो उच्च लाभ संभावनाओं के लिये द्वितीयक क्षेत्र में आती है। यदि नयी तकनीक के कारण कृषि निर्यात बढ़ता है, तो निर्यात से होने वाली आय विदेशी विनिमय प्रदान करती है और आयात की क्षमताओं को उत्पन्न करती है। कृषि अर्थव्यवस्था की कुछ अनूठी विशेषताएं इस प्रकार हैः–

(अ) कृषि आमतौर पर 'ग्रामीण शैली' के रूप में जीवन शैली के तरीकों का एक अनूठा संयोजन बनाती है। ग्रामीण शैली गाँवों और उसकी परिधि में एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथा है। इसके ग्रामीण पेशे और व्यवसाय के विशिष्ट पैटर्न हैं। ग्रामीण लोगों का मुख्य पेशा कृषि है। गाँवों की जनशक्ति उपयोगिता की पद्धति पूर्णरूपेण कृषि के पक्ष में है और कृषि से संबंधित गतिविधियाँ भी इसके पक्ष में है। श्रम बल का अधिकांश हिस्सा फसल उगाने, पशुपालन, बागवानी और संबंधित व्यवसायों में लगा रहता है। अतः कृषि एक अलग तरह से जीने का तरीका है, यह रीति रिवाज, चलन, विश्वास और ग्रामीण व्यवहार में अलग है।

(ब) कृषक अपने खेत से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है भूमि और उससे जुड़े वातावरण से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है। किसान का खेती के माहौल और सामुदायिक जीवन से भावनात्मक लगाव शहरी श्रमिकों के कारखानों तथा अलग तरह से काम करने से पूर्णतया अलग है। इन विशेषताओं का प्रभाव नीति निर्माण में सामाजिक और राजनीतिक आयामों पर पड़ता है।

(स) चूँकि कृषि भोजन, अंडे, मास, चीनी, फलों, सब्जियों आदि की आपूर्ति का एकमात्र स्त्रोत है, हम कृषि के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते है। भोजन के बिना मनुष्य का जवीन विलुप्त होने के दुखदचरण तक जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में कृषि से ग्रामीण जनसंख्या, शहरी जनसंख्या, ग्रामीण प्रवासी जो विनिर्माण और निर्माण के कार्यों में लगे है, उनका पेट भरता है शहरी क्षेत्र की तरह ग्रामीण व्यवसायों की भी वृद्धि होनी आवश्यक है, ताकि उद्योग व्यवसाय, निर्माण और अन्य सेवाओं को कच्चे माल की समस्या का और बढ़ती जनसंख्या में भोजन की कमी का सामना न करना पड़े।

(द) 18 वीं शताब्दी के फ्रांस के अर्थशास्त्रीयों के समूह ने जिन्हें फिजियोक्रेट कहा जाता है ने अर्थशास्त्र में विचारकों की एक शाखा का प्रतिनिधित्व किया, जिन्होंने यह निर्धारित किया कि कृषि केवल इस अर्थ में अद्वितीय है कि केवल कृषि को ही कीमत पर शुद्ध अधिशेष का उत्पादन करने की क्षमता है। कृषि में उत्पादन की मात्रात्मक वृद्धि होती है, किन्तु इसकी सीमाएं, अनिश्चितता और स्थिरता विनिर्माण और व्यापार की अपेक्षा कहीं अधिक स्थिर है। प्रकृति और कृषि का सामंजस्य निकटता लिये हुये अंतरंग है, अतः प्राकृतिक चीजों पर यह अधिक आश्रित है। मौसम, जलवायु, वर्षा, तापमान, नमी, मृदा, संपदा और कृषि में अन्य भोगोलिक प्रतिबन्धों में उतार–चढ़ाव जाहिर है। यह सीमांए कृषि की आपूर्ति में बाधा उत्पन्न करती है और कृषि उत्पाद की कीमतों पर असर डालती है।

(क) अर्थशास्त्रियों का दावा है कि उद्योग के मुकावले कृषि पर 'दीघविधि' प्रतिफल का नियम' काफी पहले लागू हो गया था। मौसमी संबंध के कारण कृषि की कुल बिक्री का विकास धीमा और अनिश्चित है।

(ख) कृषि आर्थिक विधि की अकेली विशिष्ट प्रकार नहीं है। यह विभिन्न व्यवसायों की एक व्यापक श्रेणी से संबंध रखती है। इसकी गतिविधियाँ, विविध, जटिल और एक दूसरे से भिन्न है। प्रत्येक व्यवसाय का अपना एक निश्चित सांस्कृतिक, व्यवहार होता है। सूखी भूमि

और रेगिस्तान मे ंखेती करना सिंचित और पानी वाली जगह में खेती करने से अलग है। इससे जुड़े अन्य व्यवसायों का महत्व भी जगह–जगह अलग–अलग होता है। प्रत्येक क्षेत्र में भूमि उपयोग का तरीका, फसल उगाने का तरीका पूरी तरह अलग होता है। खेती की कीमत और तकनीक में बदलाव का प्रभाव कृषि उत्पादों की कीमतों पर पड़ता है ।

(घ) कृषि क्षेत्र अपने श्रम अधिशेष और अप्रयुक्त जनशक्ति के लिये जाना जाता है क्योंकि भूमि की आपूर्ति थोड़े समय में अपरिवर्तनीय है और वास्तव में नियोजित श्रम के बावजूद जनसंख्या बढ़ती है। जबकि ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश श्रमिक कृषि में कार्यरत दिखायी देते हैं। किन्तु उत्पादन में उनकी राशि शून्य के करीब है। खेती में कम निवेश का परिणाम श्रम की कम मांग का होना है। औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रति कर्मचारी निवेश और उत्पादकता अधिक होती है ताकि शहरी मजदूरी ग्रामीण मजदूरी से अधिक हो। मजदूरों की सीमांत– उत्पादकता बढ़ जाती है, यदि ग्रामीण मजदूर पूंजीपति क्षेत्र में चले जाते हैं, अतः शहरीकरण के लिये प्रवास अपना स्थान लेता है। ऐसा इसलिये है क्योंकि पूंजीवादी क्षेत्र अपने लाभों को पुनः निवेश करने में सक्षम होते हैं और प्रति श्रमिक की उत्पादकता के साथ–साथ रोजगार को भी बढ़ावा मिलता है।

16.3 गिरता हुआ प्रतिशत अंश एवं ह्रासमान प्रतिफल

अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के कारण अक्सर राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि के संबंधित हिस्से में गिरावट आती है। प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्र में श्रमिकों के निरंतर बदलाव के कारण कृषि में कार्यरत श्रमबल के हिस्से में गिरावट आती है और राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान के प्रतिशत में भी कमी आती है। निर्वाह अर्थव्यवस्था में पारंपरिक कृषि व्यवहार में रहती है जहां उत्पादन के बाजार के लिये कोई अभिविन्यास नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र श्रम की प्रति इकाई के लिये पुर्ननवीनीकरण पूंजी की उच्च खुराक का उपयोग करता है। जब कृषि क्षेत्र में जनसंख्या और श्रमबल दोनों बढ़ती है, तब स्व–रोजगार का प्रयास बढ़ता है। अधिकांश श्रमिक पारंपरिक खेती में स्वयमेव कार्यरत हो जाते है। यह तब तक खेती करना चालू रखते हैं जब तक कि श्रम की उत्पादकता शून्य तक या शून्य के आसपास तक नहीं पहुँच जाती। अर्थशास्त्री अक्सर इसे प्रच्छन्न रोजगार के रूप में श्रम की सीमांत उत्पादकता की गिरती हुई स्थिति का नाम देते है।

कृषि उत्पाद द्वारा निर्मित औद्योगिक वस्तुओं के व्यापार के अनुकूल नियमों के खिलाफ कृषि उत्पादों और प्राथमिक उत्पादों के व्यापार की प्रतिकूल शर्तों की वजह से ही कृषि की प्रगति के द्वारा उपनिवेश अर्थव्यवस्था में विकास की सीमित संभावना है। कृषि उत्पादन के आरंभिक दौर में विवरणी की घटती क्रिया ही कृषि में होने वाली हानि की जड़ है।

पारंपरिक अर्थव्यवस्था में गैर –कृषि क्षेत्र का विकास पूर्णरूपेण घरेलू कृषि अवस्था पर निर्भर करता है। भोजन और कच्चा माल की आपूर्ति कृषि द्वारा की जाती है। प्राथमिक क्षेत्र के सहयोग के बिना दीर्घकालीन औद्योगिक क्षेत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती और यह सहयोग तभी संभव होगा जब कृषि के द्वारा दिया जाने वाला उत्पादन योगदान ठोस है या अधिक है। ग्रामीणों की पर्याप्त क्रय क्षमता के बिना औद्योगिक खरीददारों को खोजने में विफल रहते हैं और विनिर्माण क्षेत्र में नये निवेश की लहर कमजोर पड़ जाती है । पारंपरिक अप्रयुक्त बचत की आपूर्ति के द्वारा औद्योगिक क्षेत्र के विकास में कृषि को सहायता करनी होती है। कृषि द्वितीयक क्षेत्रों के विकास में योगदान देती है और परियोजनाओं को निष्पादित करने के लिये कुछ उद्यमी प्रतिभा प्रदान करके यह योगदान दिया जाता है।

16.4 कृषि एवं विकासशील अर्थव्यवस्था

अब तक हमने कृषि की भूमिका को समझ लिया जो उसे अर्थव्यवस्था के विकास में अदा करनी होती है। आज भारतीय अर्थव्यवस्था कुछ क्षेत्रों में विकास के आधुनिक सतर पर है जबकि कुछ अन्य क्षेत्रों में यह विकास से बहुत दूर है। अब हम भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति और भारतीय संदर्भ में कृषि क्षेत्र के महत्व को जानने का प्रयास करेंगे। अर्थव्यवस्था एक वर्ष के दौरान राष्ट्रों द्वारा चलायी जा रही आर्थिक गतिविधियों का संपूर्ण संकलन की सामूहिक अभिव्यक्ति है, और राष्ट्र यह देश के प्राकृतिक संसाधनों पर कार्य करते हुये करते है। विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ है अतः इन गतिविधियों का आकलन धन के निर्धारण द्वारा किया जाता है। पूरे वर्ष में पूरे उत्पादन की कीमत को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) कहा जाता है। हमारी अर्थव्यवस्था की सापेक्ष स्थिति जानने के लिये हम जी.एन.पी. के प्रति व्यक्ति मूल्य की तुलना दुनिया की अन्य अर्थव्यवस्थाओं से करते है।

पहले से ही ज्ञात तकनीकी के माध्यम से हमारी अर्थव्यवस्था सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ाने में सक्षम है और अर्थव्यवस्था के उत्पादन की उन्नति के लिये नवाचार या नये अविष्कार की कोई आवश्यकता नहीं है, इस तरह की अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था के नाम से जाना जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था है। यहां तक कि पहले से ज्ञात उत्पादन की बुनियादी संरचना का एक छोटा सा अतिरिक्त जुड़ाव, भारत को अधिक उत्पादन की ओर अग्रसर करता है। भूमि की प्रति इकाई 'उत्पादकता' का निम्न स्तर विकासशील अर्थव्यवस्था में औसत आय कम रखता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था या 'विकसित अर्थव्यवस्था' इसके ठीक विपरीत, प्रति श्रमिक औसत आय का स्तर उच्च रखती है उसका कारण है संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग और उच्च उत्पादकता । आधुनिक या 'विकसित' अर्थव्यवस्था में मुख्यतः नये नये आविष्कारों, नवाचारों और ऐसी तकनीक का प्रयोग करके ही पहले से अज्ञात है या जिसका प्रयास ही नहीं किया गया का प्रयोग करके आय के स्तर में बढ़ोत्तरी होती है। विकसित अर्थव्यवस्था में केवल कुशल प्रौद्योगिकी ही उत्पादन बढ़ा देती है जबकि विकासशील अर्थव्यवस्था में आय और उत्पादन में बढ़ोत्तरी आधुनिक देशों से प्रौद्योगिकी के प्रत्यारोपण द्वारा बढ़ायी सकती है। भारत आर्थिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र उन्नति पाने के लिये आधुनिक प्रोद्योगिकी को प्राप्त करने का कठिन प्रयास कर रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था ने पिछले छः दशकों में उत्पादन में कई गुना विविधता दी है, फिर भी यह बड़े पैमाने पर कृषि फसलों, खनिज, पशु–पालन आदि जैसे प्राथमिक वस्तुओं के निर्माता के रूप में जाना जाता है। लगभग 58 प्रतिशत ग्रामीण मजदूर अभी भी फसल के लिये समर्पित हैं हालांकि राष्ट्रीय उत्पादन में प्राथमिक क्षेत्र का शुद्ध योगदान तेजी से घट रहा है। 2011 में यह लगभग 18 प्रतिशत था। औद्योगिक और अन्य सेवा क्षेत्रों की तुलना में कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय निराशाजनक रूप से कम है।

16.5 जनसंख्या दबाव और बेरोजगारी

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भारतीय अर्थव्यवस्था संक्रमणकालीन चरण से गुजर रही है जहाँ जनसंख्या दबाव मृत्यु दर तेजी से कम होने के कारण और जन्मदर में धीमीगति के कारण तेजी से बढ़ रहा है। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जनसंख्या दबाव तेजी से बढ़ रहा है। कृषि क्षेत्र में

निवेश में कमी और उच्च श्रम आपूर्ति के कारण प्रच्छन्न प्रकार की भयानक बेरोजगारी की स्थिति बढ़ रही है।

यह अच्छी तरह से विदित है कि भारतीय अर्थव्यवस्था यहां तक कि ब्रिटिश शासन काल में भी गाँवों और उप शहरी इलाकों में कुटीर और लघु उद्योग इकाईयों के द्वारा खड़ी हुई है। इससे ग्रामीण श्रमिकों को बड़ी मात्रा में रोजगार मिलता है। विभिन्न प्रकार की शिल्प कलाएं सहायक रोजगार के अवसर प्रदान करती है। लेकिन बदलती हुयी तकनीक और जीवन शैली से शिल्प उत्पादों की मांग तेजी से घट रही है । धीरे धीरे, यह छोटी अर्थव्यवस्था विलुप्त प्राय होने की स्थिति में आ गयी। और ऐसा सिर्फ इन इकाईयों में उचित प्रौद्योगिकी परिवर्तन के अभाव के कारण और सहायक रोजगार उत्पन्न करने वाली गतिविधियों की उन्नति के लिये उचित निवेश की कमी के कारण ऐसा हुआ। शिल्प और कुटीर स्तर के औद्योगिक गतिविधियों का विलुप्त होना कामगारों के मजबूर अवकाश की अवस्था का होना रहा है। ग्रामीण बेरोजगारी कुछ क्षेत्रों में कृषि के यंत्रीकरण का उत्पाद है। कृषि मौसमी प्रकृति की होती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी बेरोजगारी एक आम लक्षण है । अगर कृषि पूंजी निर्माण और कृषि आधारभूत संरचना बनाने के लिये पर्याप्त निवेश किया गया होता तो ग्रामीण बेरोजगारी की अवस्था से बचा जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि ने रोजगार की अवस्था को और भी खराब कर दिया। बढ़ती जनसंख्या के प्रभाव को दूर करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम छः प्रतिशत पूंजी निर्माण के दर की आवश्यकता थी। अतिरिक्त 14 प्रतिशत दस्तावेजों के लिये प्रलेखों और मशीनरी के लिये बुनियादी ढांचे के लिये आवश्यक थे, इमारत में अतिरिक्त 20 प्रतिशत में कृषि में निवेश की वृद्धि सम्मिलित है। भारतीय अर्थव्यवस्था की सकल पूंजी निर्माण दर लगभग 35.9 प्रतिशत है, किन्तु कृषि पूंजी निर्माण और बुनियादी संरचना पर निवेश उद्योग और सेवाओं की तुलना में बहुत कम है। भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि प्रदर्शन में महत्वपूर्ण परिवर्तन संसाधनों के सर्वोत्तम आर्थिक उपयोग के लिये नयी तकनीकों के द्वारा प्रापत किया जा सकता है। 2004–05 में अनाज की घरेलू मांग पुनः 207 मिलियन टन हो गयी जो 2011–12 में बढ़कर लगभग 235.4 मिलियन टन हो गया और समय बीतने के साथ–साथ यह आगे भी बढ़ती गयी। भारत में जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में अनाज के उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही थी।

16.6 खेती में द्वैतवाद और छोटे खातों की दमनकारी भूमिका

भारतीय कृषि की एक बहुत ही उल्लेखनीय विशेषता सीमांत और छोटे किसानों की प्रबलता है जो बहुत कम पूंजीगत संपत्ति रखते है और उनकी पहुंच विलय संख्या में पूंजी राशि तक होती है। कृषक श्रमिकों में भारी आर्थिक असमानताएं होती है जो अधिकतर भूमि स्वामित्व और व्यावसायिक संपदा पर आधारित होती है और फसल असफलताओं और घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिये वित्तीय उधारी लेनी पड़ती है। लगभग 50 प्रतिशत भारतीय किसान केबल निर्वाह स्तर पर ही जीवन यापन कर रहे है। किसानों के पास अपना घर चलाने के लिये और जीवनयापन करने के लिये बहुत छोटे खेत है। इन 27 प्रतिशत किसानों के पास कवेल 2.4 प्रतिशत कृषि संपदा पर नियत्रंण है। 60 प्रतिशत किसान भूमि क्षेत्र का 9.3 प्रतिशत ही उपयोग में लाते है। अधिकांश खाते उत्पादक संपदा में छोटे और आकार में भी छोटे है। कृषि का उत्पादकता स्तर कौशल, योग्यता और कृषकों के संसाधनों पर नियंत्रण पर आधारित है। उद्यमिता की निचली गुणवत्ता, कम शैक्षणिक प्रदर्शन, उपकरण और कम ज्ञान अक्सर कम आय की स्थिति का उल्लेख करते है। अनुकरणीय रूढ़िवादिता, भाग्यवाद और अंधविश्वासी प्रकृति की खेती के नये तरीाकें को अपनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं। भारतीय कृषि मजदूरों के मानव विकास सूचकांक दुनियां में सबसे कम है। साक्षरता और औपचारिक शिक्षा के स्तर

में सुधार के लिये पिछले 6 दशकों की योजना के दौरान भारी प्रयासों के बावजूद कृषि उद्यमियों का ज्ञान आधार अभी भी अन्य विकासशील देशों की अपेक्षा बहुत पीछे है। 2005 में भारत का एच.डी. एल. चीन के 81 के विरूद्ध 128 था। भारतीय कृषि में तकनीकी स्तर में द्वैतवाद एक चिन्हित विशेषता है। भारतीय कृषि में विशेषरूप से पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, पश्चिमी उ.प्र. आदि में महत्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन हुआ है, जबकि भारत के अधिक हिस्से में कृषि उत्पादन के मामले में उल्लेखनीय पारंपरिकता है। 'आधुनिक' और पारंपरिक तकनीकी सहयोग का सह–अस्तित्व भारतीय कृषिकी उल्लेखनीय विशेषता है।

16.7 गरीबी का गंभीर रूप और बलात् अवकाश

गंभीर गरीबी, बेरोजगारी और प्रति श्रमिक कम उत्पादन, भारत में कृषि क्षेत्र की उल्लेखनीय विशेषताएं है। खेती के निम्न तकनीकी तरीके, सिंचाई की कमी, फसलों की कम गुणवत्ता, अनुचित उपकरण, पौधों की अपर्याप्त सुरक्षा, अपर्याप्त फसल का समर्थन, आधुनिक आदानों के लिये खराब पहुँच और प्रसंस्करण और उत्पादन क्रय के आधुनिक कौशल आदि जमीन की प्रति इकाई कम उत्पादन के कारण हैं। कम उत्पादकता गंभीर गरीबी की जड़ है। गरीबी का दुश्चक्र गरीब को हमेशा गरीबी में जकड़े रखता है। वास्तव में, बुनियादी ढाँचे पर पर्याप्त निवेश की कमी और एक तरफ फसल की तकनीकों पर शोध और दूसरी ओर बढ़ती आबादी ने कृषि को अपनी पारंपरिक स्थिति में रखा। संपदा संवर्धन और फसल के लिये तकनीक की उन्नति पर निवेश ने भारतीय कृषि उत्पादकता को बढ़ावा दिया, स्वतंत्रता से पूर्व इन आयामों पर ध्यान दिया जाना चाहिये था। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने के लिये लघु उद्योग और कुटीर शिल्प उद्योग का विकास एक आसान साधन हो सकता है। ग्रामीणों के लिये आय के अतिरिक्त स्त्रोत ढूंढने के लिये पुरानी बेरोजगारी से सहायता मिल सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे के क्रियान्वयन, निर्माण परियोजनाओं से आय, संपत्ति, दक्षता, पोषण, बचत आदि में बढ़ोत्तरी होगी।

सिंचाई संवर्धन, सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, विद्यालय और अन्य परिसंपत्ति निर्माण सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, भंडारण सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में सुधार कर सकती है। नरेगा को वर्तमान में इसी तरह के उद्देश्य से लागू किया गया है।

16.8 निर्यात आय

भारत में आर्थिक विकास की समग्र गति प्राथमिक क्षेत्र की वृद्धि और कामकाज पर निर्भर है क्योंकि उद्योग के लिये खाद्य और कच्चे माल की आपूर्ति केवल इसी क्षेत्र द्वारा की जानी है। बढ़ती जनसंख्या का भार इसी क्षेत्र द्वारा लिया जाना चाहिये। निर्यात और व्यवसाय क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भर करता है। कृषि क्षेत्र में किसी भी तरह की कमी के कारण ही खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि और कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि होती है और जिसका असर वेतन और मूल्यों पर पड़ता है। किसी भी क्षेत्र में आर्थिक विस्तार में अधिक श्रम की आवश्यकता होती है जो शहरीकरण की प्रक्रिया में प्राथमिक क्षेत्रों द्वारा प्राप्त किया जाता है। कृषि वस्तुओं के निर्यात अधिशेष का अधिकांश हिस्सा विदेशी मुद्रा उत्पन्न करता है और आयात के लिये हकदारी को बढ़ावा देता है। पूंजीगत वस्तुएं प्राथमिक क्षेत्र में विनिमय द्वारा अर्जित अर्थव्यवस्था के द्वारा खरीदी जाती है। खनिज, भोजन, शक्कर, चाय, मछली, फल, मसाले, दाले आदि विकासशील अर्थव्यवस्था के मुख्य निर्यात है। भारत में निर्यात से होने वाली आय के मख्य्य सहयोगात्मक कारक कृषि क्षेत्र जैसे जूट, चाय, वस्त्र, सूत है निर्यात आय में 50 प्रतिशत से ज्यादा का योगदान इन कारकों के द्वारा दिया जाता है। कुछ सहायक उत्पाद

जैसे काजू, तम्बाकू, काफी, शक्कर, दालें और सब्जी से बने तेल के निर्यात से लगभग 70 प्रतिशत का योगदान रहता है। 1960–61 में कुल निर्यात का 44.2 प्रतिशत कृषि निर्यात का अंश था। जोकि 1980–81 में घट कर 30.7 प्रतिशत हो गया और 2011–12 में 12.3 ही रह गया।

अब तक पिछड़ने वाली कृषि में जब प्रौद्योगिकी प्रवेश करती है, तो किसानों और प्राथमिक क्षेत्र के अन्य कर्मचारियों के हाथ में आय दोगुनी हो जाती है। इससे शहरी औद्योगिक सामान, विशेषज्ञ और सेवाओं तथा बड़ी मात्रा में विनिर्माण की मांग बढ़ जाती है। और प्राथमिक क्षेत्र एक बाजार या औद्योगिक सामान के खरीददार के रूप में उपलब्ध रहता है। विकासशील कृषि नये कार्यान्वयन, उत्पादन, उपकरणों, मशीनों, रसायनों, खादों आदि का प्रयास करता है न कि विभिन्न तकनीकी सेवाओं का । नयी मांग ने सभी क्षेत्रों में वृद्धि को ऊपर उठाया ।

16.9 राजनीतिक और सामाजिक आयाम

नयी तकनीक और विज्ञान के प्रयोग के कारण खेती उत्पादन ने आधुनिक रूप ले लिया, कृषि एक उद्योग बन गया और एक व्यवसाय के रूप में काम करने लगी । इसने एक नया प्रबंधकीय तरीका अपनाया। खेती की अनिश्चितता की कमी को फसल बीमा ने पूरा किया । जैसे जैसे अर्थव्यवस्था बढ़ती है, राष्ट्रीय आय में कृषि का सापेक्ष हिस्सेदारी कम होती जाती है और तृतीयक गैर औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर बढ़ जाती है। लेकिन तथ्य यह है ग्रामीण क्षेत्रों में समाजशास्त्रीय अन्तर – क्रिया क्षेत्र उपलबध कराकर घर पर उत्पादक प्रदत्त रोजगार में स्थिरता सुनिश्चित करने में कृषि की विशेष भूमिका है। इसके साथ–साथ कृषि का राजनीतिक महत्व भी है। लोकतंत्र मतों की शक्ति से चलता है और ग्रामीणों का मतों की महान शक्ति की वजह से सत्ताधारी सरकार पर अनुशासन रहता है। राज्य की नीतियों को रियासत और घरेलू कृषि को सुरक्षा प्रदान करने के लिये ग्रामीण लॉबी प्रभावित करती है। ग्रामीण विकास परियोजनाओं को सत्ताधारी सरकार का सहयोग मिलता है क्योंकि गाँवों में बड़ी तादाद में मताधिकारी रहते है और सत्ता पर काबिज रहने के लिये छुपे हुये राजनीतिक मुद्दों के कारण भी सत्ता पक्ष ग्रामीण विकास परियोजनाओं को सहयोग प्रदान करता है।

कृषि की भूमिका पर चर्चा का सार इस प्रकार है:–

1 प्राथमिक क्षेत्र में खाद्य और चारा के स्त्रोत के साथ–साथ औद्योगिक कच्चे माल के स्त्रोत भी है।

2 कृषि जनशक्ति के रोजगार का मुख्य स्त्रोत है।

3 उद्योग और तृतीयक क्षेत्रों में पूंजी आपूर्ति और बचत के स्त्रोत के रूप में कृषि ।

4 औद्योगिक सामानों एवं तृतीयक क्षेत्र की सेवाओं के लिये कृषि एक बाजार के रूप में उपलब्ध रहती है।

5 कृषि से व्यापार, यातायात, भंडारण और अन्य संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है।

6 व्यवसाय और उद्योगों में कृषि उद्यमियों के लिये प्रशिक्षण का मैदान है।

7 कृषि विकास के कारण ग्रामीण बुनियादी ढाँचे का विकास होता है।

8 कृषि निर्यात से अर्थव्यवस्था के लिये पूंजी अधिशेष उत्पन्न होती है।

9 विकास की प्रक्रिया में कृषि अन्य क्षेत्रों के लिये भी जनसंख्या और श्रमिकों को उपलब्ध कराता है।

10 कृषि केवल व्यवसाय नहीं है बल्कि यह सामुदायिक जीवन और कठिन ग्रामीण परिवेश में जीवन जीने की कला का प्रारूप है।

11 कृषि विकास के कारण ही स्त्रोतों का एकत्रीकरण और उपयोगिता संभव है।

16.10 भारत में कृषि की स्थिति

भारत में समृद्ध कृषि के लिये प्राकृतिक संसाधन अनुकूल रहते हैं। भारत में लगभग 53.2 प्रतिशत भूमि क्षेत्र कृषि के लिये उपयुक्त है। बांग्लादेश में 60.7 प्रतिशत, डेनमार्क में 56.6 प्रतिशत, यूक्रेन में 57 प्रतिशत भूमि खेती के लिये उपयुक्त है। भारत में कुल 32.4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र है किन्तु यह पूरा खेती के लिये उपलबध नहीं है और न ही पूरे क्षेत्र का भूमि उपयोग का पैटर्न ज्ञात है। कुछ भूमि तो अज्ञात और अमापित है जबकि कुछ भूमि निरंतर बर्फ से ढकी रहती है। लगभग 1,70,17,000 हेक्टेयर भूमि (2009 में) बंजर और खेती के अयोग्य पायी गयी। यह क्षेत्र मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, आन्ध्र, महाराष्ट्र, असम, म.प्र., उड़ीसा, कर्नाटक, हिमाचल और झारखण्ड राज्यों के है। लगभग 1,32,39,000 हेक्टेयर क्षेत्र कृषि योग्य बेकार पड़ी भूमि के रूप में चिन्हित की गयी। यह क्षेत्र लगभग 4,72,262 स्क्वेयर कि.मी. या 14.91 प्रतिशत तक हो सकता है। भारत की कृषि योग्य भूमि 15,59,05,000 हेक्टेयर है जो कुल भूमि का 60.4 प्रतिशत है। यह अमेरिका से दूसरे स्थान पर आता है। अमेरिका की कृषि योग्य भूमि 17,44,42,000 हेक्टेयर है। भारत में कुल कृषि योग्य क्षेत्र 15,55,35,000 हेक्टेयर महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आन्ध, कर्नाटक, गुजरात, बिहार, उड़ीसा, और तमिनाडु तक फैला है । भारत का सकल फसली क्षेत्र 19,51,04,000 हेक्टेयर है, जिसका अधिकांश हिस्सा उत्तरप्रदेश, महराष्ट्र, राजस्थान, आनध्र, म.प्र., कर्नाटक, गुजरात पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और पंजाब राज्यों में हैं यहाँ 83.31 करोड़ ग्रामीण जनता (2011) 640867 गाँवों में रह रही है, जहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। ग्रामीण परिवेश में इस व्यवसाय से जुड़ी अन्य गतिविधियाँ पशुपालन, डेरी, वानिकी, खदान उत्खनन, मत्स्यपालन, शिकार करना आदि है।

खेती में सफलता या असफलता का असर अन्य ग्रामीण व्यवसायों जैसे ग्रामीण शिल्प और ग्रामीण व्यवसाय पर पड़ता है। भारतीय जंगल विभिन्न प्रकार के जंगली उत्पादों के बहुत महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं, जिसके एकत्रीकरण औरप्रसंस्करण से ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार मिलता है। लगभग 2690 ऐसे गाँव जो जंगलों से लगे हुये हैं उनके आदि वासियों को जंगल आश्रय प्रदान करते है। (2005) । सबसे बड़े जंगली क्षेत्र मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, अरूणाचल प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और राजस्थान में है। 2002 में भारत का कुल जंगली क्षेत्र 7,68,436 किलोमीटर था जो जंगली क्षेत्र का 23.57 प्रतिशत तक फैला हुआ था। अंडमान निकोबार में 87 प्रतिशत जंगल हैं। सिक्किम, मणिपुर, मिजोरम और हिमाचल राज्यों में बहुत घने जंगल है। अन्य राज्यों जैसे, उत्तराखण्ड, अरूणाचल और त्रिपुरा में उनके क्षेत्र का 65 से 60 प्रतिशत तक जंगल फैला हुआ है। नागालैंड में जंगल समाप्त हो गये और यहाँ अब मात्र 52.05 प्रतिशत जंगल हैं। वनों की कटाई ने वनों को काफी कम कर दिया है जो कि 44.21 प्रतिशत तक रह गया है। वन्यजीव संरक्षण के लिये जंगलों की सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है, पर्यटन विकास के लिये, पारिस्थितिक और पर्यावरण सुरक्षा के लिये औद्योगिक उपयोग के बड़े और छोटे जंगली उत्पादों को दर किनार करते हुये जंगलों का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। वन कृषि और पशुपालन के अच्छेरखरखाव के लिये फायदेमंद है। भारतीय राष्ट्रीय वन नीति में मैदानों में 62 प्रतिशत क्षेत्र और वन क्षेत्र में 33 प्रतिशत वनक्षेत्र के आच्छादन की सिफारिश की गयी। वनीकरण और वन वृक्षारोपण की बहुतसी योजनाएं है। अतः वनों का आच्छादन कम हो रहा है। सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी, सार्वजनिक लकड़ी योजना, वन विकास निगम और बेकार भूमि विकास बोर्ड आदि वन के प्रचार के लिये कामकर रहे है। संयुक्त वन प्रबंधन योजना ने इस मिशन में भूमिहीन महिला और जनजाति की

भागीदारी की कोशिश की है। भारतीय वन अधिनियम वनों को सुरक्षा प्रदान करता है। जंगली लकड़ी और जलाऊ लकड़ी की कमी से मूल्यों में वृद्धि हुई और बड़े पैमाने पर अवैध वनों की कटाई को प्रोत्साहित किया। वन, हवा और मिट्टी में नमी को संरक्षित करते है और भूजल को समृद्ध करते है। उच्च उपज वाली किस्मों के कार्यक्रम (एच.वाई.वी.पी.) और गहन क्षेत्र विकास कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) की नयी कृषि पद्धतियों से अधिक सिंचाई की मांग की जाती है। प्रत्येक राज्य में वनभूमि पर अतिक्रमण बढ़ रहा है और इस तरह जमीन की कीमतें प्रति वर्ष आसमान छू रही हैं।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है, 56 प्रतिशत श्रमिक बल कृषि क्षेत्र से रोजगार पाता है और आज भी भारतीय राष्ट्रीय कृषि श्रमिक भूमि के कार्यों में किसान के रूप में कार्यरत है और उनमें से 27 प्रतिशत मजदूर हैं। भारत का लगभग 12.15 प्रतिशत निर्यात सीधे कृषि से प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है और उसमें से 20 प्रतिशत कृषि उत्पादन जैसे जूट, सूत, चीनी इत्यादि से प्राप्त होता है।

16.11 अन्तर क्षेत्रीय प्रभाव

कृषि विकास का पूरी अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह कई तरह से हो सकता है:–

(अ) कृषि खेती से गैर कृषि गतिविधियों तक मजदूरों के एक बड़े खण्ड को संजोकर रखती है।

(आ) यह न केवल उद्योग, यातायात, व्यापार, सेवा क्षेत्रों के लिये कच्चामाल और भोजन उपलब्ध कराती है बल्कि प्रवासी श्रमिकों के हिस्से को बचाती है ताकि पूंजी उत्पन्न की जा सके।

(इ) कृषि अन्य क्षेत्रों के उत्पाद के लिये बाजार के रूप में कार्य करती है।

(ई) कृषि वैकल्पिक उत्पाद जैसे पेट्रोल के लिये ईथानौल, डीजल के लिये जटरोपा आदि भी उपलब्ध कराती है।

(उ) बढ़ी हुई कृषि आय संपूर्ण अर्थव्यवस्था को विभिन्न प्रभावों के द्वारा क्रियाशील करती है। निर्यात और औद्योगिक विकास कृषि उन्नति पर निर्भर करते है।

(ऊ) कृषि मौलिकता को सभी के द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

16.12 कृषि निवेश की देखभाल

खाद्य की कमी, फसल की विफलताओं और औद्योगिक कच्चेमाल के क्षेत्र में संकट से कृषि विकास में सतर्कता उत्पन्न हुई विशेष रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वाले समय में कृषि विकास पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1955) में 1960 करोड़ रूपये कृषि विकास पर व्यय किये जो कि व्यय योजना का 31 प्रतिशत था किन्तु बाद में आगे आने वाली योजनाओं में व्यय के प्रतिशत की तरह कृषि पर निवेश का अंश भी घटता गया। ग्यारहवीं योजना में यह व्यय योजना का केवल 18 प्रतिशत था (2007–12)। किन्तु ग्यारहवीं योजना में वास्तविक व्यय 36,44,720 तक बढ़ गया । कृषि पर इतनी भारी राशि का व्ययं सिंचाई, मृदा संरक्षण, सूखी–खेती, भूमि सुधार, उर्वरक आपूर्ति, नयी तकनीक और उनके क्रियान्वयन से संबंधित था। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (सी.डी.पी.) विस्तृत काम, भूमि सुधार, ग्रामीण यातायात, विद्युतीकरण, विपणन, सहकारी ऋण, बीज विकास और चुनिंदा फसलों में गुणवत्ता सुधार में अनुसंधान के अन्तर्गत कृषि सहायता सेवाओं की उत्पत्ति हुई।

यह माना जाता है कि भारत में कृषि स्वतंत्रता के बाद पहले दो दशकों तक अल्पविकसित और पारंपरिक थी। उच्च उपजों वाले विभिन्न कार्यक्रमों एच.वाई.वी.पी. द्वारा लायी गयी हरित क्रांति ने चुनी हुई फसलों में उपज में चमत्कारिक वृद्धि की। किसानों को दी जाने वाली सहायक सेवाओं

में विशेषतः सिचांई, मृदा संरक्षण, ग्रामीण कृषि साख, उत्पादन आपूर्ति, भंडारण, विपणन, खरीद एवं आधार मूल्य गारंटी तथा खाद्य वितरण आदि ने भोजन और कच्चेमाल की कीमतों में कमी लाने हेतु नेतृत्व किया।

यह महसूस किया जाता है कि प्रौद्योगिकी निरंतर संशोधन के अन्तर्गत है और नयी खोजों से सहारा भी मिल रहा है, भारतीय कृषि अक्सर घरेलू खपत और निर्यात के लिये बढ़ती मांग को पूरा करने में विफल रहती है। खरीद नीति पर्याप्त भंडारण सुविधाएं देने में असमर्थ है। ग्रामीण विकास कृषि सुधार और मुर्गीपालन, दुग्धपालन, सुअर पालन, मत्स्यपालन, फल आदि क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करती है इसके साथ ही फूल उगाने की परंपरा भी सब्जी जैसी है, अतः फूलों की खेती के विकास पर ग्रामीण विकास निर्भर करता है।

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के कारण नये विकास ने भारतीय कृषि के विकास के लये एक उत्साहवर्धक वातावरण तैयार किया, जहाँ कृषि की नयी तकनीक और व्यवसायीकरण में नये आयामों को खोला और नये बाजारों तक अपनी पहुँच बनायी। भारतीय कृषि को सिंचाई परियोजनाओं, बिजली परियोजनाओं, दुग्ध पालन तकनीक, फसल अनुसंधान, बुनियादी आधारभूत सुवधिाओं और वर्षा संचयन के लिये आधुनिक तकनीक पर तत्काल बड़े निवेश की आवश्यकता है।

16.13 सारांश

कृषि एक व्यवसाय के साथ साथ फसल की उर्वरता का विज्ञान भी हैं इससे संबद्ध कई व्यवसाय हैं जैसे दुग्ध व्यवसाय, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन, मधुमक्खी पालन, भेड़ और ऊन, और पशुपालन । कृषि किसी भी अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र के मुख्य भाग को निर्मित करता है। कृषि की कुछ मुख्य विशेषताएं है जैसे जीवन जीने का ग्रामीण पारंपरिक आधार। यह खाद्य और कच्चेमाल का उत्तम स्त्रोत है। यह लागत पर शुद्ध, अधिशेष उत्पन्न करता है। अन्य व्यवसायों की तुलना में कृषि पर अभी तक कम से कम विवरणी का कानून लागू होता है। अर्थव्यवस्था का ढाँचागत परिवर्तन कृषि के सापेक्ष प्रतिशत सहयोग को कम कर देता है। प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में कृषि जीविकोपार्जन और रोजगार का मुख्य स्त्रोत है। चूंकि व्यर्थ भूमि की आपूर्ति तय है, इसलिये औद्योगकीकरण के द्वारा जनसंख्या वृद्धि के उद्‌भव में कमी आयी । कृषि की प्रकृति मौसमी है अतः मौसमी बेकारी कृषि की एक मुख्य विशेषता है। कृषि उपभोग पर अधिशेष उत्पन्न करती है, पूंजी निर्माण की गति भी तेजी से आर्थिक विकास के लिये बहुत कम है। श्रम, कच्चामाल, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के लिये बाजार उपलब्ध कराने में कृषि क्षेत्र सहयोग करता है तथा साथ ही निर्यात योग्य अधिशेष भी उपलब्ध कराता हैं

16.14 शब्दावली

छोटे खाते : छोटी खेती की सीमा ।

कृषि : खेती की भूमि, बढ़ती फसल और चारा, प्रजनन और पशुधन, खेती को बढ़ाने से संबंधित विज्ञान, कला या व्यवसाय।

16.15 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. .... की ह्रासमान प्रतिफल का नियम .... की तुलना में कुछ जल्दी लागू होता है।

2. .... गिरी हुई अर्थव्यवस्था में उपयोग में लायी जाती है जहां उत्पादन का बाजार के लिये कोई अभिविन्यास नहीं है।
3 भारत में आर्थिक विकास की समग्र गति .... क्षेत्र के विकास और कामकाज पर निर्भर है।
4 भारत की लगभग ---------- प्रतिशत भूमि कृषि क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

16.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 कृषि, उद्योग 2 परंपरागत उद्योग 3 प्राथमिक 4. 53.2

16.17 स्वपरख प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की क्या भूमिका है ?
2. भारतीय कृषि किन कठिनाईयों का सामना करती है ?
3 भारत में कृषि उत्पाद की खराब उपज के क्या कारण है, व्याख्या कीजिए।
4 भारतीय कृषि में होने वाले सुधारों का सुझाव दीजिए ताकि यह भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक प्रभावशील अवयव बन सके।
5 भारत में कृषि के मशीनीकरण के लाभ एवं हानियों को समझाइये।
6 भारत कें कृषि से संबंधित योजनाओं और नीतियों की चर्चा कीजिए।
7 भारतीय कृषि की विशेष विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
8 भारत में हरित क्रांति पर प्रकाश डालिये ।

16.18 संदर्भ पुस्तकें

1. Rudder Datt and KPM Sundharam, “Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
2. Census of India (2011), Report of the Technical Group on Population constituted by the National Commission on Population (2006).
3. UNDP – Human Development Index, 2007 to 2009.
4. R.H. Cassen, India – Population, Economy and Society, (Delhi, 1929).
5. Government of India: Reports of Economic Surveys.
6. Jean Dreze and Amartya Sen, India – Economic Development and Social Opportunity, (Delhi, 1996).
7. T. N. Krishnan “Population, Poverty and Employment in India”, Economic and Political Weekly, Nov. 14, 1992, p. 2480.
8. Pravin Visaria, “Demographic Dimensions of Indian Economic Development” in P.R. Brahmananda and V. R. Panchmukhi The Development Process of the Indian Economy, (Bombay, 1987).
9. Does India’s Population Growth Has A Positive Effect on Economic Growth? Rohan Kothari, Social Science 410, Nov. 1999.
10. Population and Economic Development in India, N.R. Narayan Murthy, July, 2005.
11. India Development Report, 2010.
12. Mahendra K. Premi – ‘Population of India in the New Millenium, Census-2001 (New Delhi, NBT 2006).
13. Rakesh Mohan and Chandra Shekhar Pant, “Morphology of Urbanization in India’, Economic and Political Weekly, September, 18, 1982, p. 1537.
14. Frederick Harbison and Charles A. Myeres – “Education, Manpower and Economic Growth (New Delhi, 1970).
15. Indian Economy: Ruddar Datt, KPM Sundaram, S. Chand, New Delhi.
16. The Indian Economy, Environment and Policy: Ishwar C. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
17. Indian Economy: Mishra & Puri, Himalaya Publishing House, New Delhi.

इकाई 17 ग्रामीण ऋण

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 ग्रामीण व्यवसायों में निविष्टयाँ
17.3 वित्तीय आकस्मिक व्यय
17.4 निवेश की आवश्यकता
17.5 जमाधन अवधि
17.6 खतरे और जोखिम
17.7 ग्रामीण साख में परिवर्तन
17.8 अतिदेय चुनौतियाँ
17.9 प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक
17.10 वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उधार
17.11 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
17.12 कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये राष्ट्रीय बैंक
17.13 ग्रामीण निवेश एवं विकास निधि
17.14 किसानों और ग्रामीण कारीगरों की कर्जदारता
17.15 ऋणग्रस्तता के समाधान
17.16 फसल–बीमा द्वारा दीर्घावधि समाधान
17.17 ग्रामीण ऋणी और कक्ष संरचना
17.18 ग्रामीण परिवर्तन और ऋण आपूर्ति
17.19 समन्वित समर्थन के आयाम
17.20 भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्रामीण क्षेत्रों को पुनःस्थापित करने की कुंजी के रूप में ग्रामीण ऋण
17.21 सारांश
17.22 शब्दावली
17.23 बोध प्रश्न
17.24 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.25 स्वपरख प्रश्न
17.26 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- ग्रामीण परिवारों की वित्तीय आवश्यकता की प्रकृति की व्याख्या कर सकें।
- ग्रामीण वित्त से संबंधित खाका और संस्थागत आधारभूत संरचना का वर्णन कर सकें।
- ग्रामीण वित्त की समस्या का वर्णन कर सकें।

17.1 प्रस्तावना

एक कमाई हुई अर्थव्यवस्था में प्रत्येक आर्थिक गतिविधि को उत्पादन के लिये जरूरी इनपुट की खरीद के लिये धन की सहायता की आवध्यकता होती है। इसे अतीत की बचत से प्राप्त किया जा सकता है। बचत की अनुपस्थिति में पुनर्नवीनीकरण या संसाधनों के लिये नकदी या प्रकार में निवेश, उधार द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। ग्रामीण समाज में यह उधार किसानों, शिल्पकारों और ऐसे वर्गों द्वारा मांगे जाते हैं जो व्यापार, भंडारण, यातायात, विनिर्माण और विभिन्न अन्य क्षेत्रों को समर्पित होते है। इस तरह मांगी गयी राशि निजी ऋणदाताओं, मित्रों, रिश्तेदारों , बड़े किसानों और संस्थागत अभिकरणों जैसे सहकारी और व्यावसायिक बैंकों द्वारा दी जाती है। नियम एवं शर्तें, ब्याज दर, आवधिकता आदि का उत्पादन की लागत पर असर पड़ता है। उधार उपयोग के उद्देश्यों के लिये दिया जाता है। इन उधारों की कीमत का उधार लेने वाले की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि ऋणी की ऋण चुकाने की क्षमता मजबूत नहीं है तो उधार लेने वाले की आर्थिक स्थिति और खराब हो जाती है। सूखे और फसल बिगड़ जाने की स्थिति में ग्रामीण ऋण एक बड़ी चुनौती बन कर सामने आता है।

17.2 ग्रामीण व्यवसाय में निविष्टियाँ

कृषि विकास की प्रक्रिया में धन आपूर्ति और 'वित्त' सिंचाई, बीज आपूर्ति, खाद और रासायनिक उर्वरक, यांत्रिक सहायता और तकनीक आपूर्ति की तरह महत्वपूर्ण निविष्टियाँ है। ग्रामीण भारत में कृषि और उससे संबंधित व्यवसाय आर्थिक उद्यम है, तब भी और आज भी वित्तीय क्षेत्र की आवश्यकता रहती है। चूंकि कृषि भारत में जीवन जीने का एक तरीका है, जीवन के सामाजिक आयाम भी धनआपूर्ति की मांग करते है। पशुओं की परिसम्पत्तियों में अधिग्रहण, रखरखाव और प्रोत्साहन को भी पूंजी की आपूर्ति के लिये समर्थन की आवश्यकता होती है। पिछड़ी खेती में प्रयोग में लाये जाने वाले अपरिष्कृत अल्पविकसित उपकरण, औजार और उपकरणों की जगह नये कृषि यंत्र और खेती में आधुनिक अभियांत्रिकी निविष्टियों में प्रयोग कृषि प्रसंस्करण, दिन प्रतिदिन की ग्रामीण जरूरतें, यातायात कृषि उत्पाद की तकनीकी देखरेख और कठिन परिश्रम और कष्टदायक स्थिति को हटाना, के अन्तर्गत मशीनीकरण सम्मिलित है। जाहिर है, इन सब में पूंजी की सहायता की जरूरत है। केवल मशीनीकरण के माध्यम से कृषि उद्यामियों को विस्तारित पैमाने के संचालन और उच्च उत्पादकता के साथ–साथ उत्पादन की कम लागत के लाभ तक पहुँच सकते है। यहाँ तक कि अधिक किराये पर मशीन उधार लेना उसी तरह है जैसे सिंचाई के लिये किसान के द्वारा ट्यूबवैल किराये पर लेना । किसानों को वित्तीय सहायता की आवश्यकता केवल खेती के लिये नहीं होती है, बल्कि सामाजिक जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं के उपभोग हेतु भी वित्तीय सहायता आवश्यक हो जाती है।

17.3 वित्तीय आकस्मिक व्यय

समस्त वित्तीय आवश्यकताएं सामाजिक समारोहों जैसे विवाह, मृत्यु, कार्यक्रम, कानूनी प्रक्रिया, कर भुगतान, ऋण पर ब्याज भुगतान, चिकित्सकीय आवश्यकताएं या अन्य आपातकालीन स्थितियों आदि से संबंधित होती है। ग्रामीण उत्पादक वस्तुओं जैसे बीज प्राप्ति, खाद, उर्वरक, कीटनाशक, कर भुगतान और सिंचाई का भार आदि पर अपनी राशि व्यय करते हैं, जो धन की मांग नगदी में करते हैं। चूंकि किसानों के पास कम उपज के कारण अधिशेष में नकदी नहीं होती है, उन्हें उधारी लेनी पड़ती है, जो कुछ भी वहां कमाते हैं वह सब कुछ जमीन और भंडारण में लग जाता है, अतः काम चलाने के लिये उधार लेना आवश्यक हो जाता है। नये तरीके से खेती करने के तरीकों के

अन्तर्गत रासायनिक उर्वरकों और नये क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है, और फसलों की बुवाई भी नये तरीके से होती है। उन्हें अक्सर प्रमाणित परिष्कृत बीजों को लाने के लिये राशि उधार लेनी पड़ती है। खेतों के बुवाई, निराई, फसल कटाई, यातायात, भंडारण, और खेती में कार्यरत मजदूरों को पैसा देना पड़ता है। पशु खरीदने के लिये, बैल खरीदने के लिये, ट्रेक्टर किराये पर लेने के लिये, मवेशियों और मुर्गी पालन आदि के लिये, घर की आवश्यक वस्तुओं के लिये, भूमि विवाद होने पर कानूनी कार्यवाही के लिये, भूमि खरीदने के लिये, पुराने ऋणों की पुनः वापिसी के लिये, और ब्याज आदि देने के लिये नकद धन की आवश्यकता होती है और किसान धन उधार लेने का प्रयास करते है। सामाजिक आवश्यकताओं जैसे विभिन्न अवसरों पर आयोजित समारोहों एवं मनोरंजन के लिये उन्हें धन की आवश्यकता होती है, और जिसकी पूर्ति वह उधार लेकर करते है।

किसानों द्वारा लिये गये उधार को एक विशेष श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि यह उधारी खेती के लिये ली जाती हैं। यह बारिश की लगातार विफलताओं, बाढ़, सूखे और तूफान की घटनाओं के लिये अधिक अनिश्चित और जोखिम भरा है। कृषि उत्पाद सामान्यतः नष्ट होने वाले होते हैं। यहाँ तक कि भंडारण में होने की स्थिति में भी यह नष्ट होने की स्थिति में रहते हैं। खुले बाजार में बेहतर किफायती कीमतों की प्रतीक्षा करने के लिये किसान सभी मामलों में पैदावार वापिस नहीं पा सकता है। उन्हें मजबूरी और बाधाओं के तहत अस्वीकार्य कम कीमतों में उत्पादन बेचना होता है। लेनदार किसानों को लंबी अवधि के लिये किसानों को धन मुहैया कराना होता है, और इस लंबी अवधि के दौरान, फसलों के उत्पादन की बढ़ोत्तरी और बढ़ाने की वजह से, किसानों के नुकसान से बहुत उथल–पुथल होती है। इससे लेनदार की समय पर शीघ्र भुगतान की अनिश्चितता बढ़ जाती है। व्यापारी और उद्योगपति, उनके भंडार, यंत्रीकरण, और उपकरणों के खिलाफ उधार लेते है जो यदि आवश्यकता हो तो आसानी से तरल धन में बदल सकते है। दूसरी ओर किसान भूमि के विरूद्ध उधार लेते है। जिसका अन्य संपत्तियों की भांति आसानी से निपटारा नहीं किया जा सकता । किसान, उत्पाद प्रसंस्करण के लिये धन, उधार लेते है जिसमें उन्हें काफी जोखिम का सामना करना पड़ता है। यदि किसान विपणन द्वारा फसल और बिक्री के बीच की अवधि के बीच अंतरिम अवधि के लिये उधार लते है, तो यह अधिक सुरक्षित रहता है। लेनदार बाजार की उथल–पुथल की जोखिम उठाते हैं। किन्तु उन्हें फसल की जोखिम भरी और अनिश्चित उत्पादन प्रसंस्करण को उधार देने में अड़चन है। किसान अपनी खपत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उधार लेते हैं जिसमें से बहुत सी आवयकताएं अनुत्पादक और उसकी क्षमता के बाहर होती है और किसान ब्याज सहित धन लौटाने में सक्षम नहीं होते है। अतः साहूकार किसानों को युक्तियुक्त ब्याज दर पर उधार देने में असुरक्षा महसूस करते है। साहूकारों द्वारा शहरी औद्योगिक वित्त पोषण के मुकाबले किसानों द्वारा राशि के वास्तविक उपभोग का पर्यवेक्षण करना अधिक कठिन है।

17.4 निवेश की आवश्यकता

साधारतणतः किसान कुछ विशिष्ट उद्देश्यों जैसे, पूंजी निर्माण जिसमें पूंजीगत वस्तुओं , भूमि, बैल, पशु, मुर्गी, ट्यूबवैल, कुंआ, टूटफूट, सुधार, पम्प सैट, भूमि सुधार, दीवार और बाढ़ लगाना, जल निकासी, भूमि को आकार देना, पशुशेड, खाद के गड्ढे, गोदाम, गोबर गैस इकाई, फलों के बागान, नर्सरी, फसल, सुअर पालन, मत्स्य पालन, रेशम के कीड़ों का पालन आदि सम्मिलित है, के लिये उधार का सहारा लेते है। ये सभी उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिये खेती के अतिरिक्त है। मौजूदा फसलों की निविष्टि के लिये जैसे– बीज, खाद, उर्वरक कीटनाशक, मजदूर को नकद भुगतान, कर और किराये और पशु चारा खरीदने के लिये उधार लिया जाता है। इसके अलावा कुछ और मद भी

है जिनके लिये उधार लेना आवश्यक हो जाता है। किसान अक्सर अपना पैसा अनुत्पादक उपयोगों में लगा देते है। जिससे उधार लेने वाले की पैसा वापिस करने की क्षमता कम हो जाती है।

17.5 जमाधन अवधि

उधार को ठीक समय अवधि या अवधि के भीतर के द्वारा वर्गीकृत किया जा सकता है जिसके भीतर कर्जदार को ऋण चुकाना होता है। निविष्टि संबंधित उधार फसल से जुड़े हैं और फसल की कटाई और निपटान के बाद तुरन्त चुकाये जाते है। यह 3 महिने से लेकर 18 महीनों की अवधि तक होते हे। फसल के लिये लिया गया ऋण सामान्यतः 'अल्पावधि ऋण' होते है। यह एक मुश्त बिना किन्हीं किश्तों के चुकाये जाते हैं। अन्य ऋण जैसे बैलों, ट्रेक्टरों, पम्प सेटों, पशुओं, बागवानी, भूमि सुधारों, कुओं आदि 2 से 5 साल तक की अवधि के हाते है। इन्हें 'मध्यावधि ऋण' के नाम से जाना जाता है और इन्हें किश्तों में चुकाया जा सकता है। यदि जमीन, मेंड बनाने, जल निकासी, भूमि सुधार, सिंचाइ के अन्य साधनों जैसे कुंओं, ट्यूबवैल, पम्पसेट, ट्रक, मशीनरी फार्म, फार्म हाउस, पशुशेड आदि खरीदने के लिये ऋण लिया जाता है तो यह बड़ी राशि होती है और इसे 5 से 20 सालों में किश्तों में चुकाया जा सकता है। इन्हें 'दीर्घावधि ऋण' कहा जाता है और इनसे यह अपेक्षा की जाती है कि कृषि उत्पादकता में पर्याप्त रूप से वृद्धि करेंगे यदि उधार राशि का उपयोग ठीक ढंग से किया जाता है।

कृषि साख 'संपूर्ण समाज के लिये महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना किसी वित्तीय सहायता के समाज उद्योग के लिये आवश्यक कच्चामाल और भोजन लाने में असमर्थ होगा। समय के साथ–साथ हमें अधिक मात्रा में अन्न की आवश्यकता होती है और किसान की पर्याप्त क्षमताओं में वृद्धि के बिना अधिक फसल नहीं उगायी जा सकती है। अतः कृषि साख एक 'निवेश साख' 'विकासशील साख', 'उत्पाद उन्नयन साख', 'फसल–विपणन साख' और साथ साथ 'खपत साख' है, जो कृषि क्षमता वृद्धि, सुधार की वृद्धि, निविष्टियों की वृद्धि, तकनीकी वृद्धि, आय निर्माण, किसानों के भोजन के लिये आवश्यक है। पूरी तरह से इस बात की सुनिश्चितता कि ग्रामीण क्रेडिट सुवधिाएं मजबूत हुई हैं और कृषि पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जिसके बिना कृषि पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जिसके बिना कृषि उस गति से उन्नत नहीं हो सकती जितनी कि आवश्यकता है, यह समाज के हित में है।

17.6 खतरे और जोखिम

शायद, ग्रमीण ऋण अनिश्चितताओं भरे कई कारणों के लिये अधिक जोखिम वाले है। ऋण के पुनर्भुतान को सुनिश्चित करने के लिये भूमि, पशुधन, फसल और स्टॉक या केवल व्यक्तिगत ऋण के रूप में सुरक्षा दी जाती है जो ऋण लेने वाले के चरित्र और प्रतिष्ठा एवं पुर्नभुगतान के उसके पिछले अभिलेखों पर आधारित होता है। निजी साहूकार, उधार लेने वाले की संपदा, विशेषतः जेवरात और घर के विरूद्ध उधार देते हैं। निजी उधारी में व्यक्तिगत जान–पहचान और शर्तें अधिक महत्वपूर्ण होती है। ग्रामीण साख के अन्तर्गत ग्रामीण शिल्प, ग्रामीण व्यवसाय और फसल के अतिरिक्त ग्रामीण पेशें को उधार देना सम्मिलित है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में राशि लगायी जानी चाहिये।

पारंपरिक रूप से सदियों से ग्रामीण उधारी, निजी साहूकारों के अन्तर्गत आती है, उनमें से कुछ पेशेवर रूप से साहूकारी के धंधे में लिप्त होते हैं और कुछ अपने अतिरिक्त व्यवसाय के रूप में उधारी देने का काम करते हैं। अब भी ग्रामीण ऋण के अन्य स्त्रोत धनी किसान, मित्र, रिश्तेदार,

दुकानदार, व्यवसायी और अभिकर्ता है। ग्रामीण उधारी के संस्थागत स्त्रोत केवल तभी उत्पन्न होते हैं जब निजी साहूकारों के शोषण पूर्ण व्यवहार में हस्तक्षेप कर एक नया मोड़ देना होता है। सरकारी स्तर पर यह अनुभव किया गया कि किसानों की प्रास्थिति तब तक नहीं सुधारी जा सकती जब तक ग्रामीण साख के वैकल्पिक स्त्रोत की उत्पत्ति ग्रामीण लोगों की उचित आवश्कयताओं की पूर्ति के लिये नहीं हो जाती। ग्रामीण साख पुनर्संगठन से यह अपेक्षा की जा रही थी कि इससे उत्पादता वृद्धि के लिये निवेश में वृद्धि होगी, पूंजी निर्माण में वृद्वि होगी और तकनीकी विकास को न केवल कृषि में प्रोत्साहन मिलेगा, बल्कि घरेलू स्तर के कुटीर औद्योगिक उद्यम और अन्य व्यवसायों को भी प्रोत्साहन मिलेगा। ग्रामीण साख पुर्नसंगठन का उद्‌देश्य कीमतों को कम करना और लाभ में वृद्धि करना और उच्च्य उत्पादकता के साथ ग्रामीण साख का तालमेल बैठाना एवं कृषि में तकनीकी परिवर्तन लाना था। किसानों को युक्तियुक्त ब्याज दर पर पर्याप्त और समय पर ऋण मुहैया कराने की महत्ती आवश्यकता थी ताकि ग्रामीण परिदृश्य में कुछ परिवर्तन लाया जा सके। कृषि में तकनीकी विकास में प्रतिवर्ष अधिक से अधिक पूंजी की मांग की।

17.7 ग्रामीण साख में परिवर्तन

भारत में ब्रिटिश शासन से पहले गरीब किसानों को फसल खराब होने की स्थिति में एवं शीघ्रातिशीघ्र राशि निवेश करने की स्थिति में तकाबी उधार प्रस्तावित था । ब्रिटिश काल में भी यही व्यवस्था निरन्तर चलती रही। सरकार द्वारा किसानों को फसल ऋण के रूप में उधार दिये जाते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान तक यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही। 1905 के बाद ग्रामीण ऋण की आपूर्ति के लिये सहकारी समितियों का उद्‌भव हुआ। स्वतंत्रता के समय, सहकारी, समितियाँ बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रही थी। ग्रामीण ऋण का 33 प्रतिशत निजी साहूकारों द्वारा दिया जा रहा था । और 1951 में ग्रामीण ऋण का 3.3 प्रतिशत ही सहाकरी समितियों द्वारा उधार दिया जा रहा था। भारतीय कृषि और ग्रामीण शिल्प को पुनरूत्थान और मजबूत वित्तीय सहायता की आवश्यकता थी।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण ऋण व्यवस्था में बड़ा परिवर्तन आया। ऋण आपूर्ति सहकारी समितियों, व्यावसायिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की मजबूत पकड़ में आ गयी एवं निजी साहूकारों की भूमिका सिकुड कर रह गयी। 1969 में विभिन्न अभिकरणों द्वारा ऋण की व्यवस्था कराना प्रभाव में आया। धीरे–धीरे व्यवसायिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद व्यवसायिक बैंकों के नैटवर्क को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आर.आर.बी. के नाम से जाना गया और इसका विस्तार सहकारी उधारी के रूप में हुआ। लगभग 2,03,300 करोड़ की उधारी 2006–07 में दी गयी, जिसमें से 21 प्रतिशत सहकारी बैंकों द्वारा दिया गया, 10प्रतिशत क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों द्वारा और 69 प्रतिशत व्यावसायिक बैंकों द्वारा दिया गया। 1982 में राष्ट्रीय कृषि बैंक और ग्रामीण विकास बैंक जिन्हें नाबार्ड के नाम से जाना जाता है, यह बैंक ग्रामीण ऋण के लिये सर्वोच्च बैंक के रूप में निकल कर आयी। ऋण आपूर्ति की बहुआयामी प्रणाली के ऋण मिलना आसान हो गये । किन्तु विभिन्न अभिकरणों के मध्य समन्वय के अभाव से कई क्षेत्रों में लगातार दोहराव और अधिक मात्रा में उधार की समस्या उत्पन्न हुई और अग्रणी बैंक योजना" ब्लॉक स्तर जिला स्तर पर उधार की आवश्यकता और आपूर्ति के लिये बनायी गयी योजनाओं पर कुशलतापूर्ण कार्य नहीं कर सकी। ऐजेन्सियाँ अक्सर उधारी के लिये असम्यक प्रतियोगिता में लिप्त रहती हैं और इसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रक्रियाओं का पालन करना होता है। वे अक्सर ऋण के लिये सुरक्षा के, आधार पर ऋण देती है। अतिदेय बड़ी संख्या में हुआ। प्रत्येक एजेन्सी ने अमीर किसानों और प्रभावशाली ऋणियों का समर्थन किया एवं सीमान्त

किसानों, छोटे किसानों और उद्योगपतियों, शशिल्पकारों और छोटे व्यवसायियों को अनदेखा किया । ये ग्रामीण ऋण व्यवस्थाएं वास्तव में कमजोर वर्गों और कुटीर स्तर के उद्योग पतियों के लिये धन प्राप्त करने के अवसर पर इक्विटी नहीं ला सकतीं। राजा, नवाब, जमीदारों और अन्य उच्च स्तर के उपभोक्ताओं के उन्मूलन से रेशम, जूते और विभिन्न विलासिता के सामानों की भी समाप्ति हो गयी। शिल्पकारों को उच्च वर्ग के ग्राहकों के गायब होने के कारण अपना पैतृक व्यवसाय छोड़ना पड़ा।

17.8 अतिदेय चुनौतियाँ

सहकारी समितियों में जानबूझकर किये गये अतिदेय लगभग 42 प्रतिशत और ग्रामीण बैंकों में 47 प्रतिशत हैं। जब सारे ऋण सामने रिकार्ड में आ जाते हैं, ऋण लेने वाले साधारण छूट की प्रतीक्षा करते है। ग्रामीण उधारी 2004 के निवेश भारत आर्थिक टाइम्स सर्वेक्षण ने यह प्रतिपादित किया कि भारत में 70 प्रतिशत ग्रामीण ऋण साहूकारों द्वारा दिया जाता है और 10 प्रतिशत सार्वजनिक बैंकों द्वारा दिया जाता है। हालांकि, सहाकरी ग्रामीण ऋण मांग से 10 प्रतिशत से मिलता है। बहुआयामी ऋण आपूर्ति की विफलता साहूकारों द्वारा दिये जाने वाले उधार के रूप में चिन्हित की जाती है। बैंकों द्वारा 12 प्रतिशत और सहकारी समितियों द्वारा लगाये गये बहुत कम ब्याज की तुलना में 24 प्रतिशत की दर से धन उधार दिया गया। वास्तविक रूप में गरीब भूमिहीन छोटे और सीमान्त किसानों को व्यावसायिक बैंकों और सहकारी समितियों से ऋण नहीं मिल पा रहा था और वह अब भी अपनी 70 प्रतिशत जरूरतों के लिये साहूकारों पर ही आश्रित थे। सहकारी समितियों और व्यावसायिक बैंकों में ऋण स्वीकृति की प्रक्रिया बहुत भ्रष्ट व्यवहार से लिप्त थीं। इसमें कोई शक नहीं है । 2004–2007 के दौरान अग्रिम ऋणों में तेजी आयी, जब यह 2,400 करोड़ रूपये था। यह प्रतिवर्ष 30 प्रतिशत की दर से बढ़ता गया। यद्यपि गरीबों की साहूकारों पर निर्भरता कम नहीं हुयी क्योंकि बैंकर्स और सहकारी समितियाँ धनी किसानों की मजबूत पकड़ में थी। अब प्रत्येक शाखा के लिये समयबद्ध कार्यक्रम के साथ लक्ष्य निर्धारित थे, ऋण की उपलब्धता अब ऋण लेने वालों और बँटाई के किसानों के लिये भी खुली है। अब मौलिक कृषि सहकारी समितियाँ की वाणिज्यिक बैंकों के सक्षम धन उधार देने के लिये पहुँच आसान हो गयी। समितियाँ ग्रामीणों से ज्यादा परिचित नजर आती थी, जबकि व्यावसायिक बैंकों की ग्रामीणों तक पहुंच बहुत खराब थी। धनी राज्यों में ग्रामीण ऋण आपूर्ति प्रति ऋणी अधिक थी और पिछड़े राज्यों में ऋणियों की संख्या कम थी। ऋणी अक्सर अपने धन का उपयोग व्यक्तिगत चीजों के लिये कर लेते हैं जिसकी वज़ह से संस्थागत ग्रामीण वित्तपोषण में अतिदेय बढ़ता जाता है। ग्रामीण उत्पादन के व्यय के लिये धन उधार लेते हैं जब कि अनुत्पादक मदों पर धन का व्यय कर देते है। जिससे उधार की वसूली में मुश्किल आती है। निजी ऋणदाता ब्याज की वूसली में और ऋण की निरंतरता बनाये रखने में इच्छुक रहता है। इस वजह से ग्रामीण कर्जदारों में इज़ाफा होता है।

17.9 प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

रोजगार और बेहतरीन उत्पादकता के लिये पूंजी निर्माण और भूमि में दीर्घावधि सुधार तभी संभव है जब किसानों को कम ब्याज पर पैसा मुहैया कराकर दीर्घावधि परियोजनाएं दी जायें और बहुतसारी किश्तों में पैसा जमा करने की सुविधा दी जाए। पहले यह कार्य 'भूमि बंधक बैंकों द्वारा किया जाता था। किन्तु बाद में इन्हें पुनः नयारूप देकर 'भूमि विकास बैंक' नाम दिया गया और अब पुनः नये नाम के साथ 'सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (CARDBS) के नाम से काम करती है । दो तरह की बैंके है– (1) प्राथमिक और (2) राज्य स्तरीय विकास बैंक । 2005–06 के

अनुसार पहली 696 हैं और 2005–06 के अनुसार बाद वाली 20 बैंकें है और इन बैंकों ने क्रमशः 2250 करोड़ के रूपये के उन्नत ऋण और 2900 करोड़ रूपये के ऋण के आदेश को स्वीकृत किया (2005–06) 42 प्रतिशत की सीमा तक बकाया ऋण प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंकों के साथ बहुत बड़ी समस्या है। सहकारी कृषि ग्रामीण विकास बैंके पुराने ऋणों की उन्मुक्ति के लिये, भूमि सुधारों के लिये मशीनों की खरीदी के लिये, उपकरणों की खरीदी के लिये, कुए बनाने के लिये, पंप सैट लगाने के लिये ट्यूबवैल बनाने के लिये भी यह बैंक पैसे उधार दे रही है। यह बैंकें ऋण लेने वालों की संपदा, बंधक भूमि और ऋणों की सुरक्षा को लेकर बहुत सतर्क है। कृषि के मशीनीकरण को इन बैंकों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है : और किसान दीर्घावधि उधारी के द्वारा ट्रेक्टर, थ्रेशर, पम्पसेट, ट्यूबवैल खरीदने में सक्षम हो रहे है। भारत में कृषि मशीनीकरण उनके द्वारा लिये हुये ऋण तक सीमित है। छोटे और सीमान्त किसानो को इसका लाभ नहीं मिल पाता है।

17.10 वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उधार

ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण साख उपलब्ध कराने में व्यावसायिक बैंकों की भूमिका का तेजी से विस्तार हुआ है। 1969 तक ग्रामीण शाखाएं और उससे लगी हुई अन्य शाखाएं केवल 1860 थी जो 2006 में 20585 तक पहुंच गयी, जिनके पास 1.6 करोड कृषि उधारकर्ता हैं और 2006 में 63,080 करोड़ रूपये उधार लिये । उधार ली गयी राशि का लगभग 42 प्रतिशत अल्पावधि उधार है 35 से 37 प्रतिशत मध्यावधि उधार है। कारीगरों, व्यवसायियों और छोटे व्यापारियों से संबंधित उधार 15 प्रतिशत है। इसमें डेरी, सुअर, मुर्गी, मधुमक्खी, मत्स्यपालन और बहुत से छोटे क्षेत्रों के शिल्प भी शामिल है। बैंक ऋण अदा करने की क्षमता पर शक करती है और नकारात्मकता रखती है और ऐसे वर्गो को उधार देने से बचती है जिन्हें वित्त की सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता है। बैंक से सहायता की कोई पहुंच उनके पास नहीं होती है।

1998 में भारतीय रिजर्ब बैंक ने व्यावसायिक बैंकों द्वारा खेती के लिये दिये जाने वाले ऋण के संबंध में दिशा निर्देश जारी किये जो यह दिखाते हैं कि उद्देश्य केवल व्यवहार्य आर्थिक उद्यमों की साख नहीं होना चाहिये, बल्कि यह देखना भी होना चाहिये कि अधिक से अधिक इकाईयाँ समय के साथ व्यवहार्यता अर्जित कर सकें। किसानों के लिये ऋण पर मार्जिन कम रखा जाना चाहिये। किसानों के लिये सुरक्षा की शर्तें उदार होनी चाहिये। बकायेदारों को परीक्षण संवेदना पूर्ण तरीके से होना चाहिए और पुनः निर्धारण किया जाना चाहिये और यदि संभव हो तो गरीबों को दे दिया जाना चाहिये। राजनीतिक हित अक्सर इस समस्या को उलझा देता है। बकायेदार सत्तापक्ष की मतों की ताकत बनते हैं और वह यह अपेक्षा करते हैं कि उन्हें ऋण वसूली से छूट मिल जाए। लीड बैंक योजना के द्वारा ग्रामीण साख के विस्तार के लिये व्यावसायिक बैंकों और सहकारी बैंकों के प्रयासों में सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया और यह भी प्रयास किया गया कि सभी क्षेत्र बैकिंग और साख मांग के बीच अंतर का आंकलन लीड बैंक द्वारा सर्वेक्षण द्वारा किया गया । लीड बैंकों द्वारा जिला साख योजनाएँ लायी गयीं, शाखा वार साख की दूरी में सामंजस्य बैठाया गया, किन्तु साख मांग पूरी तरह से विकास की गति का कार्य है, कुछ पिछड़े क्षेत्रों को सहेज कर नहीं रखा गया। जब तक किसानों ने बेहतर कृषि और आधुनिकीकरण के लिये अधिक धन का निवेश नहीं किया, साख की मांग भी लगभग स्थिर रहती है।

17.11 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों की साख की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हुई । यह बैंकें संस्थागत साख के माध्यम से अस्तितव में आयीं। इसके चुनिंदा लाभार्थियों को बीस सूत्री कार्यक्रम समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और ग्रामीण विकास के अन्य सामूहिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत सहायता पहुंचायी । इन्होंने वंचित वर्गों के लिये ऋण देने की अन्तर दर को लागू किया। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक छोटे और सीमांत किसानों, कृषि मजदूरों, कारीगरों, छोटे उद्यमों और कुटीर स्तर के उद्योग जैसे लक्ष्य समूहों के लिये छोटे लोगों का बैंक है। 1975 में यह बैंके उ.प्र., हरियाणा, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में कम कीमत की बैंक के रूप में स्थापित हुई। किन्तु बाद में अदालत के फैसले से लागत में वृद्धि हुई। यह उनकी कम मार्जिन आय के लिये अव्यवहार्य हो गये। उनमें से अधिकांश का प्रायोजन बैंक में विलय हो गया और 2007 में उनकी शेष संख्या 95 थी। 2007 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के शुद्ध ऋण अग्रिम 47,330 करोड़ रूपये थे।

17.12 कृषि और क्षेत्रीय विकास के लिये राष्ट्रीय बैंक

नाबार्ड (1982) कृषि और ग्रामीण विकास के लिये बैंकों और वित्तीय संस्थानों को उधार देने के लिये पुनर्वित्त एजेन्सी के लिये सर्वोच्च बैंक के रूप में कार्य करती है। यह राज्य सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, लीडिंग विकास बैंक, और भारतीय रिजर्ब बैंक द्वारा अनुमोदित अन्य बैंकों को उधार देती है। यह राज्य सरकार (20 वर्ष) को सहकारी समितियों के अशं खरीदने के लिये भी उधार देती है। यह 559 गाँवों और कुटीर उद्योगों, शिल्प और छोटे विकेन्द्रीयकृत क्षेत्र एवं राज्य एवं केन्द्र सरकार, योजना आयोग और अन्य संस्थाओं के मध्य समन्वय संस्था है। यह कृषि और ग्रामीण विकास एवं अनुसंधान को भी बढ़ावा देती है। नाबार्ड क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, ग्रामीण साख संस्थाओं, राज्य सहकारी बैंकों और राज्य एवं केन्द्र सरकारों और केन्द्रीय सहकारी बैंकों, निविष्टि क्रय, भंडारण, वितरण हेतु पुनवित्त की सुविधा मुहैया कराता है। नाबार्ड के लिये लघु सिंचाई प्राथमिक क्षेत्र है। डेरी, सूअर, मत्स्य, छोटे उद्यम, भूमि विकास, वृक्षारोपण, बागवानी, भेड़ इत्यादि छोटे ग्रामीण व्यवसायों को पुनर्वित्त द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। राज्य सरकार द्वारा चलायी जा रही ग्रामीण बुनियादी ढाँचे के विकास की योजनाओं को भी नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त किया जाता है । इनमें सिंचाई, सड़क, पुल, बाढ़ नियंत्रण, विपणन, गोदाम, भंडार, वन विकास, मत्स्य और जल मार्ग सम्मिलित है। नाबार्ड ने पुनर्वित्त गतिविधियों में सफलता पूर्वक कार्य किया है।

17.13 ग्रामीण निवेश एवं विकास निधि

ग्रामीण निवेश और विकास निधि नाबार्ड द्वारा बैंकों एवं सरकार से जमा राशि जुटा कर बनायी गयी है। इसने बैंक से 35720 करोड़ रूपये जुटाये थे और 2007 में सरकार से 60,000 करोड़ रूपये जुटाये थे। ग्रामीण निवेश एवं विकास निधि ऋण 6.5 प्रतिशत की दर से सबसे सस्ते हैं और इसमें अब सूक्ष्म वर्षा का पानी एकत्रित करना, प्राइमरी विद्यालय, पी.एच.सी, ग्रामीण सड़कें इत्यादि सम्मिलित है। नाबार्ड ने ग्रामीण वित्त संस्थाओं के मध्य केन्द्रीय स्थिति प्राप्त कर ली है यद्यपि यह पुनर्वित्त एजेंसी के रूप में इसकी भूमिका को सीमित करता है।

17.14 किसानों और ग्रामीण शिल्पकारों की कर्जदारता

उधार चुकाने की नियत तारीख से परे संचित उधार कर्जदारता की सीमा को दर्शाता है। चूंकि, वर्षा, और मौसम, तथा बाजार के रूझान से अनिश्चितता का खतरा बढ़ जाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारता की सीमा बहुत अधिक है। फसल बिगड़ना, मूल्य में उतार चढ़ाव, कम उत्पादकता, आय में कमी, बीमारी, सामाजिक विपत्ति, खर्चीले समारोह आदि का परिणाम देनदारियों से होने वाली आय

की कमाई से परे है। यह अन्तराल उधार की राशि से पूरा किया जाता है, और यदि यह चुकाया नहीं जाता है तो कर्जदारता की स्थिति बनती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (राउण्ड 59) ने इस घरेलू कर्जदारता (30.06.2002) पर रिपोर्ट दी। इसके अनुसार 2002 में 27 प्रतिशत घरेलू चीजें ऋण के अन्तर्गत थीं। जो लोग किसान नहीं थे उनका प्रतिशत 22 है। 57.1 प्रतिशत कर्जदारता संस्थागत एजेन्सियों जैसे सरकार, सहकारी समितियाँ, सहकारी बैंकें, व्यावसायिक बैंके, बीमा या वित्तीय निगमों से है। 42.9 प्रतिशत कर्जदारता के लिये साहूकार, मित्र, रिश्तेदार और कमीशन एजेन्ट जिम्मेदार माने गये हैं। गैर–संस्थागत एजेन्सियों का हिस्सा दशकों में गिरने की तैयारी कर रहा है। जबकि संस्थागत एजेन्सियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। ग्रामीण कर्जदारता के वास्तविक विस्तार की जानकारी नहीं है किन्तु यह स्पष्ट है कि किसान फसल बिगड़ने और कीमतों में उतार–चढ़ाव के कारण कर्ज के बोझ से दबे हुये हैं जबकि भूमिहीन मजदूर उधार लिया पैसे का उपभोग करने के कारण और सामाजिक कारणों या विपत्तियों के कारण कर्ज से लदे हुये हैं। लगभग 27 प्रतिशत ग्रामीण और 30 प्रतिशत की सीमा तक कर्जदार है। मूल्यों में तेजी से कर्जदारों में वृद्धि हो जाती है। कम आय, बचत बिल्कुल नहीं, आयोजनों के सामाजिक धार्मिक परंपराएं और बाढ़, बीमारी आदि जैसी विपत्तियाँ ही ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी में वृद्धि के मुख्य कारण है। कर्जदारता की निरंतरता में अधिक ब्याज दर का होना भी है जब तक कि कानूनी कार्रवाई से पुराने ऋण का बोझ नष्ट न हो । चिकित्सकीय उपचार और अंत्येष्टि पर खर्च होने वाली राशि और उससे संबंधित सामाजिक परंपराओं के कारण ग्रामीण लोग अक्सर कर्ज के बोझ से दब जाते है।

ऋणग्रस्तता गरीबी के कारण होती है जहां उधार कर्ता दिनप्रतिदिन के खर्चें ही कर पाने में असमर्थ रहता है, बचत के बारे में तो सोच ही नहीं सकता। यहाँ बहुत से लोग ऐसे हैं जो उपसीमांत या सीमांत खातों पर पूरी तरह से आश्रित है। यदि फसल के साथ–साथ कुछ सहायक व्यवसाय भी चलाया जाए तो कुछ अतिरिक्त आय की प्राप्ति होगी जिससे उधारी चुकायी जा सकेगी। दूध, अंडे, फल, सब्जियाँ, शिल्प पदार्थ, जलाने की लकड़ी आदि की बिक्री करके कुछ मदद मिल सकती है। प्राकृतिक आपदाएं जैसे तूफान, बाढ़, सूखा, कीट और दुर्घअनाएं अक्सर ग्रामीणों के सामने ऐसी स्थिति खड़ी कर देती हैं कि उन्हें साहूकारों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों और धनी किसानों से सहायता लेनी पड़ती है। उच्च ब्याज दरें, दायित्वों को बढ़ाती रहती है। पिछड़े क्षेत्रों जैसे असम, बिहार, म.प्र., उड़ीसा, उ.प्र. और पश्चिम बंगला में ब्याज दरें, अत्यधिक है। कर्ज और निवेश सर्वेक्षण (भारतीय रिजर्ब बैंक 1981) के अनुसार 1961 में 132/– रूपये की तुलना में सामान्य ऋण 2,288/– रूपये था। 2010 में यह राशि बढ़कर 7842/– रूपये हो गयी।

कर्जदारी के कारण ऋणी की कृषि भूमि का परिसमापन होकर साहूकारों के हाथों में चला जाता है और इस तरह भूमिहीन मजदूरों की संख्या और जो भूमि स्वामियों के किरायेदार या मजदूर के रूप में कार्य करते है उनकी संख्या में इजाफा होता जाता है। म.प्र., उड़ीसा, आन्ध, बिहार, पूर्वी उ.प्र. आदि में बड़ी संख्या में कर्जदार होने के कारण आदिवासियों ने अपनी खेती का हक खो दिया । ग्रामीण कर्जदारी का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक रीति रिवाजों पर होने वाले फिजूल खर्ची और कर्ज देने वालों के चालाकी भरे व्यवहार के कारण बढ़ता है।

अतः कुछ विधायकी तरीकों के कारण भूमि का साहूकारों के नाम पर स्वामित्व का अनतरण देखना आवश्यक हो जाता है जो कि पुराने कर्ज के ना चुकाने की स्थिति में किया जाता है और ऋण राशि पर समेकित ब्याज न दे पाने की स्थिति में भूमि स्वामित्व का अन्तरण साहूकार के नाम पर कर दिया जाता है।

निरंतर कर्जदारी का एक जाहिर सा परिणाम है कि छोटे और सीमांत भूमिधारी अपनी भूमि से कब्जा खो देते हैं और उन्हें भूमिहीन मजदूरों की श्रेणी में आ जाना होता है। और अपने बच्चों को ऋण के बदले में बंधक बनाना होता है। गरीब जनता को मजबूर किया जाता है कि वे अपना सामान कम कीमत पर साहूकारों को बेच दें और उच्च मनमानी दरों पर उधार लेने के लिये बाध्य हो जाते हैं। छोटे किसानों और मजदूरों द्वारा बेकार में उधार लेने का एक बहुत बड़ा कारण मद्यपान भी है। जनजातियों को उनकी अज्ञानता और अशिक्षा के कारण शोषण किया जाता है। गरीबों की सुरक्षा की दृष्टि से उधारी को रजिस्ट्रीकृत होना चाहिये ताकि साहूकारों के कपटपूर्ण व्यवहार से बचा जा सके।

17.15 ऋणग्रस्तता के समाधान

गरीबों को शाश्वत कर्जदारी से मुक्त कराने हेतु कुछ सुझाव दिये गये हैं, वह इस प्रकार हैः–

(1) अधिकारिक कानून द्वारा पैतृक ऋण का परिसमापन ।

(2) बैंकों, सहकारी समितियों और एन.जी.ओ. द्वारा दिये जाने वाले ऋणों की सीमा का विस्तार जो कि युक्तियुक्त कम ब्याज दर पर मिले ताकि पुराने ऋणों से मुक्ति मिले।

(3) 20 सूत्री कार्यक्रम में परंपरागत ऋण की वसूली पर रोक की व्यवस्था की गयी।

(4) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, सार्वजनिक क्षेत्रों की बैकों के मामले में प्रति ऋण 10,000/– रूपये की सीमा तक ऋण माफी योजना (1990) के अन्तर्गत किसानों और कुटीर स्तर के शिल्पकारों को देने की व्यवस्था का सुझाव दिया गया। यह विशिष्ट उधारकर्ताओं पर लागू होता था। (लगभग 65,000 करोड़ रूपये तक के ऋण माफ कर दिये गये। इससे कर्ज के खिलाफ अपने लड़कों को बंधक बनाने से स्वतंत्रता मिली। फसल बिगड़ने की जोखिम को पूरा करने के लिये फैसला बीमा योजना प्रारंभ की गयी ताकि कर्जदारता से बचा जा सके।

(5) फसल असफलताओं के जोखिम को कवर करने के लिये फसल बीमा की प्रभावी योजनाएँ कर्ज के लिये अग्रसर हो रही है। 1985 में 6.5 करोड़ किसानों को कवर करने का प्रयास किया गया था किन्तु यह दावा नहीं किया जा सकता है क्योंकि दावे 1623 करोड़ रूपये के थे, जबकि संग्रह केवल 313 करोड़ रूपये का था। अतः 1997 में यह समाप्त हो गया था।

(6) पशुधन – बीमा (1993–94) राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (1999–2000) और कृषि आय बीमा योजना (2003–04) का प्रयोग भारत में किया गया किन्तु बहुत कम सफलता प्राप्त हुई।

(7) बड़ी व्यावसायिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको, केन्द्रीय सहकारी बैंकों इत्यादि के द्वारा कुछ विशिष्ट उधारकर्ताओं के लिये 2007 में किसान ऋण पत्र का शुभारंभ किया गया। यह अनुत्पादक प्रकृति के उधार की तीव्र वृद्धि की जांच करता है।

ग्रामीण भारत में विशेष रूप से सीमांत और उप–सीमांत या छोटे किसानों के बीच ऋणग्रस्तता एक बहुत बड़ी समस्या है। महाराष्ट्र जैसे कुछ क्षेत्रों में व्यावसायिक फसल की असफलता ने गरीब किसानों में ऋणग्रस्तता में वृद्धि की। छोटे, सीमांत और उप–सीमांत किसानों के मध्य ऋणग्रस्तता के मूल कारणों का पता लगाने के लिये अतीत में बहुत से अध्ययन किये गये है।। असहाय उधारकर्ता आत्मघाती, मृत्यु की ओर अग्रसर है।

कृषि समुदाय के निहित व्यावसायिक जोखिम, निरंतर गरीबी और ऋण ग्रस्तिता के जोखिम के प्रबल होने के कारण इस प्रकार हैः–

(1) प्राकृतिक बलों के व्यवहार में अनिश्चितता जिस पर फसल का व्यवसाय निर्भर करता है।

(2) अनिश्चितता का मुख्य तत्व बारिश है।

(3) तेज आँधी और तूफान के कारण किसान निरन्तर तनाव में रहते है।

(4) कीड़े और टि्डडी का आक्रमण अक्सर फसलों को नष्ट कर देता है और किसानों को गरीबी और ऋणग्रस्तता की स्थिति में धकेल देता है।

(5) भूमिगत जल स्तर के सूखने और सूरज की अत्यधिक तपन से अक्सर फसल बिगड़ जाती है।

(6) अत्यधिक बरसात और बाढ़ से भी फसलों को नुकसान होता है। बीज बुबाई के समय भारी बारिश से खेती में खरबी पैदा होने लगती है क्योंकि खेती को सूर्य की पर्याप्त गर्मी चाहिये होती है ताकि बीज सही दिशा में लग सके। प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त फसलों में लगने वाली बीमारी और आग जैसे कुछ विशिष्ट कारण भी है।

प्राकृतिक बल के जोखिम के अतिरिक्त बीज की उपलब्धता, पर्याप्त पानी और मजदूर, खाद और उर्वरक, और कीटनाशकों से संबंधित अन्य जोखिम भी है। बाजारों की जोखिम अक्सर किसानों को आत्महत्या करने के लिये बाध्य करती है। जब फसल उपज का वर्तमान मूल्य बुरी तरह से गिर जाता है और किसानों को लागत तक ठीक से नहीं मिल पाती है। फसल प्रसंस्करण, भंडारण और गोदाम का अभाव अक्सर किसानों को कम कीमत पर फसल उपज समाप्त करने के लिये बाध्य करते है। इसीलिये किसान ऋण चुकाने के लिये आनन फानन में फसल उपज बिक्री का सहारा लेते हैं। कुछ प्राकृतिक जोखिम अनिवार्य है किन्तु यह बीमा योग्य है, सरकार इनकी सहायता करती है। कृषि में मख्र्य अनिश्चितता भविष्य में संसाधनों की आपूर्ति या 'कारक', उपज की अनिश्चितता, मूल्यों की सरकारी नीति, आयात, निर्यात और खरीद से संबंधित है। अन्त में, उपज उत्पादन की मांग आपूर्ति की स्थिति मुख्य हिस्सा हो सकती है जबकि गन्ना और जायद की फसलों को भारी नुकसान उठाना पड़ेगा। यदि परिपक्वता अवधि अधिक है तो अनिश्चितता भी अधिक बढ़ जाती है। उद्यमों का आकार और अधिक ब्याजदर पर ली गयी उधार राशि का निवेश दोनों ही गरीबी के कारण को समझने के लिये सुसंगत है।

विविधीकरण श्रम के साथ–साथ संसाधनों की उपयोगिता को भी धकेलता है। घेराबन्दी के कारण यह कुछ जोखिम कम कर देता है। किसान बहुत सारेव्यवसायों को एकसाथ करते हैं ताकि फसल बिगड़ने के कारण खराब दिनों में गरीबी का सामना न करना पड़े।

गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक सेवा संगठनों और संस्थागत ऐजन्सियों के समर्थन से 'सूक्ष्म चित्त' की उपयुक्त व्यवस्था को अपनाने से कुछ देशों में ग्रामीण वित्त और संचित ऋण समस्या का निपटारा किया गया है। छोटे आकार के खातों को ग्रामीण ऋणी की समस्या के लिये जिम्मेदार माना गया। उप सीमान्त और सीमान्त खातों से उत्पादनों का अधिशेष नहीं बच पाता है और इतना भी नहीं बच पाता कि वह ब्याज भी अदा कर सके और उधार लिया गया धन बढ़ता जाता है। और जो कुछ भी धन बच पाता है उसे अगली फसल पर खर्च करना पड़ता है। भारतीय किसान नयी खेती, भूमि सुधार, कुआं खोदने के निविष्टयों की खरीददारी के लिये, बैलगाड़ी के लिये, सिंचाई के लिये , लिये गये उधार धन को सामाजिक और घरेलू उपभोग के लिये गये उधार से अलग नहीं करते है। ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान केवल उत्पादन क्षमता बढ़ाकर, युक्तियुक्त कीमत पर सामान बेचने की गारंटी देकर, और बचत का स्तर बढ़ाकर किया जा सकता है। अक्सर खेती में विविधता से आय में वृद्धि की संभावना बढ़ जाती है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का आकलन राष्ट्रीय सर्वेक्षण नमूनों 59 राउण्ड 2002) अतीत में किया गया था, जिसका निष्कर्ष यह निकला कि पिछले दशकों में 1971 से 2001 तक ऋणग्रस्तता

बढ़ती गयी। 1991 से 2002 के दौरान ऋणग्रस्तता 22,211 करोड़ रूपये से बढ़कर 1,11,408 करोड़ रूपये तक पहुंच गयी। उधार लेने में यह पाँच गुना वृद्धि अधिकांशतः कृषकों के मध्य थी। यह पाया गया कि लगभग 27 प्रतिशत ग्रामीण घर कर्ज के अन्तर्गत थे। गैर संस्थागत ऋण 15.5 प्रतिशत और संस्थागत स्त्रोत ऋण 13.4 प्रतिशत था। अध्ययनों से यह स्पष्ट उल्लेख होता है कि गरीब पृष्ठ भूमि वाले ऋणी गैर संस्थागत स्त्रोतों पर अधिक निर्भर है जबकि बेहतर ऋण लेने वालों की संस्थागत स्त्रोतों पर अधिक निर्भरता थी।

यह अजीब बात है कि सहकारी साख समितियाँ, ग्रामीण बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों की संस्थागत स्त्रोत के रूप में इनके विस्तारीकरण के लिये सरकारी सहायता मिलती है, निजी साहूकारों, रिश्तेदारों, आढ़तियों, बड़े किसानों आदि की भूमिका का प्रतिशत लगभग 43 (2002) है। लगभग आठ प्रतिशत ऋण ब्याज मुक्त है और 2 प्रतिशत रियायती दरों पर उपलब्ध है, जबकि 53 प्रतिशत 15 प्रतिशत से अधिक ब्याज दर पर उधार ले रहे है। ब्याज का भुगतान, अपने में ही, बहुत भारी है। क्योंकि पीढ़ीदर पीढ़ी मूल धन बिना चुकाये ही रहता है, सिर्फ ब्याज ही चुका पाते है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम नरेगा के अन्तर्गत ग्रामीणों को दिये जाने वाले वेतन ने कुछ हद तक ऋण चुकाने के लिये बचत का काम किया।

भूमि और अन्य संपत्ति जैसे घर बनाने के लिये, दुग्धपालन के लिये पशु और बैल खरीदने के लिये, घोड़ा गाड़ी आदि खरीदने के लिये उधार लिया जाता है। इससे संपत्ति में तो बढ़ोत्तरी हो जाती है लेकिन अतिरिक्त वार्षिक आय ऋण चुकाने के लिये पर्याप्त नहीं होता है। इसके अलावा कानूनी पेचीदगियों में होने वाले खर्चों और सामाजिक समारोहों में होने वाले फिजूल खर्ची के कारण भी उधार लेना पड़ता है, और ग्रामीण परिवारों की छोटी मोटी बचत इन बिरासत में मिले ऋणों को समाप्त करने में खर्च हो जाती है। उधारकर्ता द्वारा स्वामित्ववाली भूमि मालिक द्वारा ऋण देने के निपटान के लिये लेनदार के पक्ष में निपटायी जाती है। इस स्थिति में ग्रामीण इलाकों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या बढ़ती जाती है। श्रमिकों को, अपने ताजा उधार के लिये, अपने बेटे को लेनदार के दास के रूप में प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। ये प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर ही 'बंधुआ मजदूर' बन जाते है। जब तक हम ऋणग्रस्तता की स्थिति समाप्त नहीं कर देते, हम दासता की प्रथा को रोक नहीं सकते।

इस ऋणग्रस्तता की स्थिति से निबटने का एक मात्र तरीका है अधिकारिक विधायन द्वारा पुराने ऋणों की हमेशा के लिये व्यवस्था करना। अतीत में कई राज्यों द्वारा इसे अपनाया भी गया है। किन्तु इससे अपेक्षित उद्देश्य प्रापत नहीं हो सका और इसके पीछे कारण था ऋण प्राप्त कर्ताओं का कमजोर होना और अज्ञानी होना। साहूकारों द्वारा पुराने ऋण का नवीनीकरण नये ऋण की तरह हो जाता है। यह बॉण्ड नये सिरे से तैयार होने चाहिये और उनकी समाप्ति की तिथि भी हस्ताक्षरित होनी चाहिये।

संस्थागत ऐजन्सियों की त्वरित भूमिका के द्वारा निजी साहूकारों की पकड़ को समाप्त करके समाधान खोजा जा सकता है। किन्तु प्रभावशाली समूहों और धनी किसानों का ऋण देने पर एकाधिकार कायम है जो गरीब किसानों और कामगारों को पैसा उधार देते हैं। यह भी पाया गया कि सभी प्रकार के ऋणों को एक ही श्रेणी में रखना भी गलत है। उधार देने वाली संस्थागत ऐजेन्सियों के द्वारा उत्पादक उद्देश्यों के लिये उधार दिया जाना चाहिए जबकि गैर कृषि गैर शिल्प से संबंधित विवाह, मृत्यु, चिकित्सा, कानूनी प्रक्रिया, शिक्षा आदि के लिये ऋण सरकारी ऋण निगमों द्वारा दिया जाना चाहिए । यदि अनुपयोगी उद्देश्यों के लिये ऋण लेना जारी रहता है तो चिन्ताओं का कभी अन्त नहीं होगा, अतः किसानों और कामगारों से साहूकारों द्वारा ऋण वसूली के बीस सूत्री कार्यक्रम

(1975) लाया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पुराने ऋण कम हुये और लोगों की जमीन को भी सुरक्षा प्राप्त हुई जो कि साहूकारों द्वारा ले ली गयी थी और उधार लेने वालों के लड़के जो कि बंधुआ मजदूर बन जाते थे, उससे भी सुरक्षा प्राप्त हुई। कृषि एवं ग्रामीण ऋण सहायता योजना (1990) एक महत्वपूर्ण ''ऋण माफी कानून'' था जिसके अन्तर्गत व्यावसायिक बैंकों और ग्रामीण बैंकों के दस हजार तक की राशि के ऋण माफ किये जा सकते थे। इसके अन्तर्गत किसान, किरायेदार, मजदूर, कारीगर, शिल्पकार आदि को सम्मिलित किया गया। ऋणग्रस्तता के वास्तविक समाधान इस प्रकार हैः–

(1) उत्पादकता में वृद्धि के द्वारा ग्रामीणों की वित्तीय स्थिति में सुधार एवं बाजार में उनके उत्पादन के निश्चित न्यूनतम मूल्य का निर्धारण ।

(2) आत्म संतुष्टि के लिये फिजूल खर्ची पर ग्रामीण उधार लेने वाले की सतर्कता भी हल है।

(3) सभी जोखिम भरी फसलों का फसल बीमा योजना के अन्तर्गत बीमा करके। फसल की जोखिम के साथ–साथ उत्पाद का बाजार का भी जोखिम रहता है । अतः इस जोखिम के कुछ हिस्से की कीमत राज्य द्वारा दी जानी चाहिए।

17.16 फसल बीमा द्वारा दीर्घावधि समाधान

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना को व्यावसायिक बैंकों, ग्रामीण बैंकों और सहकारी समितियों से ऋण लेने के लिये 1985 में सम्मिलित किया गया जिसकी विस्तार 10,000 रूपये तक था। प्रभार बहुत कम थे, चावल और गेहूँ पर 2 प्रतिशत तथा दालों और तेलों पर 2 प्रतिशत प्रभार था। इसमें केवल 15 राज और 2 संघ शासित क्षेत्र थे। इसके अन्तर्गत 50 लाख किसान आते थे। भारतीय साधारण बीमा निगम ने इस योजना का क्रियान्वयन किया। योजना 212 करोड़ रूपये (1999) का प्रीमियम पाकर प्रभावशाली थीं और (2006–07) में 610 करोड़ रूपये प्रीमियम के रूप में प्राप्त होते थे। 1999 में 1,230 करोड़ रूपये के दावे थे 2006–07 में 2,250 करोड़ रूपये के दावे थे। इस योजना ने न्यूनतम उत्पादन स्तर की गारंटी दी, इस योजना के तहत थोड़ी सी गिरावट का मुआवजा दिया गया था। इस योजना ने मूंगफली उत्पादकों को काफी लाभान्वित किया, लाखों लोागों को भारी ऋणग्रस्ततता से बचाया । आगे जाकर यह योजना नये रूप में सामने आयी जिसे एन.ए.आई.एस. (1999–2000) नाम दिया गया, इसका क्षेत्र विस्तृत हो गया और इसका प्रभाव क्षेत्र 21 राज्यों और दो संघ शासित क्षेत्रों तक बढ़ा दिया गया। एक नयी कम्पनी की उत्पत्ति हुई जिसे भारतीय कृषि बीमा कंपनी (2002) (ए.आई.सी.आई.) के नाम से जाना गया, यह कंपनी साधारण बीमा निगम और नाबार्ड के समन्वय से स्थापित हुयी। व्यावसायिक फसल उत्पादकों को लाभ पहुंचाना इस बीमा का उद्देश्य था।

एक नये संगठन की उत्पत्ति हुई जिसे कृषि आय बीमा योजना (एफ.आई.आई.एस.) 2003–04) का नाम दिया गया। यह गुंजाइश और क्षेत्र में विस्तार होने की संभावना वाली एक पायलट परियोजना है। एक मौसम आधारित फसल बीमा योजना को अब निजी सामान्य बीमा योजना के सहयोग से परीक्षण (2007–08) के लिये रखा गया है। पुशधन बीमा का भी परीक्षण किया गया जिसमें 20 मिलियन पशुओं को सम्मिलित किया गया। इस योजना में सुधार की काफी संभावनाएं हैं। बांग्लादेश के मॉडल पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 'सूक्ष्म ऋण योजना' तैयार की जाती है, जो कि 'स्वयं सहायता समूहों ' पर निर्भर करता है। इसको नाबार्ड और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं सहकारी बैंकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त है।

सूक्ष्म ऋण योजना तकनीकी रूप से गरीबों के साथ बैकिंग के आधार पर वित्त सेवा का एक नेटवर्क है। इस योजना को काफी कम लागत वाले छोटे–छोटे भूमि धारकों की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने में सफलता मिली है।

17.17 ग्रामीण ऋणग्रस्तता एवं कक्ष संरचना

ग्रामीण जीवन के पुनर्गठन और सहकारी पुनर्निमाण भू–स्वामित्व में विशाल अंतराल की कमी के साथ और हरित क्रांति के बाद उभरने वाले नव प्रवर्तनवाद के कारण ही संभव हो सका। ग्रामीण ऋणग्रस्तता के विनाश की ओर किये गये कार्यों से निश्चित ही भूमि सुधार संभव हो सकेगा। ग्रामीण ऋणग्रस्तता के विनाश की ओर किये गये कार्यों से निश्चित ही भूमि सुधार संभव हो सकेगा। ग्रामीण जीवन में पारंपरिक मूल्यों से प्राधिकार, प्रास्थिति और निहित सामाजिक वर्ग अस्तित्व में आता है। अधिकांश चीजें अभी भी जाति संरचना द्वारा शासित हैं और समाजशास्त्र की अंतर–लॉक प्रणाली आर्थिक स्तरीकरण प्रभावी ढंग से संचालित करती है ताकि गरीबों को गरीबी और वंचितों की स्थिति में रख सकें। राज्य द्वारा नीति के जरिये जानबूझकर किया जाने वाला हस्तक्षेप, निश्चित रूप से उत्पीड़न और गरीबी की जड़े कमजोर करता है।

साख समितियों का सहकारी ढाँचा उत्पीड़ित वर्ग की ताकत को अवश्य ही बढ़ा सकता है। गरीब ऋणी वर्गों की सहायता के लिये राज्य द्वारा साख आपूर्ति निगमों की स्थापना की जानी चाहिये। ग्रामीण भूमि स्वामित्व के रवैये की आकस्मिक आधार स्थापित करने के लिये पुनः संरचना की जानी चाहिये ताकि उत्पीड़न से उन्मुक्ति की सुनिश्चितता की जा सके। भारत की पहली दो योजनाओं में योजनाकारों ने उत्पादन के कारकों, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामंजस्यपूर्ण विकास के लिये पूर्व शर्त के रूप में भूमि और पूंजी पर सामाजिक नियंत्रण के लिये प्रतिबद्ध किया था। किन्तु बाद के दशकों में यह उद्देश्य हटा दिये गये थे। नयी कृषि नीति एवं सिंचाई, यातायात, मशीनीकरण आदि के नये बुनियादी ढाँचों के द्वारा ग्रामीण असमानता को मजबूत बनाया गया। पूंजी आपूर्ति तंत्र निहित वर्ग को मजबूत बनाता है और ग्रामीण समाज के कमजोर तबके की अवहेलना करता है । पूंजी अपूर्ति और तकनीकी प्रभार में किसान जनता का एक बहुत बड़ा तबका अछूता रह जाता है। इस स्तर ने नयी फसलों, नये व्यवहारों और सिंचाई के तरीकों को आत्मसात किया, लेकिन आरोपों के इस प्रभार को महत्वाकांक्षी रूप से उधार लिया । हालांकि उधार लेने के बोझ को दूर करने और उत्तराधिकारी रूप में ऋणी से मुकाबला करने के लिये मूल्य व्यवहार ने समर्थन नहीं किया।

17.18 ग्रामीण परिवर्तन और ऋण आपूर्ति

पिछले छः दशकों में उल्लेखनीय ग्रामीण परिवर्तन हुये हैं। सिंचित इलाकों में फसल का विस्तार बढ़ गया, उर्वरक लोक प्रिय हो गया, बीज का आधुनिकीकरण किया गया, और कीटनाशकों एवं जड़ी बूटियों की तकनीकी आदानों को अपनाया गया और इसके अलावा सीमांत और उप सीमांत खातों में भी उच्च उत्पादकता प्राप्त हुयी। नये उपकरण और औजारों का अधिग्रहण किया गया। भूमि, पशुपालन, दुग्ध उद्योग, शिल्पकला, मत्स्य पालन आदि पर भारी मात्रा में निवेश लोकप्रिय हो गया किन्तु असिंचित हिस्से इस प्रक्रिया में भाग नहीं ले सके और उनकी उत्पादकता में सुधार नहीं हो सका। इससे ग्रामीण परिदृश्य में असमानताओं में वृद्धि हुयी। सहकारी समितियाँ बहुत छोटी संख्या होने के नाते कृषि और विशाल पूंजी आवश्यकताओं के विशाल क्षेत्र के लिये, पर्याप्त रूप से सामना नहीं कर पायीं। जबकि ये भूमि मालिकों के प्रभावशाली निहित वर्ग द्वारा एकाधिकार प्राप्त थीं। युक्तियुक्त कम ब्याज दर पर पूंजी आपूर्ति छोटे भूमि धारकों की पहुंच से बाहर थी। उन निर्दयी धन

उधारकर्ताओं के विरूद्ध मुहिम चलायी गयी जो उन ऋणग्रस्त लोगों के झुंड मे ंपाये गये । 1978 में भारतीय रिजर्ब बैंक ने ग्रामीण ऋण के संपूर्ण मामले का परीक्षण किया और यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि सहकारी समितियाँ बहुत छोटी हैं और छोटी संस्थाओं को ऋण की ग्रामीण आवश्यकताओं को पूरा करना है इसने मल्टी एजेन्सी ऋण आपूर्ति संरचना की सिफारिश की। तकनीकी परिवर्तन के समय उत्पादन के उद्‌देश्यों के लिये ऋण देने के कारण और अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न की कमी के लिये एक बड़ी पूंजी और ऋण आपूर्ति तंत्र की आवश्यकता थी, अतः व्यावसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये था और उन्हें निर्देशित किया गया कि प्रभावपूर्ण ढंग से ग्रामीण क्षेत्र में सेवाएं दें । साहूकारी समितियों को इन अनुत्पादक उधारों की जरूरतों को पूरा करने की कोई क्षमता नहीं है।

17.19 समन्वित समर्थन के आयाम

भारतीय रिजर्ब बैंक को कृषि ऋण विभाग का विस्तार करना था ताकि पुनर्वित्त की गतिविधि प्रारंभ हो सके और गाँवों में सहकारी समितियों को संबंल प्राप्त हो सके। कृषि में सामाजिक ऋण, पुनर्वित्त और परियोजना निर्धारण के लिये ए. आर.डी.सी. और एन.सी.डी.सी. अस्तित्व में आये। यह नाबार्ड का विकसित बेटा था। भारतीय रिजर्ब बैंक की कामथ समिति (1980 ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि संपूर्ण कृषि साख का मुश्किल से 4 प्रतिशत ही किराये के कृषकों, मजदूरों, कारीगरों, छोटे उद्यमियों और शिल्पकारों के पास है जबकि 66 प्रतिशत भूमि धारकों के पास है लगभग 3 हेक्टेयर से अधिक भूमि इनके पास है। 2 हेक्टेयर से कम लगभग 30 प्रशितात भूमिधारकों के पास है। वास्तव में छोटे कृषि उद्यमियों की आवश्यकता केवल पैसा ही नहीं है। अधिक महत्वपूर्ण है वस्तुओं एवं संबंधित सेवाओं की आपूर्ति , प्रसस्करण, भंडारण, यातायात और विपणन । अतः किसानों की सेवा समिति की अवधारणा राशन की दुकानों एवं पीडीएस के सहयोग से अधिक लोकप्रिय हो गयी। 'लीड बैंक योजना ने निश्चित ही लेनदारों की आवश्यकताओं और भविष्य की राशि की मांग का आंकलन किया। इसने बैंक के प्रयासों के साथ सामंजस्य बैठाया।

ग्रामीण विकास केवल कृषि क्षेत्र की उन्नति नहीं है। इसके अन्तर्गत बहुत सारे परिवर्तन सम्मिलित है। जिन्हें एक दूसरे के साथ स्थापित एवं समन्वित होने की आवश्यकता है। ऋण एवं निवेश की उन्नति इसका एक भाग है। जब तक एक क्षेत्र दूरे क्षेत्रों के साथ संतुलित नहीं होाग, तब तक, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संतुलित उन्नति नहीं होगी। ग्रामीण उन्नति के लिये छोटे, मध्यम और दीर्घावधि ऋण की मांग, वस्तुओं की आपूर्ति, विपणन, खाद्य आपूर्ति, ग्रामीण गोदाम क्षमता, उन्नति, शीतग्रह भंडारण क्षमता, यातायात आदि समन्वित है। जब तक वस्तुओं के बाजार की पर्याप्त निश्चितता नहीं मिलती, तब तक किसान बकाया ऋण का भुगतान नहीं कर सकते । जब तक वे अपने संसाधन सही समय और मात्रा में प्राप्त नहीं करते, उनकी अगली फसल को इसका खामियाजा उठाना पड़ता है और बकाया ऋण का भुगतान असंभव हो जाता है। अतः ग्रामीण ऋणग्रस्तता की जड़े बहुत गहरी उलझी हुई है। जिन्हें अन्तिम समाधान से पहले सही ढंग से समझना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिल्पकारों, कुटीर उद्योगों और अत्यन्त छोटे इकाईयों को वित्त, उत्पाद मांग, आकृति, स्तरीयकरण, क्षमता आदि बहुत सारी चुनौतियाँ है। शिल्पकार तक सही उन्नत प्रभाव पहुंचना उतना ही आवश्यक है जैसे उत्पादन के लिये कच्चेमाल का पहुँचना आवश्यक होता है। और वह भी कम कीमत तथा ऋण की व्यवस्था के साथ होना चाहिये। बाजार में दी जाने वाली रियायतें शिल्पकारों को लंबी सहायता पहुंचाती है। ग्रामीण क्षेत्र में ऋण आपूर्ति की रोमांचक संरचना के साथ सामंजस्य बैठाना एक चुनौती है। सहकारी क्षेत्र में ग्रामीण सेवा के हर छोटे आयाम को कवर करना

होगा, लेकिन इस मॉडल को योजना के दौरान तैयार नहीं किया जा सकता है। ताकि श्रमिक उपयोग, खेती, विनिर्माण, सिंचाई, आन्तरिक आपूर्ति, यातायात, विपणन उपभोक्ता भंडार, सहकारी वित्त पोषण और बैकिंग का समन्वय किया जा सके। वास्तव में ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान ग्रामीण सेवाओं की समुचित समन्वय मॉडल में ही खोजा जा सकता है। उदारीकरण नीति ने अब पूंजीवादी प्रतिस्पर्धातमक मॉडल के पक्ष में सहकारी सामूहिक धन का विचार छोड़ दिया है जहाँ छोटे का विलय बड़े में हो जाता है और प्रतिस्पर्धी लागत दक्षता के लिये लागत कम हो जाती है।

17.20 भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्रामीण क्षेत्रों को पुनःस्थापित करने की कुंजी के रूप में ग्रामीण ऋण

ग्रामीण ऋण की समस्या समस्त विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्र में स्थापित रहती है, क्योंकि यह वित्त पोषण की व्यवस्था परिपूर्ण रूप से उत्पादन क्षमता और ऋणी की भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर नहीं करती है। ऋण की सुविधा ऋणी को न केवल भुगतान योग्य बनाने के लिये एक सीढ़ी के रूप में दी जानी चाहिये बल्कि उत्पादन क्षमता को मजबूत बनाने के लिये भी ऋण रूपी सीढ़ी का उपयोग किया जाना चाहिये। इसके साथ–साथ संगठन और बाजार में उत्पादन की प्रतिस्पर्धात्मक योग्यता को बढ़ाने के लिये भी ऋण रूपी सीढ़ी का प्रयोग होना चाहिये। यह समय पर, होना चाहिये, पर्याप्त होना चाहिये, जिसमें समयावधि, ब्याज दर और किश्तें भी सम्मिलित होनी चाहिये। यदि तब भी कोई विशिष्ट स्थिति है तो किश्तों के उपलब्ध भिन्न हो सकते है। उधार की कीमत कम होनी चाहिये और यहाँ तक कि रियायती होनी चाहिये, ताकि ब्याज दर इतनी कम हो कि कोई भी गरीब आसानी से उधार ले सके। साख की विश्वसनीयता को उधार लेने वाले व्यक्ति को व्यक्तिगत चरित्र और भूतकाल में व्यवसाय की रिपोर्ट के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिये। सुरक्षा व्यक्तिगत प्रतिभूतियों' और आंशिक गांरटी पर आधारित होनी चाहिये। पूरे तंत्र के पास कुछ ऐसे हुक होने चाहिये जिससे यह निश्चित किया जा सके कि उधार लिये गये धन को चाहे गये उद्देश्य पर ही खर्च किया जा रहा है। अपव्ययी, अनुत्पादक और उल्लेखनीय उपभोग के लिये उधार देने को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। आवेदक द्वारा विभिन्न अन्य स्त्रोतों से धन लिये जाने की मात्रा और संख्या के आधार पर . ऋण प्राप्ति हेतु प्रस्ताव का आंकलन किया जाना चाहिये। अतः . ऋण प्राप्त करने वाले आवेदक की व्यक्तिगत जानकारी आवश्यक है। व्यवसायी और कमीशन अभिकर्ता (आढ़तिया) अपना पैसा फसल, से प्राप्त करते है या वस्तु रूप में (फसल भी) भी पैसा वापिस प्राप्त करते है। उधार लेने वालों के लिये यह बहुत बड़ी हानि है क्योंकि अभिकर्ता फसल की कीमत वर्तमान दर पर नहीं करते हैं। वे विभिन्न बेकार और अनैतिक व्यवहार भी अपनाते हैं। निजी ऋणदाता सुविधाजनक है ओर वित्तपोषण का आसान स्त्रोत हैं और कोई अवैधानिक रिश्वत या संतुष्टि भी नहीं होती है। यह आसानी से विशिष्ट स्थिति के अनुरूप पुनः समायोजित हो जाते है। किन्तु ब्याज दर अतार्किक रूप से अधिक ही होती है। संस्थागत ऋण का अनुभव हर जगह साफ सुथरा और अच्छा है किन्तु व्यवसायिक बैंकें ग्रामीण क्षेत्रों को उधार देने से कतराती है। व्यावसायिक बैंकों की उधारी व्यवस्था में रिश्वतखोरी व्याप्त है। सहकारी ऋण और ग्रामीण बैंकें, अच्छा प्रदर्शन कर रही है। किन्तु अत्यधिक अतिशेष से यह दर्शित होता है कि यह ग्रामीण वित्त पोषण के लिये पर्याप्त नहीं है।

ग्रामीण वित्त पोषण अकेली गतिविधि नहीं है। बैंक इसे ऋण प्रचलन के रूप में देखती है। वास्तव में , सहकारी विपणन के वित्त परामर्श के रूप में, प्रसंस्करण, उर्वरक के रूप में बैंके काम कर सकती हैं और कृषि उत्पाद के वितरण, भंडारण और खरीद के रूप में पूरी समितियों के रूप में भी

बैंकें काम कर सकती है। सहकारी समितियों को जो विभिन्न प्रकार की ग्रामीण गतिविधियाँ कर रही है को वित्तीय सहायता देना बैंकों के लिये सुवधिाजनक होगा। यहाँ मुख्य समस्या यह है कि अधिकांश समितियाँ कमजोर और व्यवहार्य संस्थान है। सहकारी साख समितियों के ऊपर बड़ी मात्रा में अतिशेष है। यद्यपि कृषि और शिल्प की ग्रामीण व्यवस्थाओं में महती भूमिका है। और इन्हें प्रत्येक स्तर पर बड़ी मात्रा में वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है लेकिन व्यावसायिक बैकें ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पर्याप्त हिस्से की सेवा करने में विफल है। इस क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक ने तीन प्रकार के कार्य को अपने हाथ में लिया – (अ) वित्त पोषण (ब) प्रचार सलाहकार और समन्वय समारोह (स) नियामक कार्य । मौसमी क्रियाकलापों के लिये ऋण सीमा, फसल उत्पादक के विपणन, आन्तरिक वस्तुओं और उर्वरक वितरण, लघु अवधि के ऋण पुनर्वित्त, मध्यम अवधि के ऋण, मध्यावधि के ऋण का अल्पावधि ऋण में परिवर्तन, सहकारी क्षेत्र की चीनी मिलों के अंशों की खरीदी, राज्य सरकार और निगमों को पुनर्वित्त उद्देश्यों के लिये ऋण भारतीय रिजर्ब बैंक द्वारा सुनिश्चित है। नाबार्ड भारतीय रिजर्ब बैंक के निर्देशों के अनुसार कार्य करती है। छोटी सिंचाई भूमि सुधार, कृषि यंत्रीकरण, वृक्षारोपण, वनोपज, भंडारण, मंडी विस्तार, वन विकास, आई.आर.डी.पी. योजनाएं और सहकारी समितियों को ऋण के मामलों में पुनर्वित्त की गतिविधि को नाबार्ड द्वारा संचालित किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी एवं आई.बी.आर.डी. द्वारा अनुदेय योजनाओं का संचालन नाबार्ड द्वारा किया जाता है, ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान ग्रामीण भारत में गरीबी रेखा से नीचे की विशाल जनसंख्या को मदद करने की संभावना है।

17.21 सारांश

प्रत्येक आर्थिक गतिविधि और उद्यम को पूंजी की सहायता की आवश्यकता होती है। ग्रामीण उद्यमी किसान, शिल्पकार, दुग्ध उत्पादक, छोटे व्यवसायी, भोजन निर्माण करने वाले, उधार देने वाले, विपणनकर्ता और कृषि मजदूर होते है। ऋण की मांग या तो उत्पादन के लिये होती है या उपभोग के लिये। ग्रामीण क्षेत्र में उधार देने वालों का एक बहुत बड़ा तंत्र जाल होता है, जिसमें निजी साहूकार, थोक व्यापारी, देशी बैंकर, गैर बैकिंग वित्तीय संस्थान, व्यावसायिक बैंक और सहकारी साख समितियाँ सम्मिलित है। फसल बिगड़ जाने की स्थिति में राज्य सरकारें भी तकाबी ऋण प्रदान करती है । आवश्यक वस्तुओं की खरीददारी, कृषि कार्यों को ऋण देना, पशु और बैल जमीन खरीदने के लिये ऋण नया ट्यूब वैल बनाने के लिये मकान इत्यादि बनाने के लिये लिया जाने वाला ऋण उत्पादक उद्देश्यों के लिये. ऋण लिया जाना कहलाता है, जबकि मृत्यु , विवाह समारोहों , वित्त पोषण, सिंचाई, उपभोग आदि उद्देश्यों को अनुपत्पादक की श्रेणी में रखा जाता है। सहकारी साख समितियाँ ग्रामीण बैकें, और व्यावसायिक बैंकें अधिकाधिक ग्रामीण ऋण प्रदान करने वाली संस्थाएं हैं, फिर भी ग्रामीण ऋण आपूर्ति के मामलों में निजी साहूकार बहुत महत्वपूर्ण है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि 42 प्रतिशत सहकारी ऋण और 47 प्रतिशत ग्रामीण बैकों के ऋणों की बकाया राशि वर्तमान के लिये बड़ी चुनौती है। यह अल्पकालीन, मध्यावधि और यहाँ तक कि दीर्घावधि के ऋण में भी है, जब इन उधारदाताओं की अधिकांश राशि अवरूद्ध हो जाती है, तो आपूर्ति लाइन भी बंद हो जाती है। ग्रामीण ऋण में नाबार्ड एक पुनर्वित्त एजेन्सी की महती भूमिका अदा करता है। आर.आई.डी. एफ. (नाबार्ड के अन्तर्गत) सस्ते ब्याज दर पर राशि मुहैया कराता है। इसने 35,720 करोड़ रूपये बैंकों से एवं 60,000 करोड़ रूपये ग्रामीण सूक्ष्म वित्त पोषण के लिये सरकार से एकत्रित किये। बड़ी मात्रा में बकाया ऋण राशि ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या उत्पन्न करती है। फसल बीमा, ऋण मुक्ति

संबंधी विधायन, सूक्ष्म. ऋण योजना और स्व–सहायता समूह संगठन इत्यादि कुछ नयी अवधारणाएं या पहुँच हैं जिनके माध्यम से ग्रामीण गरीबी और ऋणग्रस्तता से निपटा जा सकता है।

17.22 शब्दावली

ऋण :– भुगतान से पहले सेवाओं या वस्तुओं को प्राप्त करने की ग्रहक की योग्यता, इस विश्वास पर आधारित कि भविष्य में भुगतान किया जायेगा।

ऋणग्रस्तताः– पक्षकार की क्षमता या अक्षमता से संबंधित न होते हुये भी. ऋण की स्थिति में होना।

17.23 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. ग्रामीण ऋण आपूर्ति के लिये सहकारी साख समितियों की उत्पत्ति ––––––––– के बाद हुयी।
2. फसल ऋण सामान्यतः ––––––––––– ऋण होते है।
3 ––––––––––– कृषि और ग्रामीण विकास के लिये वित्तीय संस्थाओं को उधार और बैंकों के लिये सर्वोच्च बैंक के रूप में कार्य करती है।
4 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना – वर्ष ––––––– में हुई थी।

17.24 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 1905, 2 अल्पावधि 3 नाबार्ड 4. 1975

17.25 स्वपरख प्रश्न

1. ग्रामीण. ऋण शब्द से आप क्या समझते हैं?
2. भारत में ग्रामीण ऋण के मामले में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की क्या भूमिका है?
3 भारत में किसानों द्वारा लिये जाने वाले पारंपरिक ऋणों के गुणों एवं अवगुणों से अवगत कराइये।
4 नाबार्ड के बारे में आप क्या जानते हैं ?
5 नाबार्ड की कार्यप्रणाली की समीक्षा कीजिए ।
6 लीड बैंक के बारे में आप क्या जानते है और भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसकी क्या भूमिका है ?
7 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा अपनायी जाने वाली ग्रामीण ऋण नीति क्या है ?
8 किसान उधार लेने की प्रवृत्ति क्यों अपनाते है और किसानों द्वारा उधार लेने के संबंध में आप क्या सुझाव देसकते है ?

17.26 संदर्भ पुस्तकें

1. Rudder Datt and KPM Sundharam, “Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
2. Census of India (2011), Report of the Technical Group on Population constituted by the National Commission on Population (2006).
3. UNDP – Human Development Index, 2007 to 2009.
4. R.H. Cassen, India – Population, Economy and Society, (Delhi, 1929).
5. Government of India: Reports of Economic Surveys.

6. Jean Dreze and Amartya Sen, India – Economic Development and Social Opportunity, (Delhi, 1996).
7. T. N. Krishnan "Population, Poverty and Employment in India", Economic and Political Weekly, Nov. 14, 1992, p. 2480.
8. Pravin Visaria, "Demographic Dimensions of Indian Economic Development" in P.R. Brahmananda and V. R. Panchmukhi The Development Process of the Indian Economy, (Bombay, 1987).
9. Does India's Population Growth Has A Positive Effect on Economic Growth? Rohan Kothari, Social Science 410, Nov. 1999.
10. Population and Economic Development in India, N.R. Narayan Murthy, July, 2005.
11. India Development Report, 2010.
12. Mahendra K. Premi – 'Population of India in the New Millenium, Census-2001 (New Delhi, NBT 2006).
13. Rakesh Mohan and Chandra Shekhar Pant, "Morphology of Urbanization in India', Economic and Political Weekly, September, 18, 1982, p. 1537.
14. Frederick Harbison and Charles A. Myeres – "Education, Manpower and Economic Growth (New Delhi, 1970).
15. Indian Economy: Ruddar Datt, KPM Sundaram, S. Chand, New Delhi.
16. The Indian Economy, Environment and Policy: Ishwar C. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
17. Indian Economy: Mishra & Puri, Himalaya Publishing House, New Delhi.

———————

इकाई 18 भारतीय अर्थव्यवस्था में बुनियादी ढाँचा

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 बुनियादी संरचना का अर्थ
18.3 बुनियादी संरचना एक सामाजिक उपरि है ।
18.4 प्राथमिक क्षेत्र में बुनियादी संरचना
18.5 भारत में बुनियादी संरचना के क्षेत्र का विस्तार
18.6 विद्युत उत्पादन
18.7 हाईड्रिल क्षेत्र (जल विद्युत क्षेत्र)
18.8 घरेलू गैस (एल.पी.जी.) का विकास
18.9 अपरिष्कृत (कच्चा) को परिष्करण की सुविधा एवं कोयला खनन
18.10 सीमेन्ट निर्माण
18.11 दूर संचार
18.12 इन्टररनेट सेवाएं
18.13 होटल आवास
18.14 नागरिक उड्यन एवं विमानपत्तन
18.15 रेलवे नेटवर्क (तंत्रजाल)
18.16 चिकित्सा कर्मी और चिकित्सालय
18.17 शैक्षणिक बुनियादी संरचना
18.18 प्रौद्योगिकी के दुर्ग
18.19 सिंचाई संबंधी बुनियादी संरचना
18.20 वित्त, बैकिंग और बीमा
18.21 पशु चिकित्सा बुनियादी संरचना
18.22 अनुसंधान एवं विकास बुनियादी संरचना
18.23 तकनीकी शिक्षा
18.24 लोक स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवा
18.25 नौवहन बुनियादी संरचनाये
18.26 नागरिक उड्डयन
18.27 साफ्टवेयर (प्रक्रिया सामग्री) बुनियादी संरचना
18.28 परामर्श एवं विशेषज्ञता संस्थान
18.29 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम
18.30 सारांश
18.31 शब्दावली
18.32 बोध प्रश्न
18.33 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.34 स्वपरख प्रश्न
18.35 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- बुनियादी संरचना के अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में बुनियादी संरचना की भूमिका की व्याख्या कर सकें।
- भारत में बुनियादी संरचना क्षेत्र के विस्तार की व्याख्या कर सकें।

18.1 प्रस्तावना

साधारणतया, बुनियादी संरचना का अर्थ है आर्थिक स्थितियों का आधार स्तर समर्थन या किसी अन्य गतिविधि को आगे बढ़ाने के लिये परिस्थितियों, सेवाओं, संस्थागत स्थापना को बढ़ावा देना। अच्छे प्रदर्शन के लिये एक छात्र को बुनियादी संरचना की आवश्यकता होती है, जिसमें पुस्तकालय, विद्यालय, कक्षा, विशेषज्ञता प्राप्त अध्यापक विनिर्धारित पुस्तकें और पाठ्य सामग्री, रोशनी, श्यामपट, कम्प्यूटर और लैपटाप की पर्याप्त व्यवस्था, अच्छा खेल का मैदान, समय पर विद्यालय पहुँचने के लिये पर्याप्त और बेहतर यातायात की सुविधा सम्मिलित हैं यह इकाई यह समझाने में समर्थ होगी कि भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिये किस प्रकार की बुनियादी संरचना की आवश्यकता है और भारत की आर्थिक वृद्धि में अवरोध पैदा करने वाले तत्व कौन से हैं।

18.2 बुनियादी संरचना का अर्थ

बुनियादी संरचना की अवधारणा का अर्थ अर्थव्यवस्था के चारों ओर बुनियादी संस्थागत सुविधाओं के संयोजन से है जो विकास के प्रयासों और उत्पादन को काफी बढ़ावा देता है। उत्पादक प्रयासों को तीव्र गति से बढ़ावा देने के लिये मानव प्रयासों द्वारा मदद करने वाली सेवाओं के इस तरह के संयोजन को बुना जाता है उदाहरण के लिये, तेल शोध शाला, पाइपलाइन, भंडारण टंकी और वितरण चैनल आदि का कुशल परिसर का निर्माण भारत में किया जाता है ताकि औद्योगिक विकास पेट्रोल –रसायन के युग में प्रवेश कर सकें। सिंचाई, नहरों, ट्यूबवैल, पम्पसैटों, तालाबों और पानी की टंकियों के नेटवर्क का हाइड्रों, थर्मल या परमाणु ऊर्जा उत्पादन के साथ संयोजन बिजली के जाल, विद्युतीकृत रेलवे राजमार्गों का व्यापक जाल, छः से आठ लेन की व्यापक सड़कें और अच्छी तरह से बुनी हुई संचार प्रणाली जो शहरी समूहों और बड़े–बड़े क्षेत्रों को आपस में जोड़ती है, बैकिंग, बीमा और परामर्श संबंधी सेवाएं आती है। आधुनिक युग के तृतीयक और तेजी से कृषि औद्योगिक विकास के लिये भारत को परिपूर्ण करते हैं। विश्व व्यापार और वाणिज्य में भारत की भूमिका को आधुनिक पत्तनों, आधुनिक पोतवाहन, उड्डयन और कम्प्यूटरीकृत व्यावसायिक सेवाओं के द्वारा चिन्हित किया जाता है। इन सुविधाओं के अंबार का व्यापार स्थापित करने में और भारत में विनिर्माण इकाईयों की स्थापना में बहुत असर (प्रभाव) पड़ता है। सेवाओं को बढ़ावा देने के इन संयोजनों से गुजरने वाले क्षेत्र में आवश्यक बुनियादी ढाँचे की कमी है। बुनियादी संरचना विकसित होने की मांग गतिविधि की प्रकृति के साथ बदलती है। यह परिस्थितियाँ मानव प्रयासों द्वारा निर्मित की जाती है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति के लिये बुनियादी संरचना के अन्तर्गत वैज्ञानिक प्रशिक्षण और आधुनिक अनुसंधान की सुविधाएं सम्मिलित है। उन्नत औद्योगिक विकास के लिये विकसित उद्योग ज्ञान अपरिहार्य और आवश्यक रूप से पूर्वापेक्षित है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग से प्रशिक्षित वैज्ञानिक मस्तिष्कों की आपूर्ति की आवश्यकता होती है जो सीमेंट, रसायन, उर्वरक, तेलशोधन, बिजली, उत्पादन, और वितरण इकाईयों, इस्पात संयंत्रों, लोकोमोटिव और अभियांत्रिकी

औद्योगिक परिसरों को संभालते हैं। इस प्रकार कुशल मनुष्य शक्ति' इस प्रकार विकास के लिये एक बुनियादी संरचना है। विकास की एक बार उपलब्ध गति को बनाये रखने के लिये हमें बुनियादी संरचना को बढ़ावा देने पर निरंतर जोर देने की आवश्यकता है। बुनियादी संरचना के अभाव में कृषि की उत्पादक इकाई, उद्योग या सेवाओं को बनाए रखने में असफल होते हैं। प्रचुर मात्रा में संसाधनों का उपयोग करने, संतुलित क्षेत्रीय विकास की मांग, पूंजी निर्माण में वृद्धि, रोजगार बढ़ाना, निर्यात बढ़ाने, कृषि में विविधता लाने और इसी तरह और बहुत कुछ करने में बाधाएं उत्पन्न हुयीं। अतः भारतीय योजनाकारों के बिजली, यातायात, दूरसंचार, जहाज, प्रौद्योगिकी, रेलमार्ग, शिक्षा और प्रशिक्षण, सिंचाई, भंडारण, सामरिक उद्योगों, रक्षा और आर्डिनेन्स कारखाना उत्पादन और अन्य प्राथमिकता और तात्कालिकता के मामले आदि जैसे बुनियादी ढाँचों को विकसित किया। मुख्यरूप से मशीन बनाने वाले उद्योगों को आगे बढ़ाने के लिये पूंजीगत वस्तुओं का औद्योगिक विकास प्राथमिक था। सही ज्ञान और प्रशिक्षण के बिना मजदूर की उत्पादकता कम होती है और व्यवसायों की पैदावार बहुत खराब रहती है। भारत ने आधुनिक ज्ञान से परिपूर्ण अर्थव्यवस्था का चुनाव किया है जिससे प्रौद्योगिकी उन्नति ने आधुनिक राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्धा के योग्य बन सकें। भारत में बुनियादी संरचना में ये गिनी चुनी कमियाँ हमें जिसकी वजह से विदेशी निवेशक निवेश करने में हिचकते हैं।

18.3 बुनियादी संरचना एक सामाजिक उपरि है

यह ध्यान देने योग्य है कि बुनियादी संरचना सामाजिक परिप्रेक्ष्य का विकास है जिसे विकास की आवश्यकता के साथ –साथ विस्तार और सुधार की भी आवश्यकता है। इन ओवर हैडस को आवश्यकताओं की कमी हो जाती है और अक्सर विकास की स्थिति में परिवर्तन के साथ अल्पविकसित रह जाते है। कृषि में विकास सिंचाई, बिजली, ऋण, यातायात, बाजार, भंडारण सुविधाओं, प्रसंस्करण सुविधाओं, इत्यादि पर निर्भर करता है। जिन्हें समय–समय पर पुनरावृत्ति की आवश्यकता है और आधुनिकता के साथ नये बुनियादी संरचना के क्षेत्र उभर कर आ रहे है। उदाहरण के लिये, प्रौद्योगिकी केन्द्रों की आवश्यकता कुछ समय बाद होती है जब किसान अपनी तकनीकी जानकारी और कौशल में संशोधन की तलाश करते हैं। यदि यह सुवधि नहीं मिल पाती है तो उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है। औद्योगिक और व्यावसायिक विकास बैकिंग, बीमा, वित्तीय और प्रबंधकीय समर्थन प्राप्त करना चाहते हैं। ये आवश्यक बुनियादी ढाँचे बन गये हैं। कृषि में वृद्धि की प्रक्रिया, औद्योगिक और तृतीयक क्षेत्रों की मानव शक्ति की माँग जिनमें से कुछ सवास्थ्य, शिक्षा, कौशल, चिकित्सा, स्वच्छता, साफ–सफाई जहां चिकित्सालय प्राथमिक बुनियादी ढाँचा है। मानव विकास सूची मानव व्यक्तित्व विकास और मानव स्वास्थ्य के पहलुओं पर जोर डालती है। बुनियादी ढाँचे के क्षेत्र में निवेश कई संबंधित क्षेत्रों में उत्पादन की लागत को कम करता है जो न केवल गुणवत्ता को बढ़ाता है बलिक आय वृद्धि और मानव जीवन के मानकों को भी बढ़ाता है। जीवन की बुनियादी सुविधाओं जैसे पीने योग्य पानी, ताजी हवा, पर्यावरण, प्रदूषण मुक्त हवा, स्वच्छता और पोषण संबंधी सहायता को उन्नत देशों में सभ्य जीवन के बुनियादी ढाँचे के रूप में माना जाता है। भारत को ऐसे बुनियादी ढाँचे का पर्याप्त पैमाना प्रदान करना है। यह वैश्विक परिदृश्य में भारत को मानव विकास सूचनकांक के बहुत कम स्कोर में रखता है।

18.4 प्राथमिक क्षेत्र में बुनियादी संरचना

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में यह सर्वविदित है कि खाद्य आपूर्त्रि, कच्चा माल, ग्रामीण रोजगार, जमीन का उपयोग, ईधन की लकड़ी की आपूर्ति, घास और चारा, हरियाली और बहुत कुछ

के लिये कृषि की अहम भूमिका है। यह क्षेत्र शहरी क्षेत्रों के लिये विभिन्न, तरीके से खाद्य सामग्री और पूंजी की सेवाएं देता है। कृषि प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। प्रत्येक मानव प्रयास कुछ हद तक ऊर्जा के पूरक हैं। अतः कोयला, बिजली, तेल, सौर या भू तापीय ऊर्जा प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया सिंचाई व्यवस्था, और बिजली उत्पादन प्रक्रिया के प्रयोग में लायी जाती है और यह आर्थिक विकास के लिये प्राथमिक बुनियादी संरचना है। सम्पूर्ण वाणिज्य एवं व्यापार, पर्यटन एवं यातायात के कार्य केवल यातायात की श्रृंखला से संभव है। यह रेलमार्ग, सड़क, नदियाँ, जलपोत, या हवाई यातायात भी हो सकता है। यह बिजली, पेट्रोल या डीजल इत्यादि की शक्ति के मकसद से कार्य करते हैं। इन सबका विकास बुनियादी ढाँचे का एक हिस्सा है। सभी तरह की सूचनाओं का आदान–प्रदान उत्पादन की प्रक्रिया, विनिमय और उत्पादन एवं सेवाओं के वितरण की प्रक्रिया को बाहर निकालता है। दूर संचार और डाक व्यवस्था या टेलिग्राफ आदि या इंटरनेट वेबसाइट या फोन द्वारा संदेश भेजना संचार साधन के क्षेत्र में बुनियादी ढाँचे का ही एक हिस्सा है। बैकिंग, बीमा, परामर्श, वित्तीय सहायता आदि का तृतीयक क्षेत्र की वृद्धि में मौलिक भूमिका है। अन्य क्षेत्रों में वृद्धि करने के लिये सबसे पहले विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र का विकास होना चाहिये। योजना प्रारंभिक काल से ही, भारत में आर्थिक योजना, भारतीय अर्थव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे के विकास पर जोर देती है। भारत में संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आयी क्रांति ने व्यापार एवं वाणिज्य के विकास को बाहर निकाला है, आगे बढ़ाया है। धीरे–धीरे यह अर्थव्यवस्था के अन्य समस्त क्षेत्रों पर भी जोर डाल रही है।

18.5 भारत में बुनियादी संरचना के क्षेत्र का विस्तार

आर्थिक विकास के लिये, प्रोत्साहन पाने के लिये, कोयले, बिजली, पेट्रोल, इस्पात, सीमेन्ट, रेल्वे, बंदरगाह विकास, सड़कों और संचार क्षेत्रों में प्रवाह पाने के लिये इन्हें प्राथमिकता दी गयी। निवेश के लिये सिंचाई को पहली प्राथमिकता प्राप्त हुई। 1951 में कोल उत्पादन 32 मिलियन टन से बढ़कर 2006–07 में 462 मिलियन टन हो गया। भारत में तेल शोधन में कच्चे पेट्रोल की तकनीक सर्वोच्च स्तर की है। 1951 में कच्चा पेट्रोल 0.4 मेंट्रिक टन से बढ़कर 2006–07 में उपमिलियन टन (मैट्रिक) हो गया । 1951 में सीमेन्ट उत्पादन 2.7 मैट्रिक टन और 2011–12 में 223.5 मिलियन टन हो गया। भारतीय रेल मार्ग की लंबाई मार्च 2011 के अन्त तक 64,460 कि.मी. क्षमता की थी। रेलवे सामान की क्षमता 73 मिलियन टन से बढ़कर 728 मिलियन टन हो गयी। 1951 में बंदरगाहों का विस्तार भी 19 मिलियन टन से बढ़कर 2006–07 में 464 मिलियन टन हो गया। भारत में बुनियादी ढाँचे को बनाने में काफी प्रगति की है। फिर भी पश्चिम की उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में प्रत्येक क्षेत्र की कमी को अच्छी तरह से चिन्हित किया गया है।

18.6 विद्युत उत्पादन

भारत में सबसे अधिक बिजली उत्पादन करने वाले दस राज्य (2011) थे– महाराष्ट्र, आन्ध्र, उ.प्र. गुजरात, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, म.प्र., उड़ीसा, कर्नाटक और राजस्थान । बिजली, उत्पादन के मामले में भारत (2009 में 899 वाट) दुनिया में चौथे दर्जे पर आता है जबकि नाभिकीय बिजली उत्पादन बहुत कम है, बहुत दूर तो है किन्तु क्षमता बहुत तेजी से बढ़ रही है। भारत ने ताप ऊर्जा (धर्मल पावर) उत्पत्ति को विकसित करके मुख्य क्षेत्रों में भलीभांति वितरित किया। उ.प्र. आन्ध्रा, महाराष्ट्र, गुजरात, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, म.प्र., उड़ीसा, और राजस्थान में सबसे बड़े ताप बिजली उत्पादन क्षमता है। चीन के पास सबसे बड़ी हाईड्रिल उत्पादन क्षमता 616 वाटर (2009) है ओर भारत का सातवां स्थान है। ब्राजील, कनाड़ा, अमेरिका, रूस और नार्वे भारत के पहले आते

है। भारत में बड़े राज्य जहाँ अधिक हाइडिल उत्पादन होता है वह है हिमाचल, उत्तराखण्ड, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, म.प्र., केरल, आन्ध, महाराष्ट्र, उड़ीसा और गुजरात। बड़ी मात्रा में हाइडिल उत्पन्न करने वाली योजनाएं अभी पूरा होने की प्रक्रिया में है जो भविष्य में भारत में हाइडिल उत्पादन क्षमता को बढ़ायेंगे । भारत में स्थापित जलविद्युत क्षमता 38748 मेगावाट (2011) थी। पर्याप्त बिजली के बिना भारतीय अर्थव्यवस्था , आर्थिक विकास की सड़क पर आगे आकर कदम ताल करने में अयोग्य होगा। बिजली क्षेत्र के प्रबंधन में बहुत सारी कमियाँ हैं। बिजली आपूर्ति अनियमित है। भारत में थर्मल शक्ति का विकास अतुलनीय है। महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, उ.प्र., पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक, दिल्ली ओर छत्तीसगढ़ में यह अधिक मात्रा में है। भारत में कुल ताप विद्युत उत्पादन क्षमता 122894 मिगावाट (2011) है।

भारत में ऊर्जा की कमी है जिसका आर्थिक विकास दर विपरीत प्रभाव पड़ता है । भारत ने सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा के अलावा भविष्य में नाभिकीय ऊर्जा को विकसित करने में अधिक भरोसा दिखाया है। भारतीय नाभिकीय ऊर्जा क्षमता केवल (4780 मेगावाट) बहुत कम थी। महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, उ.प्र. आन्ध, म.प्र., कर्नाटक, पंजाब और दिल्ली राज्य जहां इनकी स्थापना स्मरणीय है। बहुत बड़े नाभिकीय उत्पादन क्षमता की स्थापना अमेरिका (830) में, फ्रांस (410), जापान (280), रूस (164), कोरिया (148) और जर्मनी में 135 टी.डब्ल्यू.एच. की गयी। नाभिकीय ऊर्जा की कुल वैश्विक क्षमता 2697 टी.डब्ल्यू.एच. 2009 में थी। रूस और जापान के महान जोखिमों और अनुमानों के आधार पर नाभिकीय ऊर्जा उत्सर्जन अपनी प्राथमिकताएं खो रहा है, सर्वत्र सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आज भी प्रयोगात्मक स्तर पर है। बायोगैस ऊर्जा और गोबर गैस कम कीमत और सुरक्षा की दृष्टि से प्रसिद्धि पा रहे है। लेकिन यह छोटे स्त्रोत है। औद्योगिक विकास को बड़ी मात्रा मे ंबिजली की आवश्यकता होती है।

यदि हमारी तेल की माँग की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है और कच्चे माल की कीमतें भी बढ़ रहीं हैं, तो कोई विकल्प नहीं बचता है सिवाय इसके कि वापिस बिजली के उत्पादन के लिये कोयले का उपयोग किया जाने लगे। वहाँ कुछ पुर्ननिर्माण , इस मिशन में आवश्यक हो सकते हैं, अभी तक तेल के आयात पर नियंत्रण से अर्थव्यवस्था को काफी लाभ होगा। भविष्य में पेट्रोलियम के प्रतिस्थापना की खोज से कीमतों की बढ़ोत्तरी की गतिविधियों में बहुत था परिवर्तन आ सकता है। भारत उष्टकटिबंधीय क्षेत्र में स्थापित है और दैनिक ऊर्जा की आवश्यकताओं के लिये सौर ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है। कुछ वर्षों के लिये कोयला विकास प्रमुखता से एक पैमाने में तेल स्थानांपनन कर सकते है, यदि खानों को पुनर्गठित कर दिया जाता है और नये तरीके अपनाए जाते हैं। पेट्रोल का विकल्प खोजने के लिये काफी प्रयास किये जा रहे हैं।

18.7 हाइडिल क्षेत्र : (जल विद्युत क्षेत्र)

हाइडिल के बहुत से लाभ हैं और यह गैर थकाऊ है किन्तु इसका कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहना एक गंभीर बाधा है। यहाँ संभावित 399 हाइड्रो योजनाएँ हैं जिनकी केन्द्रीय विद्युत अधिकरण द्वारा पहचान की गयी है, इनकी क्षमता लगभग 107000 मेगावाट है एवं इसके संबंध में पूर्व–व्यवहार्यता प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा चुका है। कोयला आधारित अल्ट्रा मेगा 4000 मेगावाट क्षमता निजी विकास कर्ताओं को प्रतिस्पर्धी बोली पर आधारित मूल्य दर पर सौंपा जाना है। 14 टॉंसमिशन योजनाओं को बोली पर आधारित कीमत पर निजी क्षेत्रों को देने के लिये चिन्हित किया गया है। 2012 के अन्त तक बिजली उत्पादन की क्षमता 6000 मेगावाट तक पहुँच गयी । चीनी मिलों में बगासे बिजली उत्पादन प्रस्तावित है और 3500 मेगावाट बिजली के लिये सरकार द्वारा

सहायता दी जा रही है। बड़े पैमाने पर जैसे ऊर्जा और सूक्ष्म हाइडिल (जलीय) प्रणालियों के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है । जटरोपा बीजों और गन्ने की इथॅानॅाल से जैव डीजल बनाने का परीक्षण किया जा रहा है। 1951 में हाड्रो ऊर्जा की क्षमता 560 मेगावाट थी जो 2007 में बढ़ कर 34750 मेगावाट हो गयी । यह धुंआ रहित है। भारत में 2011 में कुल बिजली की उपलब्धता 4,98,665 मेगावाट पहुंच गयी। पहले पाँच राज्यों महाराष्ट्र, आन्ध्र तमिलनाडु, उ.प्र. और गुजरात में बिजली की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है। भारत में प्रतिव्यक्ति बिजली की उपलब्धता 734 किलोवाट (2009) है। भारतीय कृषि में 2011 में ऊर्जा संचालित पम्पसैटों की संख्या 1,75,9421 तक पहुंच गयी। आज ऊर्जा संचालित पम्पसेटों वाले पांच बड़े राज्य हैं महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और म.प्र. (2011) 90.4 प्रतिशत भारतीय गाँवों में बिजली उपलब्ध है, कर्नाटक और आन्ध के 100 प्रतिशत गाँवों में बिजली है। 2010 में भारत 5,63,20,000 टन डीजल खर्च करता था। इसकी मांग तेजी से बढ़ने के कारण कच्चा माल के आयात करने के लिये भारी दबाव रहता है। प्रत्येक राज्य में बिजली आपूर्ति अनियमित है एवं बिजली वितरण की व्यवस्था बहुत ही असंतोषजनक है।

18.8 घरेलू गैस (एल.पी.जी.) का विकास

2003–10 के दौरान भारत में घरेलू गैस का सेवन 1,31,21,000 टन तक पहुँच गया । महाराष्ट्र, आन्ध्र और उत्तर प्रदेश में घरेलू गैस की खपत अधिक होती है। भारत में 2011 में पेट्रोल की खपत 13,44,12,000 टन थी। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, उ.प्र. और आन्ध्र में पेट्रोल की खपत अधिक होती है। 2010 में वैश्विक कच्चे तेल का उत्पादन लगभग 3973 मिलियन टन था। प्राकृतिक गैस उत्पादन और वितरण में भारत अभी बहुत पीछे है। रूस, अमेरिका, कनाडा, ईरान, कतर, नार्वे, चीन, नीदरलैंड, इंडोनेशिया, और सऊदी अरब दस सर्वोच्च उत्पादक है। गैस पाइप लाइन और घरेलू गैस का तंत्रजाल बुनियादी संरचना की स्थिति को दर्शित करता है। 2011 में भारत में 1253.9 लाख घरेलू गैस कनेक्शन थे। 2011 में भारत प्राकृतिक गैस लाइन 29,699 कि.मी. से ज्यादा थीं। यह एक विस्तृत राष्ट्र है और नेटवर्क के प्रसार की लागत भी बहुत बड़ी है। ईरान की गैस आपूर्ति से भारत को एक बहुत बड़ी मदद की संभावना है।

18.9 अपरिष्कृत (कच्चा) को परिष्करण की सुविधा एवं कोयला खनन

पेट्रोल परिष्कृत क्षमता वह बुनियादी संरचना दिखाती है जो भारत ने योजना के दौरान रची । जामनगर, पानीपत, कोयाली, मुम्बई, मंगलौर, कोचीन, विशाखापत्तनम और मथुरा बड़े तेल शोधक है। वर्तमान में कोयला खनन संसाधन प्रतिवर्ष बढ़ रहे है। 2010 में भारत में कोयला खनन 2,76,810 मिलियन टन प्रतिवर्ष तक पहुँच गया और जानी पहचानी कोयला खदानें झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, म.प्र., और महाराष्ट्र में है। 2010 में भारत में कोयला उत्पादन 538 मिलियन टन था जबकि संपूर्ण विश्व का उत्पादन 6186 मिलियन टन था। भारतीय कोयला निम्न स्तर का है ओर अच्छे स्तर के कायेले को आयात करना पड़ता है।

18.10 सीमेन्ट निर्माण

निर्माण उद्योग के लिये सीमेन्ट उत्पादन बहुत बुनियादी चीज है। भारत 1,12,330 हजार टन सीमेन्ट का उत्पादन करता है और राजस्थान, हिमाचल, म.प्र. कर्नाटक, गुजरात, तलिनाडु, झारखंड में सीमेन्ट कारखाने फैले हुये है। बहुत प्रसिद्ध खारखाने हैं श्री सीमेन्ट, मंगरोल, निबाहेरा, गैगेल, विक्रम, बिनानी, वस्वदाना, अल्ट्राटैक, मैहर, डालमिया, जोजोबेरा इत्यादि । यह भारत के विभिन्न राज्यों में स्थापित है। यह उद्योग विस्तार की स्थिति में है। भारत में सीमेन्ट उत्पादन की क्षमता

(2008) प्रतिवर्ष 53749 हजार टन तक पहुंच गयी है और 2011–12 में यह उत्पादन 223.5 मिलियन टन तक पहुंच गया । चीन प्रतिवर्ष 18,00,000 टन सीमेन्ट का उत्पादन करता है और भारतीय उत्पादन अभी भी बहुत कम है। निर्माण उद्योग को प्रतिवर्ष 70,000 टन तक सीमेन्ट उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता है। बुनियादी संरचना के लिये इमारत और ढाँचे की आवश्यकता होती है। जिसमें सीमेन्ट बहुत मात्रा में लगता है।

18.11 दूरसंचार

चीन में 29.43 करोड़ टेलिफोन है। अमेरिका में 15.1 करोड़ टेलिफोन है। जबकि भारत में (2010) में केवल 3.5 करोड़ टेलिफोन है। भारत में मोबाइल का उपयोग करने वाले (2010) 75.21 करोड़ थे जबकि चीन में 85.8 करोड़ थे। भारत में यह सुविधा प्रदान करने वाली मुख्य कंपनियाँ हैं एयरटेल, वोडाफोन, बी.एस.एन.एल., एयरसेल, यूनीनोर, वीडियोकॉन, एम.टी.एन.एल, स्टैटा, लूप मोबाइल इत्यादी । भारत में प्रति 100 व्यक्तियों पर टेलिफोन लाइनें अभी भी छोटे राष्ट्रों के पीछे खड़ा कर रही है। भारत में 100 व्यक्तियों पर 64 मोबाइल धारक हैं जबकि चीन में 206 है। भारत में मोबाइल फोन की मांग बहुत अधिक है और 2015 तक यह दोगुनी हो सकती है। भारत में उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में मोबाइल फोन ने आर्थिक वृद्वि के क्षेत्र में बहुत योगदान दिया है।

18.12 इंटरनेट सेवाएँ

इंटरनेट सेवाएं संचार बुनियादी संरचना का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। 2010 के आंकड़ों के अनुसार भारत में ब्राडबैंड इंटरनेट का उपयोग करने वाले प्रति 100 व्यक्तियों पर 0.94 थे और विश्व में भारत की 127 वीं स्थिति थी। विश्व में ब्राडबैंड, इंटरनेट सेवा का उपयोग करने वाले सर्वोच्च दस राष्ट्र है:– चीन, अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड, रूस । 1,09,90 हजार उपभोक्ताओं के साथ भारत को 12 वाँ दर्जा प्राप्त है । भारत में डाक घरों की संख्या 12202 (2011 में) है जो पूर्णतः इंटरनेट से जुड़े हुये है। लगभग 4,81,626 भारतीय गाँवों में डाक घर नहीं है। (2011) । 2010 में कम्प्यूटरीकृत डाकघरों की संख्या 1,42,425 तक बढ़ गयी। भारत में इंटरनेट सेवाओं की संबद्धता बहुत कमजोर है जिससे संचार व्यवस्था प्रभावित होती है।

18.13 होटल आवास

पर्यटन के विकास के लिये होटल आवास एक आवश्यक बुनियादी संरचना है। भारत में 2483 स्वीकृत गुणवत्ता वाले होटल हैं जिनमें 1,17,81 मानक कमरे है । विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में होटलों की संख्या का कम होना हतोत्साहित कर देने वाली बात है। भारत में यह 67.8 प्रतिशत है जबकि सिंगापुर में 83.4 प्रतिशत है। 1995 के बाद व्यापार में उदारीकरण होने से पर्यटन बहुत तीव्रगति से विस्तार ले रहा है। अब तक भारत में वैश्विक पर्यटन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है और पर्यटन उद्योग का तीव्र गति से विस्तार हो रहा है। एक आवश्यक बुनियादी संरचना की आवश्यकता है जो भारत में अभी उपलब्ध नहीं है।

18.14 नागरिक उड्यन एवं विमानपत्तन

जहाजों का यातायात एवं वायुयानों का संगठन तथा विमानतलों के विकास से पर्यटन एवं परिवहन के बुनियादी ढाँचा दर्शित होता है। 2011 में भारत में 462 विमान तल भारत के बड़े राज्यों में स्थित थे। अधिकांश बंदरगाह बड़े–बड़े शहरों और पर्यटन स्थलों को जोड़ने के लिये बनाये गये है। भारत के आकार प्रकार की तुलना में भारत में विमान तल अपर्याप्त है। अमेरिका में 15079 ब्राजील में 4072, मेक्सिको में 1819 और कनाड़ा में 1404 विमान तल हैं सारे भारतीय विमान

तल भलीभांति सुसज्जित नहीं है और केवल 352 विमान तलों में आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध है। भारतीय विमान तलों में अन्तर्राष्ट्रीय जहाज यातायात हैं अमीरात, जैट एयरवेज, लुफ्तहंसा, कैथे पैसिफिक, सिंगापुर एअर, बिटिश एयर, एयर इंडिया, थाई, कतार, एतिहार इत्यादि। 2010 में कुल जहाज 11,39,068 टन थां। भारतीय नागरिक उड्डयन नेटवर्क में बहुत आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

18.15 रेलवे नेटवर्क (तंत्रजाल)

रेलवे की 64,460 कि.मी. रेल्वे लाईने विभिन्न राज्यों में फैली हुई हैं। उ.प्र. में (8762 कि. मी.) राजस्थान में 5744 कि.मी., महाराष्ट्र में 5602 कि.मी. गुजरात में 5271 कि.मी., आन्ध्र में 5264 कि.मी. और म.प्र. में 4954 कि.मी. रेलवे नेटवर्क है। अमेरिका में रेलवे लाइन 227,752 कि.मी., रूस में 87157 कि.मी., आस्ट्रेलिया में 38445 कि.मी. है। सुभद्री मार्ग में जहाजों का यातायात 53758 हजार टन, कांडला में 47905 हजार टन विशाखापत्तनम में, 43630 हजार टन जे.एन.पी.टी. में 37851 हजार टन चेन्नई में, 36367 हजार टन पारादीप में है। भारतीय बंदरगाहों में कुल जहाजों का यातायात 37,06,82,000 टन प्रतिवर्ष है। यह क्षमता तेजी से बढ़ रही है। विदेशी व्यापार की बढ़ती मांग के कारण रेलवे और शिपिंग की क्षमता में 15 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

भारत में 33,20,410 कि.मी. सड़कें है। शायद भारत का सड़क मार्ग में विश्व में तीसरा स्थान है। जबकि अमेरिका और चीन का पहला एवं दूसरा स्थान है। 2011 में राष्ट्रीय राजमार्गों की लंबाई 71,722 कि.मी. है। यह युद्धस्तर पर विस्तार ले रही है। सड़कों को पुनर्निमाण एवं आधुनिकी करण की आवश्यकता है जिसमें बहुत सारे निवेश की जरूरत है।

18.16 चिकित्सा कर्मी और चिकित्सालय

चिकित्सा सेवाओं में भाग लेने की तकनीकी कर्मियों की ताकत भी आवश्यक बुनियादी संरचना है। चिकित्सा विशेषज्ञता के लिये भारत को उच्च ख्याति प्राप्त है। भारत में 6,60,801 चिकित्सक है, अमेरिका में 7,93648, चीन में 1905436 और जर्मनी में 2,92,129 चिकित्सक है। भारत में 1,04,603 पंजीकृत दंत चिकित्सक हैं अमेरिका में 4,63,663 दंत चिकित्सक हैं। भारत में 12,760 सरकारी चिकित्सालय हैं जिनमें से 6,795 एलोपैथी के ग्रामीण चिकित्सालय हैं। स्वास्थ्य एवं इलाज की विभिन्न प्रकार की सुविधाएं ग्रामीण और सुदूर इलाकों में उपलब्ध हैं। पिछली दो योजनाओं में भारत ने चिकित्सा सेवा क्षमता का विस्तार किया है। आयुर्वेद और होम्योपैथी इलाज की सुविधाएं बढ़ रही है। यूनानी चिकित्सा पद्धति को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस विशाल राष्ट्र में पूरे भारत देश में लोक स्वास्थ्य के लिये सामुदायिक और उप सामुदायिक केन्द्र फैले हुये हैं, यद्यपि कि ये सेवाएँ इतनी बड़ी जनसंख्या और रोग प्रवण क्षेत्रों के लिये आवश्यकता से कम थीं। भारत 12 वीं योजना के साथ विश्व स्तरीय चिकित्सा बुनियादी ढाँचे को विकसित करने की ओर बढ़ रहा है। प्रशिक्षण और अनुसंधान के लिये चिकित्सा संस्थानों, चिकित्सा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थिति और संख्या चिकित्सा उपचार के लिये बुनियादी ढाँचे का निर्माण करती है। उप क्षेत्रों और राज्यों में यह असमान रूप से वितरित है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र, केरल, उ.प्र., गुजरात, पश्चिम बंगाल, राजस्थान और बिहार में चिकित्सा अनुसंधान संस्थान सबसे अधिक है। इसी तरह, दंत चिकित्सा महाविद्यालय कुछ ही राज्यों में स्थित है। 289 दंत चिकित्सा महाविद्यालय है, इनमें से अधिकांश कर्नाटक, महाराष्ट्र, उ.प्र., तमिलनाडु, करेल, आन्ध्र, म.प्र., पंजाब, राजस्थान, गुजरात और हरियाणा में है। भारतीय चिकित्सा व्यवस्था के 492 महाविद्यालय भारत में है । इसी

तरह, पैरामेडिकल (चिकित्सा सदृश) स्टाफ प्रशिक्षण सुविधाएं भी अच्छी तरह से अपने पैर जमा रही है। चलित चिकित्सा इकाईयाँ भी प्रत्येक राज्य में 16 से 30 स्थापित हैं। भारत अपनी स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं को आधुनिक और विस्तृत करने हेतु कर्तव्यबद्ध है, 2013 तक उन्नत तकनीक का प्रयोग करते हुये उन्नत देशों के बराबर सुवधिाएं जुटाने हेतु सुनिश्चित है।

18.17 शैक्षणिक बुनियादी संरचना

भारत में शिक्षा बुनियादी संरचना के अन्तर्गत आती है जो इसके आर्थिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक विकास को मजबूती प्रदान करती है। विद्यालय की इमारतें, सुविधाएं, विसतार, अध्यापक वर्ग एवं संसाधन आदि बुनियादी ढाँचे के हिस्सा है। इस क्षेत्र में स्वतंत्रता के बाद भारत में तेजी से विस्तार हुआ है। शैक्षणिक क्षेत्र में कई चरणों में पूर्ण साक्षरता प्राप्त करने के लिये जोरदार प्रयास किये गये हैं, ताकि उत्पादन और विकास के सभी समाज में सर्वोत्तम गुणवत्ता की विशेषज्ञता विकसित करने के लिये शिक्षा को और अधिक उन्नत और वैज्ञानिक ज्ञान से परिपूर्ण बनाया जा सके। अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता अफसोसजनक रूप से कम है और उचित प्रशासन का अभाव है। पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत अधिक है और ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समाज के कमजोर वर्गों के लिये शिक्षा सुलभ नहीं है।

18.18 प्रौद्योगिकी के दुर्ग

प्रौद्योगिकी अनुसंधान और सीखने के उच्चतम स्थान दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कानपुर, खडगपुर, रूड़की, गुवाहटी, कलकत्ता इत्यादि है। 1914 पोलीटेक्निक 2694 अभियांत्रिकी महाविद्यालय, 1565 उच्च गुणवत्ता प्राप्त बिजनेस स्कूल और 7,87827 प्राथमिक विद्यालय है। इन सबके अलावा बहुत बड़ी संख्या में अल्पसंख्यक निजी संस्थान है। स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा की विस्तृत व्यवस्था है एवं ज्ञान की प्रत्येक आधुनिक शाखा में अनुसंधान की सुवधिाएं है फिर भी भारत में अब भी वैश्विक परिदृश्य की तुलना में शैक्षणिक वृद्धि के बुनियादी ढाँचे का विकास काफी नीचे स्तर का रहा है। भारत में शिक्षा के बुनियादी स्तर को सुधारने के लिये गंभीर प्रयास किये जा रहे है। 12 वीं योजना में विशेष प्रावधान किये गये हैं। भारत में उत्पादित तकनीकी विशेषज्ञता का लाभ विदेशी देश उठा रहे है। भारत से बड़ी तादाद में तकनीकी विशेषज्ञ लोग प्रवास कर रहे है।

18.19 सिंचाई संबंधी बुनियादी संरचना

प्रगतिशील कृषि की मांग होती है सिंचाई और उच्च संगठित आदेश और संस्थानों की इनपुट आपूर्ति व्यवस्थ्या जो तकनीकी परिवर्तन की जरूरतों को पूरा करती हो। पिछले कई दशकों में इसे प्राथमिकता पर ही रखा गया। 1950 से इस क्षेत्र पर लगभग 2,31,400 करोड़ रूपये खर्च किये गये 1950 में भारत में सिंचाई शक्ति 22 मिलियन हेक्टेयर थी जो 1996 में बढ़कर 89 मिलियन हेक्टेयर हो गयी। लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्रों की सिंचाई नहरों द्वारा की जाती है 62 प्रतिशत की सिंचाई ट्यूब वैलों द्वारा एवं 8 प्रतिशत टंकियों ओर तालाबों (2004) द्वारा की जाती है। 2006 –07 में कुल सिंचित क्षेत्र 85 मिलियन हेक्टेयर था। भारत में सिंचाई की क्षमता बड़े एवं छोटे स्त्रोतों से 140 मिलियन हेक्टेयर तक बढ़ गयी (2000) । नाबार्ड की भूमिका कृषि संबंधी बुनियादी ढाँचों के विकास एवं विस्तारीकरण के लिये राशि बढ़ाने के लिये है। कृषि अनुसंधान संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों ने उन्नत कृषि तकनीकों के लिये सहायता दी है। उर्वरकों की आवश्यकता को पूरा करने, उन्नत बीज, बुवाई के लिये बीज और प्रमाणित बीजों के लिये एक क्रमबद्ध व्यवस्था का विकास किया गया है। सिंचाई कृषि गतिविधि के लिये बहुत बुनियादी आवश्ययकता का निर्माण करती

है। कृषि सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र उ.प्र., म.प्र. राजस्थान, आन्ध, पंजाब, बिहार, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और हरियाणा है। 2002 में भारत में कुल सिंचित क्षेत्र 570.55 हजार हेक्टयेर था।

2002 में 158.77 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में नहरों से सिंचाई होती थी जो कि बहुत थोड़े राज्यों जैसे उ.प्र., आन्ध्र, राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र, बिहार, पंजाब, कर्नाटक, म.प्र. और उड़ीसा तक सीमित थी। भारत में (2002) ट्यूब वैल से 228.16 हजार हेक्टेयर जमीन की सिंचाई होती थी, इस तरह से सिंचाई करने वाले राज्य थे उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक। भारत में कुएँ की सिंचाई के अच्छे स्त्रोत है। 2002 में लगभग 23.36 हजार हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई कुओं द्वारा की जाती थी। आन्ध्र, तमिलनाडु, उड़ीसा, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल इत्यादि में कुंए का प्रयोग अधिक होता था। हर फसली मार्ग के लिये सिंचाई की सुविधा बढ़ाने के प्रयासों से फसल उत्पादन दोगुना हो सकता है और श्रमिक बल के लिये रोजगार के अधिक अवसर पैदा हो सकते हैं दुर्भाग्य से भारत के प्रचुर मात्रा में जल संसाधनों के इस्तेमाल की योजना बनाने के लिये पर्याप्त प्रयास नहीं किये गये है। फसलों के लिये वर्षा के जल के संचयन के साथ–साथ भंडारण के सर्वोत्तम आर्थिक उपयोग के लिये नई तकनीक विकसित की जानी चाहिये। सूखी खेती तकनीक को अधिक उत्पादन के लिये परिष्कृत किया जाना चाहिये। असिंचित क्षेत्र वर्षा पर निर्भर रहते हैं ऐसी जगहों पर वर्षा के जल का संचयन कृषि उद्यमियों को बहुत सहायता पहुँचायेगा।

18.20 वित्तीय बैकिंग और बीमा

सभी क्षेत्रों में बुनियादी संरचनात्मक विकास के लिये वित्तीय और बैंकिंग संस्थान प्राथमिक महत्व के है। औद्योगिक कृषि विकास या राज्य वित्तीय आवश्यकताएं इन संसथाओं द्वारा पूरी की जाती है। बीमा कंपनियाँ म्युच्युल फंड, निवेश राशि, और अन्य बचत राशि को एकत्रित करने का एक साधन है और फिर उन्हें निवेश के उद्देश्यों में लगाया जाता है। रिजर्व बैंक, व्यावसायिक बैंक, सहकारी बैंके, ग्रामीण बैंक, विदेशी निजी बैंके, स्वदेशी बैंकर, आदि वित्तीय व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है जो आर्थिक निवेश में सहायक होते हैं तथा पूंजीगत आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। भारतीय वित्तीय ढाँचे का एक उद्देश्य सामाजिक बैकिंग भी है। विकसित होते बाजार और पूंजी बाजार भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं हैं – वित्तीय संस्थाएं जैसे औद्योगिक साख एवं भारत का निवेश निगम (आई.सी.सी.आई.) औद्योगिक विकास बैंक (भारत) (आई.डी.बी.आई.), भारत का लघु औद्योगिक विकास बैंक (एस.आई.डी.बी.), भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक (आई.आई.बी.आई), यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, राज्य औद्योगिक विकास निगम, बैकिंग रहित वित्तीय कंपनियाँ एवं व्यापारी बैकिंग संस्थान आर्थिक वृद्धि की सहयोगी बुनियादी संरचना है। आज भी भारत में वित्तीय सुधारों के लिये बहुत अधिक हाशिया है, गुंजाइश है।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक, केनरा बैंक, बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, यूनियन बैंक आफ इंडिया, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, इंडियन ओवरसीज बैंक, सिन्डीकेट बैंक आदि सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसिद्ध बैंक है। आई.सी.आई.सी.आई, एच.डी.एफ.सी, ऐक्सिस बैंक, फेडरल बैंक, कोटक महिन्द्रा, वी.वाई.एस.ए. बैंक, यस बैंक, कर्नाटका बैंक आदि सर्वविदित प्रतिष्ठित निजी बैंक है।

भारत में वित्त और निवेश की दस शीर्ष कंपनियाँ हैं श्रीराम फाइनेंस कं., इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फायनेंस कम्पनी रिलायंस कैपिटल, बी.एल.बी. लिमिटेड, इंडिया बुल्स फायनेंस लिमिटेड,

महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा फायनेंस, चोलामंडल की बी.एस. फायनेंस, सुंदरम फायनेंस, ओसकर निवेश आदि।

निवेश का सर्वाधिक ध्यान आवास क्षेत्र पर है। दस शीर्ष आवास निवेश कंपनियाँ है– एच. डी.एफ.सी., सी.आई.सी, हाउसिंग फायनेंस, दीवान हाउसिंग, जी आई सी हाउसिंग एवं फायनेंसिंग जी आर यूएच. फायनेंस, केनफिन होम्स, सहारा हाउसिंग, इंड बैंक हाउसिंग कम्पनी कोरल इंडिया फायनेंस एवं हाउसिंग कम्पनी आदि।

18.21 पशु चिकित्सा बुनियादी संरचना

पशुपालन, डयेरी, भेड़ और उन मुर्गीपालन तथा ऊंट विकास से संबंधित आर्थिक गतिविधियों के लिये पशु चिकित्सालय और सेवा केन्द्र आवश्यक बुनियादी संरचना है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में पशु सेवा, संगठनों का विकास किया है जो कि राज्य सरकार द्वारा संचालित होते है।

18.22 अनुसंधान एवं विकास बुनियादी संरचना

अर्थव्यवस्था के अनुसन्धान पहलू को उत्पादन के क्षेत्र में नये तरीकों और उपयुक्त तकनीक विकसित करने के लिये विशेष कर्मियों और प्रयोगशालाओं की जरूरत है। भारत में आई.सी.ए.आर. और सी.एस. आई.आर. जैसे बड़े बड़े संस्थान हैं। अधिकांश आई.सी.एम. आर. स्वामित्व वाली प्रयोगशालाएं सार्वजनिक क्षेत्र में है। ठोस परिणामों के लिये अनुसंधान हेतु निजी पहल की आवश्यकता है। निजी उद्यमियों के उनकी अपनी अनुसंधान एवं विकास विभाग है। औद्योगिक अनुसंधान और चिकित्सा अनुसंधान के लिये बहुत सारी राशि और निष्ठा की आवश्यकता है जो कि सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों में गायब है। भारत को अर्थपूर्ण बुनियादी अनुसंधान के लिये प्रतिवर्ष 45000 करोड़ रूपये की आवश्यकता है। निजी अनुसंधान संगठन और सरकारी स्वामित्व वाले अनुसंधान संगठनों के बीच पर्याप्त विकास के लिये अब निर्माण क्रियान्वयन और हस्तांतरण की रणनीति पर सहमति हो गयी है। 2003–04 में बुनियादी ढाँचा क्षेत्र में सकल पूंजी निर्माण जीडीपी का प्रतिशत (25, 38,171 करोड़ रूपये) सकल घरेलू उत्पाद का 3.82 प्रतिशत था।

भारत का योजना आयोग प्रत्येक क्षेत्र के आर्थिक वृद्धि के बुनियादी ढाँचे की अपर्याप्तता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। बिजली उत्पादन, सड़कें, रेलवे, बंदरगाह, सिंचाई, ग्रामीण पेयजल आदि में बहुत कमियाँ देखी गयी। 11 वीं पंचवर्षीय योजना में (20,02,000 करोड़) सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 9 प्रतिशत की योजना बनायी गयी।

18.23 तकनीकी शिक्षा

भारत जिस ज्ञानवान समाज का निर्माण करना चाहता है, उसके लिये तकनीकी शिक्षा मूलभूत आवश्यकता है। लेकिन अभी तक बनाये सारे प्रावधान एक बड़ी जनसंख्या वाले देश के लिये केवल सीमांत रूप में हैं यहाँ तकनीक के बल के 7 प्रसिद्ध संस्थान हैं और प्रबंधन के छः शीर्ष स्तरीय संस्थान हैं। यहां केवल 1617 अभियांत्रिकी और तकनीक महाविद्यालय है। होटल प्रबंधन संसथान 91 है, 1147 प्रबधंन संस्थान और कम्प्यूटर स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र भारत में पंजीबद्ध है। यहाँ 20 राष्ट्रीय तकनीकी संस्थान और बहुत सारे डीम्ड विश्वविद्यालय हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर खरे नहीं उतरते है। ग्यारहवीं योजना ने 30 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना का प्रस्ताव रखा है किन्तु इसके मानक उन्नत संस्थानों से तुलना योग्य नहीं है। 11 विश्व स्तरीय विश्वविद्यालयों की योजना बनायी गयी, जो मात्र शिक्षा और अनुसंधान पर ही ध्यान देगी। भारत में अधिकांश स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र गंभीर रूप से शिक्षण के बुनियादी ढाँचे में कमी आ रही है। तकनीकी शिक्षा

केन्द्र पूरे देश में समान रूप से नहीं फैले हैं। दक्षिण भारत पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। भारत में गुणात्मक उन्नति होना भारतीय अर्थव्यवस्था की त्वरित आवश्कयता है।

18.24 लोक स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवा

भारत में योग, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, होम्योपैथी, आयुर्वेद और एलोपैथी से इलाज किया जाता है। ग्रामीण स्वास्थ्य बुनियादी संरचना बहुत कमजोर है। यहाँ 7663 चिकित्सालय है, अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र में है। यह दवाओं सहित अक्षम, खराब मानव रहित और अविश्वसनीय उपकरणों से पीड़ित है। 2006 में, यहाँ 11345 निजी अस्पताल थे, इनमें से कुछ केवल नाम की खातिर थे। स्वास्थ्य सुविधा अधिकांश रूप से शहरी क्षेत्रों पर केन्द्रित रहती है। सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 5 प्रतिशत अस्पताल से वाहर खर्च किया जाता है। अमेरिका में यह प्रतिशत 15.9, जापान में 8.2 प्रतिशत और इंग्लैड में 8.2 प्रतिशत भारत में स्वास्थ्य बीमा गरीबों के लिये आज भी दूर का स्वप्न है, जहां अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में पीने का पानी भी पहुँच से दूर है। अधिकांश सामान्य स्वास्थ्य बीमारियाँ पानी से संबंधित होती हैं और बड़े शहरी क्षेत्रों में भी साफ स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है। चिकित्सालयों और स्वास्थ्य केन्द्रों में मानव बल की कमी है। और आवश्यक सुविधाओं एवं उपकरणों का भी अभाव है।

18.25 नौवहन बुनियादी संरचनाये

भारत में नौवहन क्षमता बुनियादी ढाँचे की एक उल्लेखनीय विशेषता है। वैश्विक व्यापार में भारतीय सहभागिता में पर्याप्त नौवहन क्षमता में कमी के कारण बाधा उत्पन्न हुई। भारतीय नौवहन वाहकों की हिस्सेदारी कुछ वर्षों में गिर रही है। विकृत नौवहन वाहकों में इसकी हिस्सेदारी मुश्किल से एक प्रतिशित है। भारत में 4 करोड़ टन जी.आर.टी. के कुल 160 जहाज है। यहाँ 66 भारतीय नौवहन कपंनियाँ काम कर रही हैं। भारत अपने जहाज विशाखापत्तनम, कलकत्ता, मुंबई और कोचीन में बनाता है । केवल 29 प्रतिशत भारतीय सामान भारतीय जहाजों द्वारा ले जाया जाता है, उसमें से 54 प्रतिशत कच्चा तेल है। भारतीय जहाजों के संचालन की उच्च लागत है। भारत में सूखी डाकिंग की सुविधा, कार्गों के संचालन और मरम्मत की सुविधाओं की कमी है। भारत को 800 मिलियन टन जी.आर.टी. को संभालने की क्षमता की आवश्यकता है। तीव्रतर गति से क्षमता बढ़ाने के प्रयास किये गये है।

18.26 नागरिक उड्डयन

घरेलू सेवाओं में, भारतीय विमान 253 मिलियन, किलोमीटर (2001) से 250000 घंटों तक उड़ान भरते हैं और 13712 यात्रियों और 67,6000 टन कार्गो ले जाते है। 2005–06 से उड़ान के घंटे 475000 तक पहुँच गये और 25205000 यात्रियों को लेकर उड़ान भर रहे है। कुल सामान (कार्गो) 256000 यात्री और 112000 टन कार्गो (2005–06) ले जाया जाता है। लगभग 162 मिलियन कि.मी. की दूरी तय की जाती हैं लगभग 237000 घंटों की उड़ान भरी जाती है। इस ओर वृद्धि में निजी क्षत्रों द्वारा दी जा रही सहायता बहुत सहायक सिद्ध हुई। भारतीय नागरिक उड्डयन मानक विश्वस्तरीय हैं और उतरस्तरीय सेवाएं है।

18.27 साफ्टवेयर बुनियादी संरचना

भारत में कम्प्यूटर शिक्षा बुनियादी ढाँचा बुनियादी संरचना के रूप में भी योगदान देता है, जिसमें एनआईआईटी, एडुकौम्प स्पेल्युशंस, एवरॉन एजुकेशन, एपटैक, बिड़ला सडुटैक, जैटकिंग इन्फोट्रेन लिमिटेड, साफ्टवेयर टैक सकूह, एस. क्यू एल. स्टार, निम्बस, कॉम्प–यूलीन,टेक आदि की

भूमिकाएं सीमित है, अधिकांश नयी दिल्ली, चेन्नई, मुम्बई, हैदराबाद और अहमदाबाद में पायी जाती है। भारतीय कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर कंपनियाँ भारतीय लोगों को प्रशिक्षण और रोजगार के लिये आधार तैयार करने में सहायता प्रदान करती है। टाटा कंसलटेन्सी, विप्रो, इन्फ्रोसिस टैक्नोलॉजी, टैक महिन्द्रा, एचसीएल लिमिटेड, ओरेकल फायनेंशियल साफ्टवेयर, पटनी कम्प्यूटर सिस्टम, ह्यूलैट पैकर्ड ग्लोबल सॉफ्ट, पी.आई.एस. लिमिटेड, इन्फ्रोटैक एन्टरप्राइजेस इत्यादि अधिक प्रचलित है। माइक्रोसाफ्ट सॉफ्ट बैंक, एक्सैम्पर, आई.बी.एम, औरेकल, गूगल आदि भारत में वैश्विक दिग्गज है। इसी तरह, इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर कंपनियाँ इस उद्योग को बड़ा समर्थन दे रही हैं। लार्सन एंड टर्बो, बी.जी. आर. एनज्री, ई.आई.एल., मैकनैली, श्रीराम, पैट्रन इत्यादि अभियांत्रिकी सेवाओं वाली कंपनियाँ भारतीयों को विशेषज्ञता हासिल करने हेतु आयाम उपलब्ध कराती हैं। भारत में साफ्टवेयर बुनियादी संरचना तीव्रगति से मजबूत हो रही है। यह अत्यन्त दुर्भाग्य पूर्ण है कि हाल के दशकों में बुनियादी ढाँचागत क्षेत्रों में पूंजी निर्माण की गति में गिरावट हो रही है। यह 1993–94 में सकल घेरलू उत्पाद का 5.88 प्रतिशत था जो 97–98 में 4.43 घट गयी, 2001–02 में 4.43 प्रतिशत, 2002–03 में 4.01 प्रतिशत, और 2002–04 में 3.82 प्रतिशत तक घट गयी। बिजली, गैस, पानी, यातायात, भंडारण, संप्रेषण रेल्वे, सड़क यातायात, और भंडारण क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। ग्यारहवीं योजना में, सकल धेरलू उत्पाद का 9 प्रतिशत तक वृद्धि हुयी है। निजी निवेश से बुनियादी संरचनात्मक निवेश को सहारा मिलता है, जिससे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सहयोग मिलता है।

18.28 परामर्श एवं विशेषज्ञता संस्थान

उद्यमियों की सबसे बड़ी आवश्यकता उद्योग और व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में विकास की परियोजनाओं को डिजाइन, प्रबंधन और कार्यान्वयन के लिये विशेषज्ञता से संबंधित है। विशेषज्ञता प्राप्त संस्थान और परामर्श कंपनियाँ उद्यमियों को किसी भी व्यावसायिक उद्यम के प्रशासन और प्रशासन की तकनीकी शर्तों की मदद करती है। विस्तृत मानचित्रण और डिजाइन इन विशेषज्ञ घरानों द्वारा तैयार किये जाते हैं जिन्हें बाद में ग्राहक व्यवसायी घरानों एवं विनिर्माण कंपनियों द्वारा लागू किया जाता है। अंतिम उत्पाद तक पहुँचने में चरणों की भागीदारी, विपणन की जटिलताएं, बिक्री पैटर्न, कराधान और संबंधित पहलुओं को पहले से विशेषज्ञों के विवरण में स्थापित किया गया है। उनकी सलाह की मांग श्रम भर्ती, मशीनरी और उपकरण श्रमिक अशांति, बाजार चातुर्थ आदि के लिये की जा सकती है। बाहरी परामर्श के सहयोग से भारत के प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञता को विकसित किया ।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बुनियादी ढाँचा बहुत ही रणनीतिक इनपुट है जिसके बिना औद्योगिक और व्यावसायिक इकाईयों का का विस्तार और पर्याप्त मार्जिन बनाना संभव नहीं है। अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित करना होता है कि उद्यमियों के उत्साह वर्धन हेतु उन्नति का अनुकूल वातावरण तैयार कर लिया गया है। वातावरण का एक बड़ा हिस्सा शांति सुरक्षा, विधि एवं आदेश, अच्छे स्तर की आर्थिक स्थिरता, और उपयुक्त न्यायिक व्यवस्थाओं पर निर्भर करता है। उद्यमियों को अगली हर स्तर की तिथिवार सांख्यिकीय जानकारी रखना आवश्यक होता है, ताकि राज्य उद्यमियों को आंकड़े एकत्रित करने में सहायता पहुंच सके। सभी उन्नत देशों में उनकी सांख्यिकीय वृद्धि एकत्रीकरण एजेन्सी, निजी विशिष्ट एजेन्सियाँ हैं जो भारत में काम करती हैं और इस तरह के तकनीकी मामलों में काम करती हैं और इस तरह के तकनीकी मामलों में व्यवसायी घरानों को सहायता प्रदान करती है।

18.29 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

आर्थिक विकास के मानव जीवन के संबंधित प्रयासों को जीवन की और अधिक आरामदायक और आसान बनाने के लिये प्रेरित किया। आर्थिक गतिविधि के संगठन और सामाजिक संगठन की आवश्यकता होती है। उत्पादन के विभिन्न कारकों को उद्यमियों द्वारा एक साथ लाया गया और आखिरी तक काम करने हेतु बनाया गया। यदि जीवन के न्यूनतम स्तर प्रदान किये जाते हैं तो ये दक्षता के साथ काम करते हैं। पीने योग्य पानी, स्व्च्छता चिकित्सीय सहायता, शिक्षा, भोजन, आवास आदि की व्यवस्था उत्पादन स्थल पर की गयी ताकि कामगार अपने कार्य आसानी से कर सकें उद्यमियों ने बच्चों के लिये शिशुपालना ग्रह का प्रावधान रखा, जिसे कारखाना स्थल पर महिला कर्मियों के बच्चे इन पालनगृहों में रखे जा सके। इससे उत्पादन को बढ़ाने के लिये एक बुनियादी ढाँचा तैयार हुआ ।

प्रत्येक आर्थिक उद्यम को विभिन्न जोखिमों से गुजरना पड़ता है, वह सुरक्षा का हो सकता है स्थायित्व का हो सकता है, विधिक ढाँचे, श्रमिक और वित्तीय जोखिम इत्यादि हो सकता है। इसकी बदरगाह की सुविधाएं अधिक खिंची हुई (अति प्रवाह) हैं सड़क और रेल मार्ग अच्छी तरह के नहीं चल रहे हैं, बिजली आपूर्ति अनियमित हैं, तकनीक बदल रही है और किसी भी क्षण नयी प्रतिस्पर्धा का प्रादुर्भाव हो जाता है। इन सब जोखिमों से बचा जा सकता है उपयुक्त बीमा और अच्छे तरीके अपनाकर । अतः व्यवसाय की वृद्धि के लिये बीमा एक बुनियादी संरचना सुविधा है। कार्यस्थल पर श्रमिकों को दी जाने वाली सुविधाओं से तनाव और श्रमिक की चिन्ता कम होती है एवं वे चिन्तामुक्त होकर,तनाव रहित होकर काम करते हैं। वे मध्यान्ह भोजन के लिये घर जाने के लिये अवकाश हेतु दबाव नहीं डालते हैं इससे वे काम करने के लिये उपलब्ध रहते हैं और दिन में अधिक घंटे काम कर पाते हैं।

18.30 सारांश

बुनियादी संरचना का अर्थ है संस्थागत सुविधाएं, गतिविधियों की गति को बढ़ावा देना। इसके अन्तर्गत अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण सम्मिलित है जो इच्छित लक्ष्यों की दिशा में किये जा रहे प्रयासों की दक्षता को गति देते है। साधारणतया, बुनियादी संरचना के अन्तर्गत भौतिक संरचना आती है जैसे सिंचाई नहर, सड़कें और रेलमार्ग, उड्यन सुवधाएं, बैंकिंग एवं बीमा संरचना, विपणन एवं परामर्श केन्द्र, बिजली अनिर्माण और पूंजी बाजार, तकनीकी प्रशिक्षण एवं कौशल निर्माण की व्यवस्थाएं उपकरण जो दक्षता एवं प्रदर्शन में वृद्धि को गति देते हैं । बुनियादी संरचना एक सामाजिक उपरि है। दूर संचार नेटवर्क एक बुनियादी संरचना है। होटल आवास पर्यटन विकास के लिये एक आवश्यक बुनियादी संरचना है। गहन मौलिक सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य केन्द्र, चिकित्सालय, पशुचिकित्सा सेवाएं, पीने योग्य पानी की सुविधा एवं बाजार केन्द्र आदि के बिना कोई भी व्यक्ति मानव विकास की कल्पना भी नहीं कर सकता। नये उपकरण और तकनीक का प्रयोग करने की अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है। अतः तेजी से विकास के लिये अत्यधिक सुसज्जित प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र आवश्यक है। विकसित शिपिंग और जहाजी बेड़े से व्यापार बढ़ता है। कुशल सुरक्षा की सेवाएं, शान्ति विधि एवं आदेश एवं न्याय आर्थिक उन्नति की पूर्व शर्तें है। भारत ने नियोजित युग के दौरान बुनियादी ढाँचे का एक व्यापक नेटवर्क बुना है, जिससे भारत में आर्थिक विकास बहुत तेजी से हुआ है।

18.31 शब्दावली

प्राथमिक क्षेत्र : से तात्पर्य प्राकृतिक संसाधनों का सीधे उपयोग करने वाली अर्थव्यवस्था के क्षेत्र से है।

18.32 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. ––––––––––अर्थव्यवस्था के चारों ओर बुनियादी संस्थागत सुविधाओं का एक संयोजन है जो विकास के प्रयासों और उत्पादन को काफी बढ़ावा देता है।
2. भारत का –––––––––– में बिजली उत्पादन में विश्व में चौथा स्थान था।
3. लगभग ––––––––– प्रतिशत भारतीय गाँवों में बिजली है।
4. इंटरनेट सेवाएं ––––––––––––––––– अवसंरचना के महत्वपूर्ण भाग है।

18.33 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 बुनियादी संरचना 2 2009 3 90 4. संचार

18.34 स्वपरख प्रश्न

1. बुनियादी ढाँचा (अवसंरचना) शब्द को समझाइये और भारत की अर्थव्यवस्था के विकास को ध्यान में रखते हुये इसमें क्या सम्मिलित है ?
2. भारत में सीमेन्ट विनिर्माण उद्योग किन बुनियादी समस्याओं का सामना कर रहा है ?
3. भारत में दूरसंचार क्षेत्र पर प्रकाश डालिये।
4. भारत में जल विद्युत परियोजनाओं के गुण एवं अवगुणों की व्याख्या कीजिए।
5. भारत में रेल्वे द्वारा किन समस्याओं का सामना किया जा रहा है, व्याख्या कीजिए ।
6. भारत में उड्डयन क्षेत्र के विकास एवं विस्तार पर प्रकाश डालिये।
7. भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र का क्या स्तर है ?
8. शिक्षा क्षेत्र में आने वाली समस्याओं की व्याख्या कीजिए ।

18.35 संदर्भ पुस्तकें

1. Rudder Datt and KPM Sundharam, “Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
2. Census of India (2011), Report of the Technical Group on Population constituted by the National Commission on Population (2006).
3. UNDP – Human Development Index, 2007 to 2009.
4. R.H. Cassen, India – Population, Economy and Society, (Delhi, 1929).
5. Government of India: Reports of Economic Surveys.
6. Jean Dreze and Amartya Sen, India – Economic Development and Social Opportunity, (Delhi, 1996).
7. T. N. Krishnan “Population, Poverty and Employment in India”, Economic and Political Weekly, Nov. 14, 1992, p. 2480.
8. Pravin Visaria, “Demographic Dimensions of Indian Economic Development” in P.R. Brahmananda and V. R. Panchmukhi The Development Process of the Indian Economy, (Bombay, 1987).

9. Does India's Population Growth Has A Positive Effect on Economic Growth? Rohan Kothari, Social Science 410, Nov. 1999.
10. Population and Economic Development in India, N.R. Narayan Murthy, July, 2005.
11. India Development Report, 2010.
12. Mahendra K. Premi – 'Population of India in the New Millenium, Census-2001 (New Delhi, NBT 2006).
13. Rakesh Mohan and Chandra Shekhar Pant, "Morphology of Urbanization in India', Economic and Political Weekly, September, 18, 1982, p. 1537.
14. Frederick Harbison and Charles A. Myeres – "Education, Manpower and Economic Growth (New Delhi, 1970).
15. Indian Economy: Ruddar Datt, KPM Sundaram, S. Chand, New Delhi.
16. The Indian Economy, Environment and Policy: Ishwar C. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
17. Indian Economy: Mishra & Puri, Himalaya Publishing House, New Delhi.

———————

इकाई 19 भारत के वन एवं खनिज संसाधन

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 वायु, मृदा एवं जल प्राथमिक संसाधन हैं ।
19.3 संसाधन आवश्यकताओं एवं अनुप्रयोगों पर निर्भर करते है।
19.4 वन संसाधन के रूप में
19.5 भारतीय वनों की भूमिका
19.6 भारत में वन क्षेत्र
19.7 भारत की वन नीति
19.8 वन उत्पादों की आपूर्ति की कमी
19.9 विकास जन सहयोग – जे.एफ.एम.
19.10 वनों की श्रेणियाँ
19.11 वानिकी की उत्पत्ति
19.12 जैव विविधता
19.13 प्राणि विज्ञान पार्क, वन्यजीवन अभ्यारण्य एवं पर्यटन
19.14 कम उत्पादकता
19.15 गैर – वन उपयोगों के लिये वन भूमि का उपयोग
19.16 भारत के खनिज संसाधन –कोयला खनन
19.17 कोयला और पेट्रोलियम का घटनाक्रम
19.18 तेल शोधक कारखाने एवं परमाणु खनिज
19.19 लौह, अयस्क संपदा
19.20 मैंगनीज और अभ्रक अयस्क
19.21 बाक्साइट घटनाक्रम
19.22 जस्ता, सीसा एवं ताँबा
19.23 सोने की खान
18.24 जिप्सम और चूना पत्थर
19.25 चुनातियाँ एवं समस्याएँ
19.26 सारांश
19.27 शब्दावली
19.28 बोध प्रश्न
19.29 बोध प्रश्नों के उत्तर
19.30 स्वपरख प्रश्न
19.31 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- भारत के वन एवं खनिज संपदा की व्याख्या कर सकें।
- भारत के विकास में उपलब्ध संसाधनों की भूमिका की व्याख्या कर सकें।

- भारत के संसाधनों के संरक्षण में आने वाली मुख्य चुनौतियों की व्याख्या कर सकें।

19.1 प्रस्तावना

विश्व में बहुत सारी अर्थयवस्थाएं हैं जो प्रकृति से संपन्न छोटे या बिना संसाधन वाले उन्नत देशों के साथ हैं। इनमें समृद्धि एवं प्रगति मानवीय निपुणता, कौशल, व्यापार और तनकीकी फलों द्वारा प्राप्त की जाती है। कुछ देशों में प्राकृतिक भौगोलिक स्थान अपने आप में ही आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया का एक, संसाधन होता है। मौसमी स्थितियाँ, जैव–विविधता, तलरूप, भूसंसाधन, जल संसाधन, वनस्पति और जीव, वन एवं खनिज संसाधन, सूर्य की रोशनी, जल व्यवस्थाएं बारिश एवं तापमान, हवा का वेग इत्यादि की लोगों के आर्थिक स्तर को निर्धारित करने में अग्रणी भूमिका है। मानवीय निपुणता, प्रयास और तकनीक की भूमिका आर्थिक समृद्धि में बहुत अधिक रहती है क्योंकि भौगोलिक हानियों में अक्सर रफू किया जाता है एवं प्रौद्योगिक द्वारा मानव लाभ को मोड़ा जाता है। यह निश्चित सत्य है कि मानव सभ्यता की सबसे प्रारंभिक एकाग्रता नदी के तट पर, समुद्र के किनारे, ऊपजाऊ मिट्टी की स्थिति के क्षेत्र पर, जंगली क्षेत्र पर और पृथ्वी के खनिज बेल्ट पर स्थित थी। अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ प्रदान किये गये क्षेत्र आर्थिक विकास में योगदान बहुत आसानी से करने में सक्षम थे। और यह योगदान हानिकारक भूमि की तुलना में स्वाभाविक रूप से सहयोग देते है।

सीमा के पार व्यापार की प्रक्रिया ने प्राकृतिक विस्तार को कुछ हद तक कम करने की दिशा में आगे बढ़ने की वजह से आर्थिक संसाधनों को प्राप्त करने के लिये अन्य संसाधन कम देशों से समान स्तर पर भाग लेने में सक्षम है।

19.2 वायु , मृदा और जल प्राथमिक संसाधन है

किसी भी प्रकार की फसल की खेती के लिये गुणवत्ता पूर्ण मिट्टी एवं उसकी उपलब्धता आवश्यक है। राष्ट्र जिनके पास उच्च गुणवत्ता वाली जलोढ़ मिट्टी उनमें कृषि की अच्छी संभावनाएं हैं । यदि मिट्टी की पर्याप्त सिंचाई मिल जाती है या समय पर बारिश हो जाती है तब भी कृषि अच्छी होती है। फसल उगाही के लिये सिंचाई के नेटवर्क को विकसित करना है। नदियों, तालाबों, झीलों, कुओं, ट्यूबवैल, नहरों और भूजल की उपलब्धता अच्छी फसल में सहायक होते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्रों में सिंचाई की कोई गुंजाइश नहीं है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन क्षेत्रों को शुष्क भूमि कृषि से संतुष्ट होना पड़ेगा। यदि वर्षा का स्तर अधिक है, तो मानव प्रयास बारिश का पानी सिंचाई के लिये एकत्रित कर सकते हैं। कुछ क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई मुख्य पेशा है, पानी समुद्र से लिया जाता है और बारिश के पानी के साथ मिलाकर खेती की जाती है। ड्रिप इरीगेशन (टपकन सिंचाई) नेटवर्क जल संसाधन महत्वपूर्ण रूप से अधिकाधिक लाभ पहुंचाती है। संसाधन मानव प्रयास के द्वारा अस्थिर या नवीकरणीय हो सकते हैं । पेट्रोलियम, कोयला और खनिज आदि अस्थिर हैं और इन्हें पुनः उत्पादित नहीं किया जा सकता है, जबकि भूमि उर्वरकता, जंगल एवं जल विद्युत परियोजनाएं स्थिर है । सौर ऊर्जा की अल्पावधि में निःशेष होने की संभावना नहीं है। तरंग ऊर्जा, भू–तापीय ऊर्जा, पवन ऊर्जा की स्थिर प्रकृति की हैं। मानव प्रयासों द्वारा अनुकूल वातावरण तैयार किया जाना चाहिये। पहाड़ों की अजीब स्थलाकृति फसल बढ़ाने के लिये छत के खेतों में परिवर्तित हो सकती हैं आबादी और पशुधन की तरह मत्स्य पालन और वन्य जीवन भी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने योग्य है। चराई और चराई भूमि अक्षय संसाधन है। छोटे निवेश के साथ खेती योग्य बंजर भूमि को लाया जा सकता है।

19.3 संसाधन आवश्यकताओं एवं अनुप्रयोगों पर निर्भर करते है

संसाधनों की कोई पूरी सूची उपलब्ध नहीं है जो मानव जाति के जीवन स्तर के उच्च स्तर को प्राप्त करने में मदद करते हैं वास्तव में, विभिन्न प्रकृति और स्थितियों के बारे में जब चीजें मनुष्य के महान उपयोग की हो सकती हैं, मानव ज्ञान के द्वारा ऐसी सूची सीमित ही होगी । अधिकांश प्राथमिक संसाधन मनुष्य की जानकारी में हैं जेसे हवा, मछली, जल, मिट्टी, वन्य जीवन, पौधे का जवीन, सूर्य की रोशनी, वर्षा नदी का प्रवाह, सामुद्रिक संसाधन, तलरूप आदि। जैसे जैसे जीवन अधिक परिष्कृत एवं उन्नत हो जाता है, नये संसाधनों की खोज की जाती है एवं मनुष्य जीवन की बेहतरी के लिये उनका उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक संसाधनों को अक्सर भौतिक संरचनाओं में पुनर्निधारित किया जाता है जिन्हें पूंजी संसाधन कहा जाता है। जलवायु, मौसम, परिस्थितिकी, पर्यावरण संसाधन के हिस्से हैं। वन मनुष्यों को सदैव आश्रम प्रदान करते हैं एवं उनकी आवश्यकताओं को विभिन्न माध्यमों से सहायता पहुँचाते हैं । अब तक मानव ज्ञान ने प्रकृति के अंचल को छुआ है। अतः, यहाँ अनदेखे और अज्ञात विशाल इलाके हैं। पेट्रोलियम, गैस, कोयला, केरल तटों के मोनोजिट रेत के परमाणु उपयोग आदि की खोज यह दर्शित करती है कि बहुत अनुभव एवं वैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा इन संसाधनों की खोज की गयी। मानव कल्याण के लिये प्राकृतिक बल का उपयोग करने हेतु नये उपकरणों का आविष्कार संसाधनों के रूप में इन बलों को नामित करता है। जगह का स्थान, समुद्र से दूरी, पर्वतो का आकार और दिशा, हवा का वेग, समुद्री लहरें आदि एक संसाधन के रूप में मानव पर प्रभाव डालते हैं। प्राथमिक संसाधन जैसे जल, गुफाएं, वायु , उर्वरक मिट्टी, उज्जवल सूर्य की रोशनी, जैविक जीवन आदि का मनुष्य द्वारा मानव जीवन के आरंभिक चरण में उपयोग किया गया ।

19.4 वन संसाधन के रूप में

जंगलों को बंदरों की शैली में मानव आश्रम के रूप में माना जाता था । बाद में जंगलों की लकड़ी का उपयोग इमारत, भवन बनाने में काम में आने लगा। शाखाओं का इस्तेमाल खेती और उपकरण के रूप में किया गया। आग की लकड़ी और बाड़ लगाने की सामग्री की आपूर्ति वनों द्वारा की जाती थी। बम्बू, घास, बेलें, पत्तियाँ, गोंद इत्यादि का उपयोग कागज बनाने के लिये किया गया। जंगलों ने मानव जाति के लिये शिकार के आधार के रूप में लंबे समय तक सेवा की है। मिट्टी का क्षरण और वन आधारित फल, नट, जड़, छाल, रस आदि की जाँच करने में इनकी मदद मिली, छोटे और कुटीर उद्योगों के लिये महत्वपूर्ण कच्चा माल का गठन, करने में भी इनकी सहायता मिली। जंगलों में ध्यान और आस्था के केन्द्र के रूप में काम किया है ताकि आध्यात्मिकता को बढ़ाया जा सके। भारत में पिछले कई शताब्दियों में जंगलों के निरंतर समाप्त होने के बावजूद, लगभग 7.5 करोड़ हेक्टेयर जमीन है, जोकि संपूर्ण जमीनी क्षेत्र का 22.7 प्रतिशत का निर्माण करता है, आज भी भारत में जंगल के रूप में जाना जाता है। यह जंगल हवा देने वाले पम्प के रूप में कार्य कर रहे हैं जो बारिश के जल को मिट्टी की गहरी तह तक ले जाने का काम करते हैं तथा भूमि तल से जल लेकर नमी के रूप में जमीन तक लाने का काम कर रहे हैं।

भारत के उष्ण कटिबंधीय जंगल पहाड़ी ढलानों पर है। मानसूनी तरंगों (वेग) का सामना कर रहे है। यह घटना 200 सेंटीमीटर से अधिक की है। यह क्षेत्र महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल के पश्चिमी घाट है। पूर्वी हिमालय का तराई क्षेत्र एवं उत्तरपूर्वी भारत जिसमें लुसाई, यारो, खासी, जयन्तिया आदि सम्मिलित है, और अंदमान के टापू (द्वीप) उष्ण कटिबंधीय हरित जंगल का निर्माण करते है। इन क्षेत्रों में तापमान 25 से 27 सेंटी ग्रेड तक बदलता रहता है। विभिन्न प्रकार के बम्बू के प्रकार फर्न, ऐपी फाइट, और बेलें घने जंगलों में पाये जाते है। इन जंगलों में बहुत उपयोगी कठोर

लकड़ी जैसे सीशम तून, आयरन, वुड, इबोनी, रोजबुड आदि पायी जाती है। इन पेड़ों से उपयोगी फर्नीचर बनाया जाता है। यह पेड़ कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, गुजरात के जंगलों और पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, केरल, अंडमान और निकोबार में पाये जाते है। इन जंगलों से प्राप्त लकड़ी रेल्वे स्लीपर, भवन निर्माण और घरेलू फर्नीचर बनाने के काम आती है। इस लकड़ी का उपयोग भवन निर्माण में बहुत मात्रा में किया जाता है।

मानसूनी जंगल वर्षा के क्षेत्र में 150 से 200 सेंटी मीटर की रेंज तक प्रचर मात्रा में पाये जाते हैं और यह भारत में मनुष्य की दैनिक जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। साल, टीक, चन्दन की लकड़ी, सेमल, अर्जन, महुआ, खैर, पलास, आम, नीम, कटहल, वाटल आदि मानूसनी जंगल के प्रकार है। यह वृक्ष झड़ने वाले होते हैं जिनके पत्ते गर्म मौसम में 6 से 8 सप्ताह में झड़ जाते हैं। साल एक बहुत महत्वपूर्ण लकड़ी है जो अधिक उम्र के लिये, कठोरता लिये और दीमक से बचाव के लिये जानी जाती है। यह बिहार, उ.प्र., उड़ीसा, म.प्र., त्रिपुरा, असम में आमतौर पर पाये जाते है। टीक भी टिकाऊ होने के कारण समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग भारी नाव, जहाज, भवन और भवन निर्माण के साथ घरेलू लकड़ी के काम में किया जाता है। चन्दन की लकड़ी से खुशबू आती है और यह कर्नाटक मे ंपायी जाती है। सेमला, असम, बिहार, तमिलनाडु और अन्य राज्यों में पायी जाती है ओर इसका उपयोग पैकिंग केस, माचिस की डिब्बी, खिलौने , खेल के सामान आदि बनाने में किया जाता है। माइरोबालान से पेड़ों, फलों की प्राप्ति होती है जिनसे रंगने के लिये प्राकृतिक रंग प्रापत होते है। इनका निर्यात दूसरे देशों को किया जाता है। यह उद्योग का समर्थन करता है।

हिमालयन पर्वतीय जंगलों में कश्मीर से असम तक विस्तृत रेंज है। इनमें विभिन्न प्रकार के बारिश और मौसम पर आधारित वृक्ष हैं। साफ सुथरे, देवदार, रजत ओक, रजत फर, पाइन, देवदार, मगनोलिया, लॉरेल, पापलर, अखरोट, यूकेलिप्टस, चीड़–पाइन आदि पर्वत जंगल के उदाहरण हैं। कश्मीर, उत्तराखंड, उ.प्र. और पंजाब में इस तरह के वृक्ष हैं। रजत ओक पेड का उपयोग कागज की लुगदी एवं तखते बनाने में किया जाता है। देवदार एक आलीशान वृक्ष है जिसे सेड्रस के नाम से जाना जाता है। यह शुंकुधर मुख्यतः हिमाचल, कश्मीर और उत्तराखण्ड में पाया जाता है। इससे सबसे अच्छी पटरी और घर बनाने का सामान बनाया जाता है। कुछ साफ और कांटेदार जंगलों का विकास केवल कम वर्षा वाले क्षेत्रों (100 से.मी. से भी कम) में पाया जाता है। खैर इस प्रकार का एक महत्वपूर्ण वृक्ष है जो केटेचू और आय रंगाई की लकड़ी और स्त्रोत के रूप में उपयोग किया जाता है।

यदि वर्षा 25 से.मी. या इससे भी कम है, तो अच्छे जंगल होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। जबकि तापमान 25 से 27 सेंटी ग्रेड रहता है। कुछ कांटेदार झाड़ियाँ, बबूल जामुन, कीकर, खेजरी आदि इधर उधर फैले हुये बढ़ सकते हैं किन्तु इनकी लंबाई बहुत अधिक नहीं बढ़ती है। इन पेड़ों के तेज कांटे होते हैं। बबूल से गोंद की पैदावार होती है और काले रंग का उपयोग चमड़ा उद्योग में किया जाता है। गुजरात, दखिण और पश्चिमी पंजाब, कच्छ, सौराष्ट्र और दक्षिण के सूखे भागों में इनकी उपज होती है।

भारत को ज्वारीय क्षेत्र में रूप बहार या तटीय वनों का लाभ है। यह घने जंगल होते हैं और इन जंगलों में आसानी से प्रवेश करना संभव नहीं होता है। इन पेड़ों की जड़ें ण्की हुयीं पानी के अन्दर रहती हैं समुद्र में ज्वार के समय झुकी हुई रहती हैं और जब समुद्र में भाटा होता है तब यह जड़े दिखायी देती है। मिट्टी इतनी कठोर नहीं होती है कि वह जड़ों को रोक सके, अतः जमीन पर

कीचड़ और मिट्टी के बढ़ने और कम होने से जड़े स्वयं ही व्यवस्थित हो जाती हैं। यह बहुत घनी होती हैं और ऊपर वाली शाखाएं तल के ऊपर छत उपलब्ध कराती हैं और यह पूर्वी तट के मुहानों तक खिंचते हुये फैलते जाते है। गंगा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और इसके साथ ही अदमान टापू को इन मुहानों के रूप में चिन्हित किया गया है। बंगाल की खाड़ी के सुन्दरवन के जंगल इसके उदाहरण हैं। इन जंगलों से प्राप्त लकड़ी नाव बनाने के लिये सर्वोत्तम है और यहाँ तक कि नमी भी स्थिति में भी टिकी रहती है।

वनों से प्राप्त होने वाली सामग्री आधार रेखा उत्पाद है जिनसे विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों के लिये कच्चामाल तैयार होता है, हार्डबोर्ड, वनीर, गूदा, प्लायवुड, माचिस बनाना, खिलौने, फर्नीचर, उत्कीर्णन और नक्काशी, भवन निर्माण के लिये लकड़ी खेल के सामान इत्यादि जंगलों से प्राप्त लकड़ी से तैयार किये जाते है। बहुत बड़ी संख्या में सह उत्पाद और छोटे उत्पाद भी जंगल से प्राप्त किये जाते हैं। तेंदू पत्ते से बनायी जाने वाली बीड़ी के पड़े भी जंगल में उपलब्ध हैं, इसी तरह रेशेदार फल, फूल, केन और बंबू, गोंद, तारपीन, रेसिन, यूकेलिप्टस तेल, मसाले, घास, मोम, शहद और अन्य उत्पाद भारत के जंगलों में उपलब्ध है। भारत में विभिन्न प्रकार के जंगल हैं और यह विविधता मिट्टी और जलवायु के कारण है। गीली मिट्टी, काली मिट्टी लाल मिट्टी आदि विभिन्न फसलों के लिये उपयुक्त होती है। बाढ़ प्रवण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था बाढ़ के पानी द्वारा लायी गयी सुदृढ़ मिट्टी पर निर्भर करती है। इस मिट्टी से जैद व्यवसायिक फसलों में वृद्धि होने से बड़ी संख्या में किसान भी बढ़ रहे हैं। इस इकाई में हम जंगलों और भारत के खनिज संसाधनों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करेंगे।

19.5 भारतीय वनों की भूमिका

प्राकृतिक या लगाये गये पेड़ों की एकाग्रता जंगल है, जो मिट्टी और इसकी विशेषताओं को बाँधे रखते हैं और उनकी जड़ों द्वारा संरक्षित होते है। ये उच्च वेग की हवाओं के विरूद्ध मजबूत प्रतिरोध लगाते हैं और मिट्टी को सूखने से बचाते हैं। बाढ़ के पानी के द्वारा मृदाक्षरण के विरूद्ध प्रतिरोधक के रूप में जंगल खड़े रहते हैं यह अपने द्वारा लाये गये कूड़े कचरे से मिट्टी को समृद्ध बनाते हैं एवं विभिन्न तरीकों से वन्य जीवन की भी सहायता करते हैं। जंगल मिट्टी के ढीलेपन को संरक्षित करते हैं और उनकी गहरी जड़ों से जल इकटठा करते हैं और भूमिगत पानी के स्तर को सुदृढ़ बनाते हैं। जंगल सामान्य संपदा के विभिन्न प्रकार के भंडार है। जंगलों में विभिन्न प्रकार की घास और चारा उत्पन्न होता है। इसके साथ ही उपयोगी जड़ी बूटियां, अखरोट, फल, फूल, अमृत, और मनुष्य के लिये लाभकारी विभिन्न छोटे–छोटे उत्पाद भी जंगलों में लगते हैं। जंगलों का उनके अनुत्पादक चट्टानी क्षेत्रों का उपयोग ईधन, लकड़ी पत्तेदार घास इत्यादि देने के लिये महत्व है। वन जंगली जीवन और पक्षियों को आश्रय प्रदान करते है और मनुष्यों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली चीजों जैसे जल, त्वचा, हड्डियों की बहुत बड़ी संख्या में आपूर्ति करते है। जंगल नवीकरणीय संसाधन हैं जिन्हें मानव प्रयासों द्वारा पुनर्जीवित किया जा सकता है और विस्तारित परिपक्व अवधि वाले कृषि फसल की प्रकृति है। वानिकी एक व्यवसाय है जिसमें जंगल बोये जाते हैं, लगाये जाते हैं और मानव की जरूरतों के लिये उनकी कटाई तक ध्यान रखा जाता है।

19.6 भारत में वन क्षेत्र

यह ज्ञात है कि भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्र 329 मिलियन हेक्टयेर है जिसमें से माप के आंकड़े केवल 306 मिलियन हेक्टेयर के ही उपलब्ध है, केवल 14 प्रतिशत (42 मिलियन हेक्टयेर)

बंजर भूमि है जो खेती के काम में नहीं आती हैं। लगभग 23 प्रतिशत (69 मि. हे.) क्षेत्र वन के अन्तर्गत आता है। भार का 3 प्रतिशत (11 मि.हे.) भूमि क्षेत्र चराई ओर भूमि है और 6 प्रतिशत (18 मि. हे.) क्षेत्र खेती योग्य है । बेकार पड़ी भूमि है जहां खेती करना संभव है लेकिन खेती की नहीं जा रही है। 25 मिलियन हेक्टेयर (8 प्रतिशत क्षेत्र) परती भूमि है जिसमें खेती नहीं की गयी है ओर इसे प्राकृतिक मिट्टी की उर्वरकता के पुनरूद्धार के लिये छोड़ दिया गया है। शुद्ध बुवाई क्षेत्र 141 मिलियन हेक्टेयर है या 2002 के आंकड़ों के अनुसार 46 प्रतिशत क्षेत्र रिपोर्टिंग क्षेत्र है। 49 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र (रिपोर्टिंग क्षेत्र का 16 प्रतिशत) पर एक बार से अधिक बुवाई हुयी है। वन भूमि से तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से नहीं है जो पेड़ों से भरा क्षेत्र है बल्कि इसे अधिकारिक रूप से वन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, चाहे निजी स्वामित्व में हो या सार्वजनिक स्वामित्व। पेड़ों से भरा वास्तविक वन क्षेत्र रिर्पोटिंग क्षेत्र से 23 प्रतिशत से भी कम है। सुदूर संवेदनशील सूत्रों का दावा है कि यह 19 प्रतिशत ही है (2010) ।

जंगल वातावरण, जलवायु, पारिस्थितिकी, और जीवन के परिवेश के संरक्षण हैं। यह विभिन्न तरीकों से मानव जीवन को समृद्ध बनाते हैं जिसमें विभिन्न औद्योगिक कच्चा–माल का उत्पादन सम्मिलित हैं। और यह एक तरफ मूल्यवान लकड़ी, ईधन की लकड़ी और चारे की आपूर्ति से मानव प्रगति की स्थिरता सुनिश्चित करते हैं, वहीं दूसरी ओर आक्सीजन और प्रदूषण रहित आसमान उपलब्ध कराते है। 2003 में सुदूर संवेदनशील तकनीक ने यह पाया कि वास्तव में वृक्षों से भरा 20.6 प्रतिशत समाप्त हो गया। सभी जंगल समान रूप से और सुदृढ़ नहीं है। मुश्किल से, 12 प्रतिशत क्षेत्र में अच्छे जंगल है। भारत में लगभग 7 प्रतिशत क्षेत्र में केवल बिखरे हुये सदा बहार वन हैं। ग्रामीणों को अच्छा आश्रय, ईधन, शिकार, कारोबार के लिये लकड़ी और बहुत सी जड़ें तने, फूल और खाने के लिये फल इन्होंनें जंगलों से प्राप्त होता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण वन भूमि से कृषि भूमि में विस्तार हो रहा है एवं गाँवों में खराब पड़ी कृषि योग्य भूमि पर भी कृषि की जा रही है। जंगलों में लगने वाली आग, क्षरण और भारत में जंगलों के बेकार प्रशासन की चुनौती का सामना जंगलों को करना पड़ रहा है। कांटेदार कलियों की विभिन्न प्रजातियों वायु के झोंके को रोकती हैं। उष्णकटिबंधीय नमी जंगलों को हमेशा हरा भरा रखता है और उष्णकटिबंधीय हरे जंगल प्राकृतिक सुन्दता और अधिकांश प्रकार के जीवन को आश्रय देने के स्त्रोत हैं।

19.7 भारत की वन नीति

जंगल, सम्पूर्ण भारतीय समुदाय की संपत्ति एवं संपदा हैं एवें राज्यों में सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा प्रबंधित किये जाते हैं। यहां तक कि योजनाओं के काल में भी, जंगलों के महत्व को आधिकारिक नीति में भी सही तरीके से नहीं समझा गया। धरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी एक प्रतिशत तक मानी जाती है। संचयी मुद्रा स्फीति के आगमन और लकडी एवं उससे संबंधित उत्पाद की कीमतें बढ़ने से वनों की सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी, 1981 की कीमतों के आधार पर 2.4 प्रतिशत (1996–97) का दावा पेश किया जा रहा है। जंगलों की भूमिका का आकलन करने के लिये दृष्टिकोण संदिग्ध मूल्य से दूर क्योंकि जंगलों का मुख्य योगदान पारिस्थितिकी तंत्र एवं वातावरण से संबंधित है जिसे वनों के योगदान के निर्धारण में सम्मिलित ही नहीं किया गया है। भारत में अधिकांश वन संसाधन प्राकृतिक हैं और लगाये हुये जंगल बहुत कम है। भारत में जंगल सभी जगह बराबरी से वितरित नहीं है। 1954 की नीति के अनुसार 33 प्रतिशत क्षेत्र जंगलों से घिरा है। असम, उड़ीसा, म.प्र. और कुछ और पहाड़ी इलाकों के अलावा, जंगल बहुत कम है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान अवैध कटाई, कर्मचारियों में भ्रष्टाचार एवं क्षरण के विरूद्ध जंगलों की सुरक्षा और प्रबंधन

बिल्कुल अपर्याप्त है। जंगलों पर छठी योजना परिवव्यय से 0.6 प्रतिशत से कम था। ग्यारहवीं योजना में राशि बढ़कर 8,840 करोड़ (2006–07 कीमतों) रूपये हो गयी। वाणिज्यिक शोषण एवं चोरी के कारण वन नुकसान की पूर्ति पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, जो कि पारिस्थिति की और वातावरण दोनों के लिये हानिकारक है।

जंगलों से घिरा 100 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र भारत की न्यूनतम आवश्यकता है जैसा कि 1952 में निर्धारित किया गया। विभिन्न प्रकार और पैमाने के जंगल आधारित उद्योगों को हर योजना में अधिक से अधिक लकड़ी की आवश्यकता होती है इसके अलावा विनिर्माण उद्योग से भी अत्यधिक मांग होती है। विस्तृत आवश्यकताओं को देखते हुये विकासशील जंगलों की गति बहुत धीमी है। बाँस और कुछ घास हमें कागज और कृत्रिम रेशे की आपूर्ति करते है। चमड़े और रंगों के लिये, गौंद, रंगाई, दवाईयों, फलों और जड़ों के लिये छाल बहुत मूलभूत आवश्यकता है। जंगल पंप के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि यह भूजल को चूसते हैं और हवा मे नमी के रूप में इसका परागमन करते हैं। सुनियोजित विकास ने प्रयास किया है कि पेड़ों की ऐसी प्रजाति लगायी जाए जो जल्दी बढ़ें, अधिक लाभकारी हों, और मजबूत किस्म के हों न कि लकड़ी के आवश्यक प्रकार के वृक्ष । बेकार जंगलों का पुनर्वास संभव नहीं है। 1951–2000 के द्वारा यह दावा किया गया कि लगभग 4.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण किया गया। वनों में वृक्ष लगाना और वन आधारित उद्योग बेहद श्रमिक सशक्त हैं ताकि बेहतर रोजगार सुनिश्चित किया जा सके।

19.8 वन उत्पादों की आपूर्ति की कमी

वन उत्पादों की माँग इतनी अधिक है कि इसकी पूर्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक हम अपने आसपास के क्षेत्रों में पेड़ों की संख्या नहीं बढ़ा देते, सामाजिक वानिकी जैसी नयी योजनाएँ इसीलिये बनी है ताकि गैर–जंगल भूमि में वृक्ष लगाये जा सकें तथा गाँवों की चारागाह भूमि पर भी वृक्ष रोपे जा सकें। कृषि वानिकी, सार्वजनिक लकड़ी के जंगल, सामुदायिक जंगल, भारत के वन खजाने में महत्वपूर्ण रूप से कुछ जोड़ नहीं सके। बेहतर उत्पादकता के द्वारा वन राजस्व बढ़ाने की अधिकारिक प्राथमिकता है, जबकि लोगों की मांग बेहतर माहौल, हरा भरा वातावरण, कागज, रेयान, पैकिंग, माचिस और आवास के लिये कच्चेमाल को उपलब्ध कराना है। भारतीय जंगल की लकड़ी की उपज 28 घन मीटर है जबकि वैश्विक औसत 110 सेटीमीटर प्रति हेक्टेयर बढ़ता हुआ स्टॉक है।

जंगलों को बढ़ावा देने की चेतना 6 वीं योजना के बाद ही तेज हो गयी जब वृक्षारोपण पर्यावरणीय महत्व के साथ विश्व स्तर पर सबसे आगे आया । निजी भूमि पर वृक्षारोपण के लोगों के आन्दोलन ने गति ली एवं ग्रामीण रोजगार ने वन विकास के उद्देश्य के रूप में व्यवहार किया। वन परियोजनाओं के लिये निवेश संस्थाओं से वित्त पोषण को आकर्षित करने के लिये वन विकास निगम अस्तित्व में आये। एक राष्ट्रीय बर्बाद भूमि विकास बोर्ड का उद्भव हुआ जिसको 5 मिलियन हेक्टेयर बर्बाद भूमि का उपयोग वनों की वृद्धि के लिये किया। किन्तु वास्तव में 6 वीं योजना में 1 मिलियन हेक्टेयर पर ही पौधे लगाये जा सके। बड़ी मात्रा में वनों की कटाई निरन्तर जारी है, 1952–72 के बीच प्रति वर्ष 155000 हेक्टेयर जंगल साफ हो रहे हैं। आज यह मान्य किया गया कि वन संसाधनों को विकास के लिये उन्नति मिलनी चाहिये एवं अन्य क्षेत्रों में स्थिरता आनी चाहिये।

बड़े पैमाने पर जमीन वाले कृषि वानिकी बड़े भूमि धारकों के समर्थन से सफलता प्राप्त कर रहे थे क्योंकि सभी प्रकार की लकड़ी की कीमतें बढ़ रहीं थीं, जिसने वानिकी को वाणिज्यिक व्यवसाय के रूप में नामजद पूंजी के रूप में बदल दिया। आधिकारिक रियायतों ने बड़े भूमि धारकों

को अधिक व्यवहार्य बना दिया। 1988 के बाद, वन विकास को वातावरण, जलवायु और ग्रामीण गरीबों को रोजगार देने वाला प्राथमिक कदम माना जाने लगा, विशेष रूप से आदिवासियों को रोजगार दिलाने वाला माना जाने लगा।

वन आधारित उद्योगों को लकड़ी की कम आपूर्ति से हानि उठानी पड़ी । ठेकेदारों को प्रबंधन और शोषण से हटा दिया गया किन्तु वे राजनीतिक समर्थन से उन्मुक्त होकर कार्य कर रहे थे। यहाँ तक कि सहभागिता वाले वन प्रबंधन (पी.एम.एम.) भी वन प्रशासन में भ्रष्टाचार और बड़े पैमाने पर समर्थन की कमी के कारण अफसल हो गये। प्राकृतिक जंगलों में गैर सरकारी संगठनों, कृषि वानिकी, सामाजिक वानिकी और खेती वानिकी के कार्यों के कारण कुछ परिवर्तन देखा गया। लगभग 6 मिलियन हेक्टेयर जंगली क्षेत्र इन योजनाओं के अन्तर्गत आता है। फिर भी प्रगति नाममात्र की है। आईसी एफ.आर. ई. वानिकी समन्वय में अनुसंधान परिषद है जहाँ कि अन्य ऐजेन्सियों के प्रयासों का समन्वयन करती है एवं भारत के 10 वानिकी संस्थानों में भी सामंजस्य बैठाती है।

19.9 विकास जन–सहयोग :–(जे.एफ.एम.)

सहभागिता (भागीदारी) वानिकी के डिजाइन में संयुक्त वन प्रबंधन शुरू हुआ, जो 10 वीं एवं 11 वीं योजना के अन्तर्गत 22 मिलियन हेक्टेयर वन भूमि पर योजनाओं के साथ काम करता है पंचायतों एवं केन्द्र सरकार के समन्वय से बहुत सी परियोजनाएं कार्य कर रही हैं। "वन्यजीव परियोजना संस्थान भी पर्यावरण की सुरक्षा और वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये कार्य कर रहा है तथा बड़े पैमाने पर लोगों के बीच जागरूकता फैला रहा है। वन उत्पादकता में प्रगति होनी चाहिये ताकि लोगों की आवश्यकता की पूर्ति हो सके और कुछ राजस्व भी उत्पनन किया जा सके। संयुक्त वन प्रबंधन घास भूमि एवं वनों की उन्नति में महिलाओं की सहभागिता और सहयोग को सुनिश्चित करता है। ग्रामीण रोजगार उन्नत योजनाओं की कार्य योजना में वनीकरण को शामिल किया जाना चाहिये। म.प्र., असम, छत्तीसगढ़, गुजरात, पश्चिम बंगाल, उत्तराखण्ड, त्रिपुरा, मिजोरम, महाराष्ट्र, झारखंड इत्यादि के वन आधारित गाँवों को वन की प्रगति के लिये विश्वास में लिया जाना चाहिये। भारत में इस तरह 2670 गाँव हैं एवं बिना उनके सहयोग के जंगलों की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता है।

19.10 वनों की श्रेणियाँ

भारत में तीन तरह के वन हैं जो इस प्रकार हैं– आरक्षित वन, सुरक्षित वन और अवर्गीकृत वन। साथ ही यहाँ पंचायत वन भी हैं। इन की स्थिति बहुत क्षीण और दुर्बल है। भारत में आरक्षित प्रकार के जंगल 3,99,919 स्क्वेयर मीटर के ऊपर है (2003) सुरक्षित जंगल 2,38,434 स्क्वेयर मीटर क्षेत्र में है और अवर्गीकृत वन 1,36,387 कि.मी. क्षेत्र में है। कुल मिलाकर जंगली क्षेत्र 7,68,436 कि.मी. है। नागरिक एवं पंचायत वनों को विशिष्ट देखभाल की आवश्यता होती है और वन प्रबंधन में स्थानीय समुदायों को शामिल करके पुनर्गठन की आवश्यकता है।

सारणी 19.1 भारत में विभिन्न श्रेणियों के वन

क्र.	मुख्य राज्य	वन क्षेत्र स्क्वेयर मीटर में			
		आरक्षित	संरक्षित	अवर्गीकृत	कुल
1	मध्यप्रदेश	38734	35587	900	95221
2	मध्य प्रदेश	50479	12365	977	63814
3	महाराष्ट्र	49217	8196	4526	61939
4	छत्तीसगढ़	25782	24036	9954	59285

5	उड़ीसा	26329	15525	16282	58135
6	अरूणाचल	10178	9536	31826	51540
7	कर्नाटक	29550	3585	9949	38724
8	हिमाचल	1896	33043	2094	37033
9	उत्तराखण्ड	23827	10673	162	34662
10	राजस्थान	11860	17652	2976	32494
	भारत	399919	238434	136387	768436

उपर्युक्त सारणी यह दर्शित करती है कि म.प्र., आन्ध्र, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मुख्यतः वन प्रधान राज्य है। भारत में आरक्षित वन क्षेत्र 3,99,919 स्क्वेयर मीटर है, संरक्षित क्षेत्र 2,38,434 स्क्वयेर कि.मी. क्षेत्र में है । भारत में सम्पूर्ण वन प्रबधंन को पुर्नरीक्षण की आवश्यकता है । वन संपदा के लिये मख्ुय खतरा आग, कर्मचारियों की भ्रष्ट नीतियों और बदमाशों द्वारा चोरी से है। वनों में अक्सर आग मनुष्यों के हस्तक्षेप या जानबूझकर चिंगारी के द्वारा लगती है। समझबूझकर आग को समाप्त करने के एक ईमानदार प्रयास से लगभग 12 से 20 प्रतिशत तक वन स्टॉक और उन्नत वृक्षारोपण को बचाया जा सकता है।

सारणी 19.2 भारत में जंगलों से घिरे राज्य (2003)

क्र.	राज्य और संघ शाशित क्षेत्र का नाम	जंगल से घिरा प्रतिशत क्षेत्र
1	अंडमान और निकोबार टापू	86.93
2	सिक्किम	82.31
3	मिजोरम	79.30
4	मणिपुर	78.01
5	हिमाचल	66.52
6	उत्तराखण्ड	64.81
7	अरूणाचल	61.55
8	त्रिपुरा	60.01
9	नागालैंड	52.05
10	छत्तीसगढ़	44.21
	भारत	23.57

19.11 वानिकी की उत्पत्ति

भारत में वैज्ञानिक वानिकी जन्म डाइट्रि ब्राडिस, सरविलियम शेलिक और बर्ट होल्ड रिब्बन ट्रॉप (1860) के सहयोग से हुआ । जब 1964 में वन विभाग की स्थापना हुई और पहला वन अधिनियम 1878, 1893 एवं 1927 के अधिनियमों का अनुसरण करते हुये लागू किया गया, जिसने भारत में जंगलों पर राज्य के स्वामित्व, और एकाधिकार को सौंप दिया। 1882 में मद्रास प्रेसीडेन्सी वन अधिनियम ने छोटे और बड़े आरक्षित क्षेत्रों में आरक्षित वन अवधारणा का निर्माण किया। वोलेकर (1894) ने पर्यावरण, उत्पादन और लोगों के हितों के लिए वन प्रबंधन की आधारशिला रखी । सुरक्षात्मक जैवविविधता, वनों के आर्थिक उपयोग को राज्य के सुरक्षा अधिनियमों द्वारा उपयुक्त मान्यता प्राप्त थी।

जंगलों के प्रबधंन की अवधारणा के कारण बढ़ते स्टॉक, प्रजातियाँ, कटाई, उत्थान, संरक्षण, परिवहन, प्रवेश, विपणन, जलवायु लाभ, वन्य जीवन से मनोरंजन और छोटे उत्पादन और लकड़ी की दैनिक आवश्यकताओं पर स्थानीय लोगों के अधिकारों पर वैज्ञानिक नीतिगत फैसलों का नेतृत्व किया गया। पर्याप्त मात्रा में ईधन की लकड़ी की आपूर्ति सुनिश्चित की जानी है और जैव–विविधता को नये प्रबंधन के अन्तर्गत संरक्षित किया जाना है। जन–सहयोग नीति के अन्तर्गत मांगा गया किन्तु प्रशासन की कड़ी मेहनत से लोगों को एकत्रित करना नौकरशाहों के लिये बहुत मुश्किल है।

19.12 जैव–विविधता

तकनीकी रूप से जैव विविधता में अनुवांशिक, प्रजाति और परिस्थितिक तंत्र संबंधित विवरण शामिल है। वन्य जीवन संरक्षण हित की नीति केवल कागज पर किया गया काम है। फिर भी वन्य जीवों की रक्षा के लिये वैश्विक हित ने भारतीय वानिकों को भी प्रभावित किया है। तेंदुआ, चीता, हाथी आदि संरक्षित जानवर हैं। तेदुएं म.प्र., उ.प्र., गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, राजस्थान, उड़ीसा, प.बं., असम और बिहार में पाये जाते हैं। 2007 में भारत में इनकी संख्या 8203 थी जबकि चीते 3642 थे। जंगली हाथी कर्नाटक, असम, केरल, तमिलनाडु, मेघालय, उड़ीसा, अरूणाचल, उत्तराखंड, झारखंड और पश्चिम बंगाल में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। भारत में कुल 26413 तेंदुए पाये जाने का दावा किया जा रहा है। हाथियों के अभ्यारण्य मैसूर, नीलगिरी, शिवालिका, पेरिर, काजीरंगा, वायनाड, निलाम्बूर, गारों की पहाड़ियाँ, चिरंगा और करेल के अनामुदी में हैं।

19.13 प्राणि विज्ञान पार्क, वन्यजीवन अभ्यारण्य एवं पर्यटन

2009 में पंजाब, उड़ीसा, कर्नाटक, आन्ध्र, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ पं. बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र झारखंड, गुजरात इत्यादि के प्राणिविज्ञान पार्क में 346 चीते थे। यहाँ पर 90 राष्ट्रीय पार्क 36,982 स्क्वेयर कि.मी. क्षेत्र में अंदमान निकोबार द्वीप समूह, मध्यप्रदेश में फैले हुये है। उत्तराखण्ड, कर्नाटक, असम, पं.बं, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गुजरात, आन्ध्र, सिक्किम, अरूणाचल, जम्मू एण्ड कश्मीर में भी राष्ट्रीय पार्कों के अन्तर्गत वन क्षेत्र है। भारत के दस शीर्ष राष्ट्रीय पार्क है– हेमिस, डैजर्ट, नंदाफा, खेंग–चेंद–जोंगा, मंगोती, संजय, सुन्दरवन इन्द्रावती, कान्हा और बांदीपुर । आज यह विदेशी पर्यटकों के लिये आकर्षक का केन्द्र है। भारत में 502 वन्य जीवन अभ्यारण्य हैं, इन्होंने कच्छ की रेगिस्तान, जी.आई.बास्टर्ड, कराकोरम, वाइल्डऐस, देबांग, चेंगथेंग, नागार्जुन सागर, श्रीसलम, हस्तिनापुर, गेहरमाल्टन, किबार इत्यादि 1,20,052 स्क्वेयर कि.मी. के क्षेत्र से घिरे हैं। यह अनुसंधानकर्ताओं ओर पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। वन विकास अब न केवल आर्थिक लाभ के लिये आवश्यक हो गया है बल्कि चारों तरफ शान्ति और प्रदूषण वातावरण सुनिश्चितता और कल्याण के लिये भी यह आवश्यक हो गया है। विदेशों से बहुत बड़ी संख्या में पर्यटक वन्य जीवन देखने प्रतिवर्ष भारत आते हैं। प्रतिवर्ष आगन्तुकों की संख्या बढ़ रही है। हम सुरक्षात्मक रूप से यह कह सकते हैं कि भारतीय वनों की गुणवत्ता एवं स्थिति में गिरावट 1930 के बाद से लगातार हो रही है ओर 1980 के बाद भी स्थिति में गिरावट का अन्त नहीं हुआ। पुनर्वास के लिये वनक्षेत्र की भूमि की मांग के कारण बड़ी मात्रा में वनों की कटाई हो रही है। ब्रिटिश वनों की सुरक्षा और वृद्धि को लेकर गंभीर थे लेकिन स्वतंत्रता के बाद, स्थानीय राज्य सरकारों के अन्तर्गत सुरक्षा और रखरखाव को लेकर गंभीरता समाप्त हो गयी। 1988 तक जंगल में 12 प्रतिशत की कमी आयी थी। हालांकि, जंगलों में गिरावट बहुत ज्यादा थी फिर भी बहाली अभी तक हासिल नहीं हुई है। राजस्व एकत्र करने के लिये सरकार द्वारा स्वयं वनों की कटाई की गयी। ठेकेदारों और ग्रामीणों द्वारा पेड़ों की

अवैधानिक कटाई के कारण भी वनों की उन्नति को नुकसान पहुँचा । वन उत्पादों की मांग कृषि एवं उद्योग की थी और इनकी मांग दैनिक जीवन में लोगों के द्वारा भी की जाती है। वन अधिनियम 1988, जनसंख्या वृद्धि के दबाव और वन भूमि पर खेती का विस्तार करने के कारण वन घटने की प्रवृत्ति में सुधार नहीं कर सका। सामाजिक वानिकी, खेत वानिकी, कृषि वानिकी के कुछ कार्यक्रम 60लाख हेक्टयेर में फैले हैं। पंचायत के समर्थन से उत्साहवर्धन हो रहा है। संयुक्त वन प्रबधंन सफलतापूर्वक काम कर रहा है। वनों का परिस्थितिक और पर्यावरणीय महत्व प्रसिद्धि पा रहा है। पर्यटन एवं वन विकास के वन्य जीवन पहलुओं को अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है। भारत को बंजर भूमि एवं अनुपयोगी भूमि की ओर केन्द्रित प्रयास की आवश्यकता है। सामाजिक वानिकी को अब महान भूमिका ग्रहण करनी होगी। खेत वानिकी भूमि धारकों को समृद्ध बनाने के साथ–साथ पर्यावरण भी समृद्ध बना सकती है। भारत में वन उत्पादों पर औद्योगिक निर्भरता तीव्र गति से बढ़ रही है। कागज, रेयान, कार्डबोर्ड, प्लय और बहुत सारे उत्पादों की आपूर्ति बहुत कम है।

19.14 कम उत्पादकता

भारतीय वनों की उत्पादकता में वृद्धि करना राष्ट्र की त्वरित आवश्यकता है। वास्तव में वानिकी उन्नति ग्रामीण विकास का ही एक हिस्सा है जहाँ हम जल्दी बड़े होने वाले पेड़ लगाने पर जोर दे रहे हैं ताकि उद्योग और ईंधन की जरूरत पूरी हो सके। उपयुक्त भूमि में उच्च मूल्य वाले वृक्ष और आर्थिक प्रजातियों के वृक्षारोपण से राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ावा मिलने की संभवना है। हमें ग्रमीण रोजगार को बढ़ावा देने की जरूरत है। आबादी और ग्रामीण जरूरतों के भारी दबाव के कारण आज अवक्रमित वन की स्थिति बहुत दयनीय है। वनों का प्रशासन कम और भ्रष्ट है, इसीलिये वनों कोबढ़ावा देने की नीति काम नहीं कर सकी। महान लोगों के वन के पर्यवेक्षण एवं भागीदारी को अच्छे वन प्रबंधन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। जंगलों को पत्ते और चारे के विकास के साथ साथ ग्रामीणों के लाभ के लिये इंधन की लकड़ी की भी आवश्कयता है। विश्व बैंक एवं ए. डी.वी. ने सामाजिक वानिकी क्षेत्रों में हमारी सहायता की है। यह ध्यान दिया गया कि भारत में वनों की औसत उत्पादकता वैश्विक औसत से मुश्किल एक तिहाई है। विश्व औसत 110 धन मीटर प्रति हेक्टेयर की तुलना में भारतीय स्टॉक की औसत गति 28 घन मीटर प्रति हेक्टेयर है। खाद्य सामग्री गैस, आपूर्ति ओर घरेलू उपयोग के लिये कोयला आपूर्ति में असफलता से वनों की समाप्ति को बढ़ावा मिला। बदमाशों ने जंगलों को यह समझकर कि यह तो किसी की भी जमीन नहीं है उसे बर्बाद कर दिया और उन्हें दंड भी नहीं दिया जा सका। ग्रामीणों ने सामाजिक वानिकी विकास कार्यक्रमों में अपना हित दिखाया है और समर्थन भी दिया है। वह किसान जो ज्यादा जमीन रखते हैं उन्होंने वन प्रजातियों को लगाना ज्यादा उचित समझा । इसकी वजह से खेती करने वलाी अच्छी जलोढ़ मिट्टी में जंगलों को बढ़ावा मिलने लगा। वन विभाग किसानों को पौधे देता है। विनिर्माण उद्योग लकड़ी के गट्ठों की मांग करता है जिनकी आपूर्ति किसानों द्वारा लाभकारी मूल्य पर की जाती है। परम उद्देश्य ईधन की लकड़ी का सत्ता होना और ग्रामीणों एवं आदिवासियों को अधिकाधिक संख्या में प्राप्त होना, जो कि हमारे सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सका।

19.15 गैर – वन उपयोगों के लिये वन भूमि का उपयोग

अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि ने वन भूमि पर अतिक्रमण को जन्म दिया । अराजकता ने दुर्व्यवहारियों को निजी इस्तेमाल और रियल एस्टेट कारोबार के लिये वन भूमि पर कब्जा करने के लिये प्रोत्साहित किया। लकड़ी के तस्करों, ठेकेदारों, वन पदाधिकारियों और स्थानीय राज नेताओं ने

जंगल के हितों के साथ–साथ आदिवासियों के हितों को भी क्षतिग्रस्त किया। लकड़ी, कम आपूर्ति से कुटीर और लघु उद्योग इकाईयाँ लगभग गायब ही हो गयीं जो कि वन, आपूर्ति पर आधारित थी। वन भूमि अब चाय, कॉफी, बागवानी, रबर बागान, खजूर तेल के पौधे, औषधीय और मसालों आदि के लिये उपयोग की जाने लगी। गैर सरकारी संगठन और सहकारी समितियाँ वन विकास की लाभार्थी हैं। आई सी.एफ.आर.ई ने 10 वन अनुसंधान और शिक्षण संस्थान स्थापित किये हैं । भारत के वन विकास में जापान और विश्व बैंक की सहायता की संयुक्त वन प्रबंधन एवं संप्रेषण के आधुनिकीकरण में, संबंध और प्रशासन में बहुत मूल्य (उपयोगिता) है। जंगलों की उपयोगिता के संबध में लोगों की जागरूकता हाल ही के दशकों में लगातार बढ़ रही है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने की भावना लगातार बढ़ रही है। भारत के प्रत्येक हिस्से के विद्यालयों में जंगलों के प्रति चेतना बढ़ रही है। स्कूलों की भगीदारी ने अपने क्षेत्र में वन और पर्यावरण के कारणों को बढ़ावा दिया है, लेकिन बंजर जंगली भूमि पर वृक्ष विकसित करने में विफल रही । इससे बर्बादी और दुरूपयोग हुआ। या तो वनों का पुनर्वास तेजी से किया जाना चाहिये और वृक्ष लगाने के लिये एवं बागवानी के लिये लोगों को सौंप दिया जाना चाहिये।

19.16 भारत के खनिज संसाधन – कोयला खनन

खनिज संसाधन वह सीमा निर्धारित करते हैं जिससे एक राष्ट्र औद्योगीकरण के लिये सड़क पर आसानी से प्रगति कर सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह देश जिनके पास संसाधन नहीं है, उनके पास औद्योगिक शक्ति की संभावनाएं नहीं हैं क्योंकि अन्य भूमि से संसाधनों का निर्यात किया जा सकता है। कोयला और लोहा दो महत्वपूर्ण खनिज हैं जिनसे इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति आयी। कुछ ऐसे खनिज भी हो सकते हैं जो औद्योगिक प्रगति के लिये बुनियादी हैं और कुछ ऐसे खनिज भी हो सकते हैं जो महत्वपूर्ण तो हैं किन्तु बुनियादी नहीं है। माइका, मैंगनीज, ताँबा, सीसा, जस्ता, टिन, निकेल, कोबाल्ट, सल्फर, पेट्रोलियम, थोरियम, यूरेनियम इत्यादि राष्ट्रीय विकास के लिये महत्वूर्ण खनिज हैं। इसका यह तार्त्पय नहीं है कि कुछ अन्य खनिज जैसे मुल्तानी मिट्टी, चूना , जिप्सम, ग्लास रेत आदि महत्वपूर्ण नहीं है। चांदी, सोना और हीरे जैसी समृद्ध सामग्री के लिये खनिज अत्यधिक प्रासंगिक सामग्री का निर्माण करते हैं। खनिज आमतौर पर अस्थिर होते है। क्योंकि इनहें मानव प्रयासों से मनुष्य के जीवनकाल में पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।

कोयला एक ऐसा खनिज है जो भारत में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। यह इस संदर्भ में बहुमुखी खनिज है कि यह रसायन, विस्फोटक, रंग, उर्वरक, इत्र, रासायनिक पदार्थ, प्लास्टिक, आदि विभिन्न पदार्थों के लिये गैस, बिजली, तेल ओर कच्चेमाल के विभिन्न रूपों में परिवर्तनीय है। तार, अमोनिया, गैस, बैंजाल, सल्फर, नेफ्था, फिनायल इत्यादि कोयले के उप–उत्पाद हैं। कोयले को जलाकर आग और भाप बनाकर तापीय ऊर्जा के वितरण के उपयोग में लाया जाता है। इसकी एन्थ्रेसाइट, बिटुमिनस और लिगनाइट जैसी किस्में हैं। पहला धुएं और कालिख के बिना धीरे से जलने की अपनी खूबी के लिये घरेलू उपयोगों के लिये सबसे कठोर कोयला है। इसकी गर्म रहने की क्षमता अधिक है। लोहे को गलाने की जरूरत बिटुमिन्स कोयले से प्राप्त कोक से प्राप्त की जाती है । लिग्नाइट एक निम्न श्रेणी का भूरा कोयला है। कोयले भंडारण उच्च श्रेणी के नहीं है। 1,2,3,000 मिलियन टन के भंडार में मुश्किल से 40 प्रतिशत ही अच्छी गुणवत्ता वाला है। यातायात की उच्च दरों एवं रेल्वे इस्पात मिलों और अन्य उद्योग जो कोयले से चलते हैं, को कोयला क्षेत्र या कोयला खदानों के आसपास स्थित होना चाहिये।

कोयले, उत्पादन में अधिक अंशवाली कंपनियाँ हैं कोल इंडिया, सिंगरेनी कोलेरीज, टाटा लोहा एवं इस्पात, जिंदल लोहा एवं शक्ति, बंगाल, सेम्पटा काल, माइन्स, मेघालय कोल, इंटेग्रेटेड कोल माइनिंग, हिंडालकों के, झारखंड स्टेट मिनरल्स कार्पोरेशन, इंडियन आयरन एंड स्टील कम्पनी इत्यादि । झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, परिश्चम बंगाल, म.प्र. आन्ध्र और महाराष्ट्र में कोयले के पूरे भंडार (2004) थे जिससे भारत के भविष्य की आशा निर्मित होती है। 245693 मिलियन टन कोयले के प्रमाणित भंडार है।

19.17 कोयले और पेट्रोलियम का घटनाक्रम

भारतीय कोयला भंडार प्रतिकूल रूप से स्थित है। उनमें से अधिकांश दामोदर घाटी के बंगाल – बिहार कोयला क्षेत्र में है। रानीगंज, झारिया, गिरिडीह, बोकारों, कर्णपुरा महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र हैं, कोयला क्षेत्र म.प्र. और महाराष्ट्र में भी स्थापित हैं जो दूर के स्थानों पर खनिज को ले जाने के लिये आसान पानी के तरीकों से जुड़ी हुई नहीं है, जहाँ उद्योगों की मांग है रेल्वे को विभिन्न दिशाओं में भारी बोझ ले जाना होता है। कोयला क्षेत्र केवल बंगाल, बिहार, उड़ीसा, म.प्र. महाराष्ट्र और आन्ध्र में केन्द्रित हैं। कोयला क्षेत्र झारिया, बोकारो, कर्णपुरा, रामगढ़, गिरिडीह, रानीगंज, सोहागपुर, पेंचवेली, मोहापानी, सिंगरौली, तातापानी, कुरियागढ़, कोरबा, कान्हा, तलचर, हिंगिर, रामपुर, केपटी, उमरेर, बोरवारा, बलारपुर, वर्धा, सिंगारेनी, इत्यादि में है। सबसे अच्छा कोयला हमें रानीगंज कोयला खान से प्राप्त होता है, सबसे पुरानी कोयला खान 1300 स्वा. कि.मी. में फैली हुई वर्धमान बांकुरा और पुरूलिया जिलों (पं.बं.) में है। यहाँ 300 खदानें है जो भारतीय कोयला आपूर्ति का 30 प्रतिशत प्राप्त करते हैं यह कोयला उच्च गुणवत्ता का होता है। सबसे बड़ी कोयला खदान झरिया कोयला क्षेत्र है जो गंगा के मैदानी इलाकों में 400 स्क्वेयर कि.मी. तक फैली हुई है और यह कोयला उच्च श्रेणी का खाना बनाने के काम आने वाला कोयला है। यह परिवहन के दृष्टिकोण से सुविधाजनक स्थिति में स्थित है । उच्च गुणवत्ता का लाभ और यातायात का लाभ लेने के लिये इस क्षेत्र में लोहा– इस्पात के नये कार्य स्थापित किये गये है। बोकारों कोयला क्षेत्र, बोकारों नदी घाटी के संकीर्ण क्षेत्र में फैली हुई है। यह उच्च गुणवत्ता वाले खाना बनाने वाले कोयले की आपूर्ति करता है।

लिग्नाइट कोयला नेवेली (तमिलनाडु) राजस्थान के पल्लू क्षेत्रों, जम्मू ओर कश्मीर के रेसी, और गुजरात में पाया जाता है। इसके भंडार तमिलनाडु के साउथ आरकट में 200 स्क्वेयर कि.मी. क्षेत्र में है। भारत 7 वाँ सबसे बड़ा कोयला उत्पादक देश है। इसका मुख्य अवशोषण (31 प्रतिशत) रेल्वे ओर लोहा इस्पात उद्योग में है। 19 प्रतिशत कोयला उद्यम एक सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा नियंत्रित क्षेत्र है।

पेट्रोलियम :– भारतीय अर्थव्यवस्था में पेट्रोलियम एक बड़े क्षेत्र का निर्माण करता है जो व्यावसायिक ऊर्जा की जरूरत का 40 प्रतिशत पूरा करता है और बाकी की पूर्ति आयात द्वारा की जाती है। असम तेल क्षेत्रों को 1868 में खोजा गया और 1882 में डिगबोई में उत्पादन प्रारंभ हुआ। अन्य तीन क्षेत्र हैं लखीमपुर, नाहरकटिया और मोरान । ब्रिटिश काल में, केवल असम ही तेल उत्पादक राज्य था। स्वतंत्रता के बाद गुजरात और मुम्बई तेल क्षेत्र खोजे गये थे। स्वतंत्रता के पश्चात् गुजरात में ढोलका एवं लुनेज, अंकलेश्वर, कलोल, कोसाम्बा, मेहसाना, नौगाँव में तेल क्षेत्र खोजे गये। मुंबई हाई फील्ड समुद्र तल से नीचे 110 कि.मी. दूर मुम्बई के उत्तर पश्चिम में लगा हुआ है। तेल को परिष्कृत करने की आवश्यकता होती है, इसलिये ड्रिल किये तेल को तेल शोधक कारखानों (रिफायनरी) के लिये पंप किया जाता है।

19.18 तेल शोधक कारखाने एवं परमाणु खनिज

भारत में 12 सार्वजनिक क्षेत्र के तेलशोधक कारखाने हैं। बमैनी, कोचीन, डिगबोई, गौहाटी, हल्दिया, विशाखापत्तनम, कोयाली, मद्रास, बौगाईगाँव, मथुरा और 2 मुंबई में चिर परिचित रिफायनरी है। कच्चा तेल आयात करना होता है ओर उसका प्रसंस्करण रिफायनरी में होता है। पेट्रोलियम का उपयोग आटोमोबाइल, विमानन, बिजली, उत्पादन, भाप से चलने वाले जहाजों, लोकोमोटिव और बहुतों में किया जाता है। इस उद्योग के उप–उत्पाद बहुत सारे हैं जैसे स्नेहक (चिकनाई) मोमबत्ती, वैसलीन, डीजल, तार, मोम, स्थायी, दवाइयाँ, साबुन ,टेरीलीन आदि।

भारत में अभी तक कच्चे तेल का बहुत कम आरक्षित भंडार है। 2006–07 में मुश्किल से 12 करोड़ टन तेल भारत में निकाला (ड्रिल) गया था। 1970–71 में तेल के उप उत्पादों का लगभग 1.7 करोड़ टन प्राप्त किया गया था जो 2006–07 में 13.5 करोड़ टन तक पहुँच गया। 2006–07 में 358,570 करोड़ रूपये का भारतीय तेल और उप–उत्पादों का आयात किया गया। भविष्य में पेट्रोलियम के उद्देश्यों के लिये गैस का भी उपयोग किया जा सकेगा। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ओ.एन.जी.सी.) पिछले कई दशकों में तेल की खोज में लगा हुआ है।

परमाणु खनिजः– निकट भविष्य में परमाणु शक्ति ऊर्जा की प्राथमिक आपूर्ति करने में ऊर्जा की प्राथमिक आपूर्ति करने में सक्षम होगी। यूरेनियम और थोरियम दो खनिज हैं, एकटन यूरेनियम से इतनी ऊर्जा उत्पादित होती है, जितनी कि 10,000 टन कोयले से । यूरेनियम की खान बिहार के जादुगुड़ा इलाके में है। थोरियम के तत्व महाराष्ट्र में पाये गये जहाँ 1969 में उत्पादन प्रारंभ हुआ। यह 420,000 किलोवाट बिजली उत्पादित करता है। 1972 में कोटा–राजस्थान में राणा प्रताप सागर के बाद तमिलनाडु में कलपक्कम ताप बिजली घर बनाया गया। दूसरा ताप बिजली घर नरौरा (पश्चिमी उ.प्र.) में बनना प्रस्तावित है, क्योंकि इस पूरे क्षेत्र में कृषि के लिये बिजली की आवश्यकता है। आगे खम्भात, कच्छ की खाड़ी और पूर्वी तट सुन्दर वन भी ताप बिजली घर बनाने के लिये चुने गये है।

19.19 लौह, अयस्क संपदा

लौह अयस्क ही कवेल ऐसा खनिज है जो भारत में बहुतायत मे पाया जाता है और वह भी उच्च गुणवत्ता और प्रकार का है। तीन तरह के लौह अयस्क है– हेमेटाइट्स, मैग्नेटाइट्स और लिमोनाइट। भारत में भंडार लौह अयस्क के विश्व के लगभग एक तिहाई भंडार है, 60 से 70 प्रतिशत लौह सामग्री है। इसमें सफल्र की कम मात्रा है, इसलिये यह गलाने के लिये उपयुक्त है । पहाड़ी क्षेत्र में इनकी उपलब्धता से यह पहुंच में रहते है। उत्तरपूर्वी बिहार और उड़ीसा में, यह कोयला क्षेत्रों के पास में ही पाये जाते हैं। बिहार के छिरिया सिंह भूमि में लगभग 150 करोड़ टन पाया गया। भारत जापान को लौह अयस्क बहुत कम दामों पर निर्यात कर रहा है यह दीर्घावधि संविदा के अन्तर्गत हो रहा है। अन्य बड़ी खदानें उड़ीसा में पायी गयीं, जिनमें 800 करोड़ टन का भंडार है और 55–68 प्रतिशत लौह की मात्रा है। क्यूझर, मयूरभंज, और सुंदरगढ़ जिलों में बड़े भंडार है। जमशेदपुर की स्टील मिलें, राउरकेला और दुर्गापुर की मिलें अयस्क यहीं से प्राप्त करती हैं बिहार दूसरा बड़ा भंडार है जो लगभग 27 प्रतिशत की आपूर्ति करता है। सिंहभूम और पलामू आपूर्ति के मुख्य केन्द्र है। सिंहभूम हेमेटाइट्स में समृद्धशाली अयस्क हैं। म.प्र. के बस्तर और दुर्ग में उच्च श्रेणी का अयस्क है। बेलाडीला और रीघाट में सबसे समृद्ध प्रकार के अयस्क है। यह निर्यात की सुविधा के लिये रेल द्वारा विशाखापत्तनम से जुड़े हुये हैं। कर्नाटक में केमन गुन्दी और बाबा–बुडान में लौह

अयस्क के भंडार हैं, जो चिकमंगलोर और बेलारी जिलों में आते हैं, लगभग 100 करोड़ टन अयस्क भ्रदावती के कुद्रेन्रूख में जानकारी में आया है। महाराष्ट्र के चाँदी जिले के (लोहाणा पहाड़ों) रत्नागिरि, भंडारा, रायगढ़, सतारा में भी निम्न श्रेणी का लौह अयस्क पाया गया। गोवा में बिकोलिम, कुद्रीम, पाली और सिरिगाऊ में बड़ी मात्रा में लौह अयस्क है जो कि मोरमागऊ बंदरगाह सेजल मार्ग से जुड़ा है। आन्ध्र में कुट्टापाह और छबाली जिलों में लौह अयस्क है। यह मैंग्नेटाइट प्रकार का लौह अयस्क है। गुंटूर और नेल्लोर जिलों में भी अच्छी मात्रा में लौह अयस्क है। तमिलनाडु, सेलम, तिरूचिरापल्ली जिलों में लौह अयस्क की खदाने हैं। इस विशाल संसाधनों के भारत में मशीन बनाने के क्षेत्र में विकास के क्षेत्र में बड़े–बड़े बादे हैं।

19.20 मैगनीज और अभ्रक अयस्क

जंगमुक्त उच्च गुणवत्ता वाली स्टील बनाने में मैंगनीज की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। निःसंक्रामक और ब्लीचिंग पावडर बनाने में, मैंगनीज का उतना ही महत्व है जितना इसका रासायनिक उपयोग है। मैंगनीज की आपूर्ति में भारत की एकाधिकार की स्थिति होने से गौरवान्वित होने की अनुभूति है। म.प्र., उड़ीसा, आन्ध्र, गोवा, कर्नाटक, राजस्थान और बिहार में अधिकाधिक मात्रा में पाया जाता है। म.प्र. में बालाघाट और छिन्दवाड़ा में मुख्य भंडार है। खुंखार, बोनाईगढ़, गांगपुर, सनग्वेम (गोवा) सन्दूर एवं बेल्लारी (कर्नाटक) बांसवाड़ा (राजस्थान) बिहार का सिंहभूमि में भी मैंगनीज के अच्छे भंडार है। बिजली के खराब संचालक के रूप में बिजली उद्योग में माइका खनिज का मुख्यतः उपयोग किया जाता है। इसे बहुत पतली चादरों में कम किया जा सकता है, इसका इस्तेमाल पेंट और वार्निश में चमक के लिये किया जा सकता है। भारतीय अभ्रक अच्छी गुणवत्ता का होता है। यह बिहार, आन्ध्र, राजस्थान, मांगेर, हजारीबाग और गया में पाया जाता है। बिहार का 57 प्रतिशत आन्ध्र का 28 प्रतिशत और राजस्थान का 12 प्रतिशत हिस्सा है। भारत यूरोप, अमेरिका और जापान को अभ्रक निर्यात करता है। अभ्रक के निर्यात से होने वाली आय सबसे अधिक है।

19.21 बॉक्साइट घटनाक्रम

एल्युमिनियम उत्पादन के लिये बॉक्साइट महत्वपूर्ण खनिज हैं यह हल्का, चमकीला और जंगरहित होने की विशेषता लिये होता है। भारतीय बॅक्साइट में 25 प्रतिशत एल्युमिनियम रहता है। बॉक्साइट का वार्षिक उत्पादन 2.5 मिलियन टन है। इसकी खदानें म.प्र., बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोवा, उड़ीसा, विहार के राँची और पलामू, म.प्र. के सरगुजा, शहडोल, बिलासपुर, मंडला, तमिलनाडु के सेलम, मदुरई, नीलगिरी, महाराष्ट्र के कोल्हापुर, रतनगिरि, रायगढ़ गांव के मोप और पेरनियम तथा कालाहांडी और संबलपुर में है।

19.22 जस्ता, सीसा एवं ताँबा

भारत जस्ता और सीसा नामक खनिज के भंडार में धनी नहीं है। जो सामान्यतः राजस्थान के जावर क्षेत्र में एक साथ पाया जाता है। यह मिश्रित अयस्क है। सीमा और जस्ता की पूर्ति आयात के द्वारा की जाती है। ताँबे की भारतीय माँग बड़ी मात्रा में आयात के द्वारा पूरी की जाती है, इस तथ्य के बाबजूद कि आन्ध्र के अग्निगुंडाल में, बिहार के सिंहभूमि में, म.प्र. के मलंजखंड में, और राजस्थान के क्षेत्री और दरीबा में इसकी खानें है। बिहार के घाटशिला और राजस्थान के खेत्री में गलाने की सुवधि है। मुश्किल से 42 प्रतिशत ताँबे की माँग की पूर्ति घरेलू धातु से होती है और बाकी बचे हुये का आयात किया जाता है। औद्योगिक उन्नति के लिये आवश्यक ताँबे की खान भारत में मी है।

19.23 सोने की खाने

भारत में सोने की खाने कर्नाटक में है और कोलार की सोने की खानें बहुत पुरानी है ओर यह धातु 3000 मीटर की गहराई मे ंपायी जाती है। क्वार्टज की कठोर चट्टानें आदि पपड़ीरूप में हैं और सोने के टुकड़ों को पाना आसान हो जाता है। इन खदानों में सोने का बहुत कम उत्पादन होता है। लगभग 2495 किलोग्राम सोना प्रतिवर्ष निकाला जाता है। सोना रामगिरी (आन्ध्र) वायनाउ (केरल) और नीलगिरी (तमिलनाडु) मे ंपाया जाता है। भारत सोने का बहुत बड़ा आयातक देश है।

19.24 जिप्सनम ओर चूना पत्थर

चूना पत्थर भारत में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिसका उपयोग विनिर्माण, सीमेन्ट, लोहा ओर इस्पात, सोड़ा–राख, कास्टिक सोड़ा, ब्लीचिंग, पावडर, कागज, काँच, उर्वरक और अन्य कई उद्देश्यों के लिये किया जाता है। चूना पत्थर के बड़े भंडार बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, म.प्र. महाराष्ट्र, गुजरात और आन्ध्र में है। जिप्सम भी राजस्थान, तमिलनाडु, जम्मू कश्मीर जैसे राज्यों में बड़ी मात्रा में पाये जाते है। इस खनिज का उपयोग प्लास्टर ऑफ पेरिस और रासायनिक उर्वरकों को बनाने में किया जाता है। संरक्षित उपलब्धि 1235 मिलियन टन है, उसमें से अधिकांश राजस्थान, जोधपुर जैसलमेर, बीकानेर नागपुर इत्यादि में है, जिप्सम के लिये राजस्थान के यह जिले विख्यात हैं। तमिलनाउु स्थित तिरूचिरापल्ली और कोयम्बटूर में जिप्सम के भंडार है। यह जम्मू और कश्मीर के डोडा– बारामूला क्षेत्रों में भी पाया जाता है। चूने के पत्थर और जिप्सम का विभिन्न उद्योगों में बहुत सारे उपयोग हैं, अतः देश के अन्य भागों में जिप्सम की खोज जारी है।

19.25 चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

भविष्य में बहुमूल्य खनिजों के संरक्षण भारत के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। भारत का भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण और खदानों के काल के ब्यूरो से नये भंडार की खोज के लिये काम कर रहे है। अन्वेषण और खनन से प्रदूषण और पारिस्थितिक आपदा उत्पन्न होती है जिसके विनियमन की आवश्यकता है। कोयला और तेल के अलावा सरकार द्वारा 13 खनिज संरक्षित है। यह है लोहा, मैंगनीज, क्रोम, सलुर, सोना, हीरा, ताँबा, सीसा, जस्ता, मोलीडकन्यून, टंगस्टन निकिल, प्लेटिनम । पट्टों को जारी करने में ठेकेदारों के हाथों में भ्रष्टाचार और बहुत अधिक अपशिष्ट होता है । 1994 के बाद, उदारीरण ने खनिज एफ.डी.आई. की पहुँच में आ गये और राज्यों को लाइसेंस देने की अनुमति दे दी। सरकार ने अन्वेषण और मापने के कार्यों में स्वयं को अक्षम समझा । अतः निजी निवेशकों को आमंत्रित किया गया। तेजी से औद्योगिकरण के लिए सामरिक (रणनीतिक) खनिजों की आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिये। खनन के वैज्ञानिक तरीके अपनाने से काफी अपशिष्ट से बचा जा सकता है। सार्वजनिक जीवन को प्रदूषित और भूमि संसाधनों एवं पर्यावरण को बर्बाद करने के लिये खनन की अनुमति नही ंदी जानी चाहिये। सरकार का निर्यात के प्रति अत्यधिक उत्साह भविष्य में उपलब्ध होने वाले खनिजों से हमें वंचित कर सकता है। खनिजों की पहचान और खोज करने में तकनीकी सहायता की आवश्यकता होती है। जल और मृदा प्रदूषण को खनन क्षेत्रों में नियंत्रण की आवश्यकता है। वनों को खनन क्षेत्रों में संरक्षण और पौधारोपण की आवश्यकता है। ऐसे क्षेत्रों में खनन के बाद सुधार के उपायों का अनुगमन करना चाहिये। खनन से अक्सर जमीन का ऊपरी हिस्सा बर्बाद होता है और इससे जंगली जानवरों के लिसे भयानक छिद्र और गड्ढे हो जाते है, इन गड्ढ़ों से घरेलू पशुओं और मनुष्यों को भी नुकसान होता है। इन गहरे गड्ढ़ों में पानी भर जाने से खतरनाक स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। इन गड्ढ़ों में भरा प्रदूषित पानी नदियों से बह जाता है और

पूरा पानी प्रदूषित हो जाता है। पट्टे के लिये मृदा संरक्षण के पैमाने आवश्यक होने चाहिये। प्रदूषण अक्सर उप–मिट्टी में प्रवेश कर जाता है और भूमि की सतह के अन्दर जल को भी प्रदूषित करता है। इसलिये, जल, वायु मृदा और वातावरण के प्रदूषर्कता बरतनों चाहिये। जीवन की दुर्लभ प्रजातियाँ विलुप्त होने की स्थिति में है । अतः उनहें सुरक्षात्मक उपायों की आवश्यकता है। ज्ञात और अज्ञात खनिज संसाधनों के नये उपयोगों को खोजने के लिये शोध कार्य को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। दुलर्भ खनिजों को निर्यात करने के लिये खतरनाक बोली लगाने से परहेज किया जाना चाहिये ताकि भविष्य की पीढ़ियों के लिये यह यथास्थिति में रह सके।

19.26 सारांश

संसाधन, तकनीकी रूप से, सहायक सामग्री जो उत्पादन का आधार तैयार करती है, की ओर संकेत करता है। प्राकृतिक क्षमताएं, काम पर लगी मानवशक्ति, और प्राकृतिक क्षमताओं के शोषण के द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया की सहायक के रूप में मानवशक्ति द्वारा निर्मित पूंजी ढांचे पर मुख्यतः विकास की क्षमता निर्भर करती है।

अनुकूल प्राकृतिक स्थिति, महासागर और भूवैज्ञानिक प्राकृतिक अनुकूलता, सूरज की चमक, पवन प्रवाह, खनिज, हरे भरे वन, जलवायु मौसम जल प्रवाह, स्थलाकृति, जैव विविधता, बेकार मृदा इत्यादि संसाधन है, जिनका उपयोग आथिक सुधार के लिये किया जाता है, मनुष्य को प्रगतिशील बनाता है। मानव निपुणता, कौशल और बेहद ज्ञान या अज्ञानता, सूर्य की चमक, जल प्रवाह स्थितियाँ, वायु वेग, इत्यादि अतुलनीय है। जबकि खनिजों के भूवैज्ञानिक भंडार लगातार उपयोग से समाप्त हो सकते हैं, कुछसंसाधनों जैसे वन, जैविक जीवन, पर्यावरण आदि को पुनः उत्पन्न किया जा सकता है। दुनिया भर में व्यापार, कारक क्षमताओं मे ंप्राकृतिक असमानताओं का प्रतिनिधत्व करता है। हवा, मिट्टी, पानी, सूय्र की रोशनी आदि बुनियादी प्राकृतिक संसाधन है। भारत, नदी, जलवायु, मौसम वर्षा, महासागर, और भूवैज्ञानिक कब्जों, जंगलों, खदानों, रेलवे और सड़कों, सिंचाई की वाटिकाओं, प्राणि वन्य जीवन पार्क, तेल, शोधक कारखाने, मानक निर्मित बड़े ढाँचे जैसे 'नदी पर बनाये गये बांध' आदि के कारण एक समृद्ध राष्ट्र है। कोयला, पेट्रोलियम, लौह अयस्क, मैगनीज, सोना, माइका, मोनाजाइट और बॉक्साइट आदि के भंडार औद्योगीकरण के आधार है।

19.27 शब्दावली

संसाधन :से तात्पर्य धन, सामग्री, कर्मचारियों और अन्य परिसम्पत्तियों की आपूर्ति या स्टॉक से है जो एक व्यक्ति या संगठन द्वारा प्रभावी रूप से कार्य करने के लिये तैयार किये जा सकते हैं।

वन्य जीवन अभ्यारण्य – से तात्पर्य प्राकृतिक रूप से उत्पन्न अभ्यारण्य है। जो एक द्वीप (टापू) की तरह शिकार या प्रतिद्वद्विता से प्रजातियों को सुरक्षा प्रदान करता है।

19.28 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. भारत का लगभग –––––––––––– प्रतिशत क्षेत्र वनों के अन्तर्गत आता है।
2. जे.एफ.एम. से तात्पर्य है –––––––––––––
3 भारत में ––––––––– प्रकार के जंगल है।
4 –––––– में तकनीकी रूप से आनुवांशिक, प्रजाति और परिस्थितिकी तंत्र संबंधी विवरण सम्मिलित है।

19.29 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 23 , 2 संयुक्त वन प्रबंधन 3 तीन 4. जैव विविधता

19.30 स्वपरख प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का क्या महत्व है ?
2. भारत में किस प्रकार के वन है ?
3 भारत में वन नीति की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4 भारत में वनों से किस प्रकार के खनिज निकाले जाते हैं ?
5 भारतीय वनों द्वारा किस प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना किया जा रहा है ?
6 सामाजिक वानिकी से आप क्या समझते हैं ?
7 भारत में बड़े खनिज संसाधन क्या है ?
8 भारत में वन क्षेत्र को विस्तार देने वाले उपायों का सुझाव दीजिए।

19.31 संदर्भ पुस्तकें

1. Yojana Ayog Publications
2. Government of India Tourism Department Publications
3. Chandrasekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Changein Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
4. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
5. Government of India, economic survey (annual)
6. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
7. Indian Economic Journal (Indian economic association)
8. Raj Kumar, Sen. and Biswajit, Chatterjee, Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi, 2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi, 2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Indian Economy-V.K.Puri, S.K.Mishra, Himalaya Publications

———————

इकाई 20 उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था और पर्यटन

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 उत्तराखण्ड राज्य
20.3 उत्तराखण्ड में मूल व्यवसाय
20.4 विकास की राह पर
20.5 परिवहन संबंधों की स्थिति
20.6 बुनियादी ढाँचे का विकास
20.7 अन्य क्षेत्र जैसे व्यवसाय के रूप में डेयरी उद्योग का विकास
20.8 कामगारों के प्रवास की समस्या
20.9 वित्त और पूंजी से संबंधित मुद्दे
20.10 संभावित उपक्रम
20.11 नीति आधारित प्रोत्साहन
20.12 अतीव के गौरव और उपलब्धियों के लिये दौड़
20.13 पर्यटन विकास की संभावनाएँ
20.14 जल विद्युत उत्पादन की संभावनाए
20.15 सारांश
20.16 शब्दावली
20.17 बोध प्रश्न
20.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
20.19 स्वपरख प्रश्न
20.20 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था का वर्णन कर सकें।
- राज्य के आर्थिक विकास में पर्यटन की भूमिका की व्याख्या कर सकें।
- कामगारों के प्रवास की समस्या की व्याख्या कर सकें।

20.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था का अर्थ, आर्थिक गतिविधियों के संगठन और आर्थिक कल्याण के स्तर को प्राप्त करने के अलावा प्राकृतिक, मानव और पूंजी के मामले में प्राकृतिक गतिविधयों की स्थिति प्राप्त करना है।

यह शब्द आमतौर पर क्षेत्रों एवं राष्ट्रों के संदर्भ में उपयोग किया जाता है। जब हम किसी अर्थव्यवस्था का आंकलन करते हैं, हमारा संदर्भ कुछ संकेतों जैसे –औसत आय, रोजगार, बचत, और पूंजी संबंधी जानकारी, संसाधनों के उपयोग, मानव, विकास सूचकांक आदि के निदान के लिये हैं।

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भारत के उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था का निदान करना जो 9 नवंबर 2000 को उत्तरप्रदेश से अलग होकर बना था। उत्तराखण्ड की कुल 53,483 इस्क्वयर

कि.मी. क्षेत्र में से 35,394 स्क्वेयर कि.मी. वन भूमि है। इसका जनसंख्या घनत्व 159 प्रति स्क्वायर कि. मी. है। अधिकांश पहाड़ों पर स्थित भूमि कृषि के लिये अनुपयुक्त है, यहाँ केवल सीढ़ीनुमा घाटी पर खेती होती है। अच्छी कृषि हेतु सबसे बड़ा और अच्छा हिस्सा निचली पहाड़ी और तराई क्षेत्र में स्थित है। किसानों की दो मुख्य समस्याएं हैं, पहली अच्छी कृषि योग्य भूमि की कमी और सिंचाई की सुविधा का अभाव । असमान स्थलाकृति होने के कारण पहाड़ी भागों में फसल उगाने के लिये परिश्रम की आवश्कयता होती है। भावर एवं तराई के इलाके खेती, यातायात, सेवाओं और विनिर्माण के लिये सुदृढ़, समृद्ध आधार हैं। भाबर और तराई में आर्थिक गतिविधियों के संगठन के लिये सहायक सुविधाओं और बुनियादी संरचनात्मक निवेशों में उच्च उत्पादकता दरों के लिये प्रभावी ढंग से काम किया । इस इकाई में उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था का संक्षेप में निर्धारण किया गया है और उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था में अग्रणी आर्थिक क्षेत्र के रूप में पर्यटन के विकास की अवधारणा एवं भूमिका का वर्णन इस इकाई में किया गया है।

20.2 उत्तराखण्ड राज्य

उत्तराखण्ड एक छोटा राज्य है। 2010–11 में इसका बजट संबंधी राजस्व 14,821.67 (करोड़) रूपये था, और व्यय 15,451.95 करोड़ रूपये था। केन्द्र सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदान राशि (8160 करोड़ रूपये 2010–11 में) इस राज्य के संसाधन है। यह राज्य दो बड़े खण्डों से मिलकर बना है – गढ़वाल और कुमायू, पहला पश्चिमी हिस्सा है और आखिरी पूर्व भाग है। पुराने महाकाव्य युग में, यह भाग 'केदार खण्ड' और 'मानव खंड' के नाम से जाने जाते थे। उत्तराखण्ड को उसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, वातावरण, स्थलाकृति, जलवायु, जंगल, खनिज, जड़ी–बूटी से संबंधित संपदा, प्राकृतिक सुंदरता, पवित्र नदियों और हिन्दू इस्लाम, सिख और अन्य धार्मिक विश्वासों के देवी –देवताओं के लिये जाना जाता है। उत्तराखण्ड के पास अतीत की स्मारक संबंधी संपदा है, इसकी अपनी कला का प्रकार, संस्कृति और वास्तु कला है। 2000 बी.सी. में ऋषियों के अधिकांश प्राचीन महाकाव्यों में इस क्षेत्र के बारे में लिखा है। यह क्षेत्र को आज भी प्रख्यात विद्वानों एवं सीखने के गढ़ होने का गौरव प्राप्त है। 320 कि.मी. उत्तर की ओर लंबी सीमा उत्तराखण्ड को तिब्बत से अलग करती है ओर 40 कि.मी. दक्षिण की ओर लंबी सीमा इसे हिमाचल राज्य से अलग करती है। पूर्व में, 250 कि.मी. की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा काली नदी के पास है, जो इसे नेपाल से अलग करती है। उत्तराखण्ड राज्य विशेष रूप से समुद्र तल से ऊंचाई के लिये जाना जाता है। यह तराई में 230 (एम.एस.एस.) है जबकि 7816 मीटर (एम.एस.एल.) नंदा देवी पर्वत पर है। इसके बीच में यहाँ बड़ी–बड़ी गहरी घाटियाँऔर पहाड़ हैं और ढलान का क्षेत्र है। उत्तराखण्ड में 13 राज्य, 86 शहरी केन्द्र , 2 शहरी निगम, 31 नगर पंचायतें और नौ कैन्टोनमेंट (सैनिक) है।

उत्तराखण्ड राज्य का क्षेत्र 53483 स्क्वयेर कि.मी. और जनसंख्या 84,89,349 है जिसमें 71.6 प्रतिशित साक्षर जनसंख्या हे। यहाँ प्रति व्यक्ति आय 41000 रूपये प्रति वर्ष है। पहाड़ी इलाकों में, औसत आय मुश्किल से 33720 रूपये प्रति वर्ष है। औसत जनसंख्या घनत्व 159 प्रति स्क्वयेर कि.मी. है। भूवैज्ञानिकों की दृष्टि से इस राज्य को खतरनाक क्षेत्र कहा जाता है। राज्य अपने धार्मिक केन्द्रों जैसे केदारनाथ, बद्रीनाथ, यमुनोत्री, गंगोत्री और बहुत सारे धार्मिक केन्द्रों के कारण प्रसिद्ध है। उत्तराखण्ड वन्य जीवन अभ्यारण्यों, फूलों की घाटी, आदिवासियों, और पवित्र केन्द्रों जैसे हरिद्वार, हेमकुण्ड साहिब, ऋषिकेश, प्रसिद्ध पर्वतीय स्थल जेसे लैंसडाउन, रानीखेत, अल्मोड़ा, कौसानी, नैनीताल, मसूरी, चकराता, पिथौरागढ़ आदि के लिये प्रसिद्ध है। ब्रिटिशवासियों का हित उत्तराखण्ड क्षेत्र में इसके पर्यावरण, शिकार के मैदान, मुफ्त मजदूरों की उपलब्धता, बहादुर सैनिकों की नियुक्ति,

सेना बढ़ाने, वनों की कटाई से धन कमाना, और चीन, तिब्बत, नेपाल इत्यादि के विरूद्ध सुरक्षा आदि था। ब्रिटिश वासियों को जलवायु से होने वाले लाभों ने आकर्षित किया, ब्रिटिश बच्चों की सुरक्षा के लिये वे एकान्त और छुपे हुये स्थान चाहते थे, ताकि उनके बच्चों की स्कूल की शिक्षा दीक्षा भलीभांति चलती रहे। वे इस क्षेत्र का विकास, बागवानी के रूप में और चाय बागान के रूप में करना चाहते थे।

यहाँ चार उन्नयन (ऊँचाई) क्षेत्र हैं जो खेती का पैटर्न निर्धारित करते हैं (1) 100 मीटर से नीचे (2) 1000 से 1500 मीटर (3) 1500 से 2400 मीटर (4) 2400 मी. से अधिक ऊंचाई । पहला मैदानी और तराई भाबर इलाका है ओर पहाड़ी क्षेत्र में कुछ गहरी और खुली घाटियाँ है। यह हिस्सा धान, गेहूँ, गन्ना, सोया, दाले और तिलहन के लिये अनुकूल स्थान है। यहाँ आम लीची, पपीता, अमरूद आदि के अच्छे बागान है। दूसरी श्रेणी अधिकांश असिंचित है और सूखी है। यहाँ साधारणतः खेती की द्विवर्षीय रोटेशन व्यवस्था है। महुआ, दालें, कुहनसी वाले इलाकों में उगाही जाती है। गेहूँ,, जौ आदि भी इस क्षेत्र में बोये जाते हैं किन्तु उपज नाममात्र की होती है। फल संस्कृति से पीच, नाशपाती, एफीकोट, आलूबुखारा आदि की बुवाई व्यवहार में आयी। रबी की फसल जैसे गेहूँ 1500 से 2400 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्र में नहीं उगाया जा सकता है। चौआ, ओगले, फेफर, जौ, आलू, बीन्स, दालें, सब्जियाँ, फूल, जड़ी बूटियाँ आदि उगाये जाते हैं किन्तु इनसे होने वली आय बहुत कम है। 2400 मीटर से ऊपर के क्षेत्र खेती के लिये अनुपयुक्त हैं, अतः इनका उपयोग पशुओं के लिये चारागाह के रूप में किया जाता है। 5,312.44 लाख हेक्टेयर लाख क्षेत्र में से 3,428.07 लाख हेक्टेयर क्षेत्र वनों का है। खेती के विस्तार की सीमा कृषि योग्य बेकार भूमि पर निर्भर करती है, जो कि पिथौरागढ़ और टेहरी में अधिक मात्रा में है। लगभग 1,91,790 हेक्टेयर क्षेत्र में फलों का उतपादन होता है, जो धीरे–धीरे प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है। चमोली में अधिकांश क्षेत्र में सालों से बर्फ गिरती है और कृषि उपजनाममात्र की है। लगभग 541005 मैट्रिक टन फलों का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। उप–उष्णकटिबंधीय जलवायु बहुत से फलों के लिये अनुकूल है। नीबू, संतरे, माल्टा और अन्य प्रकार के सेब, नाशपाती, पीच, एप्रीकोट मेवों आदि के अलावा कांटेदार फल है, इस क्षेत्र में पाये जाते हैं फलों से होने वाली आय लगभग 17 प्रतिशत होती हैं अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के फलों के बार अब निजी क्षेत्रों को अन्तरित हो गये। उत्तराखण्ड के पहाड़ों मे खेती, आज भी कुल मिलाकर पारंपरिक तरीक से ही होती है ओर उर्वरकों तथा रासायनिकों का उपयोग केवल नाममात्र को होता है। जबकि तराई और भाबर क्षेत्रों में फसल –खेती अधिक आधुनिक तरीक पर आधारित है जैसे अन्त बीजों, उर्वरकों, कीटनाशकों और खेती के नये तरीकों को अपनाया जाता है। गहरी सिंचित घाटियों में, खेती आधुनिक तरीके से ही की जाती है और यहाँ बाजारोन्मुख फसल की दिशा की ओर झुकाव है। पहाड़ों में खेती करने में खेती के यंत्रों और क्रियान्वयन में कोई अन्तर नहीं हैं उत्तराखण्ड के पहाड़ों में कृषिगत क्रियान्वित खेतों का आकार बहुत सीमान्त और छोटा है। तराई और भाबर क्षेत्रों के खेतों के आकार बड़े हैं।

20.3 उत्तराखण्ड में मूल व्यवसाय

उत्तराखण्ड में खेती के साथ–साथ पशुपालन, वानिकी और डेयरी व्यवसायों का एक समूह है। पहाड़ी क्षेत्रों में लगभग 42 से 50 प्रतिशत घरों की आय इन पेशों से प्राप्त होती है। जबकि तराई और भाबर में इनकी हिस्सेदारी 24 से 34 प्रतिशत है। कुटीर उद्योगों से होने वाली आय कम होती जा रही है, उसका कारण है कुटीर (शिल्प कार्यों) कार्यों का लुप्त प्राय होना। तराई क्षेत्र में यह 7 से 10 प्रतिशत घरों की आय में योगदान देते है। उत्तराखण्ड के तराई और भाबर क्षेत्रों में, नयी प्रारंभ

की गयी 'सिडकुल' योजना ने विनिर्माण उद्योग में निवेशकों को आकर्षित किया। नये निवेश व्यापार के तृतीयक, क्षेत्रों और अन्य सेवाओं में भी हो रहे है। कृषि क्षेत्र में निवेश ने गति नहीं पकड़ी। इसलिये उत्तराखंड के पहाड़ी हिस्सों में ग्रामीण बेरोजगारी का पर्याप्त स्तर है जो विभिन्न क्षेत्रों में श्रम शक्तियों के 15 से 30 प्रतिशत तक होता है।

20.4 विकास की राह पर

ब्रिटिश काल में भी उत्तराखण्ड क्षेत्र चिन्ता का विषय था, क्योंकि ब्रिटिश शासन ने सोचा कि इस क्षेत्र को अन्य खण्डों के साथ समान रूप से चलने के लिये एक पृथक मसौदे की आवश्कयता है। जंगलों, खनिजों, सस्ते मजदूर, पैदल सेना में भर्ती के लिये सामाजिक दौड़, जलवायु और प्राकृतिक सुन्दरता के संसाधन इत्यादि में ब्रिटिश हित में विकासात्मक नीति उपायों को बढ़ावा दिया। उ.प्र. सरकार ने भी उत्तराखण्ड को अधिसूचित पिछड़ा क्षेत्र के रूप में ही माना। 1971 में चीन के डर से सीमावर्ती इलाकों के हित को ध्यान में रखते हुये पर्वतीय विकास निगम की स्थापना की गयी। इस निगम का कार्य इस क्षेत्र में वृद्धि की क्षमताओं को खोजना था । बहुत सी सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयाँ जो वन उत्पाद, सेना की आवश्यकता, रेत और बजरी खनन और तारपीन पर आधारित थीं, की स्थापना की गयी। जब पर्वतीय विकास निगम दो स्वतंत्र उद्यमों के.एम.बी.एम और जी.एम.वी.एन. में विभाजित हो गया, अलगाववाद पर्यटन के विकास पर केन्द्रित था। यद्यपि कि केन्द्र सरकार ने उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पनबिजली द्वारा बिजली उत्पादन में अपनी हित वृद्धि थी। विकास निगम ने घरेलू गैस वितरण का व्यवसाय अपने हाथ में लिया। और जड़ी बूटी से संबंधित वयवसा एवं रोपवेज के व्यवसाय के साथ काम किया, इसके साथ ही पर्यटकों के लिये 'अतिथि भवन' और पर्यटन आधारित यातायात का कार्य भी किया । 1990 में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों से निजी उद्यमों को इकाईयों सीपना करने हेतु प्रोत्साहन मिला ताकि प्राथमिकता के साथ विकास, अपनी गति पकड़ सके। यहाँ तक कि पर्यटन में भी निजी क्षेत्रों की भूमिका अच्छी रही। के.एम.बी.एन और जी.एम. वी.एन. की सेवाओं पर सार्वजनिक संतुष्टि से अधिक 'सेवा अभिविन्यास' की माग बढ़ी न कि 'लाख फीताशाही' दृष्टिकोण की । फल बागानों के उद्यमों में हानि के चलते, अधिकांश सरकारी फल बागान निजी हाथों को अन्तरित कर दिये गये। उत्तराखण्ड में पिछले दशकों में पर्यटकों की अप्रत्याशित भीड़ देखी जा रही है जिसमें इस उद्योग में निजी निवेश को बढ़ावा दिया।

20.5 यातायात (परिवहन) संबंधों की स्थिति

परिवहन क्षेत्र अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विकास के लिये बुनियादी ढाँचे का गठन करता है। उ.प्र. के एक हिस्से के रूप में उत्तराखण्ड का पिछड़ापन परिवहन में कमी के कारण सदियों से लंबे समय तक इसी स्थिति में रहा, कुल मिलाकर खराब परिवहन संपर्क, के कारण फसल, व्यापार और सेवाओं में अर्थव्यवस्था की कमी रही। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़क निर्माण की कीमत मैदानी इलाकों में सड़क की कीमतों से तीन गुना अधिक होती है। ब्रिटिश काल में लड़के इतनी तेज गति से नहीं बनायी जा सकीं, किन्तु स्वतंत्रता के बाद विकास की योजनाओं में सड़कों को वरीयता दी गयी। 1962 में चीन के युद्ध ने सड़क निर्माण में शीघ्रता ला दी यहाँ तक कि दूर पहाड़ी क्षेत्रों में भी शीघ्र और तेजगति से सड़क निर्माण होने लगा। सीमा सड़क संगठन में सामरिक सड़कों का निर्माण किया । उत्तराखण्ड को राजय का दर्जा प्राप्त होने के बाद सड़क निर्माण की विशेष प्रेरणा मिली। 2008 में राष्ट्रीय राजमार्गों की लम्बाई 2042 कि.मी. थी, जबकि राज्य मार्ग 1575.5 कि.मी. लंबे थे। यहाँ

569.8 कि.मी. जिला सड़कें थीं और गाँवों की सड़कें 9234.7 कि.मी. लंबी थीं। सड़कों की कुल लंबाई 10,222 कि.मी. थी। 2012 तक यह 30,753.7 कि.मी. तक पहुंचना थी। उत्तरदायित्व की कमी और उचित शासन का अभाव धीमी गति से वृद्धि के कारण हैं और उत्त्राखण्ड में कम गुणवत्ता वाली सड़कों के कारण भी विकास की गति धीमी रही। राज्य में केवल 345 कि.मी. के रेलवे ट्रैक और 9 रेलवे स्टेशन है। राज्य में दो विमान तल है। जौली ग्रान्ट देहरादून में और कुमायू जिले के ऊधम सिंह नगर में पंतनगर हैं। अब राज्य सरकार (उत्तराखण्ड) ने सड़क निर्माण और उच्च श्रेणी की संबद्धता के लिये महत्वाकांक्षी योजनाएं बनायी हैं। उत्तराखण्ड में पर्यटन उद्योग के तीन वर्षों में (2014–15) नयी ऊंचाईयों तक पहुंचने की संभावना है।

20.6 बुनियादी ढाँचे का विकास

बिजली और बैंकिंग की सुविधाओं की उपलब्धता के नये उभरते हुये उद्यमों के लिये एक सुविधाजनक स्थिति बना दी। 2000–2009 के मध्य सिंचाई और बिजली के क्षेत्रों में लगभग 223.5 करोड़ रूपये की इकाईयाँ उत्पन्न हुयीं। यहाँ लगभग 235000 लघु उद्योग इकाईयाँ 63500 कामगारों को रोजगार दे रही हैं। उत्तराखण्ड में मंझोले और बड़े उद्योग का 20,000 करोड़ रूपये का निवेश है। यहाँ 54047 हस्तशिल्प इकाईयाँ पहले से ही काम कर रही हैं। सिडकुल एक राज्य उद्यम के रूप में वित्त पोषण के साथ–साथ भूमि अर्जन में इकाईयों की मदद करता है। यह हरिद्वार, पनत नगर, सितार गन्ज और कोटवार के औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करता है। सिडकुल स्टेट में लगभग 1500 कंपनियों को आकर्षित किया जिनका वर्तमान में 16,000/– करोड़ रूपये का निवेश था। डाबर, हिन्दुस्तान यूनीलीवर, बिटानिया, आई.टी.सी. केविन केयर, बी.एच.ई.एल., ग्लोबल आओ टैंक, ऐल्डर फाम्र, मेडिकामैन, सेन्चुरी प्रिन्टर्स, सोमानी फोरम, पोलर, टैवेल, बी.आई.पी. लखानी इंडिया, बजाज आटो, टाटा मोटर्स, अशोक लीलैंड, एटलस, असाई इंडिया, यूरेवा फॉब्स इत्यादि प्रतिष्ठित और सुस्थापित कंपनियों ने अपनी इकाईयाँ स्थापित कीं, आई.आई.ई. हरिद्वारा 1695 एकड़ में फैली हुई कंपनी है जिसमें प्रसाधन, प्लास्टिक, वस्त्र उद्योग, दवाईयाँ और इलेक्ट्रानिक्स के सामान बनते हैं, इसी तरह आई.आई.ई,, पंतनगर 3195.23 एकड़ भूमि में फैली हुई है, जबकि सितारगंज आई.आई.ई. 1096 एकड़ में फैला हुआ है। बिजली, रोप वे, और शहरी यातायात व्यवस्था के क्षेत्रों में उत्तराखण्ड में निजी कंपनियों के समन्वय के साथ विभिन्न कंपनियाँ आयीं, बहुत सी इकाईयाँ द्वारा विदेशों में निर्यात करने, बढ़ावा देने की संभावना हैं यह इकाईयाँ पशुपतिनाथ स्टील, एस.एम. बेन विल्स, कंडक्टर्स, ग्लायकोल, सेन्चुरी पल्प एंड पेपर, सूर्या लाइट्स, ईस्टर, इंडस्ट्रीज, खातिमा फाइबर्स, परफैक्ट्री वेन्स मैले, एक्में डिवावर, औरंगाबाद इलैक्ट्रिकल्स, एड्यूरैन्स टैक, सिद्धार्थ पेपर, नेनी पेपर, प्रोलिफिक पेपर, एस.आर.एफ. लिमिटेड, पोलीपैक्स कार्पोरेशन पशुपति एक्रेलान, रूदपुर साल्वेन्ट, स्टील इंजीनियर्स, पारले बिस्किट्स, भास्कर इनर्जी, एस्कार्ट लि., टैक्नो इलैक्ट्रानिक्स, श्री राम फाउण्ड्री, नोवेटिव टैक्सटाइल्स इत्यादि कंपनियों के समान प्रतिष्ठित इकाईयाँ हैं।

उत्तराखण्ड ने हिल्ट्रॉन, एच.सी.एल., इन्फो, विप्रो. इन्फोटैक, मोदी इन्फोटैक, सिमकॉन साल्युशनंस इत्यादि इकाईयों के साथ संचार प्रौद्योगिकी सेवाओं में एक लंबी छलांग लाकर आगे कदम बढ़ाया। खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में बहुत सारी इकाईयाँ उत्तराखण्ड आयीं । ब्रिटानिया, नैस्ले पेप्सी आदि पहले से ही उत्पादन का कार्य कर रही है। एफ.एम.सी.जी. क्षेत्र में आईटीसी. लिमिटेड, डाबर, केविन केयर, हिन्दुस्तान लीवर आदि ने स्वयं को स्थापित किया। उच्च अभियांत्रिकी क्षेत्र में सूर्या पोलार, हैवेल्स इंडिया, टाटा मोटर्स,बी.एच.ई.एल. आदि की विश्वस्तरीय पहचाना है। बहुत सी नयी इकाईयाँ आरही हैं। सोमानीफाल और वी.आई.पी. उद्योगों ने उत्पादन के आधुनिक स्तर में प्रवेश

किया। पर्यटन क्षेत्र ने बहुत सारी इकाईयों को आकर्षित किया। यह विकास उज्जवल भविष्य की संभावनाओं को इंगित करते है।

20.7 अन्य क्षेत्र जैसे व्यवसाय के रूप में डेयरी उद्योग का विकास

उत्तराखण्ड मे डेयरी उद्योग की स्थिति और प्रास्थिति बड़ी छलांग लगाने के लिये सड़क पर है। उपजाऊ उर्वरक मिट्टी और चारा उगाने की जगह बहुत कम है। ऊँचे पहाड़ों एवं ऊंचे –ऊंचे पठारों के खेती की उपज बहुत कम है। वनों में शिकार, मुर्गी पालन, भेड़ अन्य जानवरों का मीट पर्वतीय क्ष्क्षेत्रों का अतिरिक्त भोजन है। डेयरी उद्योग मुख्य स्त्रोतों में से एक है जो पोषण की आपूर्ति करता है। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियाँ पीने योग्य पानी, ईधन और चारा एकत्र करने का कम संभालती है। सीमांत और उपसीमांत खातों के कृषि उद्यमियों को अपनी अर्जित आय के साथ सहायक व्यवसायों जैसे पशुपालन डयेरी, मुर्गीपालन, ऊन का व्यवसाय, मधुमक्खी पालन, वन उत्पादों को एकत्रित करना आदि का भी सहारा लेना पड़ता है। गाय, भैंस, बकरी और भेड़ें दूध आपूर्ति के काम आते है । उत्तराखण्ड के तराई और भाबर क्षेत्रों में दूध देने वाले पशुओं की उन्नत नस्लें है और इनसे निकाला हुआ दूध कुछ ज्यादा है उच्च गुणवत्ता लिये होता है। यद्यपि पहाड़ी क्षेत्रों में खराब पशु की नस्लें कम पोषण और खराब जलवायु या मौसम के कारण औसतन उत्पादन भी म ही होता है। जंगलों के खराब रखरखाव के कारण पिछले छः दशकों में अच्छे पौष्टिक चारे की उपलब्धता कम हो गयी है। मवेशियों को खिलाने और बनाये रखने के लिये ग्रामीण महिलाएं कड़ी मेहनत करती है। यदि उनके श्रम का आंकलन मौजूदा बाजार वेतन पर किया जाए तो पहाड़ी क्षेत्रों में उपज दर बहुत निराशाजनक है। पहाड़ों में चारे को एक फसल के रूप में नहीं नहीं उगाया जाता है क्योंकि उपजाऊ भूमि बहुत कम है। पहाड़ों में वनों पर निर्भरता, पहाड़ी इलाका, साधारण गावं, चराई भूमि की अधिकता है। पहाड़ों में झाड़ियों और लताओं के अतिरिक्त ग्रेविया ऑप्टिवा, सेल्ट्रिस ऑस्ट्रेल्स, क्वेरिकस ल्यूकोट्रीकोुरा, बैनहिलिया एसपी और ट्यूना सिवियेट, घास की प्रसिद्ध किस्में है। पत्तियों, जड़ों, छालों, फलों, फलियों, बीजों और सभी जड़ी बूटियों मिलकर प्राप्त हुआ, चारा मवेशियों की पसंद आता है। पहाड़ी क्षेत्रों में पौष्टिक चारे को विकसित करने हेतु अनुसंधान की आवश्यकता है।

सिडकुल के नेतृत्व वाले उपक्रम –

उत्तराखण्ड के औद्योगिक क्षेत्र में बड़े पैमने पर निवेश किया गया जैसे महिन्द्रा (1500 करोड़ रूपये), टाटा मोटर्स (1000 करोड़ रूपये) हीरो होण्डा (600 करोड़ रूपये) अशोक लीलैंड (1100 करोड़ रूपये) बजाज आटो (150 करोड़ रूपये) और बहुत से । 2011 में लंबित प्रस्ताव 30,024 करोड़ रूपये के थे। सिड़कुल में इकाईयों के विशेषाधिकार से प्रवाह जारी है। उत्तराखण्ड में औद्योगिक विकास की क्षमता खनिज संपदा, वनसंपदा, बिजली उत्पादन, शिक्षित युवा की बेरोजगारी के कारण सस्ती मजदूरी, जलवायु लाभ धार्मिक महत्व आदि पर निर्भर करती है। चूना, संगमरमर की चट्टानें, डोलोमाइट, मैग्नेसाइट, ताँबा, जिप्सम आदि खनिज निवेशकों को आकर्षित करते है। पहले ही एक अच्छे बुनियादी ढाँचे के रहने से लाभ भी है।

छोटी कृषि इकाईयाँ :– उत्तराखण्ड में कृषि उद्यमों का आकार बहुत छोटा है जबकि राज्य के मैदानी इलाकों में बड़े आकार के कृषि खाते है। 0–05 हेक्टेयर समूह में उत्तराखण्ड में खातों का प्रतिशत 49.70 है एवं 05–1.0 हेक्टेयर के बीच 21–44 प्रतिशत खाते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि 1 हेक्टेयर से कम में 71.14 प्रतिशत खाते है। अमला समूह 1 से 2 हेक्टेयर आकार का है

जिसमें 16.44 प्रतिशत खाते हैं, इसे कम उत्पादकता के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिये । छोटे भूमि धारकों के पास थोड़े थोड़े हैं या संसाधन भी नहीं है कि वह खेती पर निवेश कर सकें। 2001 में वास्तविक जनसंख्या जो काम पर लगी थी, उसका प्रतिशत 28.2 था। अधिकांश कामगार, आज की कृषि और उससे संबंधित व्यवसायों को ही समर्पित है। एक बहुत बड़ा हिस्सा अच्छी स्थितियों एवं अच्छे वेतन की तलाश में दूसरे क्षेत्रों को प्रवास कर जाते हैं। प्रवासियों द्वारा भेजी जाने वली राशि ग्रामीण क्षेत्रों में नियमित आय का साधन बनती है जिससे खेती और डेयरी से होने वाली कम आय में सहायता मिलती है। मजदूर आसपास के क्षेत्रों में अपने मिले हुये अवकाश का उपयोग आकस्मिक श्रम के रूप में करना चाहते है। यह भवन निर्माण वानिकी या अन्य कोई क्षेत्र हो सकता है। स्थानीय रूप से जितने मजदूरों की आवश्यकता है, श्रमिक आपूर्ति उससे अधिक है अतः श्रमिों का स्थानांतरण अपरिहार्य है।

20.8 कामगारों के प्रवास की समस्या

पहाड़ी क्षेत्रों से बड़े मैदानी इलाकों तक बड़े पैमाने पर प्रवास के परिणामस्वरूप बंजर सूखी जमीन को बंजर ही छोड़ दिया जाता है। हाल ही के दशकों में कुल कृषि क्षेत्र कम होता जा रहा है, उसका कारण मृदा क्षरण है। 2001 में यह 7.69 लाख हेक्टयेर जो 2008–09 में गिरकर 7.54 लाख हेक्टेयर हो गया । खेती की कीमत बढ़ रही है जबकि उससे होने वाले लाभ उसी अनुपात में नहीं बढ़ रहे है। इस स्थिति सेसीमांत एवं उपसीमांत किसान खेती के व्यवसाय को समाप्त करके काम की तलाश में अच्छे वेतन की चाह में नहीं और, प्रस्थान कर जाते है। उत्तराखण्ड, कृषि, सिंचाई, क्षरण नियंत्रण, वन विकस इत्यादि के क्षेत्रों में अधिक निवेश नहीं कर सकता। और न ही श्रम बल के प्रवास पर निगरानी रख सका। आबादी 2.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ रही है जबकि रोजगार निर्माण प्रतिवर्ष 1.17 प्रतिशत ही बढ़ा । उत्तराखंड की स्थानीय अर्थव्यवस्था में धीमी गति के निवेश और उप सीमांत खातों में कृषि उपज में कमी, असिंचित इलाके, सभी मिलकर युवा पीढ़ी को कृषि समापत करने हेतु प्रोत्साहित यिका और अच्छे रोजगार के लिये बड़े मैदानी इलाकें में प्रस्थान को प्रोत्साहन मिला।

20.9 वित्त और पूंजी से संबंधित मुद्दे

आर्थिक उद्यमों की सफलता निवेश हेतु पर्याप्त वित्तीय सहायता पर निर्भर करती है। वित्तीय संस्थानों जैसी बैंके, एन.बी.एफ.सी., साहूकारों आदि के द्वारा पूंजी उपलब्ध करायी जाती है। उत्तराखण्ड के मैदानी इलाकों मे पहले से ही पर्याप्त बुनियादी ढाँचा तैयार है। सहकारी साख संस्थान, व्यावसायिक बैंक की शाखाएं, ग्रामीण बैंकों की शाखाए, एन.बी.एफ.सी. ओर ऋण देने वाली निजी एजेन्सियाँ उपलब्ध हैं। किन्तु उत्तराखंड के पहाड़ी हिस्सों में कृषि और कुटीर उद्योगों दोनों के लिये पूंजी आपूर्ति की कमी है। सहकारी समितियाँ, सहकारी बैंक और भूमि विकास बैंक की सेवाएँ बहुत कम प्राप्त होती हैं। व्यावसायिक बैंकों की शाखाएं उत्तराखण्ड के सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों को भी सुविधा प्रदान नहीं कर पा रहे है। इस मामले में ग्रामीण क्षेत्र दूर–दराज तक फैला हुआ है।

ग्रामीण बैंकों के अनुभव दिखाते हैं कि वित्त पोषण, डेयरी, बाजारोंन्मुख नगदी फसलों और भूमि सुधार के लिये अच्छी मात्रा में पूंजी की मांग है। हाल के वर्षों में उपभोग उद्देश्यों के लिये भी राशि की मांग है। उप–शहरी और शहरी केन्द्रों में गाड़ी जैसे टैक्सी, मोटर साइकिल और छोटे आकार के ट्रक खरीदने के लिये पूंजी की पर्याप्त मांग है। जब तक बाजार में कीमत स्थिर नहीं होती तब तक फसल उत्पादन के भंडारण के लिये किसानों को पूंजी ऋण देने की बहुत कम गुंजाइश है।

पहाड़ी क्षेत्रों में खाद्य सामग्री की बहुत कमी होती है और खाद्यान्न उत्पादन, सब्जियाँ, जड़ी बुटियों और दूध उत्पादन को छोड़कर बाजार में थोड़े अधिशेष होते है। व्यवसाय क्षेत्र में उपभोज्य वस्तुओं की खुदरा क्षेत्र में थोक बिक्री के लिये राशि की मांग है। ठेकेदारों को वेतन देने के लिये एवं खरीदी के लिये राशि की आवश्यककता होती है। पहाड़ी क्षेत्रों में ऋण वापिसी करने वाले बकायादारों का अनुपात बहुत अधिक है। दोषियों को अगले चुनावों के पहले, जानबूझकर ऐसा इसलिये करते हैं कि उन्हें छोड़ दिया जायेगा।

ऐसा माना जाता है कि औद्योगिक वृद्धि पूंजी को विस्तृत औरे गहरा करने की पोषित प्रक्रिया है। यह बड़े पैमाने पर मशीनीकरण, आधुनिकीकरण, अच्छे उत्पादों की डिजायनिंग, बाजार का विस्तार और आर्थिक संगठन के पारंपरिक ढाँचे की देखरेख, आदि के परिवर्तन की सामरिक श्रृंखला की शुरूआत करता है। इसे उच्चपूंजी उत्पादन अनुपात और पूंजी निर्माण की गति और बुनियादी ढाँचे को अद्यतन करने हेतु नेतृत्व करना चाहिये जो कि निर्माण और तृतीयक उत्पाद की उन्नति व्यापक बाजारों तक पहुंचने की कुंजी है। प्रक्रिया में सांस्कृतिक और संरचनात्मक तकनीकी परिवर्तन एक दूसरे को सुदृढ़ करते हैं और प्रभावी रूप से नवाचारों की खोज करते हैं। इन व्यापक परिवर्तनों को उभरते हुये औद्योगिक इकाईयों की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिये निर्धारित औद्योगिक नियमों, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं, प्रोत्साहनों, प्रेरणाओं या अवरोधों को लागू करने वाली औद्योगिक नीतियों की आवश्यकता है। उत्तराखंड में दो विभिन्न भौगोलिक और पहचाने जाने योग्य मांग हैः– (अ) पहाड़ी तराई क्षेत्र और मैदानी स्थालाकृति का क्षेत्र । पहला 'शून्य उद्योगों की विशेषताओं के लिये जाना जाता है और बाद वाले क्षेत्र में औद्योगिक विकास की क्षमताएं अधिक है। पहाड़ी क्षेत्रों में बहुत सी बाधाएँ है जैसे इनपुर खरीदी पर उच्च परिवहन लागत का होना और उत्पादन के निपटान स्तर पर अवरोध है। पर्वतीय इलाकों में बेहद कम आय स्तर और उदास क्रय क्षमता बाजार और वस्तुओं के उपयोग पर रोक लगाते हैं, केवल सत्ता भोजन और मध्यम स्तर के कपड़े ही पर्वतीय क्षेत्र के लोग दैनिक चर्चा में शामिल कर पाते हैं। मैदानी क्षेत्रों का बुनियादी ढाँचा तुलनात्मक रूप से अधिक अच्छा है, कम कीमतें, सस्ते प्रशिक्षित श्रमिकों तक पहुँच, बाजारों त पहुँच और निवेशकों के लिये दी जाने वाली सुविधाओं का पुलिंदा मैदानी क्षेत्रों में है। 'मार्जिन धन' प्रोत्साहन, कर से छूट, और स्वागत नीतियों के निवेश करने वाली कंपनियों के उत्तराखण्ड के मैदानी हिस्सों में निवेश हेतु आकर्षित किया, महिन्द्रा, सिन्टैक्स, वीडियो कॉन, असाई ग्लास, सैमसंग इत्यादि को अपनी इकाई स्थापित करने का आग्रह किया। जैव विविधता और सूचना तकनीक भी काम प्रारंभ करने के लिये पंक्तिबद्ध थे। 2008 तक, 3742 लघु उद्योग इकाईयाँ वहां आयीं । 447 से अधिक इकाईयाँ परिपक्वता की स्थिति में थीं। इस क्षेत्र के कृषि उद्यमी कृषि उपज जैसे फल, सब्जियाँ, जड़ी बूटियाँ, फूल, आलू, लीची, कमल, डेरी, चाय, मशरूम, रेशम के कीड़े और आधुनिक उन्नत बीजों को उगाने की ओर अपना रूख कर रहे थे। आसान पहुँच वाले पहाड़ आधारित गाँवावें में यह विस्तार ले रहा था जिसमें अच्छी नियमत नगद आय का वायदा सम्मिलित था।

20.10 सभावित उपक्रम

जलवायु का लाभ, शांति, मंत्रमुद्यग्ध कर देने वाली प्राकृतिक सुंदरता, पनबिजली की संभावना, जैव–विविधता, जड़ी–बूटी संपदा, वन संसाधन, इनपुट से संबंधित निर्माण कार्य देवी देवताओं के मंदिर, गुरूद्वारे, गिरजाघर, मस्जिदें, और तीर्थ यात्रियों की भीड़ इत्यादि निवेशकों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। सस्ते मजदूर मिलना भी एक अन्य लाभ है। यातायात, बिजली पर्यटन, बागवानी, खाद्य प्रसंस्करण, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य संबंधी संभावनाएं, हथकरधा – खादी, वन आधारित

कार्य, खनिज आधारित उद्यमिता, और आधुनिक विज्ञान से संबंधित क्षेत्र जैसे सॉफ्टवेयर आदि क्षेत्रों में निवेशकों के लिये उत्तराखंड में अवसर उपलब्ध है। उत्तराखण्ड में उद्यमिता के अन्य क्षेत्रों को भी विस्तृत रूप दिया जा सकता है।

20.11 नीति आधारित प्रोत्साहन

उत्तराखण्ड निवेशकों की 'एकल खिड़की सुविधा' प्रदान करती है। औद्योगिक घरानों, प्रशिक्षण विद्यालयों, उन्नत केन्द्रों, विशिष्ट जोन, पार्क, रिसोर्ट, हवाई पट्‌टी, वायु तरंगों, सड़कें, बिजली के संयंत्र, जैवविधिता के केन्द्र, डेयरी केन्द्रों और सुदृढ़ खेती इत्यादि के बुनियादी ढाँचे क्षेत्रों का राज्य स्वागत करता है। राज्य बढ़ती हुई चमकते हुये उद्योगों की वरीयता देता है। उत्तराखण्ड को पारिस्थितिक पर्यटन के क्षेत्र में मान्यता प्राप्त है। उत्तराखंड के खनिजों की बहुत मांग है। इस राज्य की साक्षरता दर अच्छी है और शिक्षा सबके उन्नति का प्रदर्शन भी बहुत अच्छा है तथा उच्च शिक्षा पेशेवर प्रशिक्षण, स्वास्थ्य और चिकित्सा अनुसंधान के क्षेत्र में निवेशकों के लिये एक विशाल क्षेत्र खोलता है। आबकारी से उन्मुक्ति, सूचना तकनीक से छूट, पूंजी निवेश में रियायत, प्रवेश कर से छूट, स्टाम्प ड्यूटी में छूट, बैंक में ब्याज में रियायत, पार्कों में लगने वावले मनोरंजन कर में छूट, रोपवे और बहुमंजिला इमारतों की परियोजनाओं में आई.एस.ओ. ले लेने पर कीमत के 75 प्रतिशत की नकद वापिसी, उत्पादों पर गुणवत्ता चिन्हन प्राप्त कर लेने पर छूट, प्रदूषण नियंत्रण मानों से मुआवजा और पेटेन्ट का पंजीबद्ध होने को उत्तराखण्ड की औद्योगिक नीति में प्रस्तावित किया । शिक्षित युवाओं को विशेष लाभ मिलता है। राज्य द्वारा एन.एच.वी, ए.पी.ई.डी.ए. एन.एम.पी.बी. परियोजनाओं को 20 लाख तक की छूट दी जाती है। सिड़कुल निवेशकों के लिये दिशा निर्देश और सूचनाएँ देता हैं । विभिन्न स्तरों पर लघु उद्योग इकाईयों के लिये सुविधाएं और रियायतें उपलब्ध है। पैकेज को अच्छा प्रोत्साहन मानकर निवेशकों को प्रस्तावित किया जाता है। पव्रतीय क्षेत्रों को परिवहन की लागत, आवश्यक इनपुट की उपलब्धता, बाजार और विशेषज्ञों के मध्य संविदाओं जैसे लाभ नहीं मिला पाते हैं। जब तक उत्तराखण्ड को केन्द्र से वित्तीय अनुदान नहीं मिल जाता जब तक प्रोत्साहन, निरन्तर रह सकता है। विशिष्ट अनुदानों की अनुकूल परिस्थिति को निकट भविष्य में पूरा किया जा सकेगा।

20.12 अतीत के गौरव और उपब्धियों के लिये प्रयास (दौड़)

ईसा के जन्म से 3000 वष पहले उत्तराखंड में ताँबे और लोहे पर आधारित मनुष्यों की जीवनशैली का विकास किया था। रामायण और महाभारत जैसी महाकाव्यों और उपनिषदों में इस क्षेत्र के बारे में लिख गया । गुरूद्रोणाचार्य का आश्रम देहरादून क्षेत्र में है। ऋषिकेश और हरिद्वार सांस्कृतिक केन्द्र हैं। कलसी के शिलालेख इसे सिद्ध करते हैं। इस क्षेत्र में पाषाण युगीन संस्कृति के होने के बहुत सारे साक्ष्य है। पुरोला उच्च स्तरीय सांस्कृतिक धरोहर का साक्षी है, सूदुर इतिहास में भी यह अंकित है। 200–600 बी.सी. में कुलिन्दा, कुशान, योर्धय और पारथी शासन काल के दौरान मुद्रा का मुद्राशास्त्र साक्षी है। मंदिरों, पुराने तीर्थस्थान और मूर्तियाँ से भू साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तराखण्ड मानव संस्कृति का पुराना केन्द्र है।

2000 ए.डी.से उत्तराखण्ड राज्य, फसलों, बिजली विकास, छोटे और मध्यम श्रेणी के उद्योगों की स्थापना, शिक्षा, जड़ी बूटियाँ तथा चाय की खेती, परिवहन का बुनियादी ढाँचा, बैकिंग, पर्यटन, विनिर्माण, फलों की खेती और सब्जी उत्पादन आदि के संदर्भ में अच्छी गति से उन्नति की है। 1999–2000 में इस क्षेत्र की आय की वार्षिक वृद्धि 2.9 प्रतिशत थी और पी.सी.आई. 15000 रूपये थी, जबकि सकल राज्य घरेलू उत्पाद 12,621 करोड़ रूपये थी। 2010–11 तक आर्थिक वृद्धि दर 9.5

प्रतिशत होने का दावा किया गया, जी.एस.डी.पी. 40119 करोड़ रूपये और पी.सी.आई. 42,000 रूपये होने का दावा किया गया। 2000– 2009 के दौरान उत्तराखण्ड में 4.67 करोड़ डालर की एफ.डी.आई. प्राप्त की । उत्तराखण्ड में राज्य का दर्जा प्राप्त होने के पहले दशक के दौरान बुनियादी ढाँचे पर निवेश के लिये 574.97 करोड़ डालर प्राप्त किये। पर्यटन ने बहुत लंबी छलांग लगायी और बढ़ता गया। विदेशी पर्यटक 16.6 प्रतिशत तक बढ़ गये। बिजली उत्पादन 954.1 मेगावाट से बढ़कर 1758.2 मेगावाट (एकदशक में) हो गया। राजनीतिक बाधाओं ने जल विद्युत परियोजनाओं की क्षमताओं की क्षमता की वृद्धि धीमी कर दी।

20.13 पर्यटन विकास की संभावनाएँ

पर्यटन आज के युग का फैशन का शब्द हो गया है। पर्यटन का मानसिक प्रतीक है, एक अभिविन्यास है, और अपनी जिज्ञासाओं को संतुष्ट करने के लिये नये स्थान पर जाने और नये एक्सपोजर प्राप्त करके जीवन का नया अनुभव प्राप्त करने के पक्ष में एक विकल्प है। यह घटना को प्रत्यक्ष रूप से देखकर जानने की प्रक्रिया हैं । यह केवल भ्रमण या पर्यटन मात्र नहीं है, अवकाश के लिये मौजमस्ती के लिये बाहर जाना भी है। यह अंडरटेकर के लिये खपत है और मेज़बान के लिये आय संवर्धन है। पर्यटन और मात्रा के उद्देश्य निम्न हो सकते हैं।

(1) यह दुनिया में मानव विकास की मख्य धारा वाले और दूर–दराज की संस्कृतियों को जानने के लिये हैं।

(2) यह अवांछित प्रवासन से बचने के लिये खाली हाथों को उत्पादक कार्य की भागीदारी प्रदान करता है।

(3) शानदार प्राकृतिक सुंदरता के कुछ अनुभव के आनंद के क्षणों को साझा करना जिसके पास इसका उपयोग नहीं है।

(4) विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये पर्यटन स्थलों के विकास एवं हरेभरे वातावरण को सुरक्षित रखने के लिये, जल प्रवाह, वातावरण, और वन्य जीवन के संरक्षण के लिये पर्यटन का विकास आवश्यक है।

(5) पर्यटन का उद्देश्य विभिन्न सांस्कृतिक गुणों, मनोरंजनों, भोजन, जीवन शैली और दार्शनिक गतिविधियों की विविधता में भाग लेना भी हो सकता है।।

(6) प्राचीन अवशेष, ऐतिहासिक स्मारकों, थीम पार्क, वन्य जीवन संग्रहालय, बाहय दीर्घा, पुरातात्विक आकृतियाँ, समुद्री किनारे, हरीतियाँ, पर्वतीय सुंदरता, खेल, धार्मिक केन्द्रों पर भ्रमण, लोक संस्कृति, आदिवासी जीवन, स्वास्थ्य केन्द्र, स्पा, जलक्रीड़ा, साहसिक खेल, मुख्य राजनीतिक केन्द्रों आदि को देखना भी पर्यटन का उद्देश्य हो सकता है।

मानव की सामाजिक आर्थिक गतिविधि पर्यटन है जो व्यक्तियों के साथ–साथ पर्यटन स्थलों को समृद्ध बनाता है। जब पर्यटन धार्मिक आस्था के भाव से होता है तो उसे तीर्थयात्रा कहा जाता है। उत्तराखण्ड में, बहुत बड़ी संख्या में पर्यटक देवी देवताओं की पूजा और मन्दिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों के लिये आते हैं, आगन्तुक ऋषियों, पुजारियों, योगियों और धार्मिक शिक्षकों एवं पवित्र व्यक्तियों से मुलाकात करते हैं। कुछ की रूचि ऊंचाई पर चढ़ने, चट्टानों पर चढ़ने, फूलों की घाटी में प्रकृति को देखने में, अभ्यारण्यों को देखने, पवित्र गंगा में स्थान करने में और तेजबहाव में तैरने में होती है। घर से बाहर की यात्रा पर्यटन कहलाती है। पर्यटक सैर करते है, स्थल अवलोकन करने, ट्रेकिंग करने, सुंदर प्रकृति की राफ्टिंग करने और नंदा देवी की बर्फ की चोटियों को देखने, कामेट, गंगोत्री, केदारनाथ, चौखम्भा, त्रिशूल और बंदरपूँछ आदि घूमने आते है। उत्तराखण्ड

में, आगन्तुक ग्लेशियर, खरक संतोपंथ, मिलाम, नामिक इत्यादि में मनोरंजन के लिये आते हैं। पर्यटकों की रूचि वैदिक संस्कृति में होने की वज़ह से वे आश्रम देखकर मनोरंजन करते हैं। श्री खेत्र और कुमांयू के लगभग सभी मंदिर पर्यटकों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। पर्यटन से नियमित आय के प्रवाह में निश्चितता बनी रहती है।

साहसी खेलों की जिज्ञासा युवाओं को हिमालय बुलाने के लये प्रेरणा के स्त्रोत हैं। मनोहारी दृश्य उत्तराखण्ड के मुख्य आकर्षण हैं जबकि उम्रदराज लोगों को बद्रीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री, गंगोत्री धाम आस्था की प्यास बुझाने हेतु जाते हैं। कुमांयु में इस तरह के अनेक धार्मिक केन्द्र है। छात्र, विचारक, लेखक, पेंटर, संगीतज्ञ, फिल्म से जुड़े कलाकार उत्तराखण्ड में बड़ी–बड़ी हरी छतरियों के नीचे शान्त वातावरण में शाक्ति की खोज में आते है। कौटीपास के पास स्थिम मेडोज ऑफ डेलिशरा' जहाँ खुरलारा होते हुये तपोवन से पहुँचा जा सकता है, वहाँ पहुंचकर भी स्वर्ग के आनन्द जैसी अनुभूमि होती है। आगन्तुक हिमालय की प्राकृतिक सुंदरता देखने के लिये पर्यटन स्थलों पर जाते हे। उत्तराखण्ड में 27 झीलें है जिनकी पृष्ठ भूमि गहरी हरी, आसमानी नीली और स्वच्छ पानी है। विंसूताल, संतोपंथ, रूपकुंड, बेनिटल, वासुकी, चोरबाड़ी, बिराही, उखीमठ, देवरिया, भिंकाल, सहसा अंचरीताल, यमताल, डोंडीताल और नखटताल की अपनी अनोखी सुंदरता है। कुमांयुँ की झीलें भी प्राकृतिक सुंदरता की भंडार है। गढ़वाल में 38 कुंड बहुत रमणीक हैं, उत्तराखण्ड को बुग्याल और मेडीज नामक मूल्यवान जड़ीबूटियों के लिये जाना जाता है। बेड़नी, पैटर, गैरसेन, औली, पाण्डुशेरा, नंदीकुंड, रूद्रनाथ, नंदन कानन, दस्तोली, रतकॉन, लांबीवन, कैला इत्यादि बुग्याल जड़ी बूटी के लिये प्रसिद्ध है।

गढ़वाल के अकेले हरिद्वारा में ही 258 ऋषियों के आश्रम है। ऋषिकेश में 167 उत्कृष्ट आश्रम हैं। कुमायूँ में 17 प्रसिद्ध आश्रम हैं यहाँ पूरी तरह से हिन्दू दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया जाता है।

पर्यटन को पाँच वैश्विक संगठनों टी.ए.ए.आई. एफ.एच.आर.ए.आई, आई.ए.टी.ओ., आई.ए.टी.आई, आई.टी.सी. और बहुत से अन्य राष्ट्रीय संगठनों द्वारा आगे बढ़ाया गया। 1749 को प्रारंभ में आई यू.ओ.टी.ओ. प्रारंभ हुआ, बाद में यह विश्व पर्यटन संगठन में परिवर्तित हो गया। इस संगठन में प्रतिराष्ट्र 113 व्यक्ति है। इसका मुख्यालय स्पेन मैड्रिड में है। आई.ए.टी.ओ. (1945) आई.एफ.टी.ओ., आई.वाई.एच.एफ., आई.एच.ए, आई.ए.टी.एम, पी.ए.टी.ए. व अन्य संगठन है जो विश्व स्तर पर कार्य कर रहे है। उत्तराखण्ड पर्यटन इन संगठनों से जुड़ा हुआ है। कुमाऊ मंडल विकास निगम (केएमवी.एन.) और गढ़वाल मंडल विकास निगम (जी.एम.वी.एन) उत्तराखंड में पर्यटन को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं, इसके साथ साथ राज्य का पर्यटन विाकस निगम भी पर्यटन उको बढ़ाने का काम कर रहा है। बहुत से अशासकीय संगठन भी राज्य में पर्यटन को बढ़ाने का काम कर रहे है। पर्यटन के क्षेत्र में वैश्विक विकास का प्रभाव पूरे पर्यटन उद्योग के लिये उल्लखेनीय है।

नदियों के संगम को प्रयाग का जाता है जिससे दर्शनीय नजारा विशेषतः बारिश और शीत ऋतु में प्रस्तुत होता है । प्रचलित देवी देवताओं पर इनका नाम रखा गया है। उनमें से कुछ प्रचलित इस प्रकार हैं– केशव, विषणु, नंद, कर्ण, पुत्र सूर्य, कूल शिव, घुन्डी, जगदीश, गणेश, और देव–प्रयाग। यह सब बद्रीनाथ, जोशीमठ, नंदप्रयाग, कर्ण प्रयाग, तिलावाड़ा, रूद्र प्रयाग श्रीनगर, टेहरी और देव प्रयाग में स्थापित है। सामान्यतः प्रत्येक में एक मंदिर स्थापित है जिसका प्रबंधन योगी के द्वारा किया जाता है।

गढ़वाल में दर्शनीय स्थलों के बहुत से आयाम है। दक्षिण काली, नदी का किनारा (देहरादून) चंडिका किनारा, राजेश्वरी नदी का किनारा, महिष मर्दिनी किनारा, गुहेश्वरी, नंद भद्रेश्वरी, दीप्ति ज्वालेश्वरी, सुरेश्वरी, महंत कुमारिक दर्शन द्वार, सुनीलि, कन्दारी, केवल, भावपनाग्राम, निबाला, नीलकंठ किनारास, और बहुत सारे स्थल है।।

यातायात संप्रेषण, आवास, विभिन्न प्रकार की सुविधाओं, पर्यटन निर्देशों और सुरक्षा सेवाओं, पर्यटन संवर्धन संबंधी साहित्य, चिकित्सीय सेवाओं, सड़कों, पुलों, रोपवे, और खाद्य से संबंधित सेवाओं के कारण पर्यटन उद्योग अग्रसर होता है। उत्तराखण्ड का पर्यटन विकास विभाग पर्यटकों को दी जाने वाली सेवाओं को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है और इस क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रहा है।

पर्यटन नुकसानदायक भी सिद्ध हो सकता है यदि यह विस्तृत तरीके से बढ़ जाता है जिससे वातावरण में प्रदूषण, योग रोग और एच.आई.वी. से संबंधित रोग, वन्य जीव नष्ट होते हैं और पर्यटन स्थलों की प्राकृतिक सुंदरता नष्ट होती है।

20.14 जल विद्युत उत्पादन की संभावनाएँ

उत्तराखण्ड में विद्युत उत्पादन की क्षमता में तेजी से वृद्धि न हो पाने में मुख्य बाधा है विरोधी पक्ष का निहितहित होना और बाढ़, भूगर्भीय कारकों एवं नदियों के प्रवाह में बदलाव होना। पारिस्थितिकी जोखिमों के संदर्भ में पहले ही बहुत कुछ कहा जा चुका है। हम बड़े बड़े बाँधों को अवहेलना भी करें तो बहुत सारी छोटी–छोटी जल विद्युत परियोजनाओं का परीक्षण भी किया गया है और विशेषज्ञों द्वारा अनुमोदित भी की गयीं है। लोहावअी, गोला, रामगंगा, गोरी गंगा, मंदाकिनी, काली में पागलगढ़, सिमेर खोला, गढ़ (काली) नजबगढ़ में दीप्ती पढगल, पल्यागढ़, धौली गंगा(तवाघाट), नागलिनगढ़ विदान दुग्टाके पास, और बगेश्वर से पहले सरयू नदी आदि कुछ संभावित स्थल है। मुख्य स्थल है– भागीरथी में मनेरी, अस्सी गंगा (गंगोत्री), लाम्बगाँव जलकूर, बालगंगा ढलान, रूद्र प्रयासग से पहले मंदाकिनी, पिंडेर (नारायण बागड़) मंदाकिनी (नया प्रयाग) बिराही नदी, विष्णु प्रयाग की ओर अलखनंदा, धौली गंगा में लता वार्डस, बद्रीनाथ के ऋषिगंगा, तपोवन की ओर ऋषिगंगा, यमुना दमता तोड़ इस ओरिजनल टौंस नदी (सियूनी वार्डस) के ढलान।

बाँधों और ताप बिजली घरों के निर्माण में निजी क्षेत्रों के साथ मिलकर काम करने से इस क्षेत्र की उन्नति तीव्र गति से होने की दिशा में नये आयाम खुल गये हैं लागत अनुमान काफी सटीक है। सबसे छोटे की लागत 50,000 करोड़ रूपये प्रति किलोवाट हो सकती है। कहीं कहीं यह 5 करोड़ प्रति मेगावाट भी है। 1000 किलोवाट से 5000 किलोवाट की लागत 45,000 प्रति किलोवाट, 5000 से 10000 किलोवाट (10 मेगावाट) की लागत 38000 प्रति किलोवाट हो सकती है। एक 100 किलोवाट की परियोजना कहीं भी स्थापित की जा सकती है यदि पानी का बहाव 1/2 क्यूसेक (या वाटरमिल के बराबर) है और प्रपात 25 मीटर की ऊंचाई लिये हुये है। (आर.एस. गुनसोला, देहरादून, 1996 द्वारा यह अनुमान लगाये गये थे।) उत्तराखण्ड बहुत जल्द ही उत्तर प्रदेश, राजस्थान, और दिल्ली को बिजली बेचने की स्थिति में आ पायेगा यदि संभावनाओं का क्रियान्वयन हो जाता है।

उत्तराखण्ड में पनबिजली उत्तपादन की गहन क्षमता है जो कि ऊर्जा के कभी न समाप्त होने वाले ऊर्जा के स्त्रोत हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि 35 से 40 हजार मेगावाट की क्षमता है। राज्य की बिजली की मांग बहुत कम है, लेकिन औद्योगिक उद्यमों की स्थापना की वजह से अगले दशक में यह मांग दोगुनी हो जायेगी। वर्तमान में बिजली उत्पादन का स्तर 1030 मेगावाट है। देहरादून, चमोली, टेरही, पौरी, नैनीताल ओर पिथौरागढ़ में 6,851 मेगावाट क्षमता के छोटे पनविद्युत

परियोजनाएँ स्थापित की हैं। मनेरी भाली, धकरानी, छालीपुर, कुल्हल, खारा, छिपारो, खोदरी, चिल्ला, कालागढ़, इत्यादि को बड़ी योजनाओं के रूप में मूल्यांकित और अनुमोदित किया गया है, गढ़वाल में स्थित इन परियोजनाओं की क्षमता 978.75 मेगावाट है। यदि हम कुमयूँ की खातिमा परियोजना को भी जोड़ लेते हैं तो यह क्षमता 1020 मेगावाट हो सकती है। कुछ और छोटीपन बिजली विद्युत परियोजनाएं प्रस्तावित हतै। अतः कुल क्षमता 1030 मेगावाट की है। पन बिजली परियोजनाओं से पर्यटन को बढ़ावा मिलता है और बिजली उत्पादन, बाँध और जल प्रवाह की नयी साइट को देखने के लिये आगन्तुकों को प्रोत्साहित करते है। लगभग 38000 पर्यटक टेहरी बाँध देखने गये और टेहरी जलाशय और गुप्त ताप बिजली घर देखकर प्रभावित हुये।

20.15 सारांश

अर्थव्यवस्था शब्द लोगों के संसाधनों, आर्थिक प्रयासों और उत्पादन के स्तर पर दिये गये सुझावों, उपभोग, आय और संपदा के विनिमय और वितरण की सामूहिक अभिव्यक्ति है। उपर्युक्त सूचक विकास के साथ बहुआयामी परिवर्तन ही अर्थव्यवस्था हैं स्थिर, उन्नतशील, अविकसित और विकसित अर्थशास्त्र हो सकते हैं जो उन्नति की संभावनाओं, वृद्धि की गति और खपत के स्तर को हो सकते हैं।

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था बहुआयामी, विकसित और उन्नत है। यह संसाधनों से युक्त अर्थव्यवस्था है जो व्यक्तियों के कठिन श्रम, सुनियोजित तानों बानों से बुने पूंजी संसाधन, अविकसित ओर अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन तथा मनोहारी प्राकृति सुंदरता से भरपूर संसाधनों से युक्त है। अत्यन्त ध्यान देने योग्यक विशेषण है भौगोलिक विविधता और जैव–विविधता । उत्तराखण्ड का एक विशाल हिस्सा आर्थिक रूप से कमजोर हो रहा है, तकनीकी रूप से विकलांग, जलवायु से वंचित और बुनियादी ढाँचागत पिछड़े इलाके हैं, भावर और तराई के इलाके सादे स्थलाकृति क्षेत्र है और कृषि उद्योग और तृतीयक गतिविधियों में बहुत प्रगतिशील है। जीएनबीएन और दो क्षेत्रीय विकास निगमों ने उत्तराखण्ड में आर्थिक विकास के कारणों पर काम किया है। सिडकुल मैदानी क्षेत्रों में औद्योगिक वकास को बढ़ावा देती है। राज्य का पर्वतीय क्षेत्र यातायात जैसी बुनियादी आवश्यकताओं, चिकित्सा और उद्यमिता जैसी आवश्यक सेवाओं के मामले में अविकसित है। पहाड़ों पर उत्पादन और विनिमय की लागत बहुत अधिक हैं। उपसीमांत और सीमांत खातों की प्रधानता मैदानी इलाकों में खेती को बहुत दूर रखते हैं। उत्तराखण्ड में विनिर्माण क्षेत्र के निवेशकों को अच्छे लाभ मिलते हैं। इस राज्य में पन बिजली उत्पादन, पर्यटन, शिक्षा और हरे–भरे और समृद्धशाली पर्यावरण के क्षेत्र में बहुत सी संभावनाएँ हैं।

20.16 शब्दावली

अर्थव्यवस्था :– से तात्पर्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और उपभोग के मामले में देश या क्षेत्र की स्थिति और धन की आपूर्ति है।

पर्यटन (सैर सपाटा) :– से तात्पर्य एक संक्षिप्त यात्रा या भ्रमण, विशेष रूप से गतिविधि के रूप में अवकाश लेना है।

20.17 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. पर्वतीय विकास निगम दो स्वतंत्र उद्यमों ——————— में विभाजित था।
2. आई.यू.ओ.टी. और का शुभारंभ ——————— में हुआ।

3 आई.यू.ओ.टी ओर का शुभारंभ –'———————— में हुआ ।

3 नदियों के संगम ————————— कहलाते हैं।

20.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 के.एम.वी.एन और जी.एम.वी.एन., 2 258 3 1749 4. प्रयाग

20.19 स्वपरख प्रश्न

1. उत्तराखण्ड राज्य की विशेषताओं की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. उत्तराखण्ड में कृषि की विशेषताएं क्या है ?
3. उत्तराखण्ड के लिये वानिकी वरदान है– इस कथन पर प्रकाश डालें।
4. उत्तराखण्ड राज्य के विकास में पर्यटन क्षेत्र किस प्रकार अपना योगदान दे सकता है?
5. उत्तराखण्ड के विकास में जल विद्युत परियोजनाएं संभावित योगकर्ता हैं– क्या आप इस कथन से सहमत है। कारण सहित लिखिये।
6. उत्तराखण्ड में डेयरी उद्योग महत्व नहीं क्यों नहीं पा सका ? इस क्षेत्र में किस प्रकार सुधार किया जा सकता है ?
7. उत्तराखण्ड के पर्वतीय इलाकों में रहने वाले लोगों के राज्य से बाहर जाने के क्या कारण है ?
8. भविष्य की योजनाओं के लिये विकास के लिये प्राथमिक क्षेत्र क्या होने चाहिये।

20.20 संदर्भित पुस्तकें

1. Yojana Ayog Publications.
2. Government of India Tourism Department Publications.
3. Chandrasekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
4. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
5. Government of India, economic survey (annual).
6. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
7. Indian Economic Journal (Indian economic association).
8. Raj Kumar, Sen. and Biswajit, Chatterjee, Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi, 2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development and Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi, 2002.
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Government of Uttarakhand Tourism Department Publications.

———————

इकाई 21 वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.)

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना

21.2 जी एस टी का अर्थ

21.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव

21.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर

21.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं

21.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन

21.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी

21.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण

21.3 माल और सेवा कर के लाभ

21.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ

21.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं

21.5 पंजीकरण

21.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय

21.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान

21.8 जीएसटी परिषद्

21.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय

21.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस

21.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत आयात व निर्यात

21.9.1 जी.एस.टी. के अंर्तगत आयात

21.9.2 जी.एस.टी. के अंर्तगत निर्यात

21.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण

21.11 प्रतिदाय/रिफंड

2111.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)

21.11.2 धन वापसी (रिफंड)

21.11.3 माँग (डिमांड्स)

21.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन

21.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी

21.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण

21.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय

21.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान

21.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान

21.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने

21.18 निपटान आयोग

21.19 सारांश

21.20 शब्दावली

21.21 बोध प्रश्न
21.22 बोध प्रश्नों के उत्तर
21.23 स्वपरख प्रश्न
21.24 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- जी.एस.टी. के अर्थ की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुओं का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. के अंतर्गत उपरोक्त करों को सम्मिलित करने के सिद्धांत की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन व जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान को समझ सकें ।

21.1 प्रस्तावना

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । बडी संख्या में केंन्द्र और राज्यों के द्वारा लगाए जा रहे करों को मिलाकर अकेला एक कर बना दिए जाने से करो बहुतायत और दोहरे कराधान की समस्या हल हो जाएगी और एक सामान्य राष्ट्रीय बाजार के लिए रास्ता साफ हो जाएगा । उपभोक्ताए की दृष्टि से देखें तो, सबसे बडा लाभ यह होगा कि वस्तुओं पर लगने वाले कर के बोझ मे कमी आ सकेगी । आज यह कर बोझ 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के लगभग है । जीएसटी के लागू किए जाने से भारतीय उत्पाद घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे । किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इससे आर्थिक विकास पर भी बहुत उत्साहजनक प्रभाव पडेगा और सबसे अंत में यह कहना है कि इस कर को लागू करना आसान होगा क्योंकि इसमें पारदर्शिता रहेगी और नीतियां स्वंय तैयार की जा सकेंगी ।

जीएसटी के बारे मे सबसे पहले तत्कालीन केंद्रीय वित्त मंत्री के दिमाग में आया था जिसको उन्होंने 2007–08 के बजट में व्यक्त किया था । शुरू–शुरू में जीएसटी के 1 अप्रैल, 2010 से लागू किए जाने का विचार था । राज्यों के वित्त मंत्रियों की शक्ति प्राप्त समिति (इ.सी.), जिसने राज्यों में लगाए जाने वाले वैट की रूपरेखा तैयार की थी, से अनुरोध किया था कि वह जीएसटी के लिए भी मार्ग प्रशस्त करें और उसकी रूपरेखा अधिकारियों का एक संयुक्त कार्यकारी दल, जिसमें राज्य और केंन्द्र दोनों के प्रतिनिधि थे, का गठन किया गया था, जिसका कार्य जीएसटी के विभिन्नं पहलुओं की जांच–परख करना था और अपनी रिपोर्ट, विशेषकर छूट और निर्धारित (थ्रेशोल्ड) सीमा सेवाओं पर कर लगाना/करारोपण और अंतर्राज्यीय आपूर्ति पर करारोपण के बारे में, देना था। इनमें परस्पर तथा इनके और केंद्र सरकार के बीच हुए विचारविमर्श के आधार पर इस शक्ति प्राप्त समिति (ई.सी.) ने नवम्बर, 2009 में जीएसटी पर अपना प्रथम विमर्श पत्र (एफडीपी) जारी किया था । इसमें प्रस्तावित जीएसटी की विशेषताओं को बताया गया है और अब तक केंद्र और राज्यो के बीच चलने वाली बात–चीत का आधार तैयार किया गया हैं ।

21.2 जी एस टी का अर्थ

जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है। संक्षेप में, केवल मूल्य संवर्धन (value addition) पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा। उस कर–प्राधिकरण को कर की प्राप्ति, जिसके अधिकार क्षेत्र के स्थान पर उपभोग किया जाएगा और जिसे आपूर्ति स्थल भी कहा जाता है, उपर्जित है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। केंद्र के अधिकार में वस्तुओं के विनिर्माण (सिवाय मानव उपभोग के लिये शराब, अफीम, नशीले पदार्थों आदि को छोड़कर) पर कर लगाने की शक्तियां हैं, जबकि राज्यों के अधिकार में वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। अंतर–राज्य बिक्री के मामले में केंद्र सरकार को वस्तुओं की बिक्री पर कर (केंद्रीय बिक्री कर) लगाने की शक्ति है लेकिन, कर पूरी तरह से राज्यों द्वारा एकत्र किया जाता है। जहां तक सेवाओं का प्रश्न है, केवल केंद्र को सेवा कर लगाने के लिये सशक्त किया गया है।

जी.एस.टी. प्रस्तुत करने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करने की आवश्यकता थी ताकि केंद्र और राज्यों को एक साथ कर लगाने और एकत्र करने के लिये सशक्त किया जा सके। भारत के संविधान को संविधान के (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 द्वारा हाल ही में इस प्रयोजन के लिये संशोधित किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 246ए केंद्र और राज्यों का कर लगाने और जी.एस.टी. एकत्र करने के लिए सशक्त करती है।

21.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव

यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस.जी. एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।

भारत एक संघीय देश है, जहां केंद्र और राज्यों को उनके उपयकुत काननू के माध्यम से करारोपण आरै एकत्र करने की शक्तियां पद्रत्त की गई हैं दोनों सरकार के स्तर पर अलग–अलग जिम्मदोरियों का निष्पादन के अनसुार सविंधान में शक्तियों का विभाजन निधारित किया गया है जिसके लिये उन्हें संसाधनों को जुटाने की आवश्यकता होती है। दोहरा जी.एस.टी., इसीलिये, वित्तीय संघवाद की संवैधानिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है।

21.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर

जी.एस.टी. में निम्नलिखित करों को प्रतिस्थापित किया जायेगाः

(i) आज के समय केंद्र द्वारा वर्तमान समय पर लगाए और संग्रह किए जाने वाले करः

- क. केंद्रीय उत्पाद शुल्क
- ख. उत्पाद शुल्क (दवाईयां और प्रसाधन पदार्थ)
- ग. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्व की वस्तुएं)
- घ. अतिरिक्त उत्पाद शलुक (कपड़ा आरै कपड़ों की वस्तए)

ङ. अतिरिक्त सीमा शुल्क (सामान्यतः सीवीडी से जाना जाता है)

च. अतिरिक्त विशेष सीमा शुल्क (एसएडी)

छ. सेवा कर

ज. केंद्रीय/राज्य अधिशुल्क और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं से संबंधित हैं

(ii) उन राज्य करों को स्पष्ट करें जिन्हें जी.एस.टी. में प्रतिस्थापित किया जाएगाः

क. राज्य वैट(मूल्य वर्धित कर)

ख. केंद्रीय बिक्री कर

ग. विलास कर (लक्जरी टैक्स)

घ. प्रवेश कर (सभी रूपों में)

ङ. मनोरंजन और मनोरंजक कर (सिवाय तब जब स्थानीय निकायों द्वारा करारोपण किया गया है)

च. विज्ञापनों पर कर

छ. क्रय कर

ज. लॉटरी, शर्त और जुए पर कर

झ. राज्य अधिभार और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित हैं

जी.एस.टी. परिषद केंद्र और राज्यों को केंद्रीय, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा करों, उपकरों और अधिभारों के करारोपण के लिये सिफारिष करेगी जिन्हें जी.एस.टी. में सम्मिलित किया जा सकता है।

21.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं

मानव उपभोग के लिए शराब, पेट्रोलियम उत्पाद अर्थात कच्चा पेट्रोलियम तेल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), हाई स्पीड डीजल, प्राकृतिक गैस और विमानन टर्बाइन ईंधन एवं बिजली।

उपरोक्त वस्तुओं के संबंध में मौजूदा कराधान प्रणाली (वैट और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क) अस्तित्व में जारी रहेगी। तम्बाकू एवं तम्बाकू उत्पाद जीएसटी के अधीन होगें। इसके अतिरिक्त केन्द्र इन उत्पादों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आरोपित करने हेतु सषक्त होगा।

21.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन

केंद्र सी.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी. का करारोपण और प्रशासन करेगा, जबकि संबंधित राज्य एस.जी.एस.टी. करारोपण और प्रशासन करेंगे।

वस्तुओं और सेवाओं के एक विशेष लेन–देन के लिये कर एक साथ केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी.एस.टी) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) के अंतर्गत लगाया जाना

केंद्रीय जी.एस.टी. आरै राज्य जी.एस.टी. को एक साथ प्रत्येक वस्तुओं और सेवाओं के लेन देन पर लगाया जायगो सिवाय छूट दी गई वस्तुओं और सेवाओं और जी.एस.टी. के दायरे से बाहर की वस्तुओं और उन लेनदेन को छोड़कर जिनका मूल्य निर्धारित सीमा से नीचे है। आगे, दोनों पर एक कीमत या मूल्य पर कर लगाया जायेगा राज्य वैट के विपरीत जिसकें अतंर्गत वस्तुओं के मल्ूय में सेनवैट जाडे क्र वैट लगाया जाता है । जबकि सी.जी.एस.टी. के प्रयोजन के लिये देश के भीतर आपूर्तिकर्ता और आपूर्ति प्राप्तकर्ता के स्थान का कोई अर्थ नहीं है और एस.जी.एस.टी. तभी लगाया जाएगा जब आपूर्तिकर्ता आरै आपूर्ति प्राप्तकर्ता एक ही राज्य के भीतर स्थित हैं।

चित्रण I: मान लीजिए कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत और एस.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत है। जब उत्तर प्रदेश में स्टील का एक थोक व्यापारी एक निर्माण कंपनी को स्टील की सलाखों और छड़ों की आपूर्ति करता है जो उसी राज्य के भीतर स्थित है; मान लें कि 100 रूपये में, डीलर 10 रूपये का सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये का एस.जी.एस.टी. माल के मूल दाम में जोड़कर वसूल करेगा। उस सी.जी.एस.टी. की रकम केंद्र सरकार के खाते में जमा करनी है, जबकि एस.जी.एस.टी. के हिस्से की राशि संबंधित राज्य सरकार के खाते जमा करना आवश्यक होगा। जाहिर है, कि उसे वास्तव में 20 रुपये (10+10 रुपये) नकद राशि में जमा करना आवश्यक नहीं होगा क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट, कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि सी.जी.एस. टी. के लिये वह अकेले एस.जी.एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

चित्रण II: मान लीजिए, फिर अनुमानतः कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिषत और एस.जी.एस.टी. की दर भी 10 प्रतिषत है। जब मुंबई में स्थित एक विज्ञापन कंपनी महाराष्ट्र राज्य के भीतर स्थित एक साबुन विनिर्माण कंपनी के लिए विज्ञापन सेवाओं की आपूर्ति करती है, आईये मान लेते हैं कि 100 रूपये, विज्ञापन कंपनी सेवा की मूल कीमत पर 10 रूपये सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये एस.जी.एस.टी. शुल्क लगायेगी। उसे सी.जी.एस.टी. का हिस्सा केंद्र सरकार के खाते में, और एस.जी.एस.टी. हिस्सा संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा करना आवश्यक होगा। बेशक, उसे फिर से, वास्तव में 20 रुपये (10+10 रु) का नकद भुगतान करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट जैसे स्टेशनरी, ऑफिस उपकरण, कलाकारों की सेवाएं इत्यादि कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट/जमा का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि एस.जी.एस.टी. के लिये वह अकेले एस.जी.एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, सी.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

21.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी

जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत, कर का भुगतान वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर कराधीन व्यक्ति द्वारा देय है। कर के भुगतान के लिए दायित्व तब उत्पन्न होता है जब कराधीन व्यक्ति छूट दी गई सीमारेखा (threshold exemption) को पार कर लेता है, यानि 10 लाख रुपए (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए यह 5 लाख रुपये होगी) सिवाय कुछ विशिष्ट मामलों को छोड़कर कराधीन व्यक्ति जी.एस.टीका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है भले ही उसने निर्धारित सीमा रेखा की छूट को पार नहीं किया है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टीअंतर–राज्य में आपूर्ति की गई सभी वस्तुओं और/या सेवाओ पर देय है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी संबंधित अधिनियमों की अनुसूचियों में निर्दिष्ट दरों पर देय हैं।

21.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण

एच.एस.एन. (हार्मोनाइज़्ड सिस्टम आफ नॉमेंक्लेचर) कोड को जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं को वर्गीकृत करने के लिए प्रयोग किया जाएगा। करदाताओं जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 1.5 करोड रुपये से ऊपर है लेकिन 5 करोड़ रुपये से कम है, वे 2 अंकों के कोड का उपयोग कर पाएंगे और वह करदाता जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 5 करोड रुपये और उससे अधिक है वह 4 अंकों के कोड का उपयोग करेंगे। ऐसे करदाताओं को जिनकी कुल बिक्री 1.5 करोड रुपये के नीचे है उन्हें अपने चालान/बिलों पर एचएसएन कोड का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। सेवाओं को सर्विस एकाउंटिंग कोड के अनुसार वर्गीकृत किया जाएगा (एस.ए.सी.)

21.3 माल और सेवा कर के लाभ

माल और सेवा कर से होने वाले लाभ निम्नलिखित है:

1. माल और सेवा कर (जीएसटी) पूरे देश के लिए लाभदायक व्यवस्था है। इससे अर्थव्यवस्था के सभी हितधारकों, सरकार और उपभोक्ताओं को लाभ होगा । इससे वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत में कमी आएगी । अर्थव्यवस्थास को प्रोत्साहन मिलेगा और भारतीय वस्तुएँ एवं सेवाएँ वैश्विक स्तोर पर प्रतिस्पर्धी बनेंगी । जीएसटी का लक्ष्य कर दरों और प्रक्रियाओं में समरूपता लाकर और आर्थिक बाधाओं को हटाकर भारत को एक साझा राष्ट्रीय बाजार बनाना है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर एक एकीकृत अर्थव्यवस्था का पथ प्रशस्त हो सके । अधिकांश केन्द्रीय एवं राज्य अप्रत्यक्ष करों को एकल कर में समाहित करके एवं समूचे वैल्यूं–चेन में पूर्व–चरण के प्रदाय (सप्लाई) में भुगतान किये गए करों के समंजन से व्यवसायों में प्रपत्तन (कैस्केअडिंग– यानि कर पर कर का लगना) के दुष्प्रभाव कम होंगे, प्रतिस्पर्धात्मयकता बढ़ेगी और चल निधि (लिक्विडिटी) में सुधार होगा । जीएसटी एक गंतव्य–आधारित कर है । यह बहु–स्तरीय संग्रहण विधि का अनुसरण करता है । इसमें प्रदाय (सप्लाई) के हर स्तर पर कर का भुगतान होगा और पिछले स्तर पर चुकाए गए कर का क्रेडिट प्रदाय के अगले स्तर पर समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा । इससे कर भार अंतिम उपभोक्ता की ओर स्थानांतरित होता है और उद्योगों को बेहतर नकदी प्रवाह और बेहतर कार्यशील पूंजी प्रबंधन से लाभ होता है ।
2. जीएसटी मुख्यीत: प्रौद्योगिकी संचालित है । इससे मानवीय हस्तक्षेप बहुत हद तक कम हो जायेगा और जिससे निर्णयों में तेजी आएगी ।
3. माल और सेवा कर से भारत में उत्पादित वस्तुऐं एवं सेवाएँ भारत के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पार्धी बनेंगी और इससे भारत सरकार की महत्वपूर्ण पहल ''मेक इन इंडिया'' को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा । इसके अलावा सभी आयातित वस्तुओं पर एकीकृत माल और सेवा कर (आईजीएसटी) आरोपित किया जाएगा जो कि केन्द्रीय जीएसटी + राज्य जीएसटी के समतुल्य होगा । इससे आयातित उत्पादों और स्थानीय उत्पादों पर कराधान में समता आएगी ।
4. वर्तमान व्यवस्था के विपरीत, जहां केन्द्र और राज्यों के बीच अप्रत्यक्ष करों की विखंडित प्रकृति के कारण कुछ करों का प्रतिदाय (रिफंड) नहीं हो पाता है, जीएसटी व्यंवस्थाा के अधीन निर्यात पर पूर्ण रूप से संगृहित कर का प्रतिदाय होगा । इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय निर्यात को बढ़ावा मिलेगा और तदैव भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार होगा ।

साफ ट्रैक रिकॉर्ड वाले निर्यातकों को निर्यात से संबंधित दावों का सात दिनों के भीतर 90: प्रतिदाय (रिफंड) कर प्रोत्साहित किया जाएगा।

5. माल और सेवा कर के कारण कराधार बढ़ने और कर अनुपालन में सुधार होने से सरकारी राजस्व में वृद्धि आने का अनुमान है । जीएसटी के कारण भारत के 'व्यवसाय करने की सुगमता' इंडेक्स (ईज ऑफ डुईंग बिजनेस) की श्रेणीक्रम (रैकिंग) में सुधार आने की संभावना है और सकल घरेलू उत्पाजद में 1.5% से 2% तक वृद्धि होने का अनुमान है ।

6. माल और सेवा कर से अप्रत्य.क्ष कर कानूनों में और अधिक पारदर्शिता आएगी । चूँकि समूची प्रदाय श्रृंखला (सप्लानई चेन) के प्रत्येरक स्तर पर कर लगेगा और जिसके साथ पिछले स्तर पर चुकाए गए करों का प्रत्यंय (क्रेडिट) प्रदाय के अगले स्तर पर समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा, प्रदाय के अर्थतंत्र और कर वैल्यू– का सुगमता से आकलन किया जा सकेगा । इससे उद्योगों को क्रेकडट लेने में और सरकार को चुकाए गए करों की सत्यता को जाँचने एवं उपभोक्ता को चुकाए गए कर की सही राशि जानने में सहायता मिलेगी।

7. करदाताओं को केन्द्र और राज्यो सरकारों के अनेक अप्रत्यक्ष कर कानूनों जैसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट, केन्द्रीय बिक्री कर, चुंगी, प्रवेश कर, लक्जरी कर, मनोरंजन कर, आदि का अभिलेख (रिकॉर्ड) रखने और अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं होगी । उनको सभी राज्यान्तर्गत प्रदायों के लिए केन्द्रीय माल और सेवा कर अधिनियम तथा राज्य (अथवा संघ राज्यक्षेत्र) माल और सेवा कर अधिनियम (जिनके लगभग समरूप कानून हैं) और सभी अन्तरराज्यिक प्रदायोंके लिए एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम (जिनकी अधिकांश मूल विशेषताएँ भी सीजीएसटी और एसजीएसटी अधिनियम से व्युषतपन्नट हैं) के संबन्धए में केवल रेकॉर्ड रखने तथा अनुपालन दर्शाने की आवश्यकता है ।

21.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ

वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार (10 लाख रूपये) तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा। (सकल कुल बिक्री में कुल कर योग्य और गैर–कर योग्य आपूर्ति, छूट दी गई आपूर्ति और वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात का कुल मूल्य शामिल होगा और कर अर्थात जी.एस.टी. शामिल नहीं होंगे।) सकल कुल बिक्री की गणना अखिल भारतीय आधार पर की जाएगी। पूर्वोत्तर राज्यों और सिक्किम के लिए, छूट सीमा (रुपए 5 लाख) होगी। सीमा में छूट के पात्र सभी करदाताओं को इनपुट टैक्स क्रेडिट (आई.टी.सी.) लाभ के साथ कर के भुगतान करने का विकल्प उपलब्ध होगा। अंतर–राज्य आपूर्ति करने वाले कर दाताओं या रिवर्स चार्ज के आधार पर कर का भुगतान कर रहे कर दाताओं को सीमा में छूट की पात्रता प्राप्त नहीं होगी।

21.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं

माल और सेवा कर की मुख्य विशेषताएं निम्नयलिखित हैं :–

i) वस्तुओं के निर्माण अथवा बिक्री पर या सेवाओं के प्रावधान पर देय मौजूदा कराधानों की तुलना में माल और सेवा कर वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रदाय (सप्लाई) पर लागू होगा । यह एक गंतव्य – आधारित उपभोग कर होगा । जहाँ वस्तु एवं सेवा का उपभोग होगा, उसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र को यह कर उपार्जित होगा । यह एक दोहरा कर होगा जिसमें केन्द्र और राज्यो दोनों एक साथ समान कर आधार पर कर उद्‌ग्रहण एवं संग्रहण

करेंगे । वस्तुओं अथवा सेवाओं के राज्यान्तर्गत प्रदायों पर केन्द्र द्वारा वसूला जाने वाला जीएसटी केन्द्रीय माल और सेवा कर (सीजीएसटी) और राज्यों तथा विधान मंडल वाले संघ राज्यक्षेत्रों/बिना विधान मंडल वाले संघ राज्याक्षेत्रों द्वारा वसूला जाने वाला माल और सेवा कर क्रमश: राज्य जीएसटी (एसजीएसटी)/संघ राज्यक्षेत्र जीएसटी (यूटीजीएसटी) कहलाएगा ।

ii) मानवीय उपभोग हेतू एल्कोहलिक लिकर एवं पांच पेट्रोलियम उत्पीदों, यथा अपरिष्कृएत पेट्रोलियम (पेट्रोलियम क्रूड),मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), उच्च गति डिजल (हाई स्पीडड डीजल), प्राकृतिक गैसव (नैचुरल गैस) एवं विमानन टरबाइन ईंधन (एविएशन टर्बाईन फ्यूल) के अलावा सभी वस्तुओं पर माल और सेवा कर लागू होगा । यह कर कुछ सेवाओं, जिन्हें विनिर्दिष्ट किया जाना है, को छोड़कर सभी सेवाओं, पर लागू होगा । केन्द्र द्वारा वर्तमान में उद्ग्रहीत एवं एकत्र किए जाने वाले निम्नालिखित करों की जगह माल और सेवा कर लगेगा :–

1. केन्द्रीय उतपाद शुल्क;
2. उत्पाद शुल्क डयूटी (औशधीय और प्रसाधन निर्मितियाँ);
3. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (विशेष महत्वरकी वस्तुएँ);
4. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (सामान्यत: सीवीडी के रूप में जाना जाता है);
5. सीमा शुल्क की विशेष अतिरिक्ति डयूटी (एसएडी);
6. सेवा कर;
7. केन्द्रीय प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक ये वस्तुओं की आपूर्ति एवं सेवाओं से संबंधित हैं ।

iii) राज्यं कर जिनको माल और सेवा कर में सम्मिलित किया जाएगा :–

1. राज्य वैट;
2. केन्द्रीय बिक्री कर;
3. लक्जरी कर;
4. एंट्री कर(सभी प्रकार के);
5. मनोरंजन एवं आमोद–प्रमोद कर (सिवाय जब यह कर स्थानीय निकायों द्वारा वसूला जाता हो);
6. विज्ञापनों पर कर;
7. क्रय कर;
8. लॉटरी, सट्टेबाजी एवं जुए पर कर;
9. राज्य प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक वे वस्तु ओं एवं सेवाओं के प्रदाय से संबंधित हैं ।

iv) छूट प्राप्तं वस्तुओं एवं सेवाओं की सूची केन्द्रं एवं राज्यों के लिए समान होगी ।

v) शुरूआती (थ्रेशहोल्ड) छूट: एक वित्तीय वर्ष में 20 लाख रूपये तक के संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) वाले करदाता को कर से छूट मिलेगी । कुल टर्नओवर की गणना अखिल भारतीय स्तमर पर होगी । ग्याणरह (11) विशेष दर्जा प्राप्तत राज्यों, जो पूर्वोत्तर में हैं, या पहाड़ी राज्य हैं, के लिए शुरूआती छूट 10 लाख रूपयो होगी । शुरूआती छूट के पात्र करदाताओं के पास इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लाभ के साथ कर भुगतान करने का

विकल्पी होगा । करदाता जो अन्तरराज्यिक प्रदाय करते हैं अथवा रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करते हैं वे शुरूआती छूट के पात्र नहीं होंगे ।

vi) कम्पोजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना

एक वित्तीय वर्ष में 50 लाख रूपये तक संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) के छोटे करदाता कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) हेतु पात्र होंगे । ऐसा करदाता इस योजना के अधीन इनपुट कर प्रत्यय (आईटीसी)लाभ लिए बिना वर्ष के दौरान अपनी टर्नओवर के विनिर्दिष्ट प्रतिशत के बराबर कर का भुगतान करेगा। सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी, प्रत्येक के लिए कर की दर निम्नलिखित से ज्यादा नहीं होगी :–

- रेस्टोरेंट आदि के मामले में 25% ।
- विनिर्माता के मामले में राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में टर्नओवर का 1% ।
- अन्यक प्रदायों के मामले में राज्य/संघ राज्यतक्षेत्र में टर्नओवर का 0.5 % ।

कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) को चुनने वाले करदाता अपने उपभोक्ताओं से कोई कर नहीं लेंगें न ही वे किसी इनपुट कर प्रत्यय का दावा करने के हकदार होगें । कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना वैकल्पिक है । अन्तरराज्यिक प्रदाय करने वाले करदाता कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना के हकदार नहीं होंगे । जीएसटी कॉउंसिल (परिषद्) की योजना के हकदार नहीं होंगे। जीएसटी कॉउंसिल (परिषद्) की सुस्तुनति पर सरकार योजना के लिए छूट की सीमा को एक करोड़ रूपये तक बढ़ा सकती है ।

vii) वस्तुओं एवं सेवाओं की अन्तरराज्यिक प्रदायों पर केन्द्र द्वारा एकीकृत माल और सेवाकर का उदग्रहण एवं संग्रहण किया जाएगा। केन्द्र एवं राज्योंस के बीच आवधिक रूप से अकाउंटस का निपटान यह सुनिश्चित करने हेतु किया जाएगा कि आईजीएसटी का एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी हिस्सा उस गंतव्य राज्य/संघ राज्यं क्षेत्र को स्थानांतरित हो जाए जहाँ वस्तुओं एवं सेवाओं का अन्तत: उपयोग किया गया ।

viii) इनपुट कर प्रत्येय (क्रेडिट)का उपयोग

इनपुट पर भुगतान किए गए करों का इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति करदाता को होगी एवं वे आउटपुट टैक्स) के भुगतान हेतु इसका उपयोग करेगें । तथापि सीजीएसटी के अकाउंट पर लिए गए किसी इनपुट कर प्रत्यय का उपयोग एसजीएसटी/यूटीजीएसटी के भुगतान के लिए एवं इसके विलोमत: (वाइस–वर्सा) नहीं होगा। आईजीएसटी क्रेडिट का उपयोग क्रमश: आईजीएसटी, सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी के भुगतान हेतु करने की अनुमति होगी ।

ix) एच एस एन (हार्मोनाइज्डट सिस्टक ऑफ नॉमनक्लेचर) कोड का उपयोग माल और सेवा कर व्यवस्था के अधीन वस्तुओं के वर्गीकरण हेतु किया जाएगा । ऐसे करदाता जिनका अर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से ऊपर है परन्तु 5 करोड से कम है, 2–डिजिट कोड का इस्तेरमाल करेंगे एवं करदाता जिनका टर्नओवर 5 करोड़ या उससे ऊपर है, 4– डिजिट कोड का इस्तेभमाल करेंगे । एसे करदाता, जिनका टर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से नीचे है, से अपने बीजक (इन्वायस) में एचसएएन का उल्लेहख करना अपेक्षित नहीं होगा ।

x) एसईजेड को किए गए निर्यात एवं प्रदाय को जीरो रेटेड प्रदाय माना जाएगा। निर्यातक के पास विकल्पट रहेगा कि या तो वह आउटपुट पर कर का भुगतान करे एवं इसके प्रतिदाय (रिफंड) का दावा करे या बिना कर भुगतान के बांड के अधीन निर्यात करे एवं इनपुट कर प्रत्यय के प्रतिदाय का दावा करे ।

xi) वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात को अन्तरराज्यिक प्रदाय माना जाएगा एवं आयात पर लागू सीमा शुल्क के अतिरिक्त आईजीएसटी लगेगा । भुगतान किया गया आईजीएसटी आगामी प्रदाय पर इनपुट कर प्रत्याय के रूप में उपलब्ध रहेगा ।

21.5 पंजीकरण

वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.) के अंतगत पंजीकरण करवाना व्यवसाय को निम्नलिखित लाभ प्रदत्त करेगाः

- वस्तुओं और सेवाओं के आपूर्तिकर्ता के रूप में कानूनी मान्यता प्राप्त होती है ।
- इनपुट वस्तुओं या सेवाओं के समुचित कर भुगतान के लेखा जिन्हें वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति या व्यापार द्वारा दोनो पर देय जी.एस.टी. भुगतान के लिये प्रयोग किया जा सकता है।
- अपने खरीदारों से कानूनी तौर पर कर जमा करने और वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर खरीदार या प्राप्तकर्ताओं को देय करों को क्रेडिट करने के लिये अधिकृत किया है।

बिना जी.एस.टी. पंजीकरण के कोई भी व्यक्ति न तो अपने ग्राहकों से जी.एस.टी. एकत्र कर सकता है और न ही अपने द्वारा भुगतान किए गए जी.एस.टी. के किसी भी इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा कर सकता हैं। पंजीकरण के लिए जहां पर आवेदन किया गया है उसकी प्रस्तुति के 30 दिनों के भीतर व्यक्ति पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसके पंजीकरण के अपने दायित्व की तिथि होगी। जहाँ आवेदक द्वारा पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत किया जा चुका है उसके 30 दिनों के बाद वह पंजीकरण का उत्तरदायी बन जाता है,पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसे पंजीकरण प्रदान करने की तारीख होगी।

स्वतः पंजीकरण के मामले में, अर्थात स्वेच्छा से पंजीकरण लेना जबकि कर भुगतान के लिए सीमा में छूट की सीमा के भीतर है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि पंजीकरण के आदेश की तिथि होगी। कोई भी आपूर्तिकर्ता जो भारत के किसी भी स्थान से व्यापार कर रहा है और जिसकी कुल बिक्री एक वित्तीय वर्ष में निर्धारित सीमा से अधिक है वह स्वयं पंजीकरण के लिये उत्तरदायी है। हालांकि, एम.जी.एल. अनुसूची III में उल्लिखित व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को इस सीमा का ख्याल किये बिना पंजीकृत किया जा सकता है। एक किसान को कराधीन व्यक्ति नहीं माना जायेगा और वह पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

एम.जी.एल. की अनुसूची III के पैरा 5 के अनुसार, निम्नलिखित श्रेणियों के व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से निर्धारित सीमा की परवाह किए बिना पंजीकृत करवाना आवश्यक होगा;

क) व्यक्ति जो किसी प्रकार की अंतर–राज्य कराधीन आपूर्ति कर रहे हैं;

ख) आकस्मिक कराधीन व्यक्ति;

ग) वे व्यक्ति जिन्हें रिवर्स प्रभार के अंर्तगत कर भुगतान करना आवष्यक है;

घ) अनिवासी (एनआरआई) कराधीन व्यक्ति

ङ) वे व्यक्ति जिन्हें धारा 37 के अंर्तगत कर की कटौती करना आवश्यक है;

च) वे व्यक्ति जो अन्य पंजीकृत कराधीन व्यक्तियों की ओर से वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, चाहे अभिकर्ता या अन्य किसी रूप में;

छ) इनपुट सेवा वितरक/डिस्ट्रीब्यूटर;

ज) वे व्यक्ति जो ब्रांडेड सेवाओं को छोड़कर वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर के माध्यम से;

झ) प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर;

ञ) एक एग्रीगेटर जो सेवाओं की आपूर्ति अपने ब्रांड नाम या ट्रेड नाम से प्रदान करता है; तथा

ट) ऐसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग जिन्हें परिषद की सिफारिशों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है।

प्रत्येक वह व्यक्ति जो पंजीकरण लेने के लिए उत्तरदायी है उसे प्रत्येक उन राज्यों में अलग–अलग पंजीकरण लेना आवश्यक है जहां पर वह व्यवसाय संचालित कर रहा है और मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 की उप–धारा (1) के अनुसार जी.एस.टी. का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति के पास मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 के अंर्तगत पंजीकरण प्राप्त करने की पात्रता के क्रम में आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) के अधीन जारी किया गया स्थायी खाता संख्या (पैन) रखना अनिवार्य होगा।

हालांकि एम.जी.एल. की धारा 19 (4ए) के अनुसार, अनिवासी/एनआरआई कराधीन व्यक्ति के लिये पैन रखना अनिवार्य नहीं है और उसे किसी अन्य दस्तावेज के आधार पर पंजीकरण दिया जा सकता है, जिस रूप में उसे निर्धारित किया जा सकता है। एक बार पंजीकरण प्रमाण पत्र प्रदान करने पर वह स्थायी हो जाता है जब तक कि उसे अभ्यर्पण, रद्द, निलंबित या वापस नहीं ले लिया जाता।

सरकारी प्राधिकरणों/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पी.एस.यू.) को जो जी.एस.टी. माल की आगे आपूर्ति नहीं कर रहे (और इसलिये जी.एस.टी. पंजीकरण प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी नहीं है) लेकिन अंतर–राज्यीय खरीद कर रहे हैं, उन्हें संबंधित राज्य कर प्राधिकारियों द्वारा जी.एस.टी. पोर्टल के माध्यम से एक विशिष्ट पहचान संख्या (आई.डी.) प्रदान किया जाएगा। ऐसे करदाता जो आईटी–कुशल नहीं हैं, उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उन्हें निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध की जाएंगी:–

टैक्स रिटर्न प्रिपेयरर (टी.आर.पी.): एक कराधीन व्यक्ति स्वयं अपना पंजीकरण आवेदन तैयार कर सकते हैं/ रिटर्न भर सकते हैं या टी.आर.पी. को संपर्क कर सकते हैं। टी.आर.पी. कथित पंजीकरण दस्तावेज/निर्धारित प्रारूप में रिटर्न कराधीन व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना के आधार पर तैयार करेगा। टी.आर.पी. द्वारा तैयार किये प्रारूप में सम्मिलित जानकारियों की शुद्धता और कानूनी जिम्मेदारी केवल कराधीन व्यक्ति पर होगी और टी.आर.पी. किसी त्रुटि या गलत जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

सुविधा केंद्र (एफ.सी.): दस्तावेजों की विधिवत अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित कराधीन व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत सारांश शीट सहित प्रारूपों और दस्तावेज़ों के डिजिटलीकरण और/या अपलोडिंग के लिए जिम्मेदार होंगे। एफसी आईडी और पासवर्ड का उपयोग करते हुए आम एफसी पोर्टल पर डाटा अपलोड करने के बाद, स्वीकृति/पावती का एक प्रिंट–आउट लेगा और एफसी द्वाराहस्ताक्षर करने के बाद वह कराधीन व्यक्ति को उसके रिकार्ड के लिये सौंप दिया जायेगा।

अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षर की गई सारांश शीट को एफसी स्कैन करने के बाद अपलोड कर देगा।

21.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय

शब्द 'आपूर्ति' बहुत व्यापक शब्द है और इसमें वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति के सभी रूप जैसे बिक्री, स्थानांतरण, वस्तु विनिमय, अदला–बदली, लाइसेंस, किराया, पट्टा या निपटान करना या करने के विचार पर एक व्यक्ति द्वारा उसके व्यापार को आगे बढ़ाने के प्रयोजन के लिये सहमति देना शामिल है। इसमें सेवाओं का आयात भी शामिल है। मॉडल जी.एस.टी. कानून आपूर्ति के दायरे के भीतर बिना प्रतिफल के कुछ लेनदेन को षामिल करने की भी व्यवस्था प्रदान करता है।
वस्तुओं के उपयोग के अधिकार के हस्तांतरण को सेवाओं की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा क्योंकि इस प्रकार के हस्तांतरण में वस्तुओं का शीर्षक/नाम हस्तांतरित नहीं हुआ। इस तरह के लेन–देन को विशेष रूप से एम.जी.एल. की अनुसूची–II में सेवा की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा।
आपूर्ति का समय

आपूर्ति का समय निर्धारित करता है कि कब जी.एस.टी. कर का दायित्व उत्पन्न होता है। यह भी इंगित करता है कि कब आपूर्ति पूर्ण कर दी गई समझी जायेगी। एमजीएल वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति के लिये अलग–अलग समय प्रदान करता है। वस्तुओं के विपरीत, सेवाओं के मामले में, आपूर्ति का समय इस तथ्य के आधार पर निर्धारित करता है कि क्या सेवाओं की आपूर्ति के लिए चालान/बिल निर्धारित अवधि के भीतर या निर्धारित अवधि के बाद जारी कर दिया गया है।

21.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान

जी.एस.टी. व्यवस्था में, किसी भी राज्यांतरिक (राज्य के भीतर) आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला करों का भुगतान केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी.एस.टी., केन्द्र सरकार के खाते में जमा होगा) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी., संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा होगा)। किसी भी अंतर–राज्य आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला कर भुगतान एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) है जिसमें दोनों सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के घटक सम्मिलित होंगे। इसके अतिरिक्त, पंजीकृत व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को कर स्रोत पर कटौती (टी.डी.एस.) और कर स्रोत पर एकत्रित (टी.सी.एस.) सरकारी खाते में भुगतान करने की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, जहां लागू हो, ब्याज, जुर्माना, फीस और कोई भी अन्य भुगतान करना आवश्यक होगा।

आमतौर पर जी.एस.टी. भुगतान का दायित्व वस्तुओं या सेवा आपूर्तिकर्ता का है। हालांकि कई निर्दिष्ट मामलों में जैसे आयात और अन्य अधिसूचित आपूर्तियों के लिये, रिवर्स प्रभार व्यवस्था के अंर्तगत प्राप्तकर्ता पर यह दायित्व डाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में, भुगतान करने का दायित्व तीसरे व्यक्ति पर होता है उदाहरणार्थ (टी.सी.एस. के मामले के लिये ई–कॉमर्स ऑपरेटर जिम्मेदार है या टी.डी.एस. के लिये सरकारी विभाग जिम्मेदार हैं)। जैसा कि धारा 12 में स्पश्ट किया गया है वस्तुओं की आपूर्ति के समय और धारा 13 में सेवाओं की आपूर्ति के समय किया जाना चाहिये। समय आम तौर पर इन तीन में से सबसे पहले का समय होगा, अर्थात भुगतान की प्राप्ति पर, चालान/बिल जारी करने पर या आपूर्ति पूरा हो जाने के बाद का समय। उपरोक्त धाराओं में विभिन्न स्थितियों की परिकल्पना और अलग–अलग कर केंद्र स्पष्ट किये गये हैं।
भुगतान निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है:

(i) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के ऋण खाता बही में नामे के माध्यम से – केवल कर का भुगतान किया जा सकता है। ऋण खाता बही में ब्याज, जुर्माना और शुल्क का भुगतान नामे द्वारा नहीं किया जा सकता। करदाताओं को (इनपुट टैक्स क्रेडिट) इनपुट/आदानों पर भुगतान का क्रेडिट लेने और उसका उपयोग आउटपुट कर के भुगतान करने के लिए अनुमति दीजायेगी। हालांकि, सी.जी.एस.टी. के कारण इनपुट टैक्स क्रेडिट को एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिये उपयोग नहीं किया जायेगा और विलोमतः। आई.जी.एस.टी. के क्रेडिट को आई.जी.एस.टी., सी.जी.एस.टी. और एस.जी. एस.टी. के भुगतान के लिए उस अनुक्रम में उपयोग करने की अनुमति दी जाएगी।

(ii) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के नकद खाता बही के नामे द्वारा नकद रूप में। विभिन्न माध्यमों से नकद खाता बही में राशि जमा की जा सकती है, अर्थात, ई–भुगतान (इंटरनेट बैंकिंग, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड); पैसा भेजने का सबसे तेज तरीका/रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.)/नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांस्फर (एन.ई.एफ.टी.); जी.एस.टी. जमा स्वीकार करने के लिए अधिकृत बैंकों की शाखाओं में काउंटरों पर भुगतान।

21.8 जीएसटी परिषद्

जीएसटी परिषद् (जीएसटी काउंसिल) की व्यववस्था केन्द्र एवं राज्यों के साथ–साथ राज्यों के बीच जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर संगतिकरण सुनिश्चित करेगी । यह विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि जीएसटी परिषद अपने विभिन्न कार्यों के निर्वहन में जीएसटी के सामंजस्य पूर्ण संरचना के सृजन की आवश्यकता तथा वस्तुओं एवं सेवाओं हेतु सुव्यवस्थित राष्ट्रीय बाजार के विकास के लक्ष्यों द्वारा मार्गदर्शित होगी । जीएसटी कॉउंसिल अपने द्वारा की गई संस्तुतियों या इनके क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले विवादों के अधिनिर्णयन हेतु एक तंत्र स्थापित करेगी ।

जी.एस.टी. परिषद के गठन में केंद्रीय वित्त मंत्री (जो परिषद के अध्यक्ष होंगे), राज्यमंत्री (राजस्व) और राज्य वित्त/कराधान मंत्री सम्मिलित होंगे जो केंद्र और राज्यों को निम्न पर अपनी सिफारिशें करेंगे:

(i) केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा लगाये करों, उपकरों और अधिभारों पर जिन्हें जी.एस.टी. के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है;

(ii) वस्तुओं और सेवाओं पर जो जी.एस.टी. के अधीन कीजा सकती हैं या जिन्हें छूट दी जा सकती है;

(iii) जिस तारीख को पेट्रोलियम कच्चे तेल, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्प्रिट (आमतौर पर पेट्रोल के रूप में जाना जाता है), प्राकृतिक गैस और एविएशन टर्बाइन फ्यूल पर जी.एस.टी. लगाया जाएगा;

(iv) मॉडल जी.एस.टी. कानून, करारोपण के सिद्धांत, आईजी.ए स.टी. का संविभाजन और वे सिद्धांत जो आपूर्ति स्थल को निर्धारित करते हैं;

(v) कुल बिक्री की वह सीमारेखा जिसके नीचे वस्तुओं और सेवाओं को जी.एस.टी. से छूट दी जा सकती है;

(vi) वह दरें जिनमें जी.एस.टी.बैंड सहित न्यूनतम तय दरें शामिल हैं;

(vii) प्राकृतिक आपदा या आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए कोई विशेष दर या निर्धारित अवधि के लिए तय की गई दरें;

(viii) उत्तर–पूर्वी राज्यों, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के संबंध में विशेष प्रावधान; तथा

(ix) जी.एस.टी. से संबंधित कोई अन्य मामला, जिसपर परिषद निर्णय ले सकती है;

21.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय

संविधान का (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रावधान करता है कि जी.एस.टी. परिषद का प्रत्येक निर्णय बैठक में कम से कम कुल उपस्थित सदस्यों के 3/4 के बहुमत से मतदान करने के बाद लिया जाएगा। बैठक में कुल डाले गये मतों के 1/3 हिस्से का महत्व केंद्र सरकार के मतों का और बाकी सभी राज्य सरकारों का एक साथ मिलकर कुल डाले गये मतों का 2/3 हिस्से का महत्व होगा। जी.एस.टी. परिषद के सदस्यों की कुल संख्या में से आधे के साथ बैठकों का कोरम गठित होगा।

21.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस

जीएसटी के अंतर्गत करदाताओं तथा कर अधिकारियों के बीच न्यूटनतम फिजिकल इंटरफेस की जरूरत होगी । इस संबन्धि में कुछ महत्व पूर्ण प्रावधान निम्नगलिखित हैं :

(क) केन्द्र एवं राज्य सरकारों से संबन्धित अधिकारियों का परस्पर सशक्तिकरण (क्रास–एम्पावरमेंट) होगा । सीजीएसटी के अधिकारी को एसजीएसटी के अधिकारी के रूप में एवं विलोमत: (वाइस–वर्सा) कार्य करने हेतु अधिकार दिया जायेगा ।

(ख) पंजीकरण ऑनलाइन दिया जाएगा एवं करदाता को पंजीकृत मान लिया जाएगा, यदि कर प्रशासन द्वारा, जिन्हें आवेदन की जाँच आवंटित की गई है, 3 सामान्यर कार्य दिवसों के अन्दर आवेदक को कोई कमी सूचित नहीं की जाती है । ऐसा आवंटन केन्द्र एवं राज्य कर प्रशासन के बीच बारी–बारी से किया जाना है ।

(ग) हर करदाता स्वयं अपने देय दर का मूल्यांकन (स्व–निर्धारण) करेगा एवं इसे सरकार के खाते में जमा कराएगा । करदाता द्वारा फाइल की गई विवरणी (रिटर्न) को स्व–निर्धारण माना जाएगा ।

(घ) कर का भुगतान इलेक्ट्रॉनिक तरीके से इंटरनेट बैंकिंग अथवा क्रेडिट/डेबिट कार्ड के माध्यम से या रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.) अथवा नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) के द्वारा किया जाएगा । छोटे करदाताओं को बैंक के काउंटर पर कर का भुगतान करने की अनुमति होगी । कर भुगतान के लि सभी चालान गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स नेटवर्क (जी.एस.टी.एन.)पर ऑनलाइन तैयार किए जाएँगे ।

(ङ.) कर प्राधिकारियों से बिना किसी मुलाकात/ सहायता के, करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से अपने किये गए प्रदायों का विवरण उपलब्ध् कराएगा । प्राप्त किये गए प्रदायों के विवरण को, उनके सादृश्य् प्रदायकर्ताओं द्वारा फाइल किए गए प्रदाय विवरण से स्वयं भर लिया जाएगा ।

(च) आवक एवं जावक प्रदायों, आईटी.सी. का लिया गया क्रेडिट, देय कर, भुगतान किए गए कर और अन्य. निर्धारित विवरणियों का मासिक रिर्टन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से प्रस्तुत करेगा । कम्पोजीशन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से तिमाही रिटर्न फाइल करेगा । भूलवश/गलत प्रस्तुरत किए गए ब्यौरों को आगामी वर्ष की सितम्बर माह के रिटर्न फाइल करने की अंतिम तारीख अथवा वार्षिक रिटर्न फाइल करने की वास्तविक तारीख में से, जो भी पहले हो, एक करदाता स्वयं संशोधित कर सकता है।

(छ) परस्पैर मेल नहीं खाने वाले बीजकों के लिए इनपुट कर प्रत्यय का रिवर्सल एवं रिक्लेम करदाता से संपर्क किए बगैर जी.एस.टी.एन. पोर्टल पर इलेक्ट्रॉनिक तरीके से किया जाएगा

। साथ ही साथ, यह इलेक्ट्रॉनिक पद्धति नकली बीजकों अथवा एक ही बीजक के आधार पर दुबारा इनपुट कर प्रत्यय लेने के प्रयास को रोकेगा ।

(ज) करदाताओं को इलेक्ट्रॉनिक रूप में लेखे एवं अन्य रिकार्ड रखने की अनुमति दी जाएगी ।

21.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत आयात व निर्यात

21.9.1 जी.एस.टी. के अंर्तगत आयात

वस्तुओं और सेवाओं के आयात को अंतर–राज्य आपूर्ति के रूप में माना जाएगा और देश में वस्तओुं और सेवाओं के आयात पर आई.जी.एस.टी. लगाया जाएगा। कर की घटना का गतंव्य सिद्धांत पालन करेंगे और एस.जी.एस.टी. के मामले में कर राजस्व उस राज्य द्वारा प्राप्त किया जायेगा जहां आयातित वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग किया जा रहा है। वस्तुओं और सेवाओं के आयात पर पिछले चरण में भुगतान किया गया जी.एस.टी. कर पूरा और सारा (full and final) सेट–ऑफ (वापसी) पुनः प्राप्त हो जाएगा।

21.9.2 जी.एस.टी. के अंर्तगत निर्यात

निर्यात को शून्य दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा। जी.एस.टी. के अंर्तगत संरचना योजना (composite scheme) का क्या कार्यक्षेत्र वे छोटे करदाता जिनकी एक वित्तीय वर्ष में टर्नओवर (50 लाख रुपए) तक है, संरचना कर के पात्र होंगे। इस योजना के अंर्तगत, एक कर दाता बिना आई.टी.सी. लाभ लिये एक वित्तीय वर्ष में अपनी टर्नओवर के प्रतिशत के रूप में कर का भुगतान करता है। सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के लिए कर की सीमारेखा (threshold) की दर (1 प्रतिशत) से कम नहीं होगी। संरचना का विकल्प चयन करने वाला करदाता अपने ग्राहकों से किसी भी प्रकार का कर वसूल नहीं करेगा। वह करदाता जो अंतर–राज्य आपूर्ति कर रहा है या रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करता है संरचना योजना का पात्र नहीं होगा।

21.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण

अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति एक कर अवधि के लिये स्वयं अपने देय कर का आंकलन करने के लिये जिम्मेदार होगा और इस तरह मूल्यांकन के बाद उसे धारा 27 के अंतर्गत रिटर्न दाखिल करना आवश्यक होगा। चूंकि एक करदाता को अपने स्वयं मूल्यांकन आधार पर कर का भुगतान करना पड़ता है, अस्थायी आधार पर कर के भुगतान का अनुरोध करदाता से प्राप्त होना चाहिये जिसे सक्षम अधिकारी द्वारा अनुमति दी जाएगी। दूसरे शब्दों में, कोई भी कर अधिकारी स्वप्रेरणा से अस्थायी आधार पर कर भुगतान के आदेश नहीं दे सकता। यह एम.जी.एल. की धारा 44 द्वारा संचालित है। अस्थायी आधार पर कर का भुगतान तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारी उसे एक आदेश के माध्यम से इसकी अनुमति दे देता है। इस उद्देश्य के लिए, कराधीन व्यक्ति को सक्षम अधिकारी को लिखित अनुरोध देना होगा, जिसमें वह अस्थायी आधार पर कर भुगतान करने का कारण बताएगा। कराधीन व्यक्ति द्वारा इस तरह के अनुरोध केवल ऐसे मामलों में किये जा सकते हैं जहां जहां वह निम्न निर्धारित करने में असमर्थ है:

क) उसके द्वारा आपूर्ति की जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के मूल्य, या

ख) उसके द्वारा आपूर्ति किये जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के कर की दर।

ऐसे मामलों में कराधीन व्यक्ति को एक निर्धारित प्रपत्र में एक प्रतिज्ञापत्र निष्पादित करना होगा, और इस तरह की जमानत या सुरक्षा सहित जैसा सक्षम अधिकारी उचित समझता है।

21.11 प्रतिदाय/रिफंड

प्रतिदाय/रिफंड के बारे में एम.जी.एल. की धारा 38 में चर्चा की गई है। प्रतिदाय/रिफंड में भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी या भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं में प्रयोग किया गया कच्चा माल/इनपुट या इनपुट सेवाएं, या उन वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी जिन्हें निर्यात माना गया है, या धारा 38(2) के अंतर्गत प्रदान किये अप्रयुक्त इनपुट टैक्स क्रेडिट शामिल हैं।

एम.जी.एल. की धारा 38 के स्पष्टीकरण में दिए अनुसार संबंधित व्यक्ति को प्रासंगिक तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के भीतर आवेदन दाखिल करना आवश्यक है।

प्रतिदाय/रिफंड स्वीकृत करने की कोई समय सीमा सभी मामलों में 90 दिन है, सिवाय उन मामलों के जो, कुछ निर्यात का श्रेणियों के लिए है, जैसे कि धारा 38 की उप–धारा (4ए) में निर्दिष्ट किया गया है और उनके प्रतिदाय/रिफंड का दावा

80 प्रतिशत की हद तक लौटाने योग्य है। यदि प्रतिदाय/रिफंड तीन महीने के भीतर स्वीकृत नहीं किया जाता, तब ऐसी स्थिति में विभाग द्वारा ब्याज का भुगतान होगा।

21.11.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)

करदाता को अपने विवरणी (रिटर्न) में, इनपुट पर भुगतान किए गए कर का स्व–निर्धारित क्रेडिट (इनपुट कर प्रत्यनय) लेने की अनुमति है । करदाता नेगिटिव लिस्ट् में विनिर्दिष्टत कुछ मदों के अलावा सभी माल और सेवाओं पर भुगतान किए गए कर का क्रेडिट ले सकता है और उनका उपयोग आउटपुट टैक्स के भुगतान के लिए कर सकता है । इनपुट पर भुगतान किए गए कर का क्रेडिट वहाँ लिया जा सकता है जहाँ इनपुटों का उपयोग करदाता अपने कारोबार के दौरान या उसे अग्रसर करने अथवा कर योग्यअ प्रदायों के लिए करता है । केन्द्र सरकार और अनेक राज्य सरकारों द्वारा कैपिटल गुड्स की पावती पर, एक से अधिक किश्तों में, इनपुट कर प्रत्यय की अनुमति देने के वर्तमान प्रावधानों के विपरीत जी.एस.टी. प्रावधान पूरे इनपुट कर का एक बार प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति देते हैं । ऐसे इनपुट कर प्रत्यय को आगे जारी रखा जाएगा जिसका उपयोग नही किया जा सका है। ग्रुप कंपनियों के बीच सेवाओं पर इनपुट सर्विस डिस्ट्रीब्यूंटर (आई.एस.डी.) की व्यवस्था के द्वारा इनपुट कर प्रत्यय के वितरण की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी ।

21.11.2 धन वापसी (रिफंड)

ऑनलाइन धनवापसी का दावा प्रस्तुत करने की समय–सीमा को एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष किया गया है । पूर्ण आवेदन की पावती के 60 दिन के भीतर धनवापसी की मंजूरी प्रदान की जाएगी । निर्धारित 60 दिन की अवधि के भीतर यदि धनवापसी की मंजूरी नहीं दी जाती है तो उस पर ब्याज देय होगा । यदि धनवापसी का दावा दो लाख रूपये से कम राशि का है तो दावाकर्ता के लिए साक्ष्यगत प्रमाण, यह सिद्ध करने के लिए कि उसने किसी और व्यसक्ति को यह कर भार स्थानांतरित नहीं किय है, प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं होगी । केवल इस आशय का स्व–प्रमाणन ही पर्याप्त होगा । इनपुट कर प्रत्यय के धन वापसी की अनुमति निर्यात अथवा जहाँ इनवर्टेड ड्यूटी स्ट्रक्चर (अर्थात जहाँ आउटपुट पर लगाए गए कर की दर, इनपुट पर लगाए गए कर की दर से कम है) के कारण क्रेडिट जमा हुआ है, के मामलों में होगी ।

21.11.3 माँग (डिमांड्स)

कर विवादों के लिए सनसेट क्लॉज की एक नई अवधारणा को लागू किया गया है । इसमें यह प्रावधान किया गया है कि सामान्य मामलों में, वार्षिक रिटर्न फाइल करने के तीन वर्ष के भीतर अधिनिर्णयन आदेश जारी कि जाएगा और धोखा–धड़ी जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में वार्षिक रिटर्न फाइल करने की तारीख से पाँच वर्ष की समय सीमा के पहले अधिनिर्णयन आदेश जारी किया जाना है । सामान्य मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से तीन महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा तथा धोखा–धड़ी/जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से छह महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा । यदि लेखा– परीक्षा/जाँच पड़ताल के दौरान कम जमा किए गए कर/नहीं जमा किए गए कर को ब्याद सहित जमा करा दिया जाता है तो दण्डक शून्य अथवा काफी कम होगा ।

21.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन

कोई भी व्यक्ति जो किसी आदेश या विरूद्ध पारित किये गये किसी फैसले से असंतुष्ट है उसे अपील करने का अधिकार है। ऐसा आदेश या निर्णय 'निर्णय देने वाले प्राधिकारी' द्वारा पारित किये जाने चाहिए। हालांकि, कुछ निर्णय या आदेश (धारा 93 में प्रदान किये अनुसार) अपील करने योग्य नहीं हैं।

प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल करने की क्या समय सीमा आदेश और फैसला सूचित करने के 3 महीने तय की गई है।

न्यायाधिकरण के पास अपील अस्वीकार करने के लिए शक्तियाँ उस स्थिति में होगी जब ऐसे मामलों में जहां अपील शामिल है –

- कर राशि या
- इनपुट कर क्रेडिट या
- कर में अंतर या
- इनपुट कर क्रेडिट में फर्क है या
- जुर्माने की राशि,
- शुल्क की राशि या
- दंड की राशि का आदेश

रूपये 1,00,000/– से कम है, न्यायाधिकरण के पास कथित अपील को अस्वीकार करने की स्वेच्छा है। (एम.जी.एल. की धारा 82(2))

21.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी

एम.जी.एल. के अंतर्गत शब्द "निरीक्षण" एक नया प्रावधान है। यह तलाशी की तुलना में एक नरम प्रावधान है जो अधिकारियों को कराधीन व्यक्ति के व्यापार के किसी भी स्थान पर और इसके साथ ही उस व्यक्ति जो माल के परिवहन में संलग्न है या जो स्वामी है या एक मालगोदाम या गोदाम का ऑपरेटर है उस तक पहुंच बनाने में सक्षम करता है। एम.जी.एल. की धारा 60 के अनुसार, निरीक्षण का कार्यान्वयन सी.जी.एस.टी/एस.जी.एस.टी के सयुंक्त आयुक्त या उससे ऊपर के रैंक के एक अधिकारी द्वारा लिखित अधिकार पत्र के अतं गर्त किया जा सकता है। संयुक्त आयुक्त या उससे

उच्च अधिकारी इस तरह के प्राधिकार सिर्फ तभी दे सकते हैं जब उनके पास यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि संबंधित व्यक्ति ने निम्न में से एक किया है:

i. आपूर्ति के किसी लेनदेन को दबाया है;
ii. हाथ में वस्तुओं के स्टॉक को दबाया है;
iii. ज्यादा इनपुट कर क्रेडिट का दावा किया है;
iv. कर के लिए सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया है;
v. एक ट्रांसपोर्टर या गोदाम के मालिक के पास कुछ माल रखा है जिसपर कर का भुगतान बचाया गया है या अपने खातों या माल को इस तरीके से किसी स्थान पर रख दिया है कि कर से बचने की संभावना हो।

21.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण

मॉडल जी.एस.टी. कानून अध्याय XVI अपराध और दंड को संहिताबद्ध करता है। अधिनियम की धारा 66 में 21 अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है, धारा 8 के अंतर्गत निर्धारित दंड के अतिरिक्त कराधीन व्यक्ति द्वारा आपसी निपटारा प्राप्त करने के लिए जो इसका हकदार नहीं है। कथित अपराध इस प्रकार हैं:—

1) चालान/बिल के बिना आपूर्ति करना या झूठे/गलत बिल/चालान के साथ आपूर्ति करना;
2) बगैर आपूर्ति किए चालान/बिल जारी करना;
3) एकत्रित किया गया कर तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;
4) एकत्रित किया गया कर एम.जी.एल. के उल्लंघन में तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;
5) गैर—कटौती या स्रोत पर कर की कम कटौती करना या धारा 37 के अंतर्गत स्रोत पर कर कटौती ;ज्क्द्ध की रकम जमा नहीं करना;
6) गैर—संग्रह या कम—संग्रह या धारा 43सी के अंतर्गत स्रोत पर एकत्रित कर का भुगतान नहीं करना;
7) वस्तुओं और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति के बिना इनपुट कर क्रेडिट का लाभ प्राप्त/उपयोग करना;
8) धोखे से कोई प्रतिदाय/रिफंड प्राप्त करना;
9) धारा 17 के उल्लंघन में इनपुट सेवा वितरक से इनपुट कर क्रेडिट का लाभ उठाना/उपयोग करना;
10) झूठी जानकारी या झूठे वित्तीय अभिलेख बनाकर प्रस्तुत करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खाते/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
11) कर के लिए उत्तरदायी होने के बावजूद पंजीकरण कराने में विफलता;
12) पंजीकरण के लिए अनिवार्य क्षेत्रों के बारे में झूठी जानकारी प्रस्तुत करना;
13) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने में रूकावट डालना या रोकना;
14) निर्धारित दस्तावेजों के बगैर माल परिवहन करना;
15) कारोबार के आंकड़े दबाना जिससे कर की चोरी की जा सके;
16) अधिनियम में निर्दिश्ट की गई विधि अनुसार खातों/दस्तावेज बनाए रखने में विफलता या अधिनियम में निर्दिष्ट अवधि के लिये खातों/दस्तावेज बनाए रखने के लिए विफल रहना;

17) अधिनियम/नियम के अनुसारएक अधिकारी द्वारा जानकारी/दस्तावेज की मांग पर विफल रहना या किसी भी कार्यवाही के दौरान झूठी जानकारी/दस्तावेज प्रस्तुत करना;

18) किसी भी जब्ती के लिए उत्तरदायी माल की आपूर्ति/परिवहन/भंडारण;

19) किसी अन्य व्यक्ति के जी.एस.टी.आई.एन. का उपयोग कर चालान/बिल या दस्तावेज जारी करना;

20) किसी भी सामग्री से छेड़छाड़/साक्ष्य नष्ट करना;

21) हिरासत/जब्त/अधिनियम के अंतर्गत संलग्न माल का निपटान/छेड़छाड करना;

धारा 66(1) में प्रावधान करती है कि कोई भी कराधीन व्यक्ति है जिसने धारा 66 में उल्लिखित कोई अपराध किया हे उसे दंड लगाकर निम्नलिखित में सबसे अधिक राशि का भुगतान करना होगाः

- करवंचना की राशि, धोखे से रिफंड के रूप में प्राप्त राशि, ऋण के रूप में लाभ उठाया, या कटौती नहीं करना या एकत्र करना या कम कटौती करना या थोड़ा कम एकत्र करना, से संबंधित राशि या
- 10,000/– रुपए की राशि

इसके अतिरिक्त धारा 66(2) में प्रावधान है कि कोई भी पंजीकृत कराधीन व्यक्ति जो बार–बार कम कर का भुगतान करता है वह सजा के लिए उत्तरदायी है जो निम्न में सबसे अधिक होगी :

- कम भुगतान किए कर का 10 प्रतिशत या
- 10,000/– रुपय

एम.जी.एल. की धारा 70 के अंतर्गत, वस्तुएं/माल जब्ती के लिये उत्तरदायी होगा यदि कोई व्यक्तिः

- इस अधिनियम के किसी प्रावधान के उल्लंघन के परिणाम में माल की आपूर्ति और उस कथित उल्लंघन के परिणामस्वरूप अधिनियम के अंतर्गत कर की चोरी करता है, या
- अधिनियम के अंतर्गत आवश्यक तरीके से वस्तुओं/माल का सही खाते नहीं रखता है, या
- बिना पंजीकरण का आवेदन किये कर के लिये उत्तरदायी वस्तुओं की आपूर्ति करता है, या
- कर भुगतान से बचने के इरादे के साथ अधिनियम/नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है।

एम.जी.एल. की धारा 73 अधिनियम के अंतर्गत कुछ प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है जो आपराधिक कार्यवाही और अभियोगप्रारम्भ करने का आदेश देते हैं। नीचे 12 ऐसे प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया हैः

1) बिना चालान/बिल जारी किये आपूर्ति करना या झूठे/गलत चालान/बिल जारी करना;

2) बिना आपूर्ति किये चालान/बिल जारी करना;

3) 3 महीने से भी अधिक अवधि के लिये एकत्रित किये कर का भुगतान ना करना;

4) अधिनियम का उल्लंघन करते हुए 3 महीने से भी अधिक समय के लिये एकत्र किये गये किसी कर को जमा नहीं करना है;

5) बिना वस्तुओं/माल और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति किए इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना या उपयोग करना;

6) किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी से रिफंड प्राप्त करना,

7) झूठी जानकारी प्रस्तुत करना या वित्तीय अभिलेखों की जालसाझी करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खातों/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
8) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्यों का निष्पादन करने में अवरोध उत्पन्न करना या रोकना;
9) जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल से निपटना दूसरे शब्दों में, जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल की रसीद, आपूर्ति, भंडारण या ढुलाई करना;
10) अधिनियम के उल्लंघन करने वाली सेवाओं की आपूर्ति प्राप्त करना/निपटना;
11) अधिनियम/नियम द्वारा आवश्यक किसी जानकारी देने में विफलता या झूठी जानकारी देना;
12) ऊपर 11 अपराधों में से किसी एक को करने का प्रयास करना या सहयोग देना।

21.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय

जीएसटी कानून के अंतर्गत अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) के प्रावधान को जारी रखा गया है । इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नवत हैं :–

(क) वर्तमान में जितने विषयों में, अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) लेने का प्रावधान है, जी एस टी में उनसे अधिक विषयों में, एडवांस रूलिंग प्राप्त करने की अनुमति दी गई है । इनमें शामिल विषय हैं :– वस्तुओं/सेवाओं का वर्गीकरण, प्रदाय का समय एवं मूल्य कर की दर, इनपुट कर क्रेडिट की स्वीकार्यता, कर भुगतान की देयता, रजिस्ट्रेशन लेने की देयता और क्या कोई खास लेन–देन जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत प्रदाय के समतुल्य हैं ।

(ख) अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग)लेने का प्रावधान केवल नए कार्यकलापों के लिए ही नहीं है बल्कि यह सुविधा माल और सेवा कर में जारी कार्यकलापों के लिए भी है । जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत अपीन की सुविधा भी उपलबध कराई गई है जो अभी केन्द्रीय कानून के अंतर्गत उपलब्ध नहीं है ।

(ग) आवेदनकर्ता अथवा राजस्व विभाग यदि अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) से व्यंथित है तो अब से उन्हें एडवांस रूलिंग के रिविजन के लिए अपीलीय प्राधिकारी के सपक्ष अपील दायर करने का मौका मिलेगा । अग्रिम विनिर्णय को पहले की तुलना में, अधिक सरलता से हासिल किया जा सकेगा, क्योंमकि प्रत्येक राज्य में एक अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण और अपील प्राधिकरण होगा ।

21.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान

माल और सेवा कर के उल्लेखनीय प्रावधान निम्नववत हैं :–

i) संव्यवहार मूल्य (ट्रान्जैक्शेन वैल्यू) अर्थात बीजक मूल्य, जोकि केन्द्रीय उत्पा्द एवं सीमा शुल्क कानून के अंतर्गत वर्तमान व्यवस्था है, के आधार पर वस्तुओं के प्रदाय का मूल्य निर्धारित किया जाएगा । करदाताओं को इस बात की अनुमति दी गई है कि वे पहले की गई प्रदायों के संबन्ध में अनुपूरक अथवा संशोधित बीजक जारी करें ।

ii) कर का भुगतान करने के लिए नए तरीकों, जैसे कि क्रेडिट कार्ड एवं डेबिट कार्ड, नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) और रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट(आर.टी.जी.एस.) को माल और सेवा कर व्यवस्था में समाविष्ट किया गया है ।

iii) ई–कॉमर्स कम्पनियों से यह अपेक्षित है कि फुल्फिल्मेंट मॉडल के अंतर्गत अपने ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्य म से की गई प्रदायों पर वे स्त्रोत पर ही सरकार द्वारा अधिसूचित दर पर कर संग्रहण करें ।

iv) जीएसटी कानून में एक मुनाफाखोरी–रोधी प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए समाविष्ट किया गया है कि कर दरों में किसी भी कमी के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुाओं/सेवाओं की कीमतों में उसी अनुरूप कमी आनी चाहिए ।

21.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान

संविधान (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रदान करता है कि वस्तुओं और सेवाओं की परिषद या उसके कार्यान्वयन की सिफारिशों से उत्पन्न किसी भी विवाद में निर्णय देने के लिये एक मैकेनिज़्म स्थापित करेगी–

(क) भारत सरकार और एक या एक से अधिक राज्यों के बीच; या

(ख) भारत सरकार और कोई राज्य या एक से अधिक राज्य एक तरफ तथा एक या एक से अधिक राज्य दूसरी तरफ, के बीच; या

(ग) दो या अधिक राज्यों के बीच

21.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने

माल प्राप्त करने वाला आई.टी.सी. (Input Tax Credit) प्राप्त करने में सक्षम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, वे प्राप्तकर्ता जो संरचना योजनाओं के अंतर्गत पंजीकृत हैं रिवर्स चार्ज के अंतर्गत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होंगे।

21.18 निपटान आयोग

निपटान आयोग की स्थापना का मूल उद्देश्य इस प्रकार हैः–

1. करदाता के लिए विवाद समाधान के लिए एक वैकल्पिक माध्यम प्रदान करना;
2. विवादों में संलग्न जी.एस.टी. के भुगतान में तेजी लाने के लिए महंगी और समय लेने वाली मुकदमेबाजी की प्रक्रिया से बचना;
3. उन करदाताओं को साफ सुथरी छवि प्रस्तुत करने के लिये अवसर प्रदान करना जो कर का भुगतान करने से बचते रहे हैं;
4. करदाता को उनके कर दायित्व के मामलों के निपटान लागू करने के लिये एक मंच की सुविधा प्रदान करना, जोकि उनके द्वारा पूर्ण और समग्र कर दायित्व की घोशणा के आधार पर हो।
5. विवादों के तीव्र निपटारे को प्रोत्साहित करना और कुछ स्थितियों में व्यापार को अभियोजन की चिंताओं से मुक्ति दिलाना;

मॉडल जी.एस.टी. कानून में, केवल आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत निपटान आयोग का प्रावधान किया गया है। (धारा–11से 26) इसका आशय यह है कि राज्य के भीतर लेन–देन से संबंधित कर देयता के मामलों को निपटाया नहीं जा सकता। हालांकि, वहां एक संभावना यह है कि उन राज्यों के कर प्रशासन जो निपटान आयोग गठित करना चाहते हैं वह आई.जी.एस.टी. अधिनियम और सी.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किये नमूने/टेम्पलेट के आधार पर ऐसा कर सकते हैं और कथित राज्यों के लिए आईजी.ए स.टी. अधिनियम से उपलब्ध सक्षम प्रावधानों का अनुसरण कर सकते हैं।

आई.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, निपटान के लिए आवेदन करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए ताकि निपटान का मामला स्वीकार किया जा सकेः

(क) आवेदक ने रिटर्न प्रस्तुत कर दिया/दी हैं, जिन्हें उसे या आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत करना आवश्यक था या इसकी आवश्यकता को निपटान आयोग द्वारा इन कारणों की रिकॉर्डिंग करने के बाद कि वह संतुष्ट था, खारिज कर दिया है कि रिटर्न नहीं भरने के पीछे कुछ वैध परिस्थितियां अस्तित्व में थी;

(ख) आवेदक को कर की मांग के लिए एक कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ है या आई.जी.एस. टी. अधिकारी द्वारा कर की मांग की पुश्टि जारी करने का आदेष प्राप्त हुआ है जो प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित है;

(ग) आवेदन में आवेदक द्वारा स्वीकार किये गये अतिरिक्त कर की राशि पांच लाख रुपए से अधिक है; तथा

(घ) आवेदक ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत उसके द्वारा स्वीकृत देय ब्याज सहित कर का अतिरिक्त भुगतान कर दिया है।

21.19 सारांश

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी. एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।

21.20 शब्दावली

वस्तु एंव सेवा कर : वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है।

सी.जी.एस.टी. :वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा

एस.जी.एस.टी. : वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा।

21.21 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में ....कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा ।
2. केवल ....पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा।
3. केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर .... लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।

4. वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार .... तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा।
5. निर्यात को .... दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा।

21.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अप्रत्यक्ष 2. मूल्य संवर्धन (value addition) 3. एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) 4. (10 लाख रूपये) 5. शून्य

21.23 स्वपरख प्रश्न

1. जी एस टी के अर्थ की व्याख्या कीजिए।
2. जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर कौन–कौन से है ?
3. जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं कौन–कौन सी है ?
4. प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी कौन है ?
5. माल और सेवा कर के लाभों का वर्णन कीजिए ।
6. जीएसटी की मुख्य विशेषताएं कौन–कौन सी है ?
7. जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों का वर्णन कीजिए ।
8. जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन का वर्णन कीजिए ।
9. निपटान आयोग क्या है ?
10. जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान कैसे किया जाता है ?

21.24 संदर्भ पुस्तकें

केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड, नई दिल्ली **(संकलित)**।